Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NAGRI PRACHARN

ATRKA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या ८०
पुस्तक संख्या ७०१ २५ जा
आगत पंजिका संख्या सं. 2026
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

110784

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

CHECKED 1973

वर्ष ६५ संवत् २०१७ अंक १

★

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : श्री करुणापति त्रिपाठी

डा० बचनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

★

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

वार्षिक मूल्य १०) : इस अंक का २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R

८०

का० २५वाँ

सं. २०२६

वर्ष. ९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110784
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

110784

वर्ष ६५
संवत् २०१७
अंक १

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
श्री करुणापति त्रिपाठी
डा० बच्चनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१ – नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२ – हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३ – भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४ – प्राचीन-अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

१ – प्रतिवर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं।

२ – पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

३ – पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास में भेजी जाती है।

४ – लेखों की पांडुलिपि कागज के एक ओर लिखी हुई, स्पष्ट एवं पूर्ण होनी चाहिए। लेख में जिन ग्रंथादि का उपयोग या उल्लेख किया गया हो उनका संस्करण और पृष्ठादि सहित स्पष्ट निर्देश होना चाहिए।

५ – पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है। परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसूची

'ढोलामारू रा दूहा' में अर्थ-संशोधन-विषयक कुछ सुझाव—डा० माताप्रसाद गुप्त ... १
भारत में बहीखाता-परंपरा—श्री कस्तूरमल बाँठिया १४
लोकायतिकों की परंपरा—श्री जगदीशचंद्र मिश्र ४८
हिंदी व्याकरण संबंधी गवेषणा—१ (हिंदी भाषा में विधेयों का वर्गीकरण)
—श्री स० म० दीमशित्स ५३

विमर्श

राजस्थानी की 'बे' विभक्ति का० मूल—श्री केशवराम का शास्त्री ६३
'ने' और 'नू' विभक्तियाँ—श्री किशोरीदास वाजपेयी ६३

चयन ६४

निर्देश ६६

समीक्षा

विचार प्रवाह—श्री चंद्रहास ६८
पंत जी के दो काव्य संग्रह : चिदंबरा और रश्मि बंध—श्री चंद्रदास ... ७०
आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य—श्री अजीत ७४
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण 'अभिनंदन ग्रंथ'—श्री क० प० त्रि० ... ... ७५
वृंदावनी हथेली (कलकत्ता)—श्री क० प० त्रि० ... ... ७६
हिंदी पाकेट बुक्स की चार पुस्तकें— ,, ... ७६
चित्ररेखा—डा० रवींद्र 'भ्रमर' ७७
रूपा जीवा—श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ७९
शुक्र ग्रह पर मानव—श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ७९
दशकुमार चरित— ,, ... ८०
संगीत निबंधावली ,, ... ८०
जानने की बातें—श्री त्रिलोचन ८१
प्राप्ति स्वीकार ८१

विविध

स्व० श्रीधर जी पाठक—श्री पद्मधर पाठक ८३

संपादकीय

स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ९०
भारतीय अभिलेखसूची (धारावाहिक स्वतंत्र ग्रंथ) नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं०
२०१६, वर्ष ६४, अंक २ से आगे—पृष्ठ ९ – १६ अंत में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५] संवत् २०१७ [अंक १

'ढोला मारू रां दूहा' में अर्थ - संशोधन - विषयक कुछ सुझाव

माताप्रसाद गुप्त

ढोला - मारू के प्रेम - विषयक दोहे प्राचीन राजस्थानी और हिंदी में अपनी सरसता के कारण बेजोड़ हैं, और इनका जो संपादन अब से पचीस - छब्बीस वर्ष पूर्व राजस्थान के तीन प्रमुख विद्वानों – सर्वश्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, तथा नरोत्तमदास स्वामी द्वारा नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की ओर से हुआ था, वह रचना के महत्व के अनुरूप ही अपने युग का एक अत्यंत सराहनीय प्रयास था। उसमें विभिन्न प्रतियों के आधार पर रचना का पाठ - संपादन कर संपादकों ने दोहों की एक टीका भी दी थी और परिशिष्ट में शब्दों की व्युत्पत्ति आदि के विषय में खोजपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत की थीं। वस्तुतः इतने परिश्रम और योग्यता के साथ हिंदी की कम ही रचनाओं का संपादन और अर्थ - स्पष्टीकरण हुआ है। किंतु 'ढोला मारू रा दूहा' जैसी प्राचीन रचनाओं के अर्थ - शोध - विषयक प्रयास अधिकांश में इसलिए अंतिम नहीं हो सकते हैं कि इनमें प्रयुक्त भाषा - रूप के संबंध की हमारी जानकारी यथावश्यक रूप से पूर्ण नहीं है। अतः नीचे मैं 'ढोला मारू रा दूहा' के कुछ स्थलों पर अर्थ - संशोधन के सुझाव रचना के प्रेमियों के विचारार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।[1]

(१) दोहा १० – ढोलउ मारू परणिया 'वरदल' हुनउ उछाह।
आ पूगल ची पदमिणी अउ नरवर चउ नाह ॥

१. 'ढोला मारू रा दूहा' के संबंध के मेरे अन्य दो लेख जो उसके पाठ से संबंधित हैं निम्नलिखित हैं –

(१) 'ढोला मारू रा दूहा और कबीर - ग्रंथावली', उत्तर भारती, वर्ष ६, अं० २, पृ० १२७ - १३२।

(२) 'ढोला मारू रा दूहा और माधवानल काम कंदला चउपई', नागरीप्रचारिणी पत्रिका। वर्ष ६४, अंक २, पृ० ९३ - १०२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वरदल' के संबंध में कहा गया है कि उसका ठीक अर्थ निश्चित नहीं हो सका है। (पृ० ४११)। 'वर-दल' का अर्थ स्पष्ट ही 'बारात' है।

(२) दोहा १२ – जिम जिम मन अमले किअइ 'तार चढ़ंती जाइ'।
तिम तिम मारवणी तणइ तन तरुणापउ थाइ॥

'तार चढ़ंती जाइ' का अर्थ किया गया है – 'ऊँचा चढ़ता जाता था।' (पृ० ५)। किंतु 'चढ़ंती' क्रिया स्त्रीलिंग की है। अर्थ कदाचित् होना चाहिए 'तारक-माला चढ़ती जाती थी' अर्थात् 'उसके नक्षत्र अपने उच्च स्थानों पर होते जाते थे।'

(३) दोहा ३२ – बाबहिया 'तर' पंखिया तइँ किउँ दीन्ही लोर।
मइँ जाणयउ पिउ आवियउ ससहर चंद चकोर॥

'तर' का अर्थ 'गहरे रंग का' किया गया है, और उसे फारसी 'तर' (=हरा) बताया गया है। (पृ० ४३०)। किंतु पपीहा तो लाल होता है :–

तीखा लोयण कटि करल उर रत्तड़ा बिबीह॥ ४५९

और अन्यत्र उसे 'रत पंखिया' कहा गया है :–

बाबहिया रतपंखिया बोलइ मधुरी वाणि॥ ३४

इसलिये विवेच्य-स्थल पर भी पाठ 'तर' के स्थान पर 'रत' और 'रत' का अर्थ <रत्त <रक्त= 'लाल' होना चाहिए।

(४) दोहा ५९ – कूँझड़ियाँ कुरलाइयाँ ओलइ बइसि करीर।
'सारहली' जिउँ सल्हियाँ सज्जण मंझ सरीर॥

'सारहली' का अर्थ 'सार' मात्र किया गया है (पृ० ५६) और 'सार' शब्द को 'शल्य' से व्युत्पन्न बताते हुए 'हली' को उसका ऊनवाचक प्रत्यय कहा गया है (पृ० ४४१)। 'सार' <सं० शल्य=सेल ठीक है किंतु 'हली' <'फली' है, और सेल का 'फल' या 'फली' उसकी अनी होती है।

(५) दोहा १०६ – ढाढ़ी गुणी बोलाविया राजा तिण ही ताल।
नरवर गढ़ ढोलइ कन्हइ जात्रउ 'बागरवाल'॥

'बागरवाल' का अर्थ 'याचक' किया गया है (पृ० ३३) और 'बागर' को संस्कृत 'वागर' (=विद्वान्, पंडित) से व्युत्पन्न बताते हुए कहा गया है कि 'वाल' (हिं० वाला) प्रत्यय यहाँ निरर्थक जान पड़ता है (पृ० ४५५)। किंतु इस 'बागरवाल' का अर्थ 'बागर (बागड़) प्रदेश-वाला (निवासी)' है। 'बागड़' राजस्थान का एक प्रसिद्ध भूभाग है, और मूलतः इसके निवासी होने के कारण अनेक व्यक्ति अपने नामों में 'बागड़ी' उपाधि लगाते हैं। गुजरात का भी एक भूभाग 'वागड़' नाम से प्रसिद्ध रहा है (दे० पाइअ सद्द महण्णवो) और हिंदी की 'बाँगड़ू' बोली हिंदी के 'बाँगड़' प्रदेश के नाम पर कहलाती है।

(६) दोहा ११४ – पंथी एक संदेसड़उ भल माणस नइ भक्ख।
आतम तुझ पासइ अछइ 'ओलग' रूड़ा रक्ख॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ओलग' का अर्थ 'दूर' किया गया है (पृ० ३५) और उसे संस्कृत अपलग्न <अप० ओलग्ग से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ४६१)। यह शब्द रचना में अन्यत्र भी आया हुआ है :-

ढाढी राल्यूँ ओलग्या गाया बहु बहु मंत ॥ १८६

यहाँ 'ओलग्या' के अर्थ 'पहुँचे' किया गया है (पृ० ५७)। अनुमान से प्रसंगानुसार अर्थ लगाने के कारण ही दोनों स्थलों पर अर्थ में इस प्रकार का अंतर पड़ा है। यह प्राकृत का एक प्रचलित शब्द रहा है और प्रथम स्थल पर प्रा० 'ओलग्गा' = सेवा (पाइअ सद्द महण्णवो) तथा दूसरे स्थल पर प्रा० 'ओलग्ग' [अव+लग्] = सेवा करना (पाइअ सद्द महण्णवो) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(८) दोहा १३८ - ढोला 'ढीली: हर किया' मूँक्या मनह विसारि।
संदेसउ इन पाठवइ जीवाँ किसइ अधारि ॥

'ढीली हर किया' का अर्थ किया गया है 'प्रेम को शिथिल कर दिया' (पृ० ४२) और 'हर' को प्रा० म्हर <सं० स्मर से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ४६७)। प्रथम तो 'हर' 'स्मर' से व्युत्पन्न नहीं हो सकता है, दूसरे 'ढीली' स्त्रीलिंग सकर्मक क्रिया 'स्मर' पुल्लिंग कर्म के साथ लगनी असंभव है। 'ढीली' और 'हर' स्पष्ट ही क्रमशः <'दिल्ली' और <सं० 'गृह' हैं। प्रथम चरण का आशय है "ढोला ने दिल्ली में घर किया है—विवाह कर गृहस्थी जमाई है—और मुझे उसने मन से विस्मृत कर छोड़ दिया है।"

(७) दोहा १३९ - ढोला 'ढीला हर मुझे' दी ठउ थणे जणेह।
चोल बरन्ने कप्पड़े सावर धन अंगेह ॥

'ढीली हर मुझे' का अर्थ 'मेरी प्रेम स्मृति को शिथिल कर' किया गया है। किंतु 'ढीली हर' स्पष्ट ही <ढीली - धरा = दिल्ली प्रदेश है और 'मुझे' का अर्थ 'मुझको' है।

(९) दोहा १५१ - बीजुलियाँ 'जालउ मिल्याँ' ढोला हूँ न सहेसि।
जउ आसाढ़ि न आवियउ सावण 'समकि' मरेसि ॥

'जालउ मिल्याँ' का अर्थ 'जाल मिल रहे हैं' और 'समकि' का अर्थ 'चौंक कर' किया गया है (पृ० ४६), किंतु पाठ 'जालउ मिल्याँ' न होकर 'जाल उमिल्याँ' होना चाहिए। उमिल्ल <उन्मील = प्रकाशमान, उल्लसित, उद्घाटित है (पाइअ सद्द महण्णवो), और 'समकि' < समकम् = सह, साथ है। दोहे का अर्थ होगा "बिजली के उल्लसित जाल को, हे ढोला, मैं नहीं सह सकूँगी; यदि तुम आषाढ़ में न आए तो मैं श्रावण में [उस विद्युत - जाल के उल्लसित होने के] साथ ही मर जाऊँगी।"

(१०) दोहा १५३ - बीजुलियाँ 'पारोकियाँ' नीठ ज नीगमियाँह।
अजइ न सज्जन बाहुड़े वलि पाछी वलियाँह ॥

'पारोकियाँ' का अर्थ 'परकीया नायिकाओं की भाँति' किया गया है (पृ० ४७), किंतु 'परकीया से 'पारोकियाँ' होना असंभव है। 'पारोक' है प्रा० पारोक्ख <सं० पारोक्ष = परोक्ष - विषयक, परोक्ष - संबंधी। पहले चरण का अर्थ अतः होगा "बिजलियाँ [कठिनता से] पारोक्ष (परोक्ष की वस्तुएँ) हुईं और कठिनता से गईं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) दोहा १६१ – चंदण देह कपूर रस सीतल गंग प्रवाह।
मन रंजण तन 'उल्हवण' कदे मिलेसी नाह ॥

'उल्हवण' का अर्थ 'उल्लसित करनेवाले' किया गया है (पृ० ५०), किंतु 'उल्हव' का अर्थ 'ठंडा करना', 'आग को बुझाना' होता है (पाइअ सद्द महण्णवो)। दूसरे चरण का अर्थ अतः होगा, "मन को रंजित करनेवाले, और तन को शीतल करने वाले मेरे नाथ कब मिलेंगे ?"

(१२) दोहा १८४ – स्रवण सँदेसा साँभले ढाढी किया प्रयाँण।
'मागरवाल' जु आविया देसे साल्ह सुजाँण ॥

'मागरवाल' का अर्थ 'याचक' किया गया है (पृ० ५६), किंतु 'मागर' से 'माँगना' अर्थ कल्पित ही है। 'मागर' वस्तुतः निरर्थक है। होना चहिए 'बागर' जैसा वह रचना में अन्यत्र भी (दो० १०५ तथा दो० १८७ में) आया हुआ है। इस 'बागरवाल' के अर्थ के लिए दो० १०५ के 'बागरवाल' के संबंध का विवेचन देखिए।

(१३) दोहा १८७ – 'बागरवाल' शब्द के विषय में देखिए ऊपर दो० १०५ में आए हुए 'बागरवाल' शब्द के संबंध का विवेचन।

(१४) दोहा १८६ – ढाढी रात्यूँ 'ओलग्या' गाया बहु बहु भंत।
माँगण पंथां जाँणिकह तब छंडिया निचंत ॥

'ओलग्या' के विषय में देखिए ऊपर दो० ११४ के 'ओलग' शब्द के संबंध का विवेचन।

(१५) दोहा १६० – सिंधु परइ सत जोअणे खिवियाँ बीजलियाँह।
सुरहउ 'लोद्र' महक्कियाँ भीनी ठोवड़ियाँह ॥

'लोद्र' का अर्थ 'लोद्र देश (पूगल)' किया गया है (पृ० ५८)। पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है। 'लोद्र' < सं० लोध्र है जो अपने सुगंधित पुष्पों के लिए प्रसिद्ध रहा है।

(१६) दोहा १११ – सिंधु परइ सउ जोअणे नीची खिवइ निहल्ल।
उर भेदंती सज्जणां 'ऊँचेड़ंती' सल्ल ॥

'ऊचेड़ंती' का अर्थ 'उखेलती है' किया गया है (पृ० ५८) और उसकी व्युत्पत्ति उत्+चालय से बताई गई है (पृ० ४८२)। किंतु प्रसंग से यह अर्थ अपेक्षित नहीं लगता है, क्योंकि यदि बिजलियाँ विरह रूपी शल्य को उखेल (उखाड़) लेती है, तो वे विरही का उपकार ही करती हैं। 'उचेड़' (अ) 'उच्छ्रेर' < उत्+श्रि = ऊँचा होना, (आ) 'उच्छाल' < उत्+शालय् = उछालना, ऊँचा फेंकना, अथवा (इ) उच्छिद < उत्+छिद् = उन्मूलन करना, विनाश करना में से किसी से व्युत्पन्न लगता है। इन तीन विकल्पों के अनुसार दोहे के दूसरे चरण का अर्थ होगा, "(अ) वह स्वजन के हृदय को भेदती और [तदनंतर] ऊँची उठती हुई सेल (बर्छी) है। (आ) वह स्वजन के हृदय को भेदती और उसको ऊँचा फेंकती हुई सेल (बर्छी) है। (इ) वह स्वजन के हृदय को भेदती और उसको उन्मूलित करती हुई सेल (बर्छी) है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७) दोहा १९८ – दुज्जण वयण न संभरइ मनाँ न वीसारेह।
कूझाँ 'लाल' बचाँह ज्यउँ खिण खिण चीतारेह ॥

'लाल' का अर्थ 'लाल लाल [रंग के]' किया गया है। किंतु यह 'लाल' प्रा० 'लाल' <सं० लालय् = 'स्नेह पूर्वक पालन करना' प्रतीत होता है।

(१८) दोहा २११ – मन खींचाणउ जइ हुवइ पाँखाँ हुवइ त प्राँण।
जाइ मिलीजइ साजणाँ डोहीजइ 'महिराँण' ॥

'महिराँण' का अर्थ 'महारण्य' किया गया है (पृ० ६५) और उसकी व्युत्पत्ति सं० 'महार्णव' से बताई गई है (पृ० ४८६)। किंतु 'महिराण' न 'महारण्य' से संभव है और न 'महार्णव' से। वह तो 'मही + राण' है; यह 'राण' है < प्रा० रण्ण ∠ सं० अरण्य।

(१९) दो० २२४ – ईडर की घर 'अउलगउँ' जइ तूँ कहइ तु जाँह।
अउथि वड़ाऊँ आभरन माल्हवणी मेलाँह ॥

'अउलगउँ' का अर्थ 'यात्रा करने के लिए जाऊँ' किया गया है (पृ० ६९)। किंतु यह शब्द वही है जो अपने भूतकालिक रूप में 'ओलग्या' बनकर अन्यत्र आ चुका है। देखिए दो० १८६ के 'ओलग्या' के विषय का विवेचन।

(२०) दोहा २२५ – ईडर की धर 'अउलगण' हूँ तउं जाण न देसि।
घरि बइठा ही आभरण मोल मुहंगा लेसि ॥

'अउलगण' का अर्थ 'प्रवास करने को' किया गया है (पृ० ६९), किंतु यह भी वही शब्द है जो ऊपर दोहा २२४ में 'अउलगउँ' तथा दो० १८६ में 'ओलग्या' रूपों में आ चुका है।

(२१) दोहा २२९ – साहिब कच्छ न जाइयइ तिहाँ परे रउ 'द्रंग' ।

'द्रंग' का अर्थ 'दुर्ग (राज्य)' किया गया है (पृ० ७१) किंतु 'द्रंग' < सं० द्रङ्ग = नगर या महानगर है (मोनियर विलियम्स्-संस्कृत इंगलिश कोश) और अन्यत्र भी इसी अर्थ में आया हुआ है, (देखिए दोहा ३००)।

(२२) दोहा २५७ – अति घण ऊनिमि आवियउ 'झाझी रिठि' झड़वाइ।
वग ही भला ज बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ ॥

'झाझी रिठि' का अर्थ 'अत्यंत शीत' किया गया है (पृ० ८२) और 'झाझी' की व्युत्पत्ति सं० 'दग्ध' से बताई गई है (पृ० ४९३)। किंतु 'दग्ध' से 'दाझा' 'दाझी' बनता है, 'झाझी' नहीं। 'झाझी' [झंझ = क्लेश से] = 'क्लेश पूर्ण' हुआ, तथा रिठि 'रिष्टि' = तलवार (पाइअ सद्द महण्णवो)। अतः प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध का आशय होगा – "झड़ी वाली वायु कष्टप्रद तलवार [जैसी] हो रही है।"

(२३) दो० ३५१ – सज्जन चाल्या हे सखी पड़हउ वाज्यउ 'द्रंग'।
काँही रली वधाँमणाँ काँही अंवलउ अंग ॥

'द्रंग' का अर्थ 'दुर्ग' किया गया है (पृ० ११४), किंतु जैसा ऊपर दोहा ३०० के 'द्रंग' के विषय में बताया जा चुका है, इसका आशय नगर या महानगर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२४) दोहा ३५४ – सज्जण चाल्या हे सखी पाछे पीली 'पज्ज'।
नव पाड़ा नगगर - बसइ मो मन सूँनउ अज्ज ॥

'पज्ज' का अर्थ 'पालि' – धूल की पालि – किया गया है (पृ० ११५)। किंतु 'पालि' से 'पज्ज' बनना असंभव है। पज्ज/पज्जत्त < पर्याप्त = प्राप्त, लब्ध है (पाइअ सद्दमहण्णवो)। प्रथम चरण का अर्थ अतः होगा, "स्वजन के चलने (जाने) के पीछे हे सखी, मैं पीली पड़ गई"।

(२५) दोहा ३६७ – सान्हह चलंतइ परिठिया आँगण बीखड़ियाँह।
कूवा केरी 'कुहड़ि' ज्यूँ हियड़इ हुइ रहियाँह ॥

'कुहड़ि' का अर्थ 'कुहरा' किया गया है (पृ० ११८) और उसे सं० 'कुहेडि' से व्युत्पन्न बताते हुए 'जल कणों से युक्त शीतल भाप' कहा गया है (पृ० ५०७)। किंतु यह 'कुहरा वह है जिसके बल पर कुएँ की गड़ारी चलती है। यह 'कुहरा' दो बाँसों से बनाया जाता है जो एक सिरे पर अलग-अलग और दूसरे सिरे पर सटे - सटे होते हैं। इसका आकार पद - चिह्नों का सा होता है, इसीलिये पद चिह्नों की तुलना इससे की गई है।

(२६) दोहा ३६९ – बीछुडताँ ई सज्जणाँ राता किया रतन्न।
'वाराँ विहुँ चिहुँ नाँखिया' आँसू मोती अन्न ॥

वाराँ विहुँ चिहुँ नाँखियाँ' का अर्थ किया गया है 'दिन - रात लगातार गिराए'। 'विहुँ' का अर्थ 'दोनों' और 'चिहुँ' का 'चारो' होता है। अतः अर्थ होना चाहिए 'दोनों दिन मैंने चारो [ओर] गिराए'।

(२७) दोहा ३७१ – मंदिर कालउ नाग जिउँ 'हेलउ दे दे' खाइ।

'हेलउ दे दे' का अर्थ किया गया है 'पुकार-पुकार कर' (पृ० १२०)। किंतु 'हेला' का अर्थ अनादर, उपेक्षा, होता है; इसलिए 'हेलउ दे दे' का अर्थ होगा 'अनादर या उपेक्षा करते हुए'।

(२८) दोहा ३७२ – सज्जणिया वबलाइ कइ गउखे चढो लहक्क।
भरिया नयण कटोर ज्यउँ मुंधा 'हुई डहक्क' ॥

'हुई डहक्क' का अर्थ किया गया है 'बिलखने लगी'। यह अर्थ अनुमान से ही किया है। डहक्क' < प्रा० डह < सं० दह् = 'दग्ध होना' से बना है। अतः 'हुई डहक्क' का अर्थ होगा 'दग्ध हुई'।

(२९) दोहा ३७७ – 'साई दे दे' सज्जना रातइ इँणि परि रूँन।
उरि ऊपरि आँर (आँसू) ढलइ जाँणि प्रवाली चूँन ॥

'साई दे दे' का अर्थ 'धाड़ मारकर' किया गया है (पृ० १२१) और 'साई' को सं० साति (=पेशगी दिया हुआ धन) से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ५०९)। किंतु 'साति' और उसका यह अर्थ प्रसंगानुमोदित नहीं है। दोहे का 'साई' संभवतः < प्रा० साइ < सं० सादि (स + आदि) है, जिसके आदि का प्रयोग प्रायः ठीक उसी अर्थ में हुआ लगता है जिस अर्थ में अवधी में 'कारन' शब्द प्रयुक्त होता है यथा — नागमती कारन कै रोई। का सोवै जौ कंतू बिछोई। पदमावत (जायसी - ग्रंथावली सं०) ३६०. ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सादि' के इसी अर्थ में यह शब्द रचना में अन्यत्र भी आया है :—

सूड़ा सुगुण ज पंखिया म्हाँकउ कहयउ करेह।
साई देज्यो सज्जणाँ म्हाँ साम्हाँ जोएह ॥ ४०६

(३०) दोहा ३८७ – 'उर' मेहाँ पवनाँह ज्यउँ करह 'उदंडउ' जाइ।
पूगल जाइ प्रगडउ करइ करइ मारवणि दाइ ॥

'उर' का अर्थ 'वह' किया गया है (पृ० १२५)। किंतु यह 'उर' [दे०] आरंभ, प्रारंभ (पाइअ सद् महण्णवो) लगता है। अतः 'उर' का अर्थ होगा 'प्रारंभ में ही'। 'उदंडउ' का अर्थ 'उड़ता हुआ' किया गया है (पृ० १२५), किंतु यह प्रकट ही 'उद्दंड' है।

(३१) दो० ४०६ – 'साई' शब्द के लिए देखिए दोहा ३७७ के 'साई' के विषय में ऊपर किया गया विवेचन।

(३२) दोहा ४१६ – सींगण काँइ न सिरजियाँ प्रीतम हाथ करंत।
काठी साहँत मूठि माँ कोडी कासीसंत ॥

इस दोहे का अर्थ किया गया है – "[हे विधाता] मुझे नरसिंहा क्यों नहीं बनाया, जिससे प्रियतम हाथ में लेते मुट्ठी में कस कर पकड़ते [और मैं] खूब प्रसन्न रहती" (पृ० १२५); इस दोहे के 'काठी' को सं० 'कृष्ट' (=मजबूती) से, 'कोडी' को दे० 'कुड्ड', 'कोड्ड' (हर्ष, प्रसन्नता) से, और 'कासी' को अरबी 'खास' (=प्रधान) से व्युत्पन्न बताया गया है, फिर भी कहा गया है कि अंतिम चरण का अर्थ अस्पष्ट है। असल में पूरे दोहे को गलत समझा गया है।

दोहे का 'सींगण' 'शृङ्गिणी' धनुष है, जिसका प्रचलन राजस्थान में चौदहवीं, पन्द्रहवीं शती ईस्वी तक बहुत था। यह शृङ्गिणी सींगों के दो बड़े टुकड़ों को बीच में एक मजबूत लकड़ी के टुकड़े से जोड़ कर बनाई जाती थी जिसे 'काठी' (सं० 'काष्ठ' से) कहते थे। इस 'काठी' को मुट्ठी में पकड़ कर शृङ्गिणी का प्रयोग किया जाता था। इस 'शृङ्गिणी' की ज्या को 'कोडि' (< सं० कोटि) कहते थे और बाण को लक्ष्य की ओर फेंकने के लिए इस 'कोडि' को कसीस (फा० कशिश) देते थे। फलतः दोहे का अर्थ होगा :—

"[विधाता ने] मुझे शृङ्गिणी क्यों नहीं बनाया कि जिससे मुझे प्रियतम हाथों में लेते, और मेरी काठी को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ते और मेरी कोटि को कसीस (=खिंचाव) देते?" लगता है कि राजस्थान इस शृंगिणी को सर्वथा भूल ही गया है।

(३३) दोहा ४३० – करहा इण 'कुलिगाँमड़इ' किहाँ स नागर वेलि?
करि 'कइराँ' ही पारणउ अइ दिन यूँहीं ठेलि ॥

'कुलि गाँमड़इ' का अर्थ 'छोटे से गाँवड़े में' किया गया है (पृ० १४०) और कहा गया है : "कुलिगाँमड़इ—कुगाँव (?)=बुरादेश। अथवा व्यंग से कुल ग्राम=बड़ा ग्राम।" किंतु कुलिगाँम < प्रा० कुडयगाम < सं० कुटज ग्राम='झोपड़ियों का गाँव' है।

इसी प्रकार 'कइर' का अर्थ 'करील' किया गया है (पृ० १४०) और उसका संस्कृत तत्सम 'करीर' भी किया गया है (पृ० ५१६)१ किंतु 'कइर' < सं० कदर नाम का वृक्ष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पाइअ सद्द महण्णवो) जिसे श्वेत खदिर भी कहा जाता है (मोनियर विलियम्सः संस्कृत इंगलिश कोश)। सं० करीर प्रा० में 'करील' हो गया है, 'कइर' नहीं।

(३४) दोहा ४३१ – 'कइराँ' कूँपल नवि चरूँ लंघण पड़इ पचास।

यहाँ भी 'कइर' का अर्थ 'करील' किया गया है (पृ० १४०), किंतु 'कइर' < सं० कदर है (दे० ऊपर दो० ४३१ में 'कइर' संबंधी विवेचन)। 'करीर' में ऐसी कूँपलें होती भी नहीं जिन्हें ऊँट चर सके।

(३५) दोहा ४३५ – ढोलइ करह विमासियउ देखे वांस वसाल।
ऊँचे थलइ ज एकलो 'वच्चालइ' एवाल॥

"वच्चालइ' का अर्थ 'बीच में' किया गया है (पृ० १४१) और 'वच्च' को प्रा० 'विच्च' से व्युत्पन्न तथा 'आलइ' को हि० 'वाला' का समानार्थी कहा गया है। किंतु 'वच्च' < सं० वच् (=कहना) है। अतः द्वितीय चरण का अर्थ होगा, "ऊँचे स्थल पर [से] अकेला प्रवाल (गड़रिया) [ढोला से] कहने लगा"। इस 'वच्चालइ' (=कहा) क्रिया का कर्म परवर्ती दोहे में आता है।

(३६) दोहा ४३९ – आडवले आधो फरइ एवड़ माँहि 'असन्न'।
तिण अजाँण ढोलइ तणइ मूरख भागइ मन्न॥

'असन्न' का अर्थ 'बैठे हुए' किया गया है (पृ० १४३) और उसे सं० 'आसीन' या 'आसन्न' से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ५२२)। किन्तु यह असन्न < प्रा० आसण्ण < सं० आसन्न = समीप, निकट है और इसी प्रकार रचना में अन्यत्र भी आया है :—

चारण एक उंमर तणउ मिलियउ एह असन्न।
ढोलउ जातउ देखि कइ मूरख भागउ मन्न॥ ४४१

(३७) दोहा० ४४१ – इस दोहे के 'आसन्न' के लिए देखिए ऊपर दो० ४३९ का 'असन्न' विषयक विवेचन।

(३८) दो० ४४२ – जिण धण कारण ऊमह्यउ तिण धण 'संदा वेस'।
तिण मारू रा तन खिस्या पंडर हुआ ज केस॥

'संदावेस' का अर्थ किया गया है 'संदेशा कहता हूँ' (पृ० १४४) और कहा गया है : "संदावेस—(१) संदावणो = संदेश कहना। संदेश कहूँगा। (२) संदा = के। वेसि = वेश, रूप (ऐसा हो गया है)" (पृ० ५२३)। किंतु ये दोनों अर्थ सर्वथा कल्पित हैं। 'संदा' < प्रा० संद < सं० स्पन्द् (=झरना, टपकना) से बना है, प्रा० वेस < सं० वयस् है। 'संदावेस' का अर्थ होगा 'जिसकी वयस् (अवस्था) बह गई (समाप्त हो गई) है'।

(३९) दोहा ४४६ – दुरजण केरा बोलड़ा मत 'पाँतरजउ' कोय।

'पाँतरजउ का अर्थ 'धोखा खाना' किया गया है (पृ० १४६)। कदाचित यह अर्थ अनुमान से ही किया गया है। पाँतरज < प्रा० पत्तिज्ज < सं० प्रति+इ (= विश्वास करना, प्रतीति करना) से बना हुआ ज्ञात होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४०) दोहा ४५९ – नमणी खमणी बहुगुणी सगुणी अनइ 'सियाइ'।
जे धण एही संपजइ तउ जिम ठल्लउ जाइ॥

'सियाइ' का अर्थ 'सुहावनी' किया गया है (पृ० १५०) और अर्थ की दो - एक अन्य संभावनाएँ बताकर कहा गया है कि इसका अर्थ अस्पष्ट है (पृ० ५२६)। यह 'सिया' < प्रा० सिआ < सं० सिता (= चीनी) ज्ञात होता है और 'सियाइ' से आशय यहाँ 'मधुर स्वभाव की' अथवा 'मधुर वचनों वाली' लगता है।

(४१) दोहा ४५६ – तीखा लोयण कटि 'करल' उर रत्तड़ा त्रिवीह।

'करल' का अर्थ 'मुष्टि' और लक्षणा से 'मुष्टि ग्राह्य' किया गया है (पृ० १५१ तथा ५२६)। किंतु 'करल' का यह अर्थ संभवतः 'कर' से कल्पित है। 'करल' < प्रा० करलि < सं० कदली एक जाति का हरिण होता है। अतः 'कटि करल' का अर्थ होगा 'करलि जाति के हरिण की सी कटि वाली'।

(४२) दोहा ४६० – डींभू लंक मरालि गय पिकसर एही बाँणि।
ढोला एही मारुई जेहा 'हंझ निवाँणि'॥

'हंझ निवाणि' का अर्थ 'सरोवर में स्थिति हंस', किया गया है (पृ० १५१) और 'हंझ' को 'हंस' तथा 'निवाँणि' को 'निम्न' से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ५२७)। किंतु न 'हंझ' 'हंस' से व्युत्पन्न हो सकता है और न 'निवाण' 'निम्न' से बन सकता है। 'हंझ' < सं० हन्मा से बना है, जिसे 'कन्या' से व्युत्पन्न बताया जाता है (मोनियर विलियम्स संस्कृत इंग्लिश कोश)। निवाण < प्रा० णिव्वाण < सं० निर्वाण (= परम सुख) है। अतः 'हंझ निवाण' का अर्थ होना चाहिए 'निवार्ण-कन्या'।

(४३) दोहा ४६२ – चंपा वरनी नाक 'सल' उर सुचंग विचि हीण।

'सल' का अर्थ 'शलाका' किया गया है (पृ० १५२)। किंतु 'सल' प्रा० सल्ल < सं० शल्य (= सेल, बर्छा) ज्ञात होता है। अतः 'नाकसल' का अर्थ होना चाहिए 'सेल जैसी नुकीली नाक'।

(४४) दोहा ४६३ – आदीता हूँ ऊजली मारवणी मुख व्रन्न।
झीणा कप्पड़ पहिरणइ 'जाँणि झँखइ' सोव्रन्न॥

'झँखइ' का अर्थ 'झलकता' है किया गया है (पृ० १५२)। किंतु प्रा० 'झँख' का अर्थ 'संतप्त होना' है (पाइअ सद्द महण्णवो) अतः 'जाणि झँखइ सोव्रन्न' का अर्थ होगा 'मानो सोना तप रहा हो'।

(४५) दोहा ४६४ – 'झाँखिउ' शब्द के विषय में ऊपर दोहा ४६३ के 'झँखइ' के विषय का विवेचन देखिए।

(४६) दोहा ४६८ – थल भूरा बन झंखरा नहीं सुचंपइ 'जाइ'।
गुणे सुगंधी मारवी महकी सहु वणराइ॥

'जाइ' का अर्थ 'उत्पन्न होता है' किया गया है (पृ० १५४)। किंतु 'उत्पन्न होता है'—

२ (६५–१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अर्थ में प्रा० जा < सं० जन् का रूप 'जाअइ' होता है (हेमचन्द्र ४ १३६)। यह 'जाइ' वस्तुतः < सं० जाती (जाही पुष्प) है।

(४७) दोहा ४७१ – अंग अभोखण अछियउ तन 'सोवन' लग लाइ।
मारू अंबा मउर जिम कर लग्गइ कुँमलाइ॥

'सोवन' का अर्थ 'सुहावना' किया गया है। किंतु 'सोवन' < प्रा० सोवण्ण < सं० सौवर्ण (=स्वर्णनिर्मित) है।

(४८) दोहा ४७४ – उरि गयवर नइ पग भमर 'हालंती गय हंभ'।
मारू पारेवाह ज्यूँ अंखी रत्तौ संभ॥

'हालंती गय हंभ' का अर्थ किया गया है '(वह) हंस की चाल से चलती है'। किंतु 'गय हंभ' < सं० 'हंस गति' नहीं है; 'हंभ' 'हंस' से नहीं व्युत्पन्न हो सकता है। 'हंभ' सं० 'हञ्भा' से व्युत्पन्न है, और 'हञ्भा' 'कन्या' से व्युत्पन्न कहा जाता है (मोनियर विलियम्स : संस्कृत - इंग्लिश कोश)। अतः 'गय हंभ' का अर्थ 'गज - कन्या' होना चाहिए। दे० ऊपर ४६० के 'हंभ' का विवेचन भी।

(४९) दोहा ४७६ – कसतूरी कड़ि केवड़ो 'मसकत जाय' महक्क।
मारू दाडम फूल जिम दिन दिन नवी हडक्क॥

'मसकत जाय' का अर्थ 'उड़ती हुई जा रही' किया गया है (पृ० १५७), किंतु इस अर्थ का कोई आधार नहीं ज्ञात होता है। 'जयि' < सं० जाती (=जाही पुष्प) है; 'मसकत' किसी विदेशी पुष्प का नाम लगता है, जो कभी 'मसकत' नाम के नगर से इस देश में आया हुआ होगा।

(५०) दोहा ४७७ – ढोला सायधण 'माँणने' झीणी पाँसलियाँह।
कइ लाभे हर पूजियाँ कै हेमाले गलियाँह॥

'माँणने' का अर्थ 'बड़ी' किया गया है (पृ० १५७) : फिर उसका एक अन्य अर्थ 'रंग करो न' भी किया गया है (पृ० ५२६)। किंतु ये दोनों अर्थ सर्वथा कल्पित हैं। माँणन < प्रा० माणण < सं० मानन (=सुख की अनुभूति) है। अतः प्रथम चरण का अर्थ होगा, "हे ढोला, वह स्त्री सुख की अनुभूति [तुल्य] है और पतली पँसलियों वाली है"।

(५१) दोहा ४७९ – चंद वदण मृग लोयणी 'भीसुर' ससदल भाल।

'भीसुर' का अर्थ 'दीप्तिमान' किया गया है (पृ० १५८) और उसे सं० 'भास्वर' से व्युत्पन्न बताया गया है (पृ० ५३०)। किंतु 'भास्वर' से 'भसुर' नहीं बन सकता है। 'भास्वर' के प्राकृत रूप 'भासुर' और 'भासिर' हैं (दे० पाइअ सद्द महण्णवो)। भीसुर प्रा० भिस < सं० भृश (=अत्यंत, अतिशय) से बना है और उसका अर्थ होगा 'अतिशय युक्त'।

(५२) दोहा ४८० – दंत जिसा दाड़िम 'कुली' सीस फूल सिणगार।

'कुली' का अर्थ 'कली' किया गया है (पृ० १५८), किंतु दाँतों की तुलना दाड़िम-बीज से की जाती है, न कि 'दाड़िम कली' से। 'कुली' का अर्थ 'कुलका' है। अतः चरण के पूर्वार्द्ध का अर्थ होगा 'उसके दाँत मानो दाडिम कुल के हैं'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५३) दोहा ४८३ – मारू देस उपन्नियाँ 'नड़' जिम नीसरियाँह।
साइ घण ढोला एहवी 'सरि' जिम पद्धरियाँह ॥

'नड़' का अर्थ 'झरना' किया गया है। 'झरने' से मारू देश की नारियों की क्यों तुलना हो सकती है ? 'नड़' है प्रा० 'णड' < सं० नल = नरकुल (भीतर से पोपला एक प्रकार का सरकंडा)। नरकुल पतला और सीधा होता है। मारू देश की स्त्रियाँ उसकी भाँति पतले और छरहरे बदन की होती हैं, तुलना का आशय यह है। इसी प्रकार 'सरि' का अर्थ 'बाण' किया गया है (पृ० १५६), किंतु 'बाण' से तुलना उसके वेधक होने के कारण की जाती है, उसकी सीधाई के कारण नहीं। यह 'सरि' < सं० शर (= सरकंडा) है। सरकंडा लंबा, पतला और सीधा होता है, जिस प्रकार उपर्युक्त 'नड़'। इसीलिए मारू देश की स्त्रियों की तुलना 'सरि' से भी की गई है।

(५४) दोहा ४८४ तथा ६६७ – इनमें आए हुए 'सर' के लिए देखिए, ऊपर दो० ४८३ में आए हुए 'सरि' के संबंध का विवेचन।

(५५) दोहा – ४६२ सड़ सड़ बाहि म कंबड़ी 'राँगा' देह म चूरि।

'राँगा' का अर्थ 'रानों से' किया गया है (पृ० १६२)। यह अर्थ सर्वथा कल्पित है। 'राग' टाँगों का एक प्रकार का कवच होता था जो मध्ययुग के अश्व-सैनिकों द्वारा प्रायः टाँगों में पहना जाता था। यथा, जायसी के 'पद्मावत' में देखिए :—

जेबा-खोलि राग सौं-मढ़े। लेजिम घालि इराकिन्ह चढ़े।
(जायसी ग्रंथावली संस्करण, ४६६ - ४)

राग सन्नहा पहुँची टोपा। लोहैं सार पहिरि सब कोपा।
(वही, ५१२ - ४)

(५६) दोहा ४६५ – विहाँगड़े ज उद्दाध्धयाँ सर ज्यउँ पंडुरियाँह।
कालर काम्भा कमल ज्यउँ ढलि ढलि ढेर थियाह ॥

इस दोहे का अर्थ किया गया है : "समुद्रों पर जिस प्रकार पक्षी (उड़ते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), सरोवरों में जिस प्रकार पंडुख तैरते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), और कीचड़ में फँसे हुए कमल जिस प्रकार मुरझा मुरझा कर ढेर हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी चलता ही जाऊँगा, जब तक कि हार न जाऊँ या ढेर न हो जाऊँ" (पृ० १६३)। इसके अतिरिक्त दोहे की प्रथम पंक्ति का एक और अर्थ इस प्रकार किया गया है — "चाहे वह आकाश में हो और चाहे समुद्र में, चाहे तीर की तरह दौड़ रही हो चाहे पंडुख की तरह" (पृ० ५३२)। किंतु दोनों बार कहा गया है कि इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है (पृ० १६३, ५३२)। वस्तुतः उपर्युक्त दोनों अर्थ संपूर्ण रूप से कल्पित हैं।

उद्दाध्ध < प्रा० उद्दद्ध < सं० उद्दग्ध = 'प्रखर रूप से दग्ध' है। पंडुर < प्रा० पांडुर < सं० पाण्डुर = 'श्वेत अथवा पीत मिश्रित श्वेत' है। 'काम्भा' प्रा० 'कज्झाल' [दे०] = 'सेवार' है (दे० पाइअ सद्द महण्णवो)। अतः पूरे दोहे का अर्थ होगा : "सरोवर जब [जल के सूखने से] पाण्डुर हो जाता है, तब विहग भी [ग्रीष्म - दाह से] उद्दग्ध हो जाते हैं, जिस प्रकार कालर (झील) में सेवार तथा कमल गिर - गिर कर ढेर हो जाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५७) दोहा ४९८ – करहा लंबी वीख भरि पवनाँ ज्यूँ वहि जाइ।
'झंभ' वलंतइ दीखलइ धण जागंती जाँह॥

'झंभ' का कोई अर्थ नहीं किया गया है (पृ० १६५); फिर उसे प्रा० 'झंप' से व्युत्पन्न बताया गया है और उसका अर्थ 'शीघ्रता से' किया गया है (पृ० ५३३)। 'झंभ' पाठ निरर्थक है। पाठ 'थंभ' होना चाहिए, जो एक अन्य प्रति में आता भी है – देखिए पाद-टिप्पणी में दिया हुआ ज० प्रति का पाठांतर। 'थंभ' < सं० 'स्तम्भ' से आशय 'दीप-स्तम्भ से है।

(५८) दो० ५२१ – काली कंठलि बीजुली नीची खिवइ निहल्ल।
उर भेदंती सज्जणां 'ऊचेडंती' सल्ल॥

'ऊचेडंती' का अर्थ 'उखेखती' किया गया है (पृ० १७३)। इस प्रसंग में देखिए ऊपर दो० १९१ के 'ऊचेडंती' के विषय का विवेचन।

(५९) दो० ५४८ – डेडरिया खिण मइ हुवइ धँण बूठइ 'सरजित्त'।

'सरजित्त' का अर्थ 'संजीवित' किया गया है (पृ० १९८) किंतु यह स्पष्ट ही < सं० 'सर्जित' (= बनाया हुआ) है।

(६०) दोहा ५५४ – 'पंचाइण नइँ पाखरयउ' मइँगल नइ मद कीध।
मोहण वेली मारुई कंत पेम कस पीध॥

'पाखरयउ' का अर्थ किया गया है 'भक्ष्य पाकर छक गया।' 'पाखर' युद्ध के लिए अश्व-गजादि को पिन्हाये जानेवाले कवचों को कहते थे; 'पाखरयउ' है < प्रा० पक्खरिअ = कवचित सन्नद्ध, कवच से सज्जित (पाइअ सद्द महण्णवो)। अतः 'पंचाइण नइँ पाखरयउ' का अर्थ होगा 'सिंह और वह भी कवच से सज्जित हो'।

(६१) दोहा ६०० – मारवणी मुख ससि तणइ कसतूरी महकाइ।
पासइ पन्नग पीवणउ 'विलकुलियउ' तिणि ठाइ॥

'विलकुलियउ' का अर्थ 'निकला' किया गया है (पृ० २००), और फिर कहा गया है—"विलकुलियउ = चंचलता के साथ हिलना [का] सामान्य भूत' (पृ० ५४८)। किंतु ये दोनों अर्थ कल्पित हैं। 'विलकुलियउ' का अर्थ है "व्यामुग्ध करने के लिए विस्वर वचन बोला, अर्थात् फूत्कार किया।" देखिए 'पाइअ सद्द महण्णवो' में विलओली = 'विस्वर वचन' तथा 'विलकोली कारक' = 'दूसरे को व्यामुग्ध करने के लिए विस्वर वचन बोलने वाला'।

(६२) दोहा ६०४ – झबकि पइट्ठी झालि सुंदरि दीठी सास बिंण।
जिमि व्हालाँ विच बाल पिव जोई मारू नहीं॥

दोहे के उत्तरार्द्ध के विषय में कहा गया है कि वह अस्पष्ट है (पृ० २०१)। 'व्हाल' प्रा० वह < सं० व्यथ् अथवा सं० वध् से बना हुआ 'व्यथयितृ' अथवा 'वधयितृ' का अपभ्रंश रूप है। दोहे का अर्थ होगा, "जिस प्रकार पीड़कों अथवा वधिकों के बीच में बाला हो, इस प्रकार उसके प्रिय (ढोला) ने मारू को देखा (पाया) और अब [वह] मारू नहीं थी।"

(६३) दोहा ६४१ – ऊँमर दीठा जावता हलचल करइ करूर।
एराकी 'ओलंभिया' जइसइ केती दूर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ओखंभिया' का अर्थ 'पीछे दौड़ाए' किया गया है (पृ० २१४) और उसे सं० 'उत्कंप' < प्रा० उक्कंप (?) = 'चंचल किया' से व्युत्पन्न बताया गया है। किंतु 'ओखंभ' प्रा० उक्खंभ < सं० उत्तम्भ् = 'उत्तेजना करना' है। अतः 'ओखंभिया' से आशय होगा 'उत्तेजित किया', 'तेजी से दौड़ाया'।

•(६४) दोहा ६६१ – जिण भुइ पन्नग पीयणा 'कयर' कँटाला रूख।

यह 'कयर' प्रा० कइर < सं० कदर है। देखिए ऊपर दो० ४३० तथा ४३१ में आया हुआ 'कइर' विषयक विवेचन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में वहीखाता - परंपरा

कस्तूरमल बाँठिया

भारत को संसार ने आध्यात्मिक गुरु तो माना परंतु भौतिक विज्ञान में इसका नेतृत्वनहीं माना गया यद्यपि इसमें भी हमने पर्याप्त उन्नति की थी। आश्चर्य यह है कि भारत के भौतिक ज्ञानविज्ञान की तुलना लोग पिछले दो सौ वर्षों के पाश्चात्य जगत से करते हैं जब वह राजनैतिक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा जा रहा था और उसके स्वाभाविक विकास के मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो गए थे। संतोष की बात इतनी है कि भौतिक ज्ञानविज्ञान के क्षेत्रों में जो कुछ भी तब तक प्राप्त कर लिया गया था, वह अवश्य ही प्रकाश में लाया जाता रहा है। पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों ने इस ओर पर्याप्त खोज की। इतना ही नहीं उन्होंने भारतवासियों को ऐसी खोज करने की प्रेरणा भी दी है। फलतः पिछले सौ वर्षों में बहुत खोज हुई और बहुत कुछ मिला भी। भारतीय पुरातत्वज्ञों के प्रयत्न से हमारी प्राचीन संस्कृति और प्रगति के संबंध में यूरोपीय विद्वानों के भ्रमों का भी कुछ निरसन हुआ है। पर ज्ञानविज्ञान के अनेक क्षेत्र आज भी अनखोजे पड़े हैं और उन पर लिखे समस्त प्राचीन शास्त्रों के नाम तक हमें ज्ञात नहीं हैं। जिनके नाम हमें भाग्य से ज्ञात भी हो गए हैं उन सबको खोजकर प्रकाश में हम अब तक नहीं ला सके हैं। उदाहरणार्थ विदेहराज के वाणिज्यशास्त्र[1] का पता हमें कामन्दक नीतिशास्त्र

१. शाह खुशालचंद त०, 'Ancient Foundations of Economics in India' पृष्ठ २ की टिप्पणी—

Many of the ancient treatises directly dealing with VARTA, or the Science of Economics as a whole, seem to have been lost. At least they have not so far been discovered. A long list, however, is given in Sri Narendra Nath Law's STUDIES in INDIAN HISTORY and CULTURE (p.p. 385 - 402) of printed and manuscript works on specific subjects included in the main science. In his Commentary on Kamandaka's NITI-SARA, Shankaracharya mentions Gautama and Shalihotra's treatise on AGRICULTURE'S ECONOMICS, Videhraja's Treatise on commerce, and Parashara's KRISHISAMGRAHA. There are, besides Shasyananda, a work on Botany, and VRIKSHA AYUR - VEDA, another on Forestry; King-Bhoja's YUKTI KALPATARU, and others like Kshetra Prakasha's MAYAMITA SHILPARATNA VASTU VIDYA,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शांकरभाष्य से मिल तो गया है परंतु वह ग्रंथ अब तक अप्राप्य है। ऐसे ही अज्ञात विज्ञानों में से दूसरा है बहीखाता - विज्ञान जो श्री राधाकृष्णन् - विश्वविद्यालय - शिक्षा - आयोग के प्रतिवेदनानुसार तक्षशिला के प्राचीन विश्वविद्यालय में अध्ययन का एक विषय अवश्य ही रहा था।[२] इस विषय के किसी प्राचीन या मध्ययुगीन ग्रंथ का भारतीय विद्वानों को न तो अब तक पता ही लगा है और न कोई ऐसे शिलालेखादि के प्रमाण ही मिले हैं जो यह बताएँ कि इस देश में बहीखाता रखने की कला का कितना और कहाँ तक विकास हुआ था? इस विज्ञान को तब 'गणनिक्य' कहा जाता होगा जैसा कि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' के उल्लेखों से अनुमान होता है। इस विषय में आगे विस्तार से विचार किया जाएगा, अतः यहाँ इतना संकेत कर देना ही पर्याप्त है।

आज जो भारतीयों में इसे 'बहीखाता' कहा जाता है (कम से कम उत्तर भारतीयों में) वह मुसलमानों के संपर्क बढ़ जाने के पश्चात् ही अथवा राजा टोडरमल के काल से प्रचार में आया होगा। कौटिल्य हिसाब लिखने के रजिस्टरों के लिए 'निबंध पुस्तक' या मात्र 'पुस्तक' शब्द का प्रयोग करता है। बौद्ध जातकों में इनके लिए 'पोत्थक' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'बही' शब्द बाबू रामचंद्र वर्मा के प्रामाणिक शब्दकोश के अनुसार, 'बंधी या बद्धी' से व्युत्पन्न कहा जाता है और 'खाता' शब्द संस्कृत 'खात' से, जो 'अनाज रखने की खत्ती' के लिए प्रयुक्त किया जाता था। फिर भी आज यह कहना असंभवप्राय है कि प्राचीन 'पुस्तक' - 'पोत्थक' शब्द का स्थान 'बहीखाता' ने कब और कैसे ले लिया? 'जमा', 'खर्च' आदि अनेक व्यापारी शब्द जो आज इस विज्ञान के देशी जानकारों द्वारा उन्मुक्तता से प्रयोग किए जाते हैं और जो मूलतः अरबी और फारसी के हैं, जब से प्रयुक्त होने लगे हों, तभी से 'पुस्तक' और 'पोत्थक' शब्दों का स्थान भी कदाचित् 'बहीखाता' शब्द ने ले लिया हो। डा० रघुवीर ने इस विज्ञान के लिए 'पुस्तपालन', 'लेखापालन' शब्द जो गढ़े हैं, वे भले ही हमें अटपटे लगते हों, परंतु निराधार किसी भी प्रकार नहीं कहे जा सकते हैं। फिर भी मैंने सदियों से प्रचलित 'बहीखाता' शब्द का ही इस लेख के शीर्षक में प्रयोग किया है ताकि कहीं किसी प्रकार का भ्रम न हो।

SAMARANGANA SUTRA. The chapters of Kautilya in Books II, III, IV relating to these specific arts, crafts, or industries, provide ample evidence that very detailed technical works must have existed on all these several subjects on which the author of the ARTHA SHASTRA has given such clear instructions.

२. राधाकृष्णन्, Report of the University Educaton Commission (1949) Vol. I chapter 1 page 7 :
'The curriculum of Takshila appears to have included the Vedas and Vedangas, as also the Eighteen arts which comprised of Medicine and Surgery, Astronomy and Astrology, Agriculture and Accountancy, Archery and Snake charming.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहेन - जो - दारो और हरप्पा के उत्खननों के पूर्व तक तो पाश्चात्य पुरातत्वज्ञ बाबेरु (बेबीलोनी) सभ्यता को ही संसार में सबसे प्राचीन (ई० पूर्व २५०० वर्ष की) मानते थे और उसी सभ्यता में प्रत्येक भौतिक ज्ञानविज्ञान के चिह्नों की खोज वे करते थे। उन्हें इस सभ्यता के सूसा नामक नगर के उत्खननों में एक स्मारक पर राजा हम्मूरब्बी जो बाबेरू (बेबीलोन) में ई० पूर्व २२८५ से २२४२ तक राज्य करता था, की प्रवृत्त विधिसंहिता (कोड आफ लाज) निम्नलिखित मिली है जिसमें वाणिज्य - व्यवहार - संबंधी कितने ही विधान हैं, जैसे —

(१०४) यदि किसी व्यापारी ने अभिकर्ता (एजेंट) को अन्न, ऊन, तेल या अन्य कोई पदार्थ वाणिज्य के लिए दिया है तो वह अभिकर्ता (एजेंट) उसका अर्थ (भाव) लिखकर व्यापारी को देगा। वह अभिकर्ता उस भाव की मुद्रांकित सूची बनाएगा और वह भी व्यापारी को देगा।

(१०५) यदि अभिकर्ता भूल गया है और व्यापारी को दी राशि की मुद्रांकित सूची उसने नहीं ली है तो जो राशि मुद्रांकित नहीं की गई है, उसे उसके लेखे में वह नहीं लिखेगा।[3]

इसके अतिरिक्त ई० पू० २६०० से प्रारंभ होते हुए उस सभ्यता के वाणिज्यसंबंधी उल्लेख जैसे कि बिक्रीलेख, भाटकी (हायरिंग) लेख, वासभाटकीलेख, ऋणपत्र, साझापत्र आदि आदि भी मिले हैं। ये मिट्टी की गीली ईंटों पर लौह सूचिका से उत्कीर्ण कर, सुखा या पक्के कर दिए गए हैं। ऐसी ही ईंटों में बाबेरी (बेबीलोनी) के ऐजिबी पुत्रों (दी संस आफ् एजिबी) और निपूर के माराशूपुत्रों (माराशू संस आफ् निपूर) नामक दो सराफी और साहूकारी पेढ़ियों के व्यवहार के उल्लेख भी मिले हैं। एजिबीपुत्र पेढ़ी का व्यापार किसी अज्ञात काल से ई० पूर्व ४थी शती तक चलता था। इसके व्यवहारों की उत्कीर्ण ईंटें पौन इंच लंबी और आध इंच चौड़ी से लगाकर बारह इंच लंबी और नौ इंच चौड़ी तक हैं। ईंटों की दोनों ओर ही लिखा हुआ नहीं है, अपितु किसी किसी के पक्ष पर भी लिखा हुआ है। कितनों ही में कोई तिथि - तारीख नहीं है। दीर्घ परीक्षण से ये कच्चे बूरड़े, माल या पदार्थों की सूचियाँ, अथवा पत्र प्रतीत हुए हैं। अति प्रयोजनीय व्यवहारों को सावधानी और ब्योरे सहित प्रति-

३. Richard Brown, History of Accounting and Accountants (1905) p. 17. quoted from Johns's Translation:

(104) If the merchant has given to the agent corn, wool, oil, or any other sort of goods to traffic with, the agent shall write down the price and hand over to the merchant; the agent shall take a sealed Memorandum of price which he shall give to the merchant.

(105) If an agent has forgotten and has not taken a Sealed Memorandum of the money he has given to the merchant, money that is not Sealed for, he shall not put in his account.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

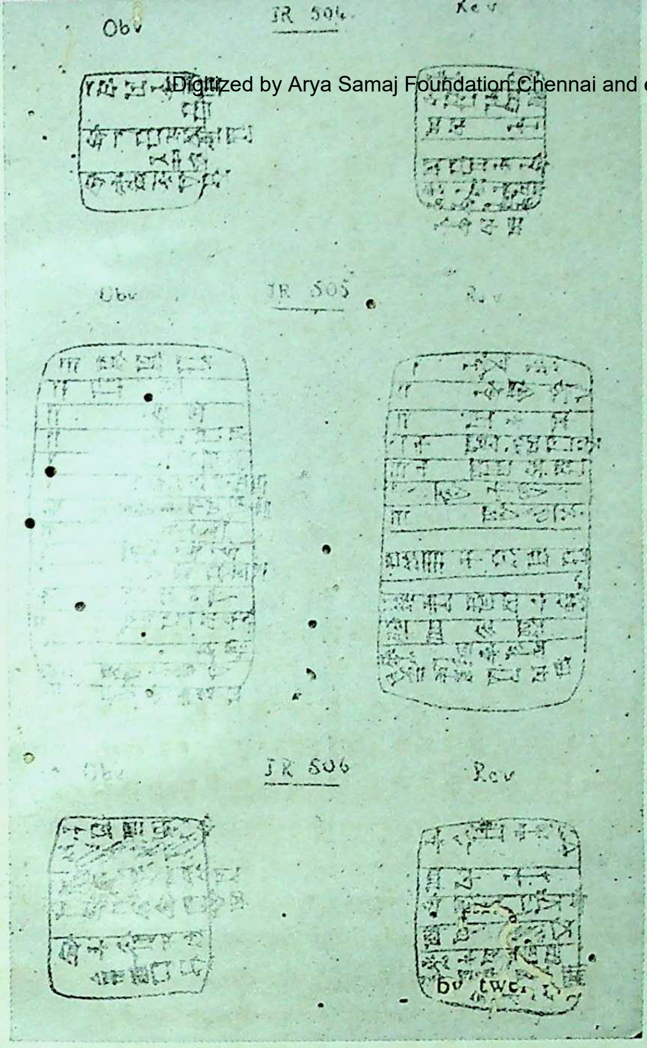

सुमेरी ईंट लगभग २३०० वर्ष ई० पू०

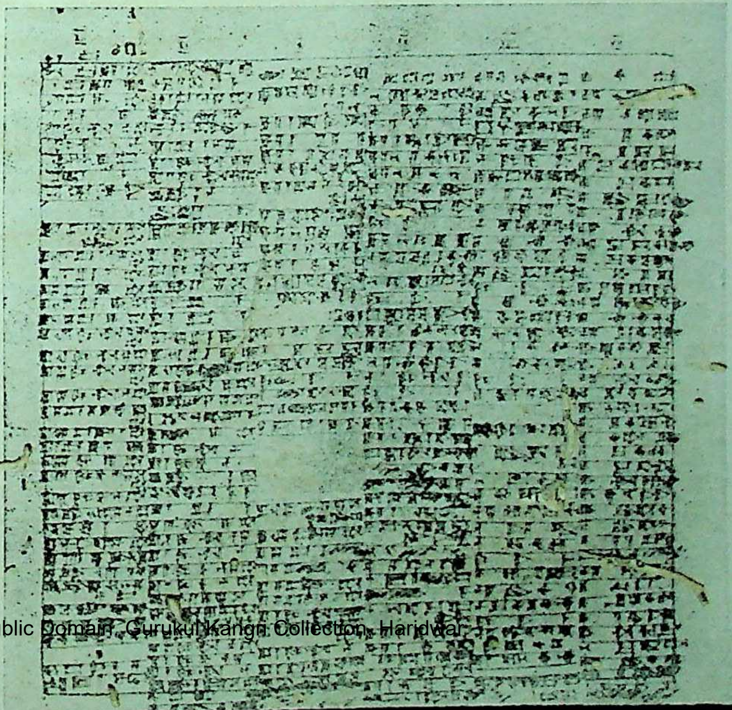

सुमेरी 'उर' वंश की वेतनसूची (लगभग २३५० ई० पू०)

'दि इवोल्यूशन आफ दि साइंस आफ बुककीपिंग' से साभार उद्धृत ।

द्रष्टव्य - पृष्ठ १६ - १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपि बड़ी ईंटों पर की हुई है। इन बड़ी ईंटों पर बेलनी - मुद्रा और नख - चिन्हों (सिलिंडर सीलस एंड नेल मार्क्स) से अंकन किया हुआ है जो मनुष्य की नैसर्गिक मुद्राएँ है।[४]

पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय - अभियान द्वारा उत्खनित निपूर नगर के एक भवन में माराशू पुत्रों की पेढ़ी की व्यवहार - उल्लिखित ७३० ईंटें मिली हैं। यह पेढ़ी आर्टाक्सरीक्सीज प्रथम (ई० पूर्व ४६४ - ४२४) और दारा द्वितीय (ई० पू० ४२३ - ४०५) के राज्यकाल में काम करती थी। क्योंकि इनके ही राज्य की तिथियां प्रलेखों में हैं।[५] दूसरी ईंटों से ई० पूर्व २७०० के सुदूरवर्ती काल तक की ऐसी ही अन्य व्यापारियों की पेढ़ियों के अस्तित्व का पता लगता है।[६]

इन ईंटों से प्राचीन व्यापार - वाणिज्य की रीति संबंधी बहुत सूचना मिलती है, परंतु इस बात की कोई भी साक्षी स्पष्ट नहीं होती है जिससे इनमें से कोई भी यथार्थतः बहीखाते कहे जा सकें। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश म्यूजियम (संग्रहालय) के डा० बजे (Dr. Budge) की राय तो यही थी कि "यह सोचने का कारण ही नहीं है कि वे याने बेबीलोनी और असीरी, हमारी तरह ही धन में व्यवहार करते थे। प्रसंविदों की ईंटें भी कितनी ही जान में है और

४. वही, पृष्ठ० १८। 'Records of the Past,' XI 89 से उद्धृत। "The firm of Egibi carried on business from an unknown period to about the fourth-century before Christ. The tablets recording their transactions vary in size from three quarters of an inch by half an inch to nine inches by twelve. They are usually covered by writings on both sides, and sometimes on the edges as well, Many contain no date, and these, on examination, prove to be either rough memoranda, lists of objects or produce, or letters. The more important transactions were recopied on larger tablets with great care and elaboration of details. These larger tablets usually contain impressions from cylinder seals, and nail - marks, which were considered to be a man's natural seal."

५. वही पृष्ठ० १८। 'The Babylonian Expedition of the University of Pennsylvania,' Series A, Vol. IX. 13 से उद्धृत। A room of Nippur, excavated by the Expedition of the University of Pennsylvania, contained 730 tablets recording the transactions of Marashu Sons, who flourished in the times of ARTAXERXEs I (464 - 424 B.C.), and DARIUS II (423 - 405 B C.), in whose reigns the documents are dated.

६. वही पृष्ठ० १८ Sayce : 'Babylonians and Assyrians' पृष्ठ० २१ से। Other tablets indicate the existence of similarly important trading firms as far back as 2700 B.C.

३ (६५–१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणिज्य - व्यवहार के उल्लेख भी सैकड़ों ही हैं, परंतु ऐसी एक भी उनमें मुझे ज्ञात नहीं है जो शब्द की आधुनिक परिभाषा में 'बहीखाते' कहे जा सकें।[७]

प्राचीन मिश्र में बहीखाते

दाबेरी (बेबीलोनी) संस्कृति से दूसरी श्रेणी में प्राचीन मिश्र की सभ्यता मानी जाती है यद्यपि टोल्मी फिलेडेल्फस (Ptolemi Philadelphus) काल के एक लेखक के मतानुसार तो मिश्री राजाओं की वंशपरंपरा ई० पू० ५००४ वर्ष तक पहुँच जाती है। चौथी और पाँचवीं वंशावली की मेमफाइट कब्रों की भीतों पर नील नदी पर तैरती चौकोर बड़े पाल की नावों के चित्र से यह कहा जा सकता है कि मिश्रवासियों का व्यापार वैसे बड़े बड़े पोतों से होता था, अतः वह उतना व्यापक भी होगा। मिश्र में जैसा कि अन्यत्र भी पाया गया है, तब तक सिक्के का चलन नहीं हुआ था और राज्य का लगान एवम् आय और व्यय वस्तुरूप (इन काइंड) में ही होता था। राजा ही कृषक, भंडारी और शिल्पकार था। अतः भांडागार अनेक रखे जाते थे और उन सबके संरक्षण, लेखा, संचालन आदि का प्रबंध भी पृथक पृथक होता था। इस शासनतंत्र में लिपिक (स्क्राइब) ही मूल और प्रमुख आधार था और पढ़ना, लिखना, गिनना, सामान्य बहीखाता लिख लेना एवम् शासनसूत्रों की वाक्य-रचना में सामान्य प्रवीणता होना ही उसके लिए पर्याप्त था। वही काम करते करते सामान्य पद से उच्च पद तक पहुँच जाता था। इस विभाग को 'राज्यकोश का रौप्य भवन' (हाउस आफ सिल्वर आफ दी ट्रेजरी) कहा जाता था और मुख्य वित्तमंत्री उसका प्रधान होता था। लिपिक पेपीरस (Papyrus) पर पंखलेखनी (Calamus) से अपना लेखा लिखते थे। इस विभाग की कार्यप्रणाली के वर्णन में 'प्राचीन मिश्र में जीवन' के लेखक श्री एरमन (Erman) लिखते हैं कि "अनेक प्रलेख इस काल तक प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि 'रौप्य भवन' और उसके सदृश अन्य विभागों में लेखे तब कैसे रखे जाते थे? इन प्रलेखों का अनुवाद करना अनेक अज्ञात शब्दों और संक्षेपों के कारण अत्यंत ही कठिन है। कितना, किससे, कब और क्यों प्राप्त हुआ और वह किस प्रकार उपयोग किया गया, यह सब इन प्रलेखों में ठीक ठीक लिखा है। ऐसी सूक्ष्म सावधानी निरी बड़ी राशियों के लिए ही नहीं अपितु अंत की छोटी से छोटी राशि या तिथियों के लिए भी सचाई के साथ रखी गई है।" प्राचीन कब्रों के ऊपर के चित्रों में, चाहे अन्न मापा जा रहा हो या पशु बाड़े में भरे जा रहे हों, सभी स्थानों और समयों पर लिपिक उपस्थित है। वे भूमि पर बैठे हैं और उनके बगल में पेपीरस का पुलिंदा रखने की एक मंजूषा रखी है, कान में कलम खोंसे हैं, और हाथ में पेपीरस की पट्टी लिए उसपर वे कुछ लिख रहे हैं। कोशागार से बिना लिखित आज्ञा के

७. वही पृ० १६। "There is no reason for thinking that they (the Babylonians and the Asssyrians) managed their money affairs as we do. There are many contract tablets known, and hundreds of records of commercial transactions, but I know of none which could be considered as accounts in the modern sense of the word."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी दिया नहीं जा सकता था। गबन असंभव हो, इसके लिए प्रत्येक लिपिक का लेखा दूसरे के द्वारा जाँचा जाता था। अन्नभांडार में आनेवाला प्रत्येक बोरा निरीक्षक के सामने भरा जाकर लिखा जाता था और जब भरा बोरा भंडार की छत पर ले जाकर प्रवेशछिद्र द्वारा उसमें खाली कर दिया जाता तो वहां बैठा दूसरा लिपिक इसको लिखता। इसको स्पष्ट करनेवाला एक चित्र श्नेम्होटेप (Chnemhotep) की कब्र पर से अंगरेजी ग्रंथ 'लाइफ इन एंशेंट [illegible] वह' से 'दी हिस्ट्री आफ् अकाउंटिंग एंड अकाउंटेंट्स' में उद्धृत किया गया है, जो रुचि [illegible] होने से यहां साभार उद्धृत है। पाश्चात्य पुराविदों की दृष्टि से जिन अन्य प्राचीन [illegible] में बही - खाता - कला को न्यूनाधिक रूप से विकसित होना चाहिए, वे हैं ईरानी, फिनिशियन, [illegible]डियन (Rhodians) इसराइली, यूनान और ग्रीस निवासी यवन। इसराइली लोग बहीखाता जानते थे इसके कितने ही संदर्भ इंजील में भी प्राप्त होते हैं। होडियनों के नौ नियमों [illegible] तो रोमानियों ने भी अपना ही लिया था। फिनीशियन और [illegible]थेजियन भी, जिनका व्यापार व्यापक था और उपनिवेश भी जिनके थे, बहीखाता नहीं जानते थे — ऐसा कौन मानेगा? परंतु यवन बहीखाता - पद्धति के से प्रमाण किसी के भी कदाचित् पाश्चात्यों को प्राप्त नहीं हुए और यूनान के यवनों के प्रमाण भी राज - बहीखाता - संबंधी हैं न कि व्यापारी और वणिकों के बहीखातों संबंधी जो कि राजकीय बहीखातों से कुछ भिन्न प्रकार के होते हैं।

एथेंस राज्य की बही - खाता - व्यवस्था

पुरातत्त्वज्ञों के अनुसार एथेंस की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बड़ी विकसित बहीखाता - पद्धति थी। राज्य का शासन एक राजसभा के अधिकार में था जो अनेक मंडलों और अधिकारियों द्वारा राजकाज चलाती थी। राजस्व विभाग का सर्वप्रधान अधिकारी कोषाध्यक्ष या मालविभाग का प्रबंधक कहलाता था। इस पद को सुप्रसिद्ध यवन शासक एरिस्टाइडीस (Aristides), लायसियस (Lysias) और लायकरगस (Lycurgus) जैसे व्यक्ति सुशोभित करते थे। इस अधिकारी को एथेंस राज्य में वही सत्ता और शक्ति प्राप्त थी जो कि इंगलैंड की राज्यव्यवस्था में आजकल चान्सलर आफ् दी एक्सचेकर को अथवा भारत के केंद्रीय वित्तमंत्री को प्राप्त है। वह भी वर्तमान अधिकारियों की भाँति अनेक वैध परीक्षण और लोक अवेक्षण एवं समीक्षण के अधीन था। सच तो यह है कि राजसभा के सदस्यों से लेकर प्रत्येक छोटे और बड़े अधिकारी, जिनका शासन - प्रशासन से कुछ भी संबंध रहता था, तक कहीं जांच से मुक्त नहीं थे। जिसने अपना लेखा संतोषजनक नहीं दे दिया, उसे न तो देश छोड़कर जाने दिया जाता, न वह अपनी संपत्ति को संपूर्ण देवोत्तर या उसमें से कुछ भी अर्पण ही कर सकता था। वह वसीयत भी नहीं कर सकता था और न स्वयम् एक परिवार से दूसरे परिवार में गोद बैठ सकता था। इतनी सतर्कता पर भी, इतिहासज्ञों का कहना है कि यवन शासक की भावना दूषित थी। राजस्व विभाग के सभी अधिकारी प्राप्त राजस्व की पूर्ण सचाई के साथ उपयोग करने की शपथ लेते थे, फिर भी एक लेखक पोलिबियस (Polybius) कहता है कि यूनान में राज यदि किसी को एक टेलेंट (सिक्का) भी सौंपे और चाहे वह ऐसे अधिकारी के लेखे की जांच दस जाँच करनेवालों से ही करावे, उनपर उतनी ही मुद्राएं लगाए जाने का [illegible] तो भी वह ईमानदारी नहीं रख सकता था।[८]

८. वही पृ० २५। 'But if in Greece," says Polybus, "the State entrusted,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज का लेखा अधिकतम प्रकाश में आए, इसलिये अधिकारियों के लेखे शिला पर खुदवा कर प्रकाशित कर दिये जाते थे (तुलनीय कौटल्य २।७।२५)। ऐसे शिला पर खुदे हुए लेखों में से कुछ अभी तक प्राप्त हैं। इनके उदाहरण ब्रिटिश म्यूजियम (संग्रहालय) के एल्गिन शिलालेख - संग्रह में हैं। शिलालेख सं० २३, जो एक फुट १० इंच ऊँचे एवम् १ फुट २॥। इंच चौड़े संगमरमर का है, में एथंस के चारियास (Charias) प्रांत के ई० पू० ४१८ से ४१५ तक के व्ययों का लेखा उत्कीर्ण है। ३५३ टेलैंट (सिक्कों) के कुर्बानी ... का यह लेखा है। इसका विवरण देना आवश्यक नहीं है। इसकी चर्चा यहाँ इसलिए ... हम जान जाएँ कि पाश्चात्य देशों से मिले इस प्रकार के प्रमाणों से उस ... प्राचीन इतिहास कितनी सरलता से खोज लिया गया है। ऊपर राजवंश (लगभग २३०० ई० पू०) के इस प्रकार के लेखे की उत्कीर्ण ईंटें भी प्राप्त हुई हैं और वे पढ़ भी ली गई हैं। मिश्र से पेपीरस पर लिखे लेखे भी मिले हैं। उन ईंटों और पेपीरस के चित्र भर देना पर्याप्त है। जिन्हें जिज्ञासा हो, वे रिचार्ड ब्राउन के ग्रंथ 'दी हिस्ट्री आफ् अकाउंटिंग एंड अकाउंटेंट्स' का दूसरा अध्याय देखें।

अंकेक्षण का इतिहास

बहिखाते के इतिहास का अवलोकन करते हुए मिश्र, यूनान आदि देशों में अंकेक्षण (आडीटिंग) ... भी यहाँ प्रसंगवशात् कुछ कहा जा चुका है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि दोनों ... सदा साथ साथ ही विकसित हुईं। जहां किसी को दूसरे की संपत्ति के शासन का भार दिया जाने लगा, वहां उसकी सचाई और ईमानदारी की जांच की आवश्यकता स्वतः उपस्थित हो गई। मिश्र ने इसके लिए यह नियम बनाया कि आगम दो अधिकारियों द्वारा पृथक पृथक लिखा जाया करे। यूनान ने इसके लिए स्वतंत्र निरीक्षक नियुक्त किए। इतना ही नहीं, अपितु प्रत्येक अधिकारी के कार्यकाल की समाप्ति पर उसके समस्त लेखे की भी वहाँ जांच की जाती थी। रोम के प्रजातंत्र में आय और व्यय अधिकारित करनेवाले और उसे प्राप्त व रेचन करनेवाले में विभेद स्वीकार कर लिया गया था और इसलिये उसमें जाँच प्रति जांच की विस्तृत पद्धति का भी विकास हुआ। आज का अंकेक्षण (आडिटिंग) बहीखाते की जटिलता से ... इतना अधिक विकसित हुआ है और बहीखाता भी इसीलिए जटिलतम हो गया है क्योंकि आज पराई पूँजी पर बड़े से बड़ा व्यापार और उद्योग करना सामान्य बात है।

पाश्चात्य पुरातत्वज्ञ और भारतीय बहीखाता - कला की खोज

हमने देखा कि पाश्चात्य देशों के पुरातत्वज्ञों ने बहीखाते की परंपरा की खोज का कितना प्रयत्न किया और उसमें उन्हें कितनी सफलता मिली। उन पुरातत्वज्ञों ने हमारे ज्ञानविज्ञान की खोज में भी प्रयत्न किए हैं और जहाँ उनके प्रयत्न सफल हुए उन्होंने सभ्य जगत के सामने वे तथ्य प्रकट करने में कभी कोई संकोच नहीं किया है। यही कारण है कि

to anyone only a talent, and if it had ten checki... ...ng clerks, and as many seals and twice as many witnesses, it c... ...ould not ensure his honesty."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

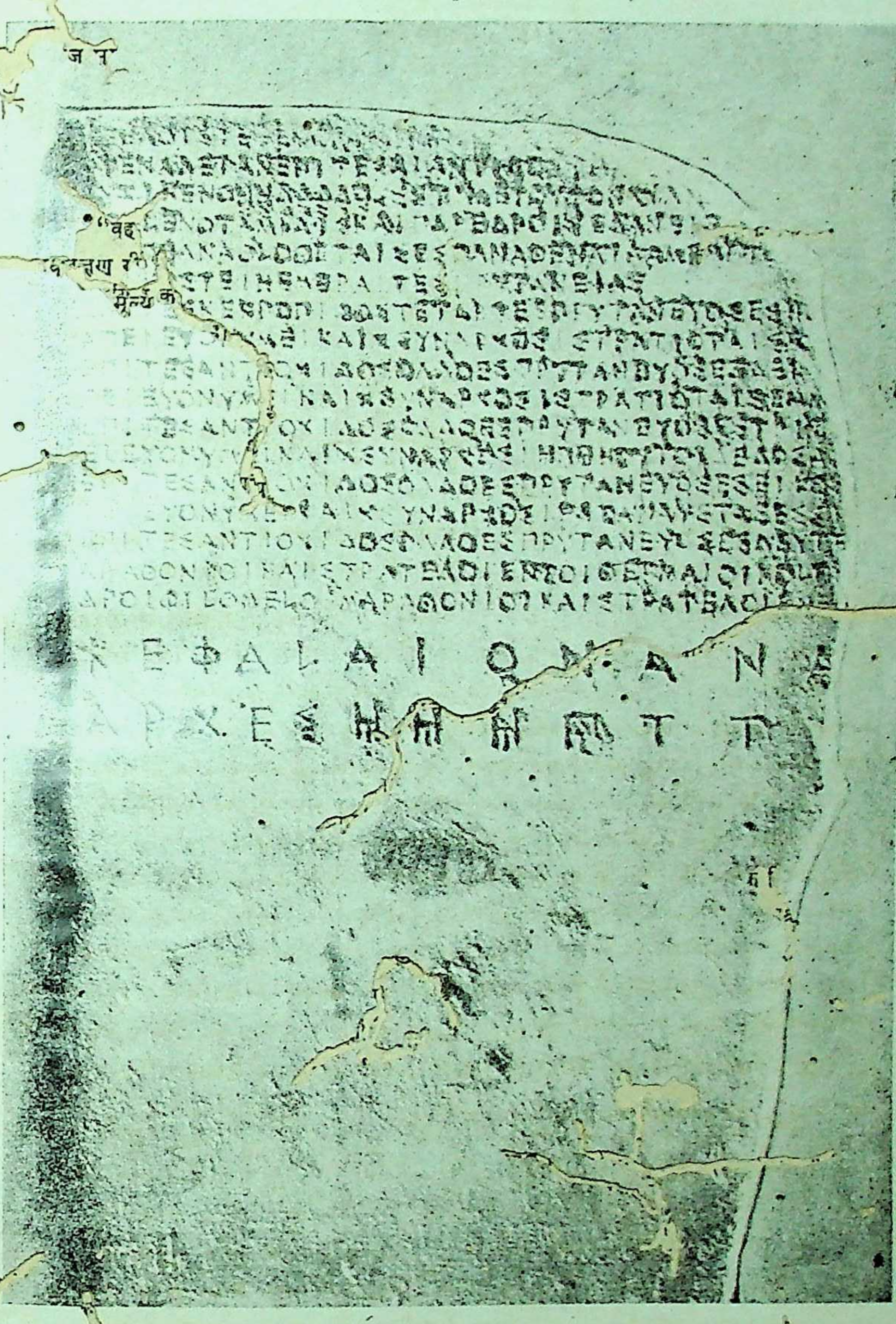

ऐथां... के चारियास नगर के व्यय का लेखा ई० पूर्व ४१८ से ई० पूर्व ४१५ का (मूल शिला का आकार १ फुट १० इंच लंबा और १ फुट २।। इंच चौ...) ब्रिटिश म्यूजियम (संग्रहालय) - यूनानी शिलालेख सं० २३, 'दि हिस्ट्री आफ अकाउंटिंग एंड अकाउंटेंट्स' से साभार उद्धृत। द्रष्टव्य - पृष्ठ २०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्र० २५नां सं. २०२६ २१ वर्ष- ६५

भारत में बहीखाता परंपरा

आज समस्त संसार गणितविज्ञान के विकास में भारत की अपूर्व देनों का ऋण मुक्तकंठ से स्वीकार करता है। प्रो० लेंसिलाट हाजबेन (Lencelot Hodgben) का ही मत यहां उद्धृत कर देना पर्याप्त है जो उन्होंने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'करोड़ों के लिए गणित'। (मैथेमेटिक्स फार दी मिलियन्स) में व्यक्त किया है —

"वह भारत ही है कि जिसने दस प्रतीकों द्वारा सभी संख्याओं को प्रकट करने की विलक्षण रीति हमें प्रदान की कि जहाँ प्रत्येक प्रतीक को स्थानीय मूल्य भी प्राप्त है और निरपेक्ष मूल्य भी। आज हमें यह गंभीर और महत्व की बात इतनी सामान्य प्रतीत हो रही है कि हम उसके यथार्थ गुण की उपेक्षा करते हैं। परंतु उसकी इस अतीव सरलता ने और गणनासाधना को दी गई उसकी महान् सुविधा ने हमारे उपयोगी आविष्कारों में गणित को सर्वप्रथम स्थान दे दिया है।

"मानव संस्कृति के इतिहास में विचारों की प्रगति यद्यपि शनैः शनैः ही हुई है, फिर भी संगणना का इतिहास एक अपेक्षित वृद्धिरोध का विशिष्ट चित्र ही है। इस दृष्टि से देखने पर उस अज्ञात हिंदू की, जिसने हमारे युग की पहली सदी में किसी दिन स्थानसिद्धांत खोज निकाला था, सफलतासिद्धि को जागतिक घटना का महत्व प्राप्त हो जाता है।

"शून्य के आविष्कार ने मानवीय बुद्धि को यूनानी गणना - यंत्र - कारागार से मुक्त कर दिया। ज्योंही कि एक रिक्त स्कंभ के लिए चिह्न बना दिया गया, पाटी, पत्र अथवा अन्य लेखन - साधन पर 'आगे ले जाना' उतना ही सरल हो गया जितना कि वह गोलिका - गणित (Abacus) पर था।

"आर्यभट्ट ईसवी ४७० के लगभग गणित के सिद्धांतों की चर्चा करता है, डायोफेंटस के चिह्नों के नियमों का प्रयोग करता है, ज्या (Sine) की एक सारिणी ३॥ के अंतर से देता है और पाई का ठीक अंकन ३. १४१६ करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदू गणित वहाँ से प्रारंभ होता है जहां कि ग्रीस का गणित समाप्त हो जाता है। कुछ काल पश्चात ही, छठी शती में, ब्रह्मगुप्त का आविर्भाव होता है जो आर्यभट्ट के मूलों पर ही चलता है — गणना, श्रेणी और समीकरण। इन प्राचीन हिंदू गणितज्ञों ने शून्य के उन नियमों की घोषणा पहले ही कर दी थी जिनपर हमारा सारा गणित आधारित है, अर्थात अ × ० = ०; अ + ० = अ; और अ − ० = अ (इसमें अ ÷ ० = ०० भी बढ़ाया जाना चाहिए — लेखक)।

"अपने सरल और स्पष्ट अंक - प्रतीकों से सुसज्जित हिंदुओं ने भिन्नों को आलंकारिक रूप से वर्णन करना बिलकुल त्याग दिया था। वे भिन्न उसी प्रकार लिखते थे जैसे कि हम लिखते हैं और उनका गणित ऐसा था जो बिना किसी यांत्रिक सहायक के ही मौखिक या शीघ्र साध्य था। वे उनको पूर्णांकों के समान ही प्रयोग करते थे। इस प्रकार महावीर (८५० ई०) ने एक भिन्न को दूसरे भिन्न से भाग करने की रीति की उन्हीं शब्दों में व्याख्या की जिनमें आज का शालाध्यापक करता है अर्थात 'हर को अंश बनाओ और दोनों को गुणा कर दो'।

"भिन्नों का संपूर्ण गणित जो आज प्रयोग में है, सब हिंदुओं का आविष्कार है।

"क्या यह समान ही आश्चर्यजनक नहीं है कि बीजगणित, आधुनिक गणित के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रयबिंदु, का आविष्कार भी भारतवर्ष में ही हुआ था और वह भी उसी समय जब कि स्थानीय संख्या-वाचन आविष्कृत हुआ था ?"[९]

९. Prof. Lancelot Hodgben : 'Mathematics for the Millions' :

"It is India that gave the ingenius method of expressing all numbers by means of ten symbols, each symbol receiving a value of position, as well as an absolute value; a profound and important idea which appears so simple to us now that we ignore its true merit; but its very simplicity, the great ease which it has lent to all computations, puts our arithmatic in the first rank of useful inventions.

"Even though there has been a slow growth of ideas in the history of human civilization, the history of reckoning presents a picture of desolute stagnation. When viewed in this light, the achievement of the unknown Hindoo who sometime in the first century of our era discovered the principle of position, assumes the proportion of a world event.

"The invention of Sunya or zero liberated the human intellect from the prison bars of the Greek counting frame. Once there was a sign for the empty column, "Carrying over" on slate, paper or other material for writing was just as easy as carrying over on the abacus.

"Aryabhatta about A. D. 470 discusses the rules of arithmetic, uses the laws of signs of Diophantus, gives a table of sines in intervals of $3\frac{3}{4}$, and evaluates π as 3.1416 In short, Hindoo mathematics starts where Alexandrian mathematics left off. Just a little latter, in the sixth century, comes Brahmagupta who follows the same theme as Aryabhatta : Calculation, Series, Equations. These early Hindu mathematicians had already stated the laws of 'ciphers' or Sunya, on which all our Arithmatic depends, namely $a \times 0 = 0$; $a + 0 = a$; $a + 0 = a$; $a - 0 = a$ (to this is to be added $a/0 = \infty$).

"Equipped with their simple and eloquent number symbols, the Hindus broke away completely from the metaphorical way of dealing with fractions. They wrote factions as we write them and they had an arithmetic which lent itself to rapid calculation whith mechanical aids, they experimented with them

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संबंध में यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि गणितविज्ञान में सत्रहवीं सदी के प्रारंभ तक भारतवर्ष संसार में सबसे अग्रणी देश था और यह एक आश्चर्य की ही बात है कि भारत में मुगल साम्राज्य के अवसान और अंगरेजी साम्राज्य के अभ्युदय का भी यही काल है। इसके बाद भारत ने इस बीसवीं सदी में ही संसार को श्री निवास रामानुजन (१८८७-१९२०) के रूप में ऐसा अद्वितीय गणितज्ञ दिया जिसकी जोड़ का गणितज्ञ विरला ही कहीं हुआ था। इसके संबंध में प्रो० हार्डी कहता है — "यह कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा कि उसके गणित की गंभीर एवम् अजेय मौलिकता का वरदान प्राप्त है। इस ओर निःसंदेह ही मुझे उसका जोड़ नहीं मिला है। मैं यूलर और याकोबो को ही उसकी तुलना में बता सकता हूँ। यूरोपीय गणितज्ञों को उसकी नोटबुक के लिखे को पढ़ने में पचास वर्ष लगेंगे।"

कहने का तात्पर्य यह कि बहीखाते की भारतीय परंपरा के प्रमाण न पुरातत्वज्ञों को स्वतः हस्तगत हुए और न उन्हें खोजने की चेष्टा ही की गई। इसीलिए इसपर आज तक कोई भी प्रकाश नहीं पड़ पाया और आज भी यह अवसर कदाचित् ही प्राप्त होता यदि मैसूर राज्य की ग्रंथशाला से पं० शामशास्त्री ने सन् १९०९ में कौटिलीय अर्थशास्त्र अंगरेजी अनुवाद सहित प्रकाशित न कर दिया होता। 'शुक्रनीति' ग्रंथ निःसंदेह इससे पहले प्रचार में था, परंतु विद्वान् आज उपलब्ध शुक्रनीति को दसवीं शती के आसपास का प्रणीत ही मानते हैं, भले उसका नाम प्राचीन से प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है, क्योंकि उसमें बंदूक (नालिक), तोप और बारूद का वर्णन मिलता है जिसका आविष्कार चीन देश में छठी सदी में ही होना माना जाता है। आचार्य कौटल्य ने प्रारंभ ही में 'ॐ नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्' से शुक्र और बृहस्पति दोनों ही को नमस्कार कर उनका अपने से पूर्ववर्ती होना यद्यपि स्वीकार कर लिया है, फिर भी आजकल प्रख्यात 'शुक्रनीति' और 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' उन्हीं पूर्वाचार्यों कृत ग्रंथों का अविकल रूप हैं, ऐसा निर्विवाद मान्य नहीं है।

आचार्य कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र की प्रशस्ति में स्पष्ट कह दिया है कि —

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

अर्थात् जिसने शास्त्र, शस्त्र और नंदराज के अधीन हुई भूमि का क्रोध के कारण बहुत शीघ्र उद्धार कर दिया, उसी (विष्णुगुप्त कौटल्य) ने इस शास्त्र को बनाया है। इस अर्थशास्त्र के

as with whole numbers. Thus Mahabir (A.D. 850) gave our rule of dividing one fraction by another in the same words which a school teacher might use today 'make the denominator the numerator and then multeply.'

"All the algorithms for fractions now used were invented by the Hindus.

"Is it not equally strange that Algebra that corner stone of modern mathematics also originated in India and about the same time that positional numeralism did?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाकाल का भी निर्णय हो चुका है और प्राय: सभी सहमत हैं कि यह ग्रंथ ईसवी पहली सदी के बाद का तो किसी दशा में नहीं है, यद्यपि इसकी वर्णित घटनाएँ चंद्रगुप्त मौर्य काल की याने ई० पूर्व चौथी शती की ही हैं।

बाबेरू (बेबीलोन), मिश्र, यूनान आदि देशों में वहीखाते की प्राचीन परंपरा का उपर्युक्त संक्षिप्त अवलोकन श्री रिचार्ड ब्राउन की सन् १६०५ में प्रकाशित पुस्तक 'दी हिस्ट्री आफ अकाउंटिंग एंड अकाउंटेंट्स' और १६३१ में प्रकाशित श्री एल्ड्रिज की पुस्तक 'दी इवोल्यूशन आफ दी साइंस आफ बुक-कीपिंग' के आधार पर है। पहली पुस्तक के समय तक तो कौटल्य का 'अर्थशास्त्र' अनखोजा ही था। दूसरी पुस्तक में प्राचीन इतिहास केवल ५ पृष्ठों में ही कह दिया गया है और उसमें भी दो से अधिक पृष्ठ ऊर राज्यवंश की सुमेरी ईंटों के वर्णन में खर्च हो गए हैं। किसी पुरातत्व-प्रिय लेखक-अकाउंटेंट का भारतीय वहीखाते की परंपरा की ओर यदि इन वर्षों में ध्यान जाता तो अर्थशास्त्र उसे आकर्षित किए बिना रह नहीं सकता था, जैसे कि अर्थशास्त्र की भारतीय परंपरा के खोजी अर्थ-राजनीतिशास्त्र-विदों का ध्यान उसने आकर्षित किया है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र से प्राचीन परंपरा की खोज

कौटिलीय अर्थशास्त्र-वर्णित वहीखाते की परंपरा की आज की विकसित परंपरा से सगर्व तुलना की जा सकती है। ऐसी परंपरा का विकास न तो अकस्मात् ही हो सकता था और न एक दिन में ही। अतः उससे पूर्व की परंपरा की खोज करना अत्यंत ही आवश्यक है। परंतु वहाँ अनुमान के सिवा दूसरा सहारा अभी तक कोई नहीं है। यह अनुमान हम उसी आधार पर लगाएँगे जिस पर पाश्चात्य देशों के वहीखाते के इतिहास का लगाया गया है अर्थात् 'सामाजिक जीवन के विकास ने और विशेषकर किसी रूप में कर लेनेवाले राज्यों अथवा प्रभुत्व संपन्नों के निर्माण ने संख्याज्ञान के साथ साथ संगणना और हिसाब लगाने का अधिकार भी आवश्यक कर दिया था। वहीखाता-विज्ञान का मूल इसी में पाया जाता है और यह, आज जो वहीखाता कहा जाता है उससे बहुत पहले का है क्योंकि ऐसा वहीखाता उस समय तक संभव ही नहीं जब तक कि किसी प्रकार का ऐसा मुद्रा-मानक (monetary standard) भी स्वीकृत न हो जाता जिससे लेखा बनानेवाली मदें समान रूप में कही जा सकें।[१०]

१०. Richard Brown; "The History of Accounting and Accountants' पृ० १६ – "The development of social life and especially the formation of States or Sovereignities levy ingamy form of texation necessitated, in addition to a knowledge of numbers, a power of holding count and reckoning, In this we find the otigin of the science of accounting. It antidated the stating of accounts as we understand them, – since that could not take place until some monetary standerd had been adopted in which items comprising an account could be expressed in terms of equality."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जानते हैं कि बावेरू (बेबीलोन) और मिश्र में मुद्रा अर्थात् रुपए का चलन नहीं था। वहाँ ई० पूर्व पाँचवीं - चौथी शती तक राजकर वस्तुरूप (इन काइंड) ही प्राप्त होता था। अंक और संख्या का आविष्कार तो संसार में सबसे पहले भारतवर्ष ने ही किया। यदि बहीखाते की कला का मुद्रा - पद्धति से निकट संबंध माना जाता है तो भारतवर्ष में धातुमुद्रा के चलन के इतिहास की खोज करना उपयोगी है।

प्रिंसेप, विलसन, कैनेडी और विसेंट स्मिथ यह कहते हैं कि "भारत में टंक (punch-marked) मुद्रा अर्थात् धातु के ऐसे निश्चित तोल के टुकड़े, जिनका मूल्य विश्वस्त चिह्नों द्वारा चलन के लिए प्रमाणित हो, का उपयोग और प्रचार, बहुत संभव है कि, सातवीं सदी ईसा पूर्व से हुआ कहा जा सकता है जब कि उसका वैदेशिक सामुद्रिक व्यापार प्रारंभ हुआ प्रतीत होता है। यह विश्वास करने का कारण है कि विदेशी वणिकों के साथ वाणिज्य की आवश्यकताएँ ही भारतीयों द्वारा धातुई चलन और अक्षरों में लेखन स्वीकरण का तात्कालिक कारण था।"[११] परंतु यह मत इसी बात से भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है कि वैदेशिक - सामुद्रिक वाणिज्य में ही धातुई मुद्रा और लेखन आवश्यक होता है अंतरदेशीय अथवा और सीमापार स्थल - वाणिज्य के लिए नहीं। फिर भारत का सामुद्रिक वाणिज्य सातवीं सदी ईसा पूर्व के आसपास ही प्रारंभ हुआ था, यह भी तो सत्य नहीं है। भारत का स्थल और सामुद्रिक वाणिज्य कब प्रारंभ हुआ था इसकी खोज का यह स्थल नहीं है। भारतीय और युरोपीय पुरातत्वज्ञों की आधुनिकतम खोजों से अब यह प्रमाणित हो चुका है कि तीन से चार हजार वर्ष के वैदिक युग में भी भारत के वैदेशिक व्यापार का होना या पाया जाना असंभव नहीं है।

इसी प्रकार टंक - मुद्रा - विशेषज्ञों (न्यूमिस्मैटिस्ट्स) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रिंसेप आदि विशेषज्ञों का टंक - मुद्रा - संबंधी उपर्युक्त मंतव्य भी भ्रमपूर्ण है। यही नहीं भारत में टंक - मुद्रा तो प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही थी। डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने टंकमुद्राओं के परीक्षण से यह सिद्ध कर दिया है कि "पाँच प्रकार की टंक-मुद्राएँ वैदिक काल में प्रचलित थीं और वे सब सोने की थीं--अर्थात् निष्क, शतमान, सुवर्ण, पाद, और कृष्णल। उत्तर वैदिक काल में कार्षापण नाम की टंकमुद्रा भी चलती थी।"[१२] प्रो०

११. देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, 'Ancient Indian Numismatics' पृ० ३६। "The introduction in to India of the use of coins, that is to say, metallic pieces of definite weight authenticated as currency by marks rcognised as a guarantee of value, may be ascribed with much probablity to the seventh century B.C., when foreign maritime trade seems to have begun. There is reason to believe that the necessities of commerce with foreign merchants were the immediate occasion for the adoption by the Indian people of a metallic currency as well as of alphabetical writing."

१२. वही पृष्ठ० १७६। "As many as five denominations of coins were known in the Vedic period and were all of gold, namely, Nishka;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विंटरनिट्ज के निर्णयानुसार सभी पुरातत्वज्ञों ने ई० पूर्व २५०० वर्ष से वैदिक युग का प्रारंभ होना स्वीकार कर लिया है। जिज्ञासुओं को डा० भंडारकर का ग्रंथ 'एशेंट इंडियन न्यूमिसमैटिक्स (कलकत्ता विश्वविद्यालय) देखना चाहिए।

श्री प्रिंसेप का यह भी कहना था कि भारतीय टंक - मुद्रा - कला बैक्ट्रिया के यवनों से सीखे। अलैक्जेंडर कनिंघम और एडवर्ड टामस ने यह मत स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, उन्होंने स्वदेशी भारतीय टंकमुद्रा का अस्तित्व भी सप्रमाण सिद्ध किया था। परंतु उनकी बातों ने लोगों का ध्यान पहले तो आकर्षित ही नहीं किया क्योंकि जो कुछ भारत में अच्छा या मौलिक था वह सब विदेशियों के प्रभाव से था, इस मत के माननेवाले ही यूरोपीय पुरातत्वज्ञ अधिक थे। इन्हीं में एक जेम्स कैनेडी (J. Kennedy) तो यहाँ तक कह उठा कि "ठप्पेवाली टंकमुद्रा (Punch - marked) अर्थात् जिन्हें प्राचीन भारतीय कार्षापण कहते थे और जो इस देश की प्राचीनतम टंकमुद्रा है, ई० पूर्व छठी शती में समुद्री वाणिज्य के खुलने पर बावेरु (बेबीलोनी) मुद्रा से नकल की गई थी।"[१३] इस मत का डा० विंसेंट स्मिथ ने भी उपर्युक्त शब्दों में समर्थन किया। परंतु सर जान मार्शल को तक्षशिला के उत्खननों में प्राप्त १७५ ठप्पांकित टंकमुद्राओं ने सदा के लिए उस भ्रांति का निरसन कर दिया।[१४] इतना ही नहीं, इसने इस टंकमुद्रा - ज्ञान को प्राग्वैदिक भारत तक पहुँचा दिया।[१५]

Satamana, Suvarna, Pada and probably Krishnala. It is only when we come to the post vedic epoch that we hear of another class of coins, namely, the Karshapana. It is referred to along with the previous denominations not only in Panini's Sutras but also in the Jataka literatnre. But we find them all mentioned in the Manusamhita (Circa 150 B.C.) and Yajnavalkya Smrities (Circa 350 A.D.) which are the only two smriti works that specify various kinds of old metallic stamped money."

१३. वही, पृ० ३६। Thus James Kennedy holds that the punch-marked coins, or the karshapanas as they were known to the ancient Hindus, which form the most ancient money in India, were copied from Babylonian originals after the opening of maritime trade in the sixth century B. C.

१४. वही, पृ० ४०। "Evidence of a more convincing nature has been furnished by a find of coins made in Sir John Marshall's excavations at Taxila during the cold season of the year 1912–13. In the Bir Mound, the earliest of the three cities till then excavated by him there, he lighted upon a small hoard in the shape of 175 punch marked coins along with a gold coin of Diodotus struck in the name of Antiochus II of Syria. It will be seen that the hoard belongs to a period when Diodotus was still a Satarap of Antiochus and before he declared the independence of Bactria. As the punch-marked coins of this deposit are thus of a time when Bactria was still subordinate to the Seleukidan power, it is not possible to assert now that the Hindus learnt the art of coinage from their Bactrian Greek neighbours."

१५. वही, प्रस्तावना पृ० १०८। "It will thus be seen that quite in consonance with the indisputable fact that prehistoric signs are found

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी दशा में भारत में बहीखाता-कला का ज्ञान वैदिक काल से ही चला आ रहा है, यह निःसंकोच कहा जा सकता है यद्यपि इसके अस्तित्व को सिद्ध करने के प्रमाण नहीं दिए जा सकते हैं। परंतु डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर के शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि "प्राचीन भारत के इतिहास और संस्कृति से संबंधित ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ अनुसंधानकार्य न किया जा सके।"[१६]

लेख गणना और रूप

लेख, गणना और रूप, इन तीनों विषयों का ज्ञान प्राचीन भारत में प्रत्येक के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य माना जाता था। ब्युह्लर और श्रीमती हिस डेविड्स ने इसे आजकल के तीन 'आर' (रीडिंग, रायटिंग और' रिथमेटिक) से तुलना की है। परंतु उस काल में इतने सामान्य ज्ञान या परिचय को ही लेख, गणना और रूप नहीं मान लिया जाता था जैसा कि आज सामान्य लिखना, पढ़ना और गणित जाननेवाला अंगरेजी तीन 'आर' अक्षरों के ज्ञानवाला माना जाता है। तब प्रत्येक से व्यवसाय विशेष अभिप्रेत था। इसके लिए डा० भंडारकर ने महावग्ग से उपाली का दृष्टांत उद्धृत किया है जिसे संक्षेप में यहाँ दे देना प्रासंगिक है —

राजगृह नगरी में उपाली नाम का एक युवक अपने १७ मित्रों के साथ रहता था। सभी अवस्था में २० वर्ष से कम थे। उपाली के माता पिता को उपाली के भविष्य की चिंता थी और उनके मरने पर भी वह सुखी रहे, यही वे उसके लिए सोचते रहते थे। वे सोचते कि यदि उपाली 'लेख' सीखता है तो लिखते लिखते उसकी उँगलियों में घाव पड़ जाएँगे। यदि वह 'गणना' सीखता है तो उसकी छाती के रोग हो जाएँगे और यदि वह 'रूप' सीखता है तो उसकी आँखों को कष्ट होगा। उधर शाक्यपुत्र के श्रमण इस प्रकार का कुछ नहीं करते हुए भी खूब सुखी जीवन बिता रहे हैं। इसलिए उपाली को शाक्यपुत्र का श्रमण यदि बना दिया जाए तो हमारे मरने के पश्चात् इसका जीवन कष्टरहित और सुखपूर्वक बीतता रहेगा। बस उपाली और उसके सभी १७ साथी एक दिन शाक्यपुत्र के श्रमण हो गए और रात्रि की समाप्ति पर भोर होते ही भोजन के लिए बुरी तरह हंगामा मचाने लगे। भगवान् बुद्ध को इस हंगामे का कारण जानकर भविष्य में २० वर्ष से कम आयुवालों को श्रमणत्व न देने का ही प्रतिबंध संघ में कर देना पड़ा।

on the Karshapanas, is the other fact, equally indisputable, that they have been picked up also from prehistoric cairns....... In these circumstances the introduction of the Karshapana coinage must be attributed to about the beginning of the second millenium before Christ." page 109. Also cf. "When therefore we find so many symbols of prehistotic origin occuring on the punch-marked coins, it is difficult to avoid the conclusion that Karshapana coinage must have been handed down to us from prehistoric times." page 108.

१६. वही, भूमिका पृ० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आख्यान से स्पष्ट है कि आराम से जीवन बिताने या बिता सकनेवाले व्यवसाय की खोज में उपाली के मातापिता ने इसीलिये लेख, गणना और रूप के व्यवसाय को उसके लिए पसंद नहीं किया कि वे सब परिश्रम और कष्टसाध्य थे। ऐसे कष्टसाध्य व्यवसाय सामान्य लेखन, पठन और गणित कभी नहीं हो सकते थे। लेख से लेखक, गणना से गणनिक्य और रूप से रूपादर्शक का व्यवसाय ही अभिप्रेत था।

यहाँ जातकट्ठ कथा से सुमेध की बाल्यावस्था की एक घटना का उल्लेख करना उचित है क्योंकि वह भी विषय पर कुछ प्रकाश डालती है। हिंदी साहित्य संमेलन द्वारा प्रकाशित 'जातक' प्रथम खंड, पृ० २ पर यह कथा इस प्रकार है —

चार असंख्येय एक लाख कल्प पहले अमरावती नाम की नगरी में सुमेध नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह माता-पिता दोनों के कुलों से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढ़ी तक कुलदोष से रहित, सुंदर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रंग के सौंदर्य से युक्त था। उसने और कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी। बचपन में ही उसके माता पिता मर गए। तब खजानची (राशिवर्धक अमात्य) बहीखाता (आय पुस्तक) लेकर आया और सोना, चाँदी, मोती आदि से भरी कोठरियों को खोल खोलकर कहने लगा — "इतना मातृधन है। इतना पितृधन है। इतना दादा-परदादा का धन है ··· ···।" इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कहकर बोला — "कुमार लो, इसे संभालो ··· ···।" इसीका मूल पाली पाठ इस प्रकार है—**अथस्स रासिवड्ढको अमच्चो आयपोत्थकं आहरित्वा सुवण्णरजत मणि-मुत्ताहि भरिते गब्भे विवरित्वा एत्तकं ते कुमार। मातुसन्तकं एत्तकं, पितुसंतकं, एत्तकं अय्यक पय्यकानंति याव सत्तमा कुला परिवट्टाधनं आचिक्खित्वा एतं पटिपज्जा-हीति आह।** यह उदाहरण कम से कम इतना तो सिद्ध करता ही है कि बहीखाता लिखने की प्रथा देश में पर्याप्त प्राचीन ही नहीं थी, अपितु सात सात पीढ़ी तक के पुराने लेखे भी सुरक्षित रखे जाते थे।

'लेखक' के विषय में कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस प्रकार लिखा है —

तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनासमर्थो लेखकः स्यात्॥ २।१०।४॥

अर्थात् अमात्य के गुणों से युक्त, हर प्रकार के आचारविचार को जाननेवाला, शीघ्रता से सुंदर वाक्य-योजना करनेवाला, सुंदर अक्षर लिखनेवाला, सब प्रकार के लेख लिखने और पढ़ने में समर्थ हो, वही लेखक होता है (अर्थात् षाड्गुण्य संबंधी शासन आदि लिखने पढ़ने के लिये इस प्रकार के लेखक को राजा नियुक्त करे)।

शासनाधिकार नाम से कौटल्य ने ६५ सूत्रों का यह अध्याय अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण में दिया है और इसकी प्रशस्ति में लिखा है —

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥ २।१०।६५

अर्थात् कौटल्य ने सब शास्त्रों को अच्छी प्रकार जानकर और उनके प्रयोगों को भली प्रकार समझकर राजा के लिए इस शासनविधि का उपदेश किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप कौन सा व्यवसाय था ?

इसके पूर्व कि हम गणना - व्यवसायिक गाणनिक्य का विचार करें, रूप कौनसा व्यवसाय था, यह संक्षेप में देख लें। हिस डेविड्स सर्राफी - साहूकारी को जिसे अंगरेजी में 'मनीचेंजिंग'.कहते हैं, रूप - व्यवसाय कहता है तो डा० व्यूहलर 'व्यापारी और कृषक गणित' को ? परंतु डा० देवदत्त रा० भांडारकर के मत से यद्यपि मूलार्थ से दूर न होते हुए भी, ये उसका ठीक ठीक परिचय हमें नहीं देते हैं। बुद्धघोष के विशुद्धिमग्ग में कहा है कि "जो रूप - सुत्त की शिक्षा प्राप्त करे, उसे अनेक कार्षापणों को बार बार देखना और परखना चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि रूपजीवि मुद्रापारखी होता था। हमारा सिक्का जो रुपया कहलाता है, उसका मूल कारण भी यही है। ऋग्वेद, द्वितीय मंडल की ३३वीं ऋचा यों है — "अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।" जिसका अर्थ है कि रुद्र, निष्क या सोने का कंठहार, जो कि विश्वरूप हैं, पहने हैं। निष्क, विश्वरूपवाला तभी कहा जा सकता है जब वह सर्वप्रचलन की मुद्रा हो और उस पर ऐसा कोई चिह्न या रूप हो कि जो उसकी विश्वस्तता में विश्वास दिलाकर उसे बिना रोक टोक के सर्वग्राही बना देता हो। यहाँ गहराई में न उतर कर इतना ही कह देना उचित होगा कि कौटल्य ने भी अर्थशास्त्र में सिक्के के लिए 'रूप' शब्द का प्रयोग किया है। अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण के बारहवें अध्याय में 'रूप्यरूप' और 'ताम्ररूप' का वर्णन है जो कि डा० भांडारकर के अनुसार दोनों प्रकार के सिक्कों के ही द्योतक हैं। कौटल्य ने रूपदर्शक अधिकारी के कर्तव्यों का भी निरूपण किया और कहा है कि वह प्रचलन के, और राजकोष में लगान रूप में प्राप्त सिक्कों की परीक्षा करे। सिक्कों की परीक्षा का यह व्यवसाय कितना कठिन होता है, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है। इसलिये उपाली को जब वह बीस वर्ष की अवस्था का हो रहा था तो उसके माता - पिता उसे रूप - व्यवसाय की शिक्षा इसलिये दिलाने की सोचते थे कि उसे रूपदर्शक या सौवर्णिक का काम मिल सके। परंतु उसकी भीषण कठिनाइयों के विचार से उन्होंने उसको इस व्यवसाय की शिक्षा दिलाने का विचार तक छोड़ दिया और शाक्यमुनि का श्रमण ही बना दिया था।

गाणनिक्य

इसी प्रकार 'गणना' शब्द से साधारण गणित नहीं, अपितु गाणनिक्य - व्यवसाय - शिक्षा अभिप्रेत था जिस पर कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण 'अध्यक्षप्रचार' में ४२ सूत्रों का 'अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः' अध्याय ही दिया है। इस अध्याय का विचारणीय विषय से ही संबंध है इसलिए यहाँ उसका विस्तार प्रासंगिक है। इस अध्याय का शीर्षक पं० शामशास्त्री ने अंगरेजी में 'दी बिजनेस आफ कीपिंग अकाउंट्स इन दी आफिस आफ अकाउंटेंट्स' दिया है।

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ॥ १ ॥[१७]

१७. कौटिलीय अर्थशास्त्र के अंगरेजी अनुवाद के विषय में प्रथम संस्करण (सन् १९१५) में पं० शामशास्त्री ने इस प्रकार लिखा था कि "I am conscious of the fact that

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अध्यक्ष (आय - व्यय का प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुष), अक्षपटल (आयव्यय के प्रधान कार्यालय) का निर्माण करावे। उसका द्वार पूर्व या उत्तर की ओर होना चाहिए। प्रत्येक छोटे बड़े लेखकों (क्लर्कों) के लिए पृथक पृथक स्थान होना चाहिए। आयव्यय के रजिस्टरों के रखने का, उसमें नियमित तथा सुरक्षित प्रबंध होना चाहिए ॥ १ ॥]

तत्राधिकरणानां संस्थाप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं देशग्रामजातिकुलसंघातानां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ॥ २ ॥[१८]

it is far from being perfect. Beset as the work is with difficulties, it would be sheer presumption on my part to hope that my translation presents a correct interpretation of the text in all cases." अंगरेजी अनुवाद का द्वितीय संस्करण सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ। यद्यपि समस्त अनुवाद का वे संशोधन टीकादि उपलब्ध ग्रंथ उस समय प्राप्त नहीं होने से, नहीं कर सके थे, परंतु 'व्युष्ट' जैसे शब्द को उन्होंने 'नव वर्ष दिवस' का अर्थ देना उचित समझा और तदनुसार अपना अनुवाद संशोधन कर दिया था। इस अनुवाद का पांचवाँ संस्करण शामशास्त्रीजी के सुपुत्र श्री श्रीनिवास ने सन् १९५६ में प्रकाशित किया जो कि तृतीय संस्करण (सन् १९२९ में प्रकाशित) का ही अनुमुद्रण है। इस तृतीय संस्करण में अनुवाद पहले अनुवादों से कितना संशोधित हुआ, कहा नहीं जा सकता। किसी और विद्वान् का अंगरेजी अनुवाद न तो मेरे देखने में ही आया है और किसी अन्य ने किया है, यह भी मैं नहीं जानता हूँ।

जो कठिनाई स्व० शामशास्त्री जी को अंगरेजी अनुवाद में अनुभव हुई, वही इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद करनेवालों को हुई होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता। पहला हिंदी अनुवाद डा० प्राणनाथ विद्यालंकार ने सन् १९२३ में प्रकाशित किया और दूसरा डा० उदयवीर शास्त्री ने सन् १९२५ में। मैंने इस लेख के लिए डा० उदयवीर शास्त्री के अनुवाद का ही सहारा लिया है और जहां शामशास्त्री के अंगरेजी अनुवाद से वे असहमत हैं, वहां पादटिप्पण में शास्त्रीजी का अंगरेजी अनुवाद दे दिया है। दोनों में से कौन ठीक है, मैं कहने में असमर्थ हूँ। फिर मेरे इस लेख का विषय 'बहीखाता की परंपरा की खोज' है न कि अनुवाद का परीक्षण और संशोधन दोनों अनुवाद उस खोजमें सहायता करते हैं, इसमें संदेह नहीं—लेखक

१८. There in the number of several departments; the description of the work carried on and of the results realised in several manufacturies (कर्मान्त); the amount of profit, loss, expenditure delayed earnings, the aucount of Vyaji (premia in kind or cash) realised, the status of government agency employed, the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अक्षपटल में क्या क्या कार्य होना चाहिए — द्रव्यों के उत्पत्ति- स्थानों की नाम - निर्देशपूर्वक संख्या, जनपद तथा वहाँ की हर प्रकार की उपज को रजिस्टरों में लिखा जाए, अर्थात् अमुक जनपद में इतने इतने स्थानों से इतना इतना धन प्राप्त हुआ। खान तथा हर प्रकार के कारखानों के आय - व्यय के संबंध में वृद्धि (व्याज), अच (पुरुषों की नियुक्ति), व्यय० (धान्य - हिरण्यादि को कार्य में लगाना), प्रयाम (तैयार हुए हुए अन्न आदि का समूह), व्याजी (व्यापारियों से तुला, मान आदि के न्यून होने पर, फिर न्यून न हो इसलिए दंडरूप में लिया हुआ आमदनी का बीसवाँ हिस्सा अर्थात् प्रति सैकड़ा पाँच), योग (अच्छे और बुरे द्रव्य की मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), वेतन, विष्टि (बेगार) आदि सब कार्यों का उल्लेख रजिस्टर में किया जाए। रत्नसार, फल्गु और कुप्य पदार्थों के मूल्य, प्रत्येक वस्तु का गुण, तौल, लंबाई - चौड़ाई ऊँचाई तथा असली मूलधन का उल्लेख रजिस्टर में किया जाए। देश, ग्राम, जाति, कुल तथा सभा सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियों का भी उल्लेख किया जाए। राजोपजीवी पुरुषों के प्रग्रह (प्रजा, मंत्री पुरोहित आदि के प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवासस्थान, भोग (भेंट आदि), परिहार (कर आदि का न लेना), भक्त (उनके घोड़े आदि का खर्च), तथा वेतन आदि का भी उल्लेख किया जाए। महारानी तथा राजपुत्रों के रत्न और भूमि आदि की प्राप्ति का भी उल्लेख किया जाए। राजा, महारानी, और राजपुत्रों को नित्य दिए जाने वाले धन से अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव आदि से प्राप्त हुआ धन, तथा रोगों को शांत करने के लिए जनता से प्राप्त हुआ धन, उनको भी रजिस्टर में लिखा जाए। मित्र तथा शत्रुओं के संधि विग्रह और उनको दिए हुए तथा उनसे लिये हुए धन आदि का भी पुस्तकों में उल्लेख कर लिया जाए। ये सब कार्य अक्षपटल में होना चाहिए ॥ २ ॥]

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययो नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥

[सब अधिकरणों याने उत्पत्तिस्थानों और कार्यस्थानों के करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, नीवी, उपस्थान, प्रचार, चरित्र तथा संस्थान आदि सब लिखकर राजा को दे ॥ ३ ॥]

उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसुतज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात् ॥ ४ ॥

amount of wages paid, the number of free labourers engaged (विष्टि) pertaining to the investment of capital on any work; likewise in the case of gems and commodities of superior or inferior value, the rate of their price, the rate of their barter, the counter weights (प्रतिमान) used in weighing them, their number, their weight, and their cubical measure; the history of customs, professions, and transactions of countries, villages, families, and corporation ; the gains in the form of gifts to the king's courtiers, their title to possess and enjoy lands, remission of taxes allowed to them, and payment of provisions

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[उत्तम, मध्यम तथा नीच कार्यों पर उनके अनुकूल ही अध्यक्ष नियत किए जाएँ ॥४॥]

सामुदायिकेष्ववक्लृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत् ॥ ५ ॥

[एक ही कार्य को करनेवाले बहुत से कर्मचारियों में से उसीको अध्यक्ष बनाया जाए जो कार्य करने में सबसे निपुण हो। यदि कई कर्मचारी समान निपुण हों, तो उनमें जो गुणी और यशस्वी हो और इनमें से भी अध्यक्ष उसको बनाए जिसको अपराध होने पर दंड देने के पश्चात् राजा को अनुताप न हो। अर्थात् राजा अध्यक्षपद पर ब्राह्मण अथवा अपने निकट संबंधियों को नियुक्त न करे ॥ ५ ॥][19]

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो
भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥

[यदि कोई अध्यक्ष अपहरण किए हुए राजकीय धन को लौटा न सके, तो वह धन उसके साथी (जिन्होंने अपहृत धन में हिस्सा लिया हो), प्रतिभू (जामिन), गणक (कर्मोपजीवि - अध्यक्ष के नीचे कार्य करनेवाले अन्य कर्मचारी), उसके (अध्यक्ष के) पुत्र, भाई, स्त्री, लड़की अथवा नौकर लोग देवें (पहले के न होने पर ही दूसरे देवें) ॥६॥][20]

त्रिशतं चतुः पंचाशच्चाहोरात्राणां कर्म संवत्सरः ॥ ७ ॥

[३५४ दिन रात का एक कर्म संवत्सर समझना चाहिए (प्रत्येक ऋतु में एक एक दिन कम होते जाने से यह समय समझना चाहिए) ॥ ७ ॥]

तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ॥ ८ ॥

[उस संवत्सर को आषाढ़ मास की पूर्णमासी को समाप्त हुआ समझे। यदि कोई अध्यक्ष आदि बीच में ही कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो उसे उतने दिन को काट कर वेतन दिया जाए; जिसने पूरा काम किया हो उसे पूरा वेतन दिया जाए ॥ ८ ॥]

करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

and salaries to them; the gains to the wives and sons of the king in gems, lands, prerogatives, and provisions made to remedy evil portents; the treaties with, issues of ultimatum to, and payments of tribute from or to, friendly or inimical kings—all these shall be regularly entered in prescribed registers.

१९. The king will have to suffer in the end if he curtails the fixed amount of expenditure on profitable works.

२०. (When a man engaged by government for any work absents himself), his sureties who conjointly received (wages ?) from the government, or his sons, brothers, wives, daughters, or servants living upon his work shall bear the loss caused to the government.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रतिमास में किसी पुरुष ने कितना काम किया है, इस बात का पता उपस्थिति के गणक (सब कर्मचारियों की उपस्थिति के लेखक) से लेना चाहिये ॥ ९ ॥][21]

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति ॥ १० ॥

[अध्यक्ष को चाहिए कि वह संपूर्ण जनपद के कार्यालयों की व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करता रहे क्योंकि देश के समाचार और उसकी पूर्व स्थिति को गुप्तचरों द्वारा न जानता हुआ अध्यक्ष, अपनी आज्ञनता से धनों की उत्पत्ति में रुकावट डालनेवाला हो जाता है, अर्थात् उसकी अनवधानता से कर्मचारियों में इस प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे आमदनी में रुकावट पड़ जाती है ॥ १० ॥]

उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद्दर्पेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥

[अर्थोपत्ति में बाधा डालनेवाले निम्नलिखित आठ दोष हैं — अज्ञान (जो पिछले सूत्र में बताया जा चुका है), आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, दर्प और लोभ; परिश्रम के दुःख को न सहन कर सकने के कारण आलस्य के द्वारा, गायन-वादन तथा स्त्रियों में आसक्ति के कारण प्रमाद के द्वारा, निंदा अधर्म के तथा अनर्थ के कारण भय से, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम के द्वारा, इसी तरह किसी पर क्रूरता करने के कारण क्रोध के द्वारा, विद्या धन तथा राजा आदि का प्रिय न होने के कारण दर्प से, तुला मान तर्कना तथा हिसाब में गड़बड़ कर छल के कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारीगण आमदनी में रुकावट डाल देते हैं ॥ ११ ॥][22]

२१. (The work during) the intercalary month shall be (separately) calculated.

२२. A government officer, not caring to know the information gathered by espionage and neglecting to supervise the despatch of work in his own department as regulated, may occasion loss of revenue to the government owing to his ignorance, or owing to his idleness when he is too weak to endure the trouble of activities, or due to inadvertance in perceiving sound and other objects of sense, or by being timid when he is affaid of clamour, unrighteousness, and untoward results, or owing, to selfish desire when he is favourably disposed towards those who are desirous to achieve their own selfish ends, or by cruelty due to anger, or by lack of dignity when he is surrounded by a host of learned and needy sycophants or by making use of false balance, false measures, and false calculations owing to greediness.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषामनुपूर्व्या यावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥ १२ ॥

[राजकीय धन का किसी भी प्रकार नाश करनेवाले पुरुष को दंड दिया जाय। मनु का कथन है कि जो जितना अपराध (धन अपहरण आदि) करे, उसको इन अज्ञानादि दोषों के क्रमानुसार एक एक गुना अधिक दंड दिया जाए। अर्थात् अज्ञान से हानि हुई हो तो हानि के बराबर, आलस्य से हानि होने पर हानि से दुगुना, प्रमाद के कारण हानि होने पर उससे तिगुना, इसी प्रकार क्रमोत्तर समझ लेना चाहिए ॥ १२ ॥]

सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥ १४ ॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

[पाराशर के अनुसार सब में ही अठगुना दंड देना चाहिए ॥ १३ ॥ बृहस्पति के अनुसार सब में दस गुना दंड दिया जाए ॥ १४ ॥ उशनस (शुक्राचार्य) से अनुसार सब पर बीस गुना दंड दिया जाए ॥ १५ ॥ परंतु आचार्य कौटल्य कहता है कि जो जितना अपराध करे उसको उसके अपराधानुरूप ही दंड दिया जाए ॥ १६ ॥

गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः ॥ १७ ॥ आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकाना-मेकत्र संभाषावरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥]

[सब कार्यालयों के अध्यक्ष अपना हिसाब दिखाने को प्रतिवर्ष आषाढ़ के महीने में प्रधान कार्यालय में आएँ ॥ १७ ॥ आए हुए गाणनिक्यों का उस समय तक परस्पर संभाषण नहीं होने दिया जाए जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे रजिस्टर तथा व्यय से बँधा हुआ शेष याने नीवी विद्यमान रहे। (अर्थात् जब उनका हिसाब जाँच लिया जाए और शेष राशि ले ली जाए तब ही वे लोग आपस में मिल सकें) ॥ १८ ॥]

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् ॥ २० ॥

[आय व्यय तथा शेष परिणाम को सुनकर, जो कुछ उनके पास शेष हो वह ले लिया जाए ॥ १९ ॥ गाणनिक्य ने आयधन का जितना परिणाम बताया है, यदि रजिस्टर में उससे अधिक आय निकले, जितना व्यय का परिमाण बताया है उससे कम रजिस्टर में निकले, तो वह आय की अधिक और व्यय की कम जितनी राशि बताई गई है, उसका अठगुना उस गाणनिक्य पर दंड किया जाए ॥ २० ॥]

विपर्यये तमेव प्रतिस्यात् ॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां वा देयदशबन्धो दण्डः ॥ २२ ॥

[यदि यह निश्चय हो जाए कि जितनी आमदनी हुई है उससे कुछ अधिक रकम रजिस्टर में लिखी गई है, अथवा वस्तुतः जितना व्यय हुआ है उससे कम ही रजिस्टर में दर्ज किया गया है, तो इस कारण से शेष में जितना अंतर पड़े, उसके संबंध में अध्यक्ष को दंड नहीं दिया जाए। प्रत्युत जो आय व्यय की न्यूनाधिकता हुई है वह उसीको समझी जाए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् व्यय में जो कम लिखा गया है वह धन अध्यक्ष को दे दिया जाए ॥ २१ ॥[23] जो अध्यक्ष निर्दिष्ट समय में अथवा अपने रजिस्टर और शेष धन लेकर हिसाब दिखाने को उपस्थित न हो, तो उसको जितना देना हो उससे दस गुना उस पर दंड किया जाए ॥२२॥]

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥२४॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः ॥२५॥ पृथग्भूतो मिथ्यावादी चेषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥ २६ ॥

[प्रधान अध्यक्ष अर्थात् कार्णिक के हिसाब देखने के ठीक समय पर उपस्थित हो जाने पर भी जो कार्मिक अपना हिसाब नहीं दिखाए तो उसे प्रथम साहस दंड दिया जाए ॥ २३ ॥ यदि ठीक समय पर आकर अध्यक्ष हिसाब नहीं देखे तो उसे दुगुना प्रथम साहस दंड दिया जाए ॥ २४ ॥ राजा का प्रधान कर्मचारी महामात्र आदि, आय-व्यय तथा नीवी संबंधी अथवा परस्पर की संपूर्ण अनुकूल प्रवृत्तियों का, जनपद के साथ - साथ (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषों को भी अपनी सभा में मिलाकर उनके साथ - साथ) अच्छी तरह समझावें ॥ २५) जो इनमें (महामात्रों में) से प्रतिकूल बोले, उसे उत्तम साहस दंड मिले ॥ २६ ॥][24]

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत् ॥ २७ ॥ मासादूर्ध्वं मासाद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पंचरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

[द्रव्य एकत्रित करने का जो नियत समय है, यदि संग्रहकर्ता उस समय तक न करे तो एक महीना और भी प्रतीक्षा की जाए, अर्थात् उसको एक महीने का अवसर संग्रह करने को और दिया जाए ॥ २७ ॥ यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके नहीं दे तो उसपर प्रतिमास

२३. By how much the superintendent of a department augments the net total of its revenue, either by increasing any one of the items of its receipts or by decreasing any one of the items of expenditure, he shall be rewarded eight times that amount. But when it is reversed (i. e. when the net total is decreased), the award shall also be reversed (i. e. he shall be made to pay eight times the decrease.).

२४. When a superintendent of accounts (कार्मिक) does not atonce proceed to receive and check the accounts when the clerks (कार्मिक) are ready, he shall be punished with the first amercement. In the reverse case (i. e. when the clerks are not ready), the clerks shall be punished with double the first amercement. All the ministers (mahamatras) shall together narrate the whole of the actual accounts pertaining to each department. Whoever of these (ministers or clerks) is of undivided counsel, or keeps himself aloof or utters falsehood, shall be punished with the highest amercement.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हिसाब से दो सौ मुद्रा दंड किया जाए ॥ २८ ॥ जिस अध्यक्ष के पास राजदेय धन थोड़ा ही शेष रह गया हो उसकी केवल पाँच दिन तक प्रतीक्षा करे। तदनंतर उसे भी दंडनीय समझा जाए ॥ २९ ॥][२५]

कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥ ३० ॥

[कोशधन के साथ - साथ रजिस्टर आदि लानेवाले अध्यक्ष की निम्नलिखित आठ बातों से परीक्षा किया जाए — प्रथम धर्म से अर्थात् यह देखा जाए कि वस्तुतः धर्मात्मा है या दंभी है; दूसरे उसके व्यवहार को देखा जाए; तीसरे आचार विचार को देखा जाए; चौथे उसकी पूर्व स्थिति को देखा जाए; पाँचवें उसके हिसाब तथा किए हुए कार्यों को देखा जाए; छठे उसके एक कार्य को देखकर दूसरे का अनुमान लगाया जाए, और अंत में गुप्तचरों द्वारा भी उसकी परीक्षा की जाए ॥ ३० ॥]

दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत् ॥ ३१ ॥

[दिवस, पाँच दिन, पक्ष (पंद्रह दिन), महीना, चार महीना और वर्ष, इस प्रकार विभाग करके आय, व्यय तथा नीवी का लेखा करे। तात्पर्य यह है कि जब वर्ष आरंभ हो तो एक एक दिन की पृथक पृथक आय आदि जोड़ता रहे, जब पाँच दिन हो जाएँ तो उसे इकट्ठा जोड़ ले, इसी तरह पाँच पाँच दिन तक के अंकों को जोड़ कर रखता रहे, जब पंद्रह दिन हो जाएँ तो उन पाँच पांच दिन के तीन अंकों को फिर इकट्ठा जोड़ ले। इसी तरह महीने के बाद दो पक्षों के दो अंकों को, चार महीने के बाद एक एक महीने के चारों अंकों को और साल के बाद चार-चार महीने के तीन अंकों को आपस में जोड़कर संकलन कर ले। इस प्रकार सब हिसाब साफ रखे ॥ ३१ ॥][२६]

२५. When an accountant has not prepared the table of daily accounts (अकृताहोरूपहरं), he may be given a month more (for its preparation). After the lapse of one month he shall be fined at the rate (मासद्विशतोत्तरं may mean 'at the rate of 200 panas for the second month, and 400 for the third month, and so on.') of 200 panas for each month (during which he delays the accounts). If an accountant has to write only small portion of the accounts pertaining to net revenue, he may be allowed five nights to prepare it.

२६. Then the table of daily accounts submitted by him along with net revenue shall be checked with reference to the regulated forms of righteous transactions and precedents, and by applying such arithmetical processes as addition, subtraction, inference, and by espionage. It shall also be verified with reference to (such divisions of) time as days, five nights, pakshas, months, four months, and the year.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् ॥ ३२ ॥

[आय लिखने के साथ साथ रजिस्टर में इन बातों की भी अवश्य लिखे – व्युष्ट (राजा का वर्ष, मास, पक्ष और दिन), देश, काल, मुख (आयमुख और आय शरीर), उत्पत्ति (आय आदि से उत्पन्न हुई वृद्धि), अनुवृत्ति (एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाना), प्रमाण, करदाता का नाम, दिलानेवाले अधिकारी का नाम, लेखक और लेनेवाले का नाम। इन बातों के लिखने के साथ साथ ही आय का लेखा करे ॥ ३२ ॥]

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृक प्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् ॥ ३३ ॥

[व्यय के साथ साथ रजिस्टर में इन बातों को भी अवश्य लिखे – व्युष्ट, देश, काल, मुख लाभ (पक्ष, मास या वर्ष में जो प्राप्ति हो), कारण (जिस निमित्त से व्यय हुआ वह कारण), देय (जो चीज दी जाए उसका नाम), योग (मिले हुए द्रव्य में कितना अच्छा और कितना खोटा है), परिणाम, आज्ञापक (व्यय के लिए आज्ञा देनेवाले का नाम), उद्धारक (द्रव्य ग्रहण करनेवाले का नाम), निधातृक (भांडागारिक), प्रतिग्राहक (लेनेवाला ब्राह्मण आदि कौन है, वह) इन सबका भी उल्लेख किया जाए ॥ ३३ ॥][२७]

व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं समानयेत् ॥ ३४ ॥

[नीवी के साथ इन बातों को भी लिखे – व्युष्ट, देश, काल, मुख, अनुवर्तन, रूप (द्रव्य का स्वरूप), लक्षण (उस द्रव्य के विशेष चिह्न आदि) परिमाण, निक्षेपभाजन (जिस पात्र में वह द्रव्य रखा गया हो) गोपायक (उसका रक्षक पुरुष) भी लिखा जाए ॥३४॥][२८]

२७. The receipt shall, on the Vyushta the new year's day, be verified with reference to the place and time pertaining to them, the form of their collection (i.e. capital, share), the amount of the present and past produce, the person who has paid it, the person who caused its payment, the officer who fixed the amount payable, and the officer who received it. The expenditure shall, on the Vyushta, or new year's day, be verified with reference to the cause of the profit from any source, in the place and time pertaining to each item, the amount payable, the amount paid, the person who ordered the collection, the person who remitted the same, the person who delivered it and the person who firally received it.

२८. Likewise the net revenue shall on the Vyushta day be verified with reference to the place, time, and source pertaining to it,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाथऽथकरणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

[जो करणिक (गणनाकार्य पर नियुक्त पुरुष) राजा के हिरण्य आदि लाभ को पुस्तक में नहीं लिखता, अथवा उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता है और अन्य व्यय के संबंध में नियम से विपरीत कल्पना करता है, उसको प्रथम साहस दंड दिया जाए ॥ ३५ ॥]

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः ॥३६॥

[क्रमविरुद्ध, उत्क्रम, अविज्ञात (बिना समझे), तथा पुनरुक्त (एक वस्तु को बार बार लिख देना) लिखनेवाले लेखक को १२ पण दंड किया जाए ॥ ३६ ॥]

नीवीमलिखतो द्विगुणः ॥ ३७ ॥ भक्षयतोऽष्टगुणः ॥ ३८ ॥ नाशयतः पञ्चबन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥

[नीवी का अवलेखन करने वाले को द्विगुण अर्थात् २४ पण दंड किया जाए [२९] ॥ ३७ ॥ खा जानेवाले पर (गबन करनेवाले पर) अठगुना याने ९६ पण दंड किया जाए ॥ ३८ ॥ जो नीवी का नाश कर दे, नट - नर्तक आदि को देकर अपव्यय कर दे, उस पर न केवल पचगुना याने ६० पण ही दंड किया जाए अपितु उससे नीवी हानि की पूर्ति भी कराई जाए ॥ ३९ ॥]

मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥ पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

[मिथ्या बोलनेवाले को चोरी का दंड दिया जाए ॥ ४० ॥ हिसाब के पहले किसी बात को स्वीकार न करके, पीछे स्वीकार कर लेने पर अर्थात् हिसाब की जाँच के समय मान लेने पर चोरी से दुगुना दंड किया जाए। पूछे जाने पर पहले किसी बात को भूलकर, फिर पीछे सोचकर कहनेवाले पर भी चोरी से दुगुना दंड किया जाए ॥ ४१ ॥]

अपराधं सहेताल्पं तुष्येदल्पे पि चोदये।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

[राजा को चाहिए कि वह अध्यक्ष के थोड़े से अपराध को सहन कर ले। यदि वह आमदनी को पहले की अपेक्षा थोड़ा भी बढ़ाए तो उस पर अवश्य प्रसन्न और संतुष्ट हो। महान् उपकार करनेवाले अध्यक्ष को जीवन पर्यंत हर प्रकार से संमान करता रहे ॥ ४२ ॥]

'गणना' का प्रयोग इसी अर्थ में उत्तरकाल में भी होता रहा था, यह इससे प्रमाणित होता है कि कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में 'गणनापति' शब्द का प्रयोग किया है और उसको सर ओरेल स्टीन ने 'अक्षपटलाधिकारी' (Head of Accounts Office) के अर्थ में ही समझा या लिया है। डा० देवदत्त भांडारकर का यह कहना इसलिए महत्वपूर्ण है कि "गणनाध्ययन ही किसी को अक्षपटल विभाग में गाणनिक्य के कार्य के योग्य बना सकता था।"

its standard of fineness and quantity, and the person who are employed to guard the deposits and magazines (of grains etc.).

२९. He who scrapes off the net total, shall be doubly punished.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आश्चर्य की ही बात है कि कौटिल्य ने अपने इस महत्व के ग्रंथ में गाणनिक्य की परिभाषा कोई भी नहीं दी जैसी कि 'लेखक' की दी है। कालांतर में इन दोनों व्यवसायों का कदाचित् एकीकरण हो गया था जैसा कि हमें आधुनिक शुक्रनीति में मिलता है —

गणनाकुशलोयस्तु देशभाषा प्रभेदवित् ॥ २७१ ॥
असंदिग्धगूढार्थं विलिखेत्स च लेखकः ॥ १७२ ॥

[जो गणना में कुशल हो, देशभाषा के भेद को जानता हो, और संदेहरहित गूढ़ अर्थ लिखे, वही लेखक है। अथवा यह भी संभव है कि ग्राम के शासन में लेखक और गाणनिक्य के कार्य पर एक ही व्यक्ति रखा जाने लगा हो और इसलिए लेखक का गणनाकुशल होने का विधान ही बन गया हो; और ऐसे लेखक कायस्थवर्ग में मिला करते थे इसलिए शुक्रनीति में यह भी कह दिया गया हैं कि —

ग्रामयो ब्राह्मणोयोज्यः कायस्थो लेखकस्तथा।
शुल्कग्राही तु वैश्योहि प्रतिहारश्च पादजः ॥ २।४२० ॥

[ग्राम अधिपति ब्राह्मण, लेखक कायस्थ, शुल्क अधिपति वैश्य और प्रतिहार (दूत) शूद्र नियुक्त किया जाए।]

धनापहरण के प्रकार

जैसे आजकल भारत सरकार का अकाउंटेंट - जनरल केंद्रीय सरकार का हिसाब रखता है और उसकी जाँच भी करता है, वैसे ही मौर्य साम्राज्य का हिसाब अक्षपटलाध्यक्ष द्वारा रखा और जाँचा भी जाता था। अक्षपटलाध्यक्ष की शिक्षा के लिए हिसाब में गबन के चालीस प्रकारों का निरूपण अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के आठवें अध्याय में किया गया है। इसी अध्याय में राजकोष की वृद्धि जिन साधनों से संभव है, उनका भी विचार किया गया है और जिस रीति से उसका क्षय होता है उसका भी। कोशवृद्धि और कोशक्षय दोनों ही आठ - आठ प्रकार से होते हैं। प्रचारसमृद्धि (जनपद की संपत्ति का बढ़ाना), चरित्रानुग्रह (सुव्यवहार के लिए पारितोषिकादि देना), चोरों का निग्रह करना, अतिरिक्त राज्यकर्मचारियों को कम कर देना, कृषि की उपज का अच्छा होना, वाणिज्य - व्यापार की समृद्धि, आपदाओं-उपद्रवों का न होना और उनसे रक्षा करना, करों में छूट कम देना, और सुवर्ण प्राप्ति, इन आठ कारणों से कोश की वृद्धि; और प्रतिबंध (रुकावट), प्रयोग (ऋणदान), व्यवहार (वाणिज्य), अवस्तार (झूठा हिसाब देना), परिहापण (लगान की हानि करना), उपभोग (अपने ही उपयोग में ले लेना), परिवर्तन (अदलाबदली करना), और अपहार (गबन), इन आठ रीतियों से राजकोश का क्षय बताया गया है। गबन चालीस प्रकार से किया जा सकता है यथा — पहले प्राप्त की पीछे प्रविष्टि करना; पीछे प्राप्त को पहले प्रविष्ट बताना; प्राप्य को प्राप्य नहीं दिखाना; अप्राप्य को प्राप्त दिखाना; प्राप्तको अप्राप्त बताना; अप्राप्त को प्राप्त बताना; अंश प्राप्त को पूर्ण प्राप्त बताना; पूर्ण प्राप्त को अंश प्राप्त बताना; एक प्रकार की प्राप्ति को दूसरी प्रकार की प्राप्ति बताना; एक से प्राप्त को दूसरे से प्राप्त बताना; देय नहीं देना; अदेय दे देना; समय पर नहीं देना; असमय में देना; अल्प देकर अधिक दिया लिखना; अधिक दे कर अल्प दिया लिखना; देय से अन्य दिया लिखना; यथार्थ दानी के स्थान में अन्य को दानी लिखना; कोश में प्राप्त को निकाल लेना और अप्राप्त को कोश - प्राप्त दिखाना;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका मूल्य नहीं चुकाया गया हो ऐसा कुप्य - द्रव्य (कच्चा माल) पुस्तकों में लिख देना; जिसका मूल्य चुका दिया गया हो, उसे प्रविष्ट नहीं करना; संक्षेप को विक्षेप करके प्राप्त करना; विक्षेप को संक्षेप करके प्राप्त करना; महँगी वस्तु को सस्ती वस्तु से परिवर्तन कर लेना; सस्ती को महँगी वस्तु से बदल लेना, पदार्थों का भाव बढ़ा देना; भाव घटा देना; वेतन के दिन बढ़ाकर लिख देना; वेतन के दिन कम कर देना; अधिमास रहित संवत्सर को अधिमासवाला बताना; महीना भी दिन घटा बढ़ाकर लिखना; कार्यकर्ताओं में गड़बड़ कर वेतन पचा जाना; आयमुख हो उससे अन्य बताना; दान में विषमता करना; किए कार्य को दूसरा ही किया बताना, पिंडकर प्राप्त करने में विषमता करना, परिचायक चिह्नों या (सोना-चाँदी के) विशुद्धता - मान में कूट करना; पदार्थों के अर्घ में कूट - कपट करना; तोल और माप के मानों में कूट - कपट करना; गिनने में धोखा करना; माप के पात्रों की विषमता से लाभ उठाना। (३।८ २० – ६१ ।)

आज भी गबन की ये ही रीतियाँ हैं चाहे उनके करने में कुशलता उस काल की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हो गई हो और उनमें वैज्ञानिक रीतियाँ भी काम में लाई जाती हों। गबन की रीतियों का ऐसा सूक्ष्म ज्ञान अत्यंत विकसित और सुसंस्कृत समाज में ही संभव है और जो समाज मनुष्य की इन सूक्ष्मताओं का ज्ञान रखता हो, वह बहीखाता रखने की कला का पूर्ण विकास नहीं कर पाया था, अथवा उसका बहीखाता - ज्ञान प्राथमिक ही था, ऐसा कहना दुस्साहस ही कहा जा सकता है, चाहे उस ज्ञान के साक्षात प्रमाण किसी भी प्रकार आज अनुपलब्ध ही क्यों न हों ? आज गबन करनेवाला बिरला ही सजा पाता है, परंतु आचार्य कौटल्य ऐसी संभावना की जड़ ही काट देते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि यदि किसी अध्यक्ष के विषय में, राजा को धन अपहरण करने का संदेह हो जाए, तो राजा उसके प्रधान खजानची (निधायक), लेखक (निबंधक), प्रतिग्राहक (पानेवाले), कर - देनेवाले (दायक), कर - दिलानेवाले (दापक), उस अध्यक्ष के नौकरों (मंत्री वैयावृत्यकर) को पृथक पृथक बुलाकर पूछे, इतना ही नहीं अपितु संपूर्ण जनपद में यह घोषणा भी करा दे कि जिस किसी को उक्त अध्यक्ष से हानि पहुँची हो, वे सब राजा को आकर सूचना दें। जो ऐसी सूचना देगा उनको हानि के बराबर क्षतिपूर्ति कर दी जाएगी। अनेक अभियोगों में से कोई एक ही अभियोग उसके विरुद्ध प्रमाणित हो जाए तो वह सभी का अपराधी समझा जाए। यदि अभियुक्त पर कोई भी अभियोग प्रमाणित नहीं है तो सभी अभियोगों की जाँच की जाए। थोड़े से धन अपहरण का दोषी भी वह पाया जाए तो उसे सारे धन अपहरण का दोषी समझा जाए। गबन की संभावना की सूचना देनेवाले सूचक को, प्रमाणित हो जाने पर, गबन - राशि का षष्ठांश, यदि वह सूचक राजकर्मी है तो उसका द्वादशांश इनाम दिया जाए। सूचक अभियोग प्रमाणित नहीं कर सके तो उसको अर्थदंड या शरीरदंड जो भी उचित हो दिया जाए; परंतु वह यों ही न छोड़ दिया जाए। यदि सूचक अभियुक्त द्वारा फुसला लिया जाए और वह सच न बोले तो उस सूचक को प्राणदंड दिया जाए।

राजकीय और व्यापारी बहीखाता

यह कहा जा सकता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में जिस बहीखाते का विवेचन है वह राजकीय है, व्यापारिक नहीं जहाँ कि वाणिज्य और उद्योग लाभ - प्राप्ति के लक्ष्य से किए जाते हैं। परंतु यह बात यूनान आदि पाश्चात्य देशों के लिए कदाचित सत्य हो, मौर्य-राज्य के लिये तो बिलकुल ही सत्य नहीं है। कौटल्य स्पष्ट ही कहता है —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ता सर्वभाण्डिकाः।
आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ २।१७।१८ ॥

[बाहर जंगलों के समीप तथा जनपद में, और अंदर दुर्ग आदि में, पृथक पृथक गाड़ी तथा लकड़ी आदि से बनी हुई अन्य चीजें या सवारियाँ; सब प्रकार के भांड (पात्र) आदि के समूह इत्यादि सब ही आवश्यक पदार्थों की ओर अपनी आजीविका तथा नगर आदि की रक्षा के लिए अन्य आवश्यक पदार्थों का भी कुप्योपजीवी (कुप्य से अपनी आजीविका कमानेवाला कुप्याध्यक्ष आदि] पुरुष अच्छी तरह संग्रह करे ॥ २।१७।१८)

आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत् ॥ २।१।२१ ॥ ।

[खनिज पदार्थों के बेचने के स्थान, द्रव्यवन (चंदन आदि बढ़िया लकड़ियों के उत्पत्ति-स्थान), हस्तिवन (हाथियों के जंगल), गाय-बैल आदि की रक्षा और उन्हें बढ़ाने के लिए स्थान, आयात - निर्यात (विदेश का माल स्वदेश में लाना – आयात तथा स्वदेश का माल विदेश में भेजना — निर्यात अर्थात् इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट) व्यापार के लिए स्थान जल मार्ग और स्थलमार्ग तथा बड़े - बड़े बाजार या मंडियों आदि का निर्माण कराए ॥२।१।२१॥]

मत्स्यप्लवरहितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् ॥ २।१।२८ ॥

[इस प्रकार के बड़े बड़े जलाशयों में उत्पन्न होनेवाली मछली, प्लव [कारंडव - बतख की तरह का एक जल पक्षी], और कमलदंड आदि व्यापारी वस्तुओं पर राज का ही अधिकार रहे ॥ २।१।२८ ॥]

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत् ॥२।१२।१९॥ व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात् ॥ २।१२।२३ ॥ लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४ ॥ लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकुन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्तकारयेत् ॥ २५ ॥ लोहभाण्डव्यवहारं च ॥ २६ ॥

[जो सुवर्ण आदि धातु बिक्री के लिए तैयार हो जाए, उनका किसी एक ही नियत स्थान से विक्रय कराना चाहिए (इसका यही तात्पर्य मालूम होता है कि राज्य की ओर से सुवर्ण आदि भिन्न भिन्न खनिज पदार्थों का किसी एक व्यक्ति को ही ठेका दे देना चाहिए, उसीके द्वारा उन वस्तुओं का विक्रय करना उचित है)। यदि कोई व्यक्ति राजाज्ञा के बिना ही किसी स्थान में सुवर्ण आदि की उत्पत्ति कर क्रय - विक्रय करने लगे तो उसे राजा की ओर से दंड मिलना चाहिए। अर्थात् राजा की ओर से जिन व्यक्तियों को उस कार्य के लिए आज्ञा मिल चुकी हो, उनसे अतिरिक्त जो भी इस कार्य को करे, वह दंडनीय समझा जाए ॥ १९ ॥ खान के ऊपर यदि और लोगों का बहुत धन देना हो गया हो तथा उसको चुका कर ही खान की आमदनी हो सकती हो, अथवा यह कार्य अत्यधिक यत्न से साध्य हो, तो आकराध्यक्ष को चाहिए कि वह थोड़ा थोड़ा करके लोगों का धन धीरे - धीरे चुका दे। अथवा सुवर्ण का कुछ भाग एक साथ राजा को देकर, उसके बदले में खजाने से रुपया लेकर, लोगों का धन चुकता कर देवे ॥ २३ ॥ यदि थोड़े ही धन और परिश्रम से यह कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो स्वयं ही इस कार्य को पूरा कर देवे ॥ २४ ॥ लोहाध्यक्ष को चाहिये कि वह अपने निरीक्षण में तांबा, सीसा, त्रपु, वैकुंतक, आरकूट, वृत्त, कंस, ताल तथा अन्य प्रकार के लोहे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कार्यों को करावे ॥ २५ ॥ तथा लोहे से बननेवाले जितने भी पदार्थ हों, उन सबके व्यवहार को भी लोहाध्यक्ष करवाए ॥ २६ ॥]

उपर्युक्त सूत्रों के प्रो० उदयवीर शास्त्री के किए हुए अर्थ स्व० डा० शामशास्त्री के अंगरेजी अर्थों से कुछ भिन्न हैं। उनके अर्थ टिप्पणी ३० में अंगरेजी में उद्धृत कर दिए गए हैं ताकि पाठक दोनों के अर्थ भेद को समझ सकें। विद्वान जगत में डा० शामशास्त्री का अर्थ ही अभी तक मान्य है और उसी के आधार पर भारतीय मौर्यकालीन संस्कृति की विवेचना की

३०. The Superintendent of forest produce shall carry on, either inside or outside (the capital city) the manufacture of all kinds of articles which are necessary for life or for the defence of forts. (A.S. 2.17.18 p. 109)

He shall carry on mining operations and manufactures, exploit timber and elephant forests, offer facilities for cattle-breeding and commerce, construct road for traffic both by land and water and set up market towns (panyapattana) (A. S. 2-1.21p.46).

The king shall exercise his right of ownership (स्वाम्यं) with regard to fishing, ferrying and trading in vegetables (हरितपण्य) in reservoires or lakes (setushu). (A.S, 2.1.58 p. 47) यहां पाठभेद है। उदयवीर संपादित 'अर्थशास्त्र' में 'रहित पण्यानां' पाठ है। यह मुद्रण अशुद्धि प्रतीत होती है क्योंकि 'कमलदण्ड आदि' हरित पदार्थ हैं।

Commerce in commodites manufactured from mineral products shall be centralised and punishments for manufacturers, sellers, and purchasers of such commodities outside the prescribed localites shall also be laid down (A.S. 2.12.19. p.86).

Mines which yield such minerals as are made use of in preparing vessels (भाण्ड) as well as those mines which require large outlay to work out may be leased out for a fixed number of the shares of the out put or a fixed rent (भागेन प्रक्रयेण वा) such mines as can be worked out without much outlay shall be directly exploited (by government agency) (A.S. 21.12. 23-24 p. 86).

The superintendent of metals (Lohadhyakshah) shall carry on the manufacture of copper, lead, tin, vaikrintaka (mercury ?), arakuta (brass), vritta (?); kamsa (bronze or bell-metal), tala (sulphatrate of arsenic), and lodhra (?), and also of commodities (bhanda) from them. (A. S. 2. 12. 25–26, p. 86).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। श्री खुशाल तलकचंद शाह ने अपने ग्रंथ 'एशेंट फाउंडेशंस आफ् इकनोमिक्स इन इंडिया' के पृष्ठ ८९ पर स्पष्ट ही कहा है कि "यह सारा ही उद्योग (वन - उपज - उद्योग) केवल वैयक्तिक उद्यानों के सिवा, खानों और खनिजों एवम् धातु - संशोधन - उद्योगों और अधिकांश कृषि - भूमियों की भाँति ही, प्राचीन भारत में राज - उद्योग का ही अंश था और उसे उच्चतम शास्त्रों और लोक व्यवहार का भी समर्थन, स्वीकरण पूर्णतया प्राप्त था।··· राष्ट्र- सुरक्षा की दृष्टि से और भूमि की निसर्गज संपत्ति को क्षति और ध्वंस्त होने से रक्षा करने के मूलभूत सिद्धांत ने इस लोकनीति और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की इस नीति का अनुशीलन कराया जो हमारे इतिहास के युगानुयुगों से भारत में अंगरेजी राज्य के आगमन और उसके फलस्वरूप उन्मुक्त उपक्रम के प्रचलन तक राज्य ही का और राज-संचालित रहा था।"[31]

यही कारण है कि हिसाब - किताब में कौटल्य ने आय और व्यय का उतना ही सूक्ष्म विश्लेषण किया जैसा कि हम आज के व्यापारों और उद्योगों के बहीखाता - नवीसों द्वारा किया जाता देखते हैं। अर्थशास्त्र अधिकरण २, अध्याय ६ में कहा है कि आय तीन प्रकार की होती है — वर्तमान, पर्युषित और अन्यजात ॥ १७ ॥ जो आय प्रति दिन हो वह वर्तमान कहाती है ॥ १८ ॥ पिछले वर्ष का प्राप्य इस वर्ष प्राप्त होना, पहले अध्यक्ष के समय में हिसाब आदि की गड़बड़ी से न मालूम हुए धन का मालूम हो जाना, अथवा शत्रु के देश से आया हुआ धन, सब पर्युषित आय कहाती है ॥ १९ ॥ भूले हुए धन का फिर स्मरण हो जाना, अपराधी पुरुषों से दंडरूप में लिया हुआ, कर से अतिरिक्त किन्हीं वक्र उपायों से अथवा अपने प्रभुत्व के कारण प्राप्त किया धन, चौपायों के सस्य आदि के नष्ट किये जाने पर उसके दंड - स्वरूप प्राप्त हुआ धन, भेंट रूप में प्राप्त धन, शत्रु से कलह होने पर उस झगड़े में शत्रु - सेना से अपहरण किया धन तथा जिस धन का कोई दायभागी न हो इस प्रकार का प्राप्त धन, अन्यजात आय कहाती हैं ॥ २० ॥ किसी कार्य पर लगाई हुई सेना के लिए व्यय किए जानेवाले धन में से बचा हुआ धन, औषधालय आदि के व्यय के लिए निश्चित किए हुए धन में

३१. प्रो॰ खु॰ त॰ शाह—'Ancient Foundations of Economics in India" page. 89.

"This entire industry,-except, perhaps, private gardens was, like Mining and Mineral produce as well as Metallurgical industries, and considerable segments of agricultural land, part of the public domain or State Enterprise in ancient India declared, sanctioned, approved, and authorised by the highest canonical authority, as well as by public practice......Reasons of national security, and basic ideas of conserving the inherent wealth of the soil, led to this principle of public policy and national economy, which all through the long ages of our history remained state-owned and state-managed until the advent of the British Rule in India, and its concomitant of free enterprise."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बचा धन, व्यय प्रत्याय कहाता है और यह भी एक प्रकार की आय है ॥ २१ ॥ आय के और भी पाँच प्रकार हैं – विक्रय के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाना, उपज (प्रतिषिद्ध वस्तुओं के बेचने से प्राप्त हुआ धन), बाट आदि के न्यूनाधिक करने से अधिक प्राप्त हुआ धन, व्याजी, और किसी वस्तु के बेचने से समय खरीददारों की परस्पर स्पर्धा से जो मूल्य अधिक मिल जाए ॥ २२ ॥

इसी प्रकार व्यय भी चार प्रकार का होता है, यथा, नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ और लाभोत्पादिक ॥ २३ ॥ जो व्यय प्रतिदिन नियमपूर्वक होता हो, उसे नित्य-व्यय कहते हैं ॥ २४ ॥ पाक्षिक, मासिक और वार्षिक लाभ के लिए जो व्यय किया जाता है उसे लाभ-व्यय कहते हैं ॥ २५ ॥ नित्य व्यय और लाभ व्यय के साथ जो और अधिक व्यय (व्यय के लिए नियमित निर्णीत धन से और अधिक धन व्यय) हो जाए तो उसे यथासंख्य नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक व्यय कहा जाता है ॥ २६ ॥ सब प्रकार के व्यय से बचा हुआ, आय और व्यय की भली प्रकार गणना करके ठीक ठीक निश्चित हुआ, धन 'नीवी' कहाता है और यह भी दो प्रकार का होता है — प्राप्त (जो कोश में जमा कर दिया गया हो) और अनुवृत्त (जो कोश में जमा किए जाने के लिए तैयार रखा हो) ॥ २७ ॥[३२]

३२. Receipts may be (1) current, (2) last balance, and (3) accidental (anyajatah = received from external sources).

What is recieved day after day is termed current (vartamana).

Whatever has been brought forward from year before last, whatever is in the hands of others, and whatever has changed hands is termed last balance (paryushita).

Whatever has been lost and forgotten (by others), fines levied from government servants, marginal revenue (Harsva), compensation levied for any damage (parihinikam), presentations to the king, the properties of those who have fallen victims to epidemics (damaragatakasvam) leaving no sons, and treasure troves—all these constitute accidental reciepts.

Investment of capital (vikshepa), the relics of a wrecked undertaking, and the savings from an estimated outlay are the means to check expenditure (vyayapratyayah).

The rise in price of merchandise due to the use of different weights and measures in selling is termed vyaji; the enhancement of price due to bidding among buyers is also another source of profit.

Expenditure is of two kinds–daily expenditure and profitable expenditure. What is contifiued everyday is daily.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्र से और भी ऐसी अनेक बातें, जिनका बहीखाते से संबंध है, हमें मालूम होती हैं। उन सबका उल्लेख विस्तार भय से संभव नहीं। हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर विषयों में अथवा पी० एच - डी० के लिए गवेषणा का यह विषय चुना जाना चाहिए जिसमें अनुसंधित्सुओं का ध्यान इस उपेक्षित विषय की ओर आकृष्ट हो।

परिशिष्ट

बहीखाता आय - व्यय और लेन - देन के एकत्र करने की एक कला मात्र है। जब गणित द्वारा गणना कर इनकी राशि निर्णय कर ली जाती है तब बहीखाते द्वारा इन्हें लेखा - पुस्तकों में इस प्रकार लिख दिया जाता है कि आय - व्यय - लाभ - हानि - लेना - देना आदि जिस श्रेणी का जो व्यवहार हो उसी में संकलित हो जाए। अस्तु, यह कहना चाहिए कि बहीखाता गणितविज्ञान की एक कला मात्र ही है। इसीलिए प्राचीन भारत में स्त्री-पुरुष कलाओं की शिक्षा के लिए कलाचार्यों के पास भेजे जाते थे जो उन्हें पाठ, अर्थ और प्रयोग सहित सिखाते थे। प्रत्येक कला, जो स्त्रियों के लिए ६४ और पुरुषों के लिए ७२ बताई गई हैं, के शास्त्र थे। इनमें से कुछ आज भी उपलब्ध हैं और शेष बिलकुल ही नष्ट हो गए, ऐसा ही मानना पड़ता है क्योंकि उनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। वाराहीसंहिता, भरत का नाट्यशास्त्र, वात्स्यायान का कामसूत्र, चरक तथा सुश्रुत की संहिताएँ, नल का पाकदर्पण, पालकाप्य का हस्त्यायुर्वेद, नीलकंठ की मातंगलीला, श्रीकुमार का शिल्परत्न, रुद्रदेव का श्यैनिकशास्त्र, मयमत और संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथ तो आज भी उपलब्ध हैं। श्रीनरेंद्रनाथ शाह ने अपने ग्रंथ 'स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर' में मुद्रित और अमुद्रित ग्रंथों की सूची दी है (पृ० ३८५ – ४०२) जिनकी वार्ता के विषयों में गणना की जा सकती है।

कलाएँ पहले सूत्रों द्वारा कंठस्थ कराई जाती थीं, फिर उनका अर्थ समझाया जाता था और हमारे विशेष ध्यान देने की बात तो यह है कि अर्थ समझाते समय उन कलाओं का व्यवहारिक प्रयोग कैसे किया जाता है, यह भी सिखाया जाता था। जैसा कि हम आगे देखेंगे। कलाओं की योजना ऐसी हुई है जो मनुष्य की ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय दोनों को बराबर विकसित करे। मात्र एकांगी मानसिक विकास का प्राचीनकाल में लक्ष्य नहीं था। शुक्रनीति दूसरा अध्याय श्लोक ३६२ उदाहरण स्वरूप 'बहीखाता - कला' के प्रति सूत्र रूप से हमारा ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रह सकता—

आयमादौ लिखेत् सम्यग्व्ययं पश्चाद्यथागतं।
वामेचायं व्ययं दक्षे, पत्रभागे च लेखयेत् ॥

Whatever is earned once in a paksha, a month, or a year is termed profit.

Whatever is spent on these two heads is termed as daily expenditure and profitable expenditure respectively.

That which remains after deducting all the expenditure already incurred on excluding all revenue to be realised is net balance (nivi) which may have been either past realised or brought forward. (A. S. 2. 6. 17–27 pp. 60–61).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनसूत्रों में कलाओं का वर्णन

जैनसूत्रों में पुरुषों की ७२ और नारियों की ६४ कलाएँ कही गई हैं जिनका आभिजात्य-वर्ग की युवक - युवतियाँ कलाचार्यों से शिक्षण - प्रशिक्षण लिया करते थे। इन ७२ कलाओं की नामावली इस प्रकार जैनों के चौथे अंगसूत्र 'समवायांग' के ७२वें समवाय में दी गई है –

१ - लेख, २ - गणित, ३ - रूप, ४ - नाट्य, ५ - गीत, ६ - वादित, ७ - स्वरगत, ८ - पुष्करगत, ९ - समताल, १० - द्यूत, ११ - जनवाद, १२ - पोकखच्च (पासे खेलने की कला), १३ - अष्टापद, १४ - दृगमृत्तिका, १५ - अन्नविधि, १६ - पानविधि, १७ - वस्त्रविधि, १८ - शयनविधि, १९ - आर्या, २० - प्रहेलिका, २१ - मागधिक, २२ - गाथा, २३ - श्लोक, २४ - गंधयुक्ति, २५ - मधुसिक्थ, २६ - आभरणविधि, २७ - तरुणीप्रतिकर्म, २८ - स्त्रीलक्षण, २९ - पुरुष लक्षण, ३० - हयलक्षण, ३१ - गजलक्षण, ३२ - गोणलक्षण, ३३ - कुक्कुटलक्षण ३४ - मिंढ्यलक्षण, ३५ - चक्रलक्षण, ३६ - छत्रलक्षण, ३७ - दंडलक्षण, ३८ - असिलक्षण, ३९ - मणिलक्षण, ४० - काकिणीलक्षण, ४१ - चर्मलक्षण, ४२ - चंद्रलक्षण, ४३ - सूर्यचरित, ४४ - राहुचरित, ४५ - ग्रह चरित, ४६ - सौभाग्यकर, ४७ - दौर्भाग्यकर, ४८ - विद्यागत, ४९ - मंत्रगत, ५० - रहस्यगत, ५१ - सभास, ५२ - चार, ५३ - प्रतिचार, ५४ - व्यूह, ५५ - प्रतिव्यूह, ५६ - स्कंधावारमान, ५७ - नगरमान, ५८ - वस्तुमान, ५९ - स्कंधावारनिवेश, ६० - वस्तुनिवेश, ६१ - नगरनिवेश; ६२ - ईशस्य, ६३ - छरूप्रवाह, ६४ - अश्वशिक्षा, ६५ - हस्तिशिक्षा, ६६ - धनुर्वेद, ६७ - हिरण्यपाक - सुवर्णपाक - मणिपाक - धातुपाक, ६८ - बाहुयुद्ध - दंडयुद्ध - मुष्टियुद्ध - यष्टियुद्ध - युद्ध - नियुद्ध - युद्धनियुद्ध, सूत्रखेल, ६९ - नालिकाखेल - वर्त - खेल - धर्मखेल - चर्मखेल, ७० - पत्रछेद्य - कटछेद्य, ७१ - सजीवनिर्जीव, और ७२ - शकुनरुत।

छठे अंश 'ज्ञाताधर्मकथा' में मेघकुमार के और राजप्रश्नीय में दृढ़प्रतिज्ञ के शिक्षाविषयक वर्णन में कुछ हेरफेर से इनका वर्णन किया गया है –

वात्स्यायन के कामसूत्र में ६४ कलाओं का वर्णन किया गया है और भार्या के प्रतिदिन के कामों में आय - व्यय का प्रतिदिन का हिसाब रखने का **'दैवसिकायव्ययपिंडीकरणम्'** कहकर निरूपण किया गया है। इन ६४ कलाओं के नाम वहाँ इस प्रकार दिए हैं —

१ - गीत, २ - वाद्य, ३ - नृत्य, ४ - आलेख्य, ५ - विशेषकच्छेद्य, ६ - तंडुलकुसुमवलिविकार, ७ - पुष्पास्तरण, ८ - दशनवसनांगराग, ९ - मणिभूमिकर्म, १० - शयनरचन, ११ - उदकवाद्य, १२ - उदकाघात, १३ - चित्रयोग, १४ - माल्यग्रथन, १५ - शेखरकापीडयोजन, १६ - नेपथ्यप्रयोग, १७ - कर्णपत्रभंग, १८ - गंधयुक्ति, १९ - भूषणयोजन, २० - इंद्रजाल, २१ - कौचुमारयोग, २२ - हस्तलाघव, २३ - विचित्र शाकयूष - भक्ष्य विकारक्रिया, २४ - पानकरसरागासवयोजन, २५ - सूचीवानकर्म, २६ - सूत्रक्रीडा, २७ - वीणा - डमरूवाद्य, २८ - प्रहेलिका, २९ - प्रतिमाला, ३० - दुर्वाचकयोग, ३१ - पुस्तकवाचन, ३२ - नाटकाख्यायिकादर्शन, ३३ - काव्यसमस्यापूरण, ३४ - पत्रिकावेत्रवानविकल्प, ३५ - तक्षकर्म, ३६ - तक्षण, ३७ - वास्तुविद्या, ३८ - रूप्यरत्नपरीक्षा, ३९ - धातुवाद, ४० - मणिरागाकरज्ञान, ४१ - वृक्षायुर्वेद, ४२ - मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि, ४३ - शुकसारिकाप्रलापन, ४४ - उत्सादन, संवाहन और केशमर्दनकौशल, ४५ - अक्षरमुष्टिकाकथन, ४६ - म्लेच्छितविकल्प, ४७ - देशभाषाविज्ञान, ४८ - पुष्पशकटिका, ४९ - निमितज्ञान, ५० - यंत्रमातृका, ५१ - धारणमातृका, ५२ - संपाठ्य, ५३ - मानसीकाव्यक्रिया, ५४ - अभिधानकोश, ५५ - छंदोविज्ञान, ५६ - क्रियाकल्प, ५७ -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छलितक योग ५८ - वस्त्रगोपन, ५६ - द्यूतविशेष, ६० - आकर्षक्रीडा, ६१ - बालक्रीडन, ६२ - वैनयिकी, ६३ - वैजयिकी और ६४ - व्यायामिकी।

इन चौंसठ कलाओं में जैनसूत्रों की ७२ कलाओं का समावेश किस प्रकार किया जा सकता है इसका अध्यापक बेचरदास जीवराजदोशी ने श्री पूँजाभाई जैन ग्रंथमाला, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद से प्रकाशित 'भगवान महावीरनी धर्मकथाओ' पृष्ठ १६३ - २०० में किया है जो रोचक और शिक्षाप्रद है।

बहीखाता - कला का नाम यद्यपि उपर्युक्त सूचियों में कहीं भी नहीं है, परंतु हम इतना तो अनुमान सहज ही लगा सकते हैं कि जिस प्राचीन भारत में विविध कलाओं के प्रशिक्षण का इतना प्रचार था, क्या उसमें गणित की एक कला 'बहीखाता' उपेक्षित रह सकती थी जो न केवल व्यापारी वर्ग के लिए ही अपितु दैनिक व्यवहार में सभी के लिए उपयोगी है। कौटिलीय अर्थशास्त्र से इनके सूत्र संग्रह किए जा सकते हैं और उनका समर्थन उस शुक्रनीति से होता है जिसे पाश्चात्य विद्वान् दसवीं शती की कृति मानते हैं क्योंकि उसमें बारूद का उल्लेख है और जिसका आविष्कार चीन में सातवीं आठवीं शती के आसपास हुआ कहा जाता है। सारी की सारी शुक्रनीति इतनी अर्वाचीन नहीं हो सकती क्योंकि शुक्राचार्य प्राचीन समय से ही अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य माने जाते हैं जिनको कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के प्रारंभ में ही नमस्कार किया है। उन सूत्रों को खोजकर संग्रह करने का प्रयत्न होना चाहिए।

*

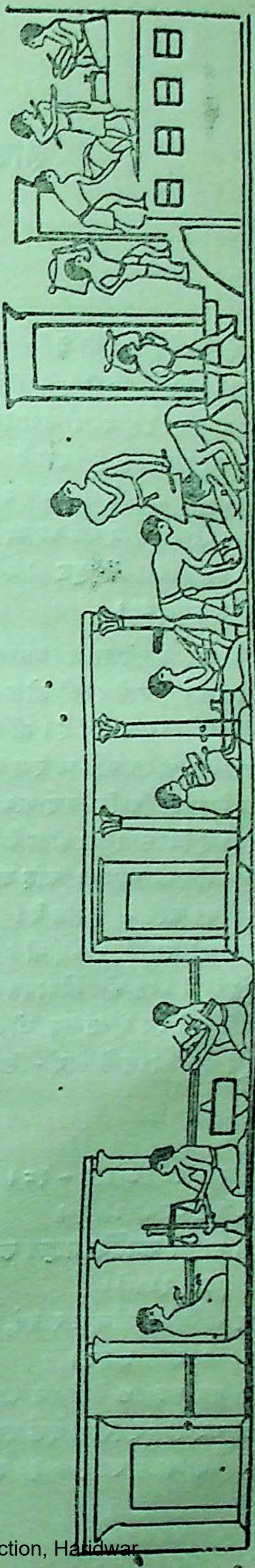

चित्रसंदर्भ पृष्ठ–१८-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकायतिकों की परंपरा

जगदीशचंद्र मिश्र

नास्तिक दार्शनिकों में लोकायत भूतवादी थे। अजितकेस कंबली का उच्छेदवाद भी भूतवाद का ही अनुयायी था। महाभारत में भूतवाद का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[1] नियतिवादी, योनिवादी, पुरुषवादी तथा इस्सरकरणवादी दार्शनिकों का परिगणन पाणिनि ने **'नास्ति मति'** वाले दार्शनिकों में किया है।[2] नास्तिकमति के अंतर्गत दैष्टिकों का संप्रदाय प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। वे कर्म और मानुषी पराक्रम का खंडन या उपहास करते थे। पतंजलि के अनुसार मस्करी परिव्राजक का वह नाम इसलिये था क्योंकि वे कहते थे "कर्म मत करो शांति से ही मोक्ष मिलेगा।"[3] बुद्ध भी इन्हें भयंकर मानते थे। नास्तिक दार्शनिकों में लोकायतों का महत्वपूर्ण स्थान था।

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार से "लोकायतों के दर्शन का लोक में सबसे अधिक प्रचार होने से इनको लोकायत कहा गया।"[4] लेकिन अग्रवालजी के कथनके साथ कोई ऐतिहासिक सत्य नहीं है। श्री भानुदीक्षित ने अपनी रामाश्रमी टीका में **'लोके आयतन्ते'** इस प्रकार लोकायत की व्याख्या की है, जिसका फलितार्थ **'लोकवादी'** सिद्ध होता है।[5] हेमचंद्र ने इसका पर्याय बार्हस्पत्य और चार्वाक माना है। व्याकरण में कुछ प्राचीन उदाहरण हैं जिनसे सूचित होता है कि लोकायत-शास्त्र के उद्भट पंडितों की संज्ञा चार्वी थी।[6] चर्वाक की व्याख्या **'चारु वाक्'** भी की गई है; जिसका तात्पर्य है कि वे अपने विषय को उपस्थित करने में कुशल थे। एक दूसरी भी व्याख्या मिलती है जिसका संबंध इहलोकवादी 'खाओ, पीओ, मौज करो' से संबंध रखती है।[7] यही कारण है कि भगवान रामचंद्रजी ने भरत को लोकायत से सावधान करते हुए कहा था कि "दर्शन शास्त्र में बालमति वाले इन पंडितंमन्य लोकायतियों से सदा सावधान रहें।"[8] लेकिन राजनीति में छलपूर्ण मधुर भाषण से कार्य-सिद्धि और शत्रु-दमन करना पड़ता है। अतएव प्राचीन

१. शांतिपर्व १७२।१३ – १८।
२. अष्टाध्यायी ४।४६०।
३. **माकृत कर्माणि माकृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः** (६।१।१५४)।
४. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३८४।
५. अमरकोश ५।३२।
६. सूत्र १।३।४७ में भासन का उदाहरण **वदते चार्वी लोकायते।** सूत्र १।३।४७।
७. **चर्वन्ते पुण्यपापादिकं वस्तुजातमिति चार्वाकाः।**
८. अयोध्या काण्ड १००।३८-३६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिज्ञों ने राजा को लोकायतिकों के आचरण की शिक्षा का उपदेश दिया है।[९] दशरथ का एक मंत्री जाबालि लोकायत था। दुर्योधन के मित्र चार्वाक का भी उल्लेख महाभारत में मिलता है।[१०]

चार्वाक अथवा लोकायत मत के संस्थापक देवगुरु बृहस्पति माने जाते हैं। इसीलिए लोकायतों को बार्हस्पत्य कहा जाता है। बृहस्पति ने असुरों के पतन के लिए उनमें लोकवाद का प्रचार किया था। आगे इस विचार की परंपरा ही चल गई। इन्हें "नास्तिक मतानुयायी नास्तिक शिरोमणि" के रूप में दार्शनिकों ने उद्धृत किया है।[११] बृहस्पति का अर्थशास्त्र बहुत प्राचीन माना जाता है।[१२] कामसूत्रकार ने इन्हें अर्थशास्त्र का आदि प्रवर्तक माना है।[१३] महाभारत इत्यादि ग्रंथों में बृहस्पति के वचनों के उद्धरण विस्तार के साथ प्राप्त होते हैं (शांति पर्व ५९।६८, १०३ अनुशासन ८२, ७६,।११ अध्याय)।

प्रश्न यह है कि अर्थशास्त्रकार बृहस्पति और लोकायत मत के संस्थापक बृहस्पति दोनों एक हैं अथवा दो? विरोध में कहा जाता है कि यदि नास्तिक मत के संस्थापक देवगुरु बृहस्पति थे तो उनको वायु पुराण में पंक्तिपावन क्यों कहा गया? **"बार्हस्पत्ये तथा शास्त्रे पारं यश्च द्विजो गतः। सर्वे ते पावना विप्राः पंक्तीनां समुदाहृताः।"** दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि इतिहास - पुराणों में प्राप्त बृहस्पति के वचनों में नास्तिकवाद की गंध तक नहीं आती। यदि वे शास्त्रसंमत न होते तो मनु इत्यादि के वाक्यों के साथ उनका उद्धरण क्यों दिया जाता? वस्तुतः जाति से पंक्तिपावन होते हुए भी नास्तिक विचार का होना दोनों विरोधी बातें नहीं हैं। साथ ही यह सर्वविदित है कि बृहस्पति ने असुरों के पतन के लिए इस शास्त्र का प्रणयन किया था अन्यथा वे देवगुरु थे। अतएव शास्त्रों के साथ उनके वाक्यों के समन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता। फलतः यह बात अधिक स्पष्ट ज्ञात होती है कि देवगुरु बृहस्पति ही नास्तिक लोकायत दर्शन के संस्थापक थे।

लोकायतिकों का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। यत्र तत्र प्राप्त उद्धरणों से ही उनके विचारों को समझने का प्रयत्न किया जाता है। उनके अनुसार पृथ्वी, जल, तेज और वायु, यही चार तत्व हैं।[१४] इनके समुदाय में शरीरेंद्रिय विषय संज्ञा हो पाती है।[१५] चैतन्य विशिष्ट काय ही पुरुष है।[१६] काम ही एक पुरुषार्थ है।[१७] कहीं कहीं पर अर्थ और काम दोनों

९. नीति वाक्यामृतम् पृ० ७६।
१०. महा० १२।३८।२३।
११. अथ कथं परमेश्वरस्य निःश्रेयसपदत्वमभिधीयते। बृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिकशिरोमणिना चार्वाकेण दूरोत्साहितत्वात् दुरुच्छेदं हि चार्वाकस्य चेष्टितम्। सर्व दर्शन संग्रह।
१२. वायुपुराण उपोद्घात ७९।५९।
१३. कामसूत्र १।१।७।
१४. **पृथिव्योप्तेजो वायुरिति तत्वानि।**
१५. **तत्समुदाये शरीरेन्द्रिय विषयसंज्ञा।**
१६. **चैतन विशिष्टः कायः पुरुषः।**
१७. **काम एवैकः पुरुषार्थः।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पुरुषार्थ माना गया है।[१८] मृत्यु ही मोक्ष है।[१९] इन आकाश से भिन्न भूतचतुष्टयवादियों के लिए प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। ये उद्धरण कृष्णपति मिश्र के प्रबोधचंद्रोदय नामक नाटक में प्राप्त होते हैं।[२०]

सर्व दर्शन संग्रह में चार्वाक-दर्शन का विवरण इस प्रकार मिलता है। "न तो कोई स्वर्ग है, न मोक्ष, न आत्मा और न परलोक। वर्णाश्रमादि क्रियाएं भी निष्फल ही हैं। अग्निहोत्रादि क्रियाएं, त्रयी, भस्म गुण्ठन इत्यादि बुद्धि - पौरुष - हीनों के लिए जिविका के साधन हैं। यदि ज्योतिष्टोम में पशुवध से यजमान स्वर्ग जाता है तो वह अपने पिता की हत्या क्यों नहीं करता?.........भण्ड धूर्त और निशाचर ही वेद के रचयिता हैं।"[२१]

अत्यंत संक्षेप में लोकायतिकों का दार्शनिक आधार हमने ऊपर दिया है। भारतीय दर्शन तथा साहित्यपरंपरा में इनके तथा इनके प्रति किए गए व्यवहारों के वर्णन यथास्थान प्राप्त होते हैं। दार्शनिकों ने इनके मतों के खंडन में कटु शब्दों का प्रयोग किया है, आक्षेप भी किए हैं – तथा संमान भी। चाणक्य ने अर्थ शास्त्र में आन्वीक्षिकी की व्याख्या में लोकायत को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।[२२] सामान्यतया राजा को राष्ट्र-कंटकों के विनाश के लिए लोकायतिकों के जीवन - व्यवहार से शिक्षा लेने का सभी भारतीय उपदेश देते हैं। न्यायसूत्र पर वात्स्यायन भाष्य में भी चाणक्य के वाक्य ज्यों के त्यों आते हैं। अंतर केवल यह है कि अर्थशास्त्र के चतुर्थ पाद "आश्रयः सर्व धर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता" के स्थान पर न्याय - भाष्य में "विद्योद्देशेप्रकीर्तिताः" आया है।[२३] पाणिनि सूत्र ८।३।४५ पर भाष्य करते हुए पतञ्जलि ने लिखा है "वर्णिका भागुरी लोकायतस्य।"[२४] अर्थात् भागुरी लोकायत दर्शन के व्याख्याकार थे। भगवान शंकराचार्य ने लोकायतिकों का नास्तिक के रूप में खंडन करते हुए लिखा हैं कि वे चैतन्य को शरीर का गुण मानते हैं।[२५] इस प्रकार नास्तिक दर्शन में लोकायतिकों के परिगणन होने पर उसके अनुयायी मनु के निषेधों में आ जाते हैं। मनु के अनुसार वे सर्वथा अपूज्य हैं।[२६] इनको श्राद्ध में भोजन नहीं कराना चाहिए, क्योंकि ये वेद-

१८. अर्थकामौ पुरुषार्थौ।

१९. मरणमेवापवर्गः।

२०. द्वितीय अंक।

२१. न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः (नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्चफलप्रदायिकाः। अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्ड भस्मगुण्ठनम्। बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः। पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति। स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते। त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड धूर्त निशाचराः। जर्फरी तुर्फरी इत्यादि पण्डितानां वचस्मृतम्॥

२२. साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षिकी। अर्थशास्त्र १।२।

२३. न्यायसूत्र १।१।१ पर वात्स्यायन भाष्य।

२४. वेदान्तसार २।२।१; ३।३।५३।

२५. ३।१५०।

२६. ३।१६१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निंदक माने जाते हैं।[२७] आगे चलकर मनु का उपदेश है कि इनकी वाणी से भी अर्चना न करनी चाहिए।[२८] नास्तिक गणों में निवास तक का निषेध किया गया है। तन्त्र-वार्तिक-कार ने तो लोकायतिकों को मूर्ख के साथ बन्दर भी कहा है।[२९]

इस प्रकार हम देखते हैं लोकायत मत को भारतीय दार्शनिकों, धर्मशास्त्रकारों तथा अर्थशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आधुनिक विद्वानों ने लोकायतिकों के प्रश्न को लेकर अपना मतभेद व्यक्त किया है। सामान्यतः वे दो वर्गों में विभक्त हैं। मैकडानल तथा अन्य विद्वानों की दृष्टि में लोकायत इंद्रियवादी नास्तिक तथा बाह्य संबंधों में भौतिकवादी थे। समाज की परंपरा में वे शून्यवादी अथवा अनस्तित्ववादी थे।[३०] मैकडानल के अनुसार इस दर्शन के प्रवर्तक बृहस्पति थे। इस दर्शन की परंपरा प्राचीन काल में थी और आज तक यत्र तत्र पाई जाती है।[३१] "अमूल्य चरन सेन का भी यही मत है।[३२] लेकिन विनयकुमार सरकार ने इस मत का खंडन करते हुए लिखा है कि वे इंद्रियवादी नास्तिक नहीं, अपितु भौतिकवादी दार्शनिक थे।"[३३]

कुछ लोगों का विचार है कि बौद्ध तथा जैन दर्शन के पूर्व भारत में नास्तिक दर्शन नहीं था। इस मत का खंडन गार्वे ने बड़ी सफलता के साथ किया है। उसके अनुसार नास्तिक दर्शन का मूल बड़ा प्राचीन है। इतना अवश्य है कि बौद्धों और जैनियों ने कर्मकांड तथा परंपरा का खंडन बड़ी सफलता के साथ किया।[३४] मैकडानल का विचार है कि ईश्वर के प्रति अविश्वास के वचन वेदों में प्रचुरता के साथ पाए जाते हैं। इस प्रकार के विचार वाली दस्यु संस्कृति ही एक स्वतंत्र है।[३५] वेबर ने भी इस मत की पुष्टि में अनेकों प्रमाण दिए हैं।[३६] यद्यपि दस्यु संस्कृति इत्यादि की बात निर्विवाद रूप से नहीं कही जा सकती; किंतु वेदों में कथोपकथन, पूर्व पक्ष इत्यादि के रूप में अवश्य ऐसे वाक्य आए हैं जो 'नास्ति' की प्रस्तावना करते हैं।

उपनिषदों में तो इस विषय पर कितने ही आख्यान प्राप्त होते हैं। विषय उपस्थित करने का प्रकार उपनिषदों का ऐसा है कि विद्वानों को उनमें विभिन्न विचारों का एक संग्रह दिखाई पड़ने लगता है। डॉक्टर एच० सी० रे का विचार है कि "उपनिषदों का निर्माण विभिन्न कालों में होता रहा। उनमें विभिन्न विचारों का अनायास संग्रह होता गया। फलतः उनमें

२७. ४।३०।
२८. ४।६१; ४।१६३।
२९. जैमिनि १।३।३।
३०. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ४०५ - ४०७।
३१. वही पृ० ४०६।
३२. स्कूल एंड सेक्ट इन जैन लिटरेचर पृ० २२ - २३ (कलकत्ता १९३१)।
३३. क्रियेटिव इंडिया पृ० ५५-६० (लाहौर १९३७)।
३४. दि फिलासफी ऑफ एंशेंट इंडिया पृ० २५।
३५. वही पृ० १५३।
३६. ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० १२८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमिकता नहीं है। साथ ही अन्यान्य विरोधी मत एक ही स्थान पर इकट्ठे ही गए हैं।"[३७] इसी निष्कर्ष पर विंटरनित्ज और भंडारकर भी आते हैं।[३८] आगे बढ़कर विंटरनित्ज यह भी कहते हैं कि इन मतांतरों की विशृंखलता से आने वाले दार्शनिकों में निराशावाद का विस्तार हुआ।[३९] मैकडानल इन्हीं विभिन्न विचारों में नास्तिक दर्शन के सूत्रों को प्राप्त करते हैं। उनके अनुसार बाद के उपनिषदों में वैदिक विचारों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त होती है।"[४०] डाक्टर रे ने इस मत के प्रतिपादन में लिखा है कि "नास्तिक दर्शन सर्वप्रथम छान्दोग्योपनिषद (३।४।७) में प्रकट होता है।" लेकिन इसका खंडन करते हुए विंटरनित्ज ने लिखा है कि "वहाँ पर केवल आत्मा के सत्यासत्यत्व का विवेचन मात्र है। छान्दोग्य उपनिषद (७।७।१२) में इसी प्रकार की व्यवस्था है। इसमें तथा कौशीतकी उपनिषद् (४) तथा वृहदारण्यकोपनिषद् (२।१) में तो दार्शनिकों के सर्वेश्वरवाद की स्थापना है।"[४१] मैंकडानल के विचार से मैत्रायण उपनिषद में ही नास्तिक दर्शन की सर्वप्रथम स्थापना हो पाती है। लेकिन विंटरनित्ज इसको उतना प्राचीन नहीं मानते।

लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध और जैन विचारधाराओं ने वैदिक विचारों के प्रति अनास्था, शंका और विद्रोह व्यक्त किया। कहा जाता है कि इन विचारों की पृष्ठभूमि में पूर्व के उपनिषद्-विचार हैं जो कि सूत्र रूप में व्यक्त किए गए थे।[४२] नवीन विचारों से लोकायत परंपरा को अवश्य धक्का लगा होगा; लेकिन लोकायतों को बौद्धों तथा जैनों से मूलतः मतभेद था। परिणाम यह हुआ कि लोकायत परंपरा इन नवीन विचारधाराओं में लुप्त न हो पाई। यह भी पूर्ण निश्चित है कि लोकायतों के साहस ने इन नवीन दार्शनिकों को अवश्य प्रोत्साहित किया होगा।

जैसा कि हमने दिखाया है कि लोकायतिकों की परंपरा रामायण से भी पूर्व से चली आरही हैं। बुद्ध के बाद भी चलती रही। कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसका सात बार स्मरण किया है। शामशास्त्री कौटल्य को चार शताब्दि ईसा से पूर्व मानते हैं। यद्यपि विण्टरनित्ज ने इसका खंडन किया है, किंतु वह खंडन एक देशीय है।[४३] इतना यहाँ पर और ध्यान में रखना चाहिए कि वृहस्पति का अर्थशास्त्र लोकायत मत को समझने के लिए आवश्यक नहीं है। कारण यह है कि प्रथमतः वह पूर्ण रूप से मिलता नहीं। डॉक्टर एफ० डब्लू० टामस और पंडित बी० दत्त के संपादकत्व में 'पंजाब ओरियंटल सीरीज नं० १' में इसका प्रकाशन हुआ था। लेकिन उसे सर्वथा पूर्ण नहीं माना जा सकता। विंटरनित्ज ने

३७. इंडियन कल्चर जिल्द २ पृ० २४३।
३८. विंटरनित्ज : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, १, पृ० २४५-२०६; आर० जी० भंडारकर : वैष्णविज्म, शैविज्म एंड माइनर रेलिजस सिस्टम पृ० १।
३९. वही पृ० २६४।
४०. वही पृ० २३०।
४१. वही पृ० २६४।
४२. विण्टरनित्ज, वही पृ० २६४ का नोट - १।
४३. वही पृ० ५११ नोट ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे गौतम धर्मशास्त्र के शताब्दियों बाद का माना है।[४४] विनयकुमार शुक्र नीति के साथ समन्वय करते हुए इसे मध्य युग तक ले आते हैं।[४५] मैकाडानल यद्यपि बृहस्पति को लोकायत मत का संस्थापक मानते हैं, किंतु काल के विषय में वही मार्ग रखते है।[४६] लेकिन बृहस्पति, शुक्र तथा लोकायतों को रामायण, महाभारत में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।[४७] अतएव काल के नवीन परिगणन पर विवाद ज्यों का त्यों रह जाता है। साथ ही लोकायत मत का आदि बहुत पूर्व चला जाता है। दूसरी बात यह है कि बृहस्पति ने अर्थशास्त्र का प्रणयन लोकायत विचार के उद्देश्य से नहीं किया है। यह एक सामान्य शास्त्र है। इसमें उनका देवत्व ही अधिक है। आधुनिक विद्वान बृहस्पति की अपेक्षा माधवाचार्य विद्यारण्य के सर्व दर्शन संग्रह का लोकायत दर्शन के लिए सर्वोत्तम स्थान मानते हैं।[४८] विनयकुमार सरकार ने बृहस्पति के साथ इनका संबंध स्थापित करने में बड़ा परिश्रम किया है। लेकिन दो बातें ऐसी हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है (अ) माधवाचार्य ने लोकायत मत का इतना विस्तृत वर्णन क्यों किया? (ब) क्या उन्होंने केवल एक काल्पनिक भौतिकवादी संप्रदाय का वर्णन किया है?

इन दो बातों के साथ एक रहस्य है जो कि मूल्य प्रश्न पर प्रकाश डालता है। भारत में और स्थानों की अपेक्षा पश्चिमी भाग विशेषकर कर्नाटक, में लोकायतों का बड़ा जोर रहा है। वहाँ पर उनके कुछ विशेष केंद्र थे, जिनसे वे अपना प्रभाव - विस्तार करते थे। ऐतिहासिक सूत्रों से इस परंपरा का संबंध १५ वीं शताब्दी तक चला आता है। दक्षिण भारत में कर्नाटक के अतिरिक्त तमिल भूमि में इनको जानते भी नहीं थे।[४९] कर्नाटक में इनके पाँच मुख्य केंद्र थे, गुण्डेरी, वेगूरु, बल्लीगांव, सोमनाथपुर और नागर खंड। इन स्थानों के ऐतिहासिक अध्ययन से कितने ही रहस्य सामने आते हैं। गुण्डेरी के एक शिलालेख में वहां के लोकायतों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[५०]

लोकायतों का दूसरा केंद्र मैसूर राज्य में वेगूरु था। यहाँ पर अग्रहार ब्राह्मणों की जनसंख्या थी। ११ वीं शती तक ये लोग वहाँ के सुधारवादी परंपरा में अग्रगण्य माने जाते थे। यहाँ एक मंदिर, मल्लिकार्जुन के पास एक शिला लेख मिला है, जो कि लगभग १०८५ ई० का होगा। इसका संबंध चालुक्य राजा त्रिभुवन मल्लदेव से है। इसके द्वारा लोकायत ब्राह्मणों की पूजा का वर्णन स्पष्ट होता है।[५१]

४४. वही पृ० ५१६ नोट १।
४५. क्रियेटिव इंडिया पृ० ५५ - ५८।
४६. वही पृ० ४०६।
४७. वही ३, ५, ६, ११, और १६।
४८. पं० टी० तर्कवाचस्पति द्वारा संपादित : (कलकत्ता १८७२) कावेल और गुह द्वारा अनूदित (लंदन १९९४)
४९. सी० वी० रामस्वामी अय्यर शैविज्म इन साउथ इंडिया पृ० २१५।
५०. एपिग्राफिका कर्नाटिका ११, पृ० ११८।
५१. एपि० कर्ना० ८ पृ० ४२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वल्लिगाँव भी ब्राह्मणों की बस्ती थी। यहाँ पर प्रसिद्ध पाँच मठ थे। सोमेश्वर पंडित मठ के गुरु थे। इनका काल ११०३ ई० था। आप लोकायत दर्शन के प्रकांड विद्वान थे।[५२] लोकायतों की परंपरा १३ वीं शताब्दि तक शक्तिशाली थी। इनके केंद्र इस समय कावेरी तट पर स्थापित थे। १२६८ ई० के शिलालेख में सोमनाथपुर 'विद्याकेंद्र' तथा 'विश्व का प्रकाशस्तम्भ' कहा गया है।[५३] यहाँ पर उद्भट जैनाचार्य गंगाधरार्य्य रहते थे, जिन्होंने बौद्ध तथा लोकायत मत का जबर्दस्त खंडन किया था। १४१५ ई० में नागरखंड में जैन विद्वान अभय सिद्धांत देव रहते थे। इन्होंने बौद्ध तथा लोकायत दर्शनों का खंडन किया। इनके शिष्य बुल्लप्प गौड प्रकांड विद्वान थे। अभय सिद्धांत देव की मृत्यु १४६५ ई० में हुई थी।

लोकायतों की उपर्युक्त परंपरा लगभग ५ शती तक बड़े विस्तार के साथ थी। उनके मठ, इत्यादि स्थापित थे। यद्यपि जैन तथा वैदिक दार्शनिक उनका खंडन करते रहे, किंतु उनका स्थान समाज में अवश्य रहा। इसी काल में माधवाचार्य विद्यारण्य का जन्म हुआ था। फलतः उनको लोकायत दर्शन पर उचित ध्यान देना पड़ा।

११ वीं शती के प्रथम दशक में वादी रुद्रगण, जो कि लकुलीश संप्रदाय के थे, का वर्णन १०३६ के एक लेख में इस प्रकार आता है – "उन्होंने लोकायत वृक्ष को समूल नष्ट कर दिया।"[५४] एक दूसरे शिलालेख में, जो कि १०४२ ई० का है, भी वादीरुद्र लोकायत मत के उच्छेदक के रूप में प्रस्तुत किए गए है।[५५] उपर्युक्त शिलालेखों में धर्म निरपेक्ष या लोकायत राजाओं का भी उल्लेख मिलता है। उन्होंने लोकायत संप्रदाय को प्रोत्साहित भी किया है। ११४८ ई० के वीर पांड्य की पदवियों में एक पदवी यह भी थी, "लोकायत मत विचार चतुर देवत्वाचार्य।" इस राजा की उदारता का भी वर्णन मिलता है।[५६]

अक्षवाद नामक जैनाचार्य के सामने भी लोकायतों का पराभव हुआ था।[५७] १११५ ई० के एक शिलालेख में गुणचंद्रदेव नामक जैन गुरु का उल्लेख चार्वाकम खण्डनकर्त्ता के रूप में किया गया हैं। इनकी उपमा दार्शनिकों में सिंह से दी गई हैं जिनकी गर्जना के सामने सभी मूक हो जाते हैं।[५८] वस्तुतः यह जैन गुरुओं का युग था। कुछ समय पश्चात् दूसरे गुरु गोविंदविमुक्त सिद्धांत देव हुए। ११२१ ई० के एक शिलालेख में इनका उल्लेख 'चर्वाक मतांधकार को दूर करने वाले सूर्य की तरह' किया गया है। ११८३ में जैनगुरु दिवाकर नंदी ने भी चर्वाकों का खंडन किया था।[६०] १४ वीं शताब्दी में जैनगुरु चारुकीर्ति ने चार्वाकों के मतों का उच्छेदन किया।

५२. वही पृ० ६४।
५३. वही ११ पृ० ४५।
५४. वही ८। पृ० ५८ - ५९।
५५. एपि० कर्ना० ८ पृ० ११३।
५६. वही ११ पृ० ११६।
५७. वही २ पृ० ३४।
५८. वही पृ० ४२।
५९. वही ३ पृ० ६३।
६०. वही २ पृ० १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकायत दर्शन की परंपरा १५ वीं शताब्दी तक स्पष्ट रूप से चली आती है। इसका मूल अत्यंत प्राचीन है। वस्तुतः मानव प्रवृत्ति ही अस्ति - नास्ति - मूलक है। नाम में तथा गुणों में परिवर्तन भले ही हो जाय, किंतु यह प्रवृत्ति सदा समाज में व्यक्त होती रहेगी। आज भौतिकवाद अपना वैज्ञानिक रूप धारण कर चुका है। भविष्य में अपना रूप बदल सकता है। लेकिन यह परम सत्य है कि संदेहात्मक तथा विवेचनात्मक बुद्धि लोकायत विचार को समाप्त नहीं होने देगी।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-व्याकरण-संबंधी गवेषणा – १

हिंदी भाषा में विधेयों का वर्गीकरण

स० म० दीमशित्स

लेखक की संमति में हिंदी भाषा में विधेय, क्रिया तथा नामिक[1] का हो सकता है। नामिक विधेय स्वयं दो प्रकार के होते हैं। एक को कहते हैं सामान्य नामिक विधेय और दूसरे को क्रिया-नाभिक विधेय। रचना की दृष्टि से हिंदी भाषा में निम्नलिखित प्रकार के विधेय होते हैं –

(१) सामान्य विधेय, (२) संयुक्त विधेय (३) जटिल विधेय।

हिंदी भाषा में सामान्य विधेय सदा क्रिया पद का होता है। संयुक्त विधेय क्रिया का, सामान्य नामिक का और 'क्रिया - नामिक' का हो सकता। इस प्रकार के विधेयों के लिए हम यहाँ उनके क्रमशः निम्नलिखित नाम देते हैं —

(१) सामान्य क्रिया विधेय, (२) संयुक्त सामान्य नामिक विधेय, (४) संयुक्त क्रिया-नामिक विधेय। इनको स्पष्ट करने के लिए हम आगे चल कर यथास्थान कतिपय उदाहरण देंगे।

जटिल विधेय या तो क्रिया का हो सकता है अथवा नामिक का हो सकता। इस प्रकार के जटिल विधेयों के लिए हम क्रमशः निम्नलिखित नाम देते हैं –

जटिल संयुक्त क्रिया विधेय, और जटिल संयुक्त नामिक विधेय। इनको समझाने के लिए हम आगे चल कर उनके उदाहरण देंगे। जटिल संयुक्त नामिक विधेय दो प्रकार के होते हैं। एक जटिल संयुक्त सामान्य नामिक विधेय और दूसरा जटिल संयुक्त क्रिया - नामिक विधेय।

हिंदी भाषा में विधेय का मेल अर्थात् अन्वय या तो कर्ता से होता है या प्रधान कर्म[2] से होता है या फिर उसका किसी से मेल नहीं होता है। इस प्रकार विधेय अन्वय सहित या

१. व्याकरण में नामिक में निम्न तीन प्रकार के शब्द परिगणित होते हैं: संज्ञावाचक, सर्वनामवाचक, विशेषणवाचक। सुविधा की दृष्टि से अपनी इस लेखकमाला में हमने नामिक उक्त अर्थ में ही प्रयुक्त किया है।

२. हमारा मत है कि हिंदी में प्रधान कर्म एक - कर्मक क्रिया और द्वि - कर्मक क्रिया दोनों के ही साथ प्रयुक्त होते हैं। हिंदी की प्रचलित विचारधारा से हम सहमत नहीं। हमारे मतानुसार प्रत्येक सकर्मक क्रिया के साथ (वह क्रिया चाहे एककर्मक हो चाहे द्विकर्मक हो) प्रधान कर्म आवश्यक रूप से प्रयुक्त होता है। यथा, 'वह घर बनाता है।' 'मैं किताब मेज पर रखता हूँ' इन दो वाक्यों में 'बनाना' और 'रखना' एककर्मक क्रियाओं के साथ क्रमशः जो कर्म प्रयुक्त हुए हैं वे दोनों ही प्रधान कर्म माने जाने चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

अन्वय रहित दोनों ही प्रकार का होता है। अन्वय रहित विधेयों में वे विधेय संमिलित होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति क्रिया के सामान्य रूपों में आज्ञामूलक अवस्था के अर्थ में होती है और जो भाववाच्य रचना के वाक्यों में विधेय होते हैं। जैसे, तुम्हीं जाना (आज्ञामूलक अवस्था)। एक दिन उन्होंने सबको बुलाया (भाववाच्य)।

क्रिया विधेय – क्रिया विधेय उस वस्तु की क्रिया या स्थिति दिखाता है जो कर्ता से निर्दिष्ट है। जैसे, (क्रिया) – उनके दो भाई इलाहाबाद में पढ़ते थे। (स्थिति) – लड़का सो रहा है।

सामान्य क्रिया विधेय – हिंदी भाषा में सामान्य क्रिया - विधेय की अभिव्यक्ति प्रत्येक अर्थ की सकर्मक तथा अकर्मक क्रिया से साधारण और संयुक्त दोनों रूपों में चार अवस्थाओं में से एक के किसी भी पुरुषवाचक रूप में होती है, अथवा क्रिया के सामान्य रूप से जिसका उपयोग आज्ञामूलक अवस्था के अर्थ में किया गया है। जैसे, (क) वह अब्बा जी को बहुत चाहता था। (ख) इतने में दीवानखाने का दरवाजा खुला। (ग) वह यह काम करे। (घ) काश, मैं यह जानता! (ङ०) मार्च का महीना बीत रहा था। (च) उसकी बहिन कुत्तों से बहुत डरती है। (छ) आज मैंने अच्छी किताब खरीदी है। (ज) तुमने अपने लिए बनवाया है (हार) मेरे लिए क्यों नहीं बनवाती ? (झ) फोरमैन हँस पड़ा। (ञ) रामा ने यह जवाब पहले से ही सोच लिया था। (ट) अम्माँ जी, मुझे अपना सा हार बनवा दो। (ठ) आज हमारा सबक सुबह दस बजे से शुरू हुआ है। (ड) शोर - गुल मत करना। (ढ) काम खत्म करना।

हिंदी भाषा में सामान्य क्रिया - विधेय ऐसे सहवर्ती क्रिया - नामिक शब्द-समुदाय हो सकते हैं जिन शब्द-समुदायों में प्रायः विभक्तियों वाले नामिक हैं और अपूर्ण अर्थ वाली क्रियाएँ हैं। नामिक इन शब्द समुदायों का अर्थ बताने वाली धुरी है और क्रिया है विधेय का रथ - चक्र। जैसे, आपे में आना, आपे में न रहना, आपे से बाहर करना, ध्यान रखना, आफत में पड़ना, समझौते पर पहुँचना इत्यादि। बहुधा सामान्य क्रियाविधेय की अभिव्यक्ति उन सह-प्रयुक्त (न टूटने वाले) क्रिया - नामिक समुदायों से होती है जो मुहावरेदार हो गए हैं। मुहावरेदार क्रिया - नामिक समुदाय प्रायः अर्थ की दृष्टि से एक शब्द के समान प्रयुक्त होते हैं, और एक शब्द की भाँति ही भाव प्रकट करते हैं। जैसे, आँखों में रखना, हाथ धोना, नींदभर सोना, गले के नीचे उतारना, गले उतारना, धूल में मिलाना, मौत के घाट उतारना।

सामान्य क्रियाविधेयों में हम उन विधेयों को भी परिगणित करते हैं जिनकी अभिव्यक्ति सामान्य भूतकालिक कृदंत के रूप में मुख्य क्रिया और 'जाना', 'लेना', 'देना', 'डालना' और 'पड़ना' क्रियाओं के साथ, तथा अविकारी क्रिया - नामिक 'चाहना' क्रिया के साथ होती है। जैसे, (क) मैं अभी यह समझाए देता हूँ, बैठिए। (ख) वह यह पत्थर तोड़े डालता है। (ग) लड़की हँसा चाहती है।

उक्त शब्दसमुदाय अर्थ और वाक्यरचना की दृष्टि से अविछिन्न हैं। इसलिए वे वाक्य के एक अंग के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

संयुक्त क्रियाविधेय – संयुक्त क्रियाविधेय क्रिया के पुरुषवाचक रूपों से या तो क्रिया के सामान्य रूपों के साथ बनता है या फिर क्रिया के ऐसे रूप के साथ बनता है जो क्रिया के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य रूप का अर्थ रखता है। जैसे—(१) पीना चाहता हूँ। (२) पढ़ सकता है। (३) लिखना शुरू करो।

इस तरह संयुक्त क्रियाविधेय में दो तत्व होते हैं। इनमें एक तत्व प्रथम विधेय का अंग होकर उसका मूल अर्थ प्रकट करता है, और दूसरा विधेय के कार्य को पूरा करता है। इसलिए संयुक्त क्रियाविधेय के द्वितीय तत्व के रूप में ऐसी क्रियाएँ प्रयुक्त की जाती हैं जिनसे संकेत होता है (क) क्रिया के आरंभ का और क्रिया के अंत का। जैसे, शुरू करना, आरंभ करना। शुरू होना, आरंभ होना। खत्म होना, खत्म करना। छोड़ना, चुकना। (ख) जिनसे संकेत होता है इच्छा, संभावना, असंभावना, सामर्थ्य, बाध्यता, अनुमति इत्यादि का। जैसे, 'चाहना', 'सकना', 'बनना', 'जाना', 'पाना', 'देना', 'माँगना', 'होना', 'पड़ना', इत्यादि। (ग) जिनसे संकेत होता है किसी क्रिया को तरजीह का। जैसे, पसंद करना, चाहना।

उक्त सबको स्पष्ट करने के लिए हम नीचे कतिपय उदाहरण देते हैं —

(१) नाम था हरभज, लड़कों ने गीदड़ नाम से पुकारना शुरू कर दिया। (२) तब से खत आने-जाने शुरू हुए। (३) उस दिन से नीला और रफी दोनों खेलने लगे। (४) शोर मचाना खत्म कर दो। (५) इस वक्त खेत कटने खत्म हो जाते हैं। (६) उसने पढ़ना छोड़ दिया। (७) उसकी बहिन यह किताब पढ़ चुकी है। (८) वह उसे ढाढ़स देना और चुप कराना चाहता है। (९) वह धान के लिए दो बीघा जमीन और खरीदना चाहता था। (१०) मेरा भी शाम को घर से निकलने को जी नहीं चाहता। (११) क्रेन पर काम कर सकते हो? (१२) उससे वहाँ जाते नहीं बनता। (१३) उससे न रहा गया, बोली, क्यों इतने उदास हो? (१४) लेकिन यह चोट न सही जाएगी। (१५) मैं यह किताब हासिल कर पाया। (१६) हम यहाँ आने पाए। (१७) जरूर मिलने जाऊंगा, जाने पाऊं तो। (१८) पानी बरसता था, मैं बाहर निकलने न पाया। (१९) वह बत्ती जलाने न पाई कि अंधेरा हो गया। (२०) साहू का कुआं गाँव के उस सिरे पर है, लेकिन वहाँ भी कौन पानी भरने देगा! (२१) उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया। (२२) क्या करूँ माता! कोई खाने को नहीं देता। (२३) मुझे जाना है। (२४) यह मकान बेचना पड़ेगा। (२५) वह साथ वाले मंजिल में सीढ़ियों पर पड़े रो रहे हैं, और किसी के उठाए नहीं उठते। (२६) आज हम सिनेमा जाना पसंद करेंगे। (२७) मुझे टेनिस खेलना पसंद है। (२८) मैं कल किसी के यहाँ मेहमान होना पसंद करूँगा।

संयुक्त क्रिया विधेय के रूप में बाध्यतामूलक प्रवर्त्तनार्थक वाक्यों में 'चाहिए' शब्द का व्यवहार भी होता है। जैसे, छठी साड़ी का रंग लाल है, लेकिन उसे यहाँ नहीं होना चाहिए, क्योंकि इसे पहनने वाली मर चुकी है। तुम्हें जल्दी वापिस आना चाहिए।

संयुक्त क्रियाविधेय के एक तत्व के रूप में क्रिया के सामान्य रूप की विशेषता यह है कि उसका मेल लिंग और वचन में उस कर्ता से (यदि क्रिया अकर्मक है) या प्रधान कर्म से (यदि क्रिया सकर्मक है) होता है जिस कर्ता या कर्म की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष-कारक संज्ञा से या सर्वनाम से होती है। जैसे, (१) वैसाख के महीने में खेत कटने शुरू हो जाते हैं। (२) उसने छत्रपति की कहानी सुनानी शुरू की। (३) मैंने यह किताब पढ़नी खत्म कर दी है। (४) गाँव भर ने उससे बात करनी छोड़ दी। (५) कवि ने एक कविता पढ़नी चाही। (६) आज मैं खत लिखना पसंद करूंगा। (७) आज सरोज को बिस्कुट देना ही पड़ा। (८) अपनी भूल माननी चाहिए। (९) मुझे सुबह को वह (किताब) लेनी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त क्रियाविधेय में हम उन विधेयों की गिनती करते हैं जो गत्यर्थक क्रियाओं और उन गत्यर्थक क्रियाओं से संबद्ध उद्देश्यवाचक क्रिया के सामान्य रूप से बनते हैं। इस प्रकार के संयुक्त विधेय में दोनों तत्व अर्थात् क्रिया और क्रिया का सामान्य रूप एक व्यक्ति से यानी क्रिया के कर्ता से संबंधित हैं।

गत्यर्थक क्रियाओं के लिए यह आवश्यक है कि उनसे संबंधित क्रियाओं के रूप अप्रत्यक्ष कारक के रूप में विभक्ति - चिह्नों के बिना हों, या अप्रत्यक्ष कारक के सामान्य रूप में 'को' और 'के लिए' विभक्ति-चिह्नों के साथ हों। जैसे, (१) इसी वक्त गंगी कुएं से पानी लेने पहुँची। (२) वह भाषण देने को उठा। (३) वह दूकान पर कुछ तरकारी खरीदने को गई है। (४) मुझे मनाने के लिए कोई न आया।

जटिल संयुक्त क्रियाविधेय – जटिल संयुक्त क्रियाविधेय संयुक्त क्रियाविधेय की क्रिया में क्रिया के सामान्य रूप के विस्तार द्वारा बनता है, और उसमें प्रायः तीन आख्यातिक शब्द शामिल होते हैं। जैसे (१) मैंने मोटर **चलाना सीखना शुरू किया है**। (२) वह सिगरेट **पीना** नहीं **छोड़ सकता है**। (३) हमको हिंदी **बोलना भूलना** नहीं **चाहिए**।

नामिकविधेय

नामिकविधेय उस वस्तु के गुण, लक्षण, क्रिया-व्यापार और स्थिति भी दिखाता है जो कर्ता से निर्दिष्ट है।

संयुक्त सामान्य नामिकविधेय – संयुक्त सामान्य नामिकविधेय सहायक क्रिया या ऐसी किसी क्रिया से जिसका उपयोग सहायक क्रिया के रूप में होता है और सहायक क्रिया कर्ता से विधेय का संबंध करने का साधन है और साथ ही क्रिया के रूपों की अभिव्यक्ति करने का काम भी पूरा करती है। जैसे, काल, अवस्था, पुरुष, वचन।

सहायक क्रिया से संबद्ध विधेय का नामिक अंग विधेय का मुख्य अर्थबोधक होता है। जैसे, (१) मेरा बाप **इंजीनियर** था। (२) साठ रुपये **ज्यादा** नहीं हैं।

हिंदी भाषा में सहायक क्रिया के रूप में 'होना', 'हो जाना', 'बनना', 'बन जाना' और कतिपय दूसरी अन्य क्रियाएँ भी प्रयुक्त होती हैं।

हिंदी भाषा के वाक्य में क्रिया सहायक क्रिया के बिना प्रायः प्रयुक्त नहीं होती है। सहायक क्रिया का परित्याग केवल 'नहीं' सहित प्रयुक्त नकारात्मक वाक्यों में तब हो सकता है जब वाक्य में कही गई बात वर्तमान काल से संबंधित होती है। जैसे, आज का दिन ज्यादा ठंडा नहीं।

सहायक क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से हो सकती है –

(क) संज्ञा से प्रत्यक्ष कारक में या विभक्तिसहित अप्रत्यक्ष कारक में। जैसे, (प्रत्यक्ष कारक में) (१) वह एक गरीब भीख मांगने वाली **औरत** थी। (२) मेरा एक दोस्त **डाक्टर** है। (अप्रत्यक्ष कारक में) (१) उसकी उम्र **बीस साल की** है। (२) यह कार्रवाई **शांति को सुदृढ़ करने के लिए** है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) विशेषण से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, (१) सरोज भूखा था, थका था। (२) यह बाग बहुत सुंदर है।

(ग) सर्वनाम से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, (१) यह आदमी कौन है? (२) यह किताब मेरी है।

(घ) क्रमवाचक संख्या से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, हमारी गाड़ी पाँचवीं है।

(ङ) क्रिया के सामान्य रूप से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, विद्यार्थियों का कर्तव्य पढ़ना है।

(च) कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, (१) वह थका हुआ था। (२) वह एक पुराना नीला कोट पहने था। (३) इन्हीं के सब काँटे बोये हुए हैं। (४) जल्दी ही मखनी की शादी हो जाने वाली थी, लेकिन छत्रपति से नहीं गाँव के अधेड़ उम्र नंबरदार से।

(छ) क्रियाविशेषण से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे, (१) यह जूता तुम्हारे पैर में ठीक है। (२) साठ रुपये ज्यादा नहीं हैं।

संयुक्त क्रिया - नामिक विधेय – संयुक्त क्रिया - नामिक विधेय पूर्ण क्रिया या क्रिया - नामिक के समुदाय और विधेय के नामिक अंग से बनता है जैसे, वह सदा चुप रहता है। (२) मजिस्ट्रेट ने इस आदमी को अपराधी क़रार दिया है। (३) बिस्कुट बड़ा करारा मालूम होता था।

संयुक्त क्रिया - नामिक विधेय में क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग कर्ता को अथवा प्रधान कर्म को निर्दिष्ट कर देते हैं। इसके अनुसार हिंदी भाषा में दो प्रकार के संयुक्त क्रिया - नामिकविधेय होते हैं। दो प्रकार के विधेयों में क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग अर्थ और व्याकरण दोनों दृष्टियों से कर्ता या कर्म से संबंधित होते हैं।

(क) पहले प्रकार का संयुक्त क्रिया - नामिकविधेय – इस किस्म के विधेय में क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग कर्ता को निर्दिष्ट करते हैं।

क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग के रूप में संज्ञा, विशेषण, कर्मवाचक संख्या, प्रत्येक अर्थ की क्रियाओं के सामान्य वर्तमानकालिक कृदंत अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक सामान्य संयुक्त कृदंत प्रयुक्त होते हैं।

क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग जो विकारी विशेषण, क्रमवाचक-संख्यावाचक कृदंत से अभिव्यक्त होते हैं उनका मेल कर्ता से लिंग और वचन में होता है।

विधेय के क्रिया के अंग के रूप में गत्यर्थक अकर्मक क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। जैसे, (१) वह उदास लौट आए। (२) मेरा दोस्त प्रतियोगिता में दूसरा आया। (३) नाले के किनारेवाले खेतों में सदा पानी खड़ा रहता था। (४) सड़क के बीच खून से लाल हुई जगह पर एक आदमी बेहोश पड़ा था। (५) उसका चेहरा पीला पड़ गया। (६) उसे सदा भूख लगी रहती है। (७) दाएँ हाथ की हथेली में कोई चमकती चीज दबी पड़ी है। (८) शीशा टूटा पड़ा है। (९) तुम मुझे अच्छे आदमी दिखाई देते हो। (१०) आसमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कहीं - कहीं तारे चिनगारियों की तरह जलते दिखाई पड़ते थे। (११) देखने में वह सीदे - सादे नजर आते हैं। (१२) इतने में खूबसूरत तितली उड़ती हुई दिखाई दी। (१३) वह बहुत घबराया हुआ मालुम होता था। (१४) आज तो वहाँ की हालत बदली नजर आ रही है। (१५) वह भूखी मर गई। (१६) उसे दरवाजा बंद मिला।

विधेय के एक क्रिया से संबद्ध दो नामिक अंग हो सकते हैं। जैसे, बहुत देर तक दोनों चुप बैठे रहे।

विधेय के क्रिया से संबद्ध नामिक अंग की अभिव्यक्ति एक शब्द समुदाय से हो सकती है। जैसे, खुशी में फूला वह घर पहुँचा।

(ख) **द्वितीय प्रकार का संयुक्त क्रिया - नामिकविधेय**—इस किस्म के विधेय में क्रिया से संबद्ध विधेय के नामिक अंग प्रधान कर्म को निर्दिष्ट करते हैं विधेय के नामिक अंग प्रत्यक्ष कारक की संज्ञा, विशेषण, प्रत्येक क्रिया के वर्तमानकालिक सामान्य व संयुक्त कृदंत और अकर्मक क्रिया के भूतकालिक सामान्य व संयुक्त कृदंत से अभिव्यक्त हो सकते हैं। विधेय के क्रिया - अंग के रूप में सकर्मक क्रियाएँ 'देखना', 'सुनना', 'समझना', 'मानना', 'करार देना' 'ठहराना', 'कहना', 'पाना', 'बनाना', 'करना', 'चुनना', रखना आदि प्रयुक्त होती हैं।

विधेय के नामिक का प्रधान कर्म से संबंध विधेय के नामिक अंग के प्रधान कर्म के मेल से मालूम होता है। यह मेल उसके प्रधान कर्म के रूप के अनुसार होता है। विधेय के नामिक अंग के रूप में विकारी विशेषण और कृदंत का मेल प्रत्यक्ष कारक से अभिव्यक्त प्रधान कर्म से होता है। यदि कर्म 'को' विभक्ति चिह्न के साथ अप्रत्यक्ष कारक या सर्वनाम के कर्म कारक के रूप में प्रयुक्त है और विधेय के नामिक अंग विकारी विशेषण हैं तो उसका मेल प्रधान कर्म से लिंग में हो सकता है। यदि विधेय के नामिक अंग कृदंत से अभिव्यक्त हैं और अप्रधान कर्म अप्रत्यक्ष कारक के रूप में संज्ञा या सर्वनाम है अथवा कर्म कारक के रूप में सर्वनाम है तो विधेय के नामिक अंग का मेल या तो प्रधान कर्म से कारक में होता है, या प्रत्यक्ष कारक एक वचन पुल्लिंग के रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे, (१) अब मैं जब कभी छोटी लड़की की आँखें सूजी हुई और गाल लाल देखता हूँ तो समझ लेता हूँ कि किसी बड़े घर में चीनी के बर्तन टूटे हैं। (२) कल भी मैंने इस लड़की को यहाँ खड़ी देखा। (३) मैंने अमरीकी घाटियों में नरगिस के पीले - पीले लाखों फूल खिलते हुए, और लाखों हाथ अपनी साफ - सुथरी ईमानदार अंगुलियों से अमरीका के कारखाने चलाते देखे। (४) उसे आज तक किसी ने बात करते नहीं सुना था। (५) भगत लोग उसे पीर मानते थे। (६) उसे हम बाबा करेला कहा करते थे। (७) दूसरे दिन सुबह गाँव वालों ने छत्रपति को चट्टान पर बैठा पाया।

संयुक्त जटिल नामिकविधेय

(क) **सामान्य संयुक्त जटिल नामिकविधेय** – सामान्य संयुक्त जटिल नामिक-विधेय में संयुक्त जटिल क्रियाविधेय की भाँति तीन शब्द शामिल होते हैं। जैसे, (१) मेरा छोटा भाई इंजीनीयर बन जाना चाहता है। (२) विद्यार्थियों को परिश्रमी होना चाहिए।

सामान्य संयुक्त जटिल नामिकविधेय में हम उस विधेय को भी परिगणित करते हैं जो प्रायः गत्यर्थक क्रियाओं के पूर्वकालिक कृदंत के साथ 'खड़ा होना' संयुक्त क्रिया से अभिव्यक्त होता है। जैसे, वह भाग खड़ी हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) **संयुक्त जटिल क्रिया - नामिकविधेय** – संयुक्त जटिल क्रिया - नामिकविधेय क्रिया के सामान्य रूप द्वारा क्रिया - नामिकविधेय का विस्तार करने से बनता है, और इसमें एक साथ तीन शब्द (कभी चार शब्द) शामिल होते हैं जैसे, (१) वह एक घंटे बाद खत **लिखना जारी रखेगा**। (२) मैंने यह काम **पूरा करना जरूरी समझा**।

इस प्रकार के विधेय क्रिया के अंग में केवल कुछ क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। जैसे, 'रखना', 'समझना', 'मानना'। विशेषणों की संख्या भी सीमित होती है, जिसका उपयोग क्रिया के नामिक अंग के रूप में होता है। जैसे, 'जारी', 'संभव', 'मुमकिन'- 'उचित', 'मुनासिब', 'जरूरी', 'आवश्यक', आदि।

यदि वाक्य में कई ऐसे विधेय हैं जिनमें एक ही सहायक क्रिया है तो सहायक क्रिया एक ही बार प्रयुक्त होती है और वह भी वाक्य के अंत में प्रयुक्त होती है। जैसे, वह हिंदी पढ़ता, लिखता और बोलता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श

राजस्थानी की 'ने' विभक्ति का मूल

इस विषय पर एक श्रद्धेय विमर्श 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६४ - अंक २ (पृ० १३५ - १३७)' में आया है। मैं उसका समादर करता हूँ। मात्र व्युत्पत्ति - विषयक एक क्षति उसमें दिखाई देती है। इस ओर मैं सादर यह नम्र सूचना करता हूँ। श्री किशोरीदास जी वाजपेयी ने 'नू' और 'ने' को सं० 'फलानि' के 'नि' से मान लिया है। इस प्रकार का विकास भारतीय भाषाओं के लिये संभावित नहीं है। बीच में प्राकृत - अपभ्रंश भूमिका अनिवार्य बनती है। पुरोगामी विद्वानों ने 'ने' के विकास के विषय में पर्याप्त प्रयत्न किया है। डा० तेस्सितोरी ने अपने 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के व्याकरण के टिप्पण' में स्पष्ट निर्णय दिया है कि —

"(२) नइँ (नइ, निँ, नि) वह 'कन्हइँ' का घिसा हुआ रूप है, जिसमें आदि श्रुति (सिलेबल) का लोप हुआ है।" (इंडियन एंटिक्वेरी नवंबर, १९१४, पृ० २२६)'

डा० तेस्सितोरी ने 'कन्हइँ' का विकास 'अपभ्रंश कण्णहिँ < सं०* कर्णस्मिन् (= कर्णे)' से बतलाया है।

'गुज० 'नु' 'ने' का विकास बंबई विश्वविद्यालय की ओर से दिए गए मेरे 'गुजराती रूपरचना' विषय के व्याख्यानों में (पृ० १३१ – १३३) भी बतलाया गया है। राजस्थानी का 'ने' जैसी कोई अलग वस्तु नहीं है। इसी तरह ब्रज - हिंदी आदि की कर्तृवाचक तृतीया विभक्ति में जो 'ने' अनुग आया है वह भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोई अलग वस्तु नहीं है। मराठी 'ने' एवं 'ला' भी इसी मूल के हैं। सुज्ञेषु किं बहुना ?

—केशवराम का० शास्त्री

'ने' और 'नू' विभक्तियाँ

श्री केशवराम का० शास्त्री ने राजस्थानी 'ने' का उद्भव प्राकृत 'नइँ' से बताया है। पर यह 'नइँ' कहाँ से आई ? 'नि' का ही व्यत्यस्त रूप 'नइँ' है। शास्त्री जी ने राष्ट्रभाषा की ने विभक्ति का उत्स भी यही माना है। यानी नमक और फिटकरी एक ही चीज है। राष्ट्रभाषा की 'ने' विभक्ति कर्ता कारक में लगती है और राजस्थानी की 'ने' विभक्ति कर्म तथा संप्रदान में। अंतरम् महदन्तरम् ! मेरे भारतीय भाषा विज्ञान में इसका विशदीकरण है।

—किशोरीदास वाजपेयी

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च य न

तुलसीदास और उनकी जन्मभूमि

रामनरेश त्रिपाठी

•

संमेलन पत्रिका, भाग ४६, संख्या २, १८८२ शक में प्रकाशित निबंध का सार —

इस निबंध में तुलसीसाहित्य में यत्रतत्र बिखरे साक्ष्य के आधार पर लेखक ने तुलसीदास की जन्मभूमि पर मुख्यतः, तथा उनकी जाति - पैतृकता आदि पर गौण रूप से विचार किया है। राजापुर एवं सोरों के विवाद पर विचार करते हुए लेखक ने अपना मत सोरों के पक्ष में स्थिर किया है। राजापुर तो किसी प्रकार उनके मत से तुलसी की जन्मभूमि नहीं हो सकता; यद्यपि लेखक को यह मान्य है कि दृढ़तापूर्वक तुलसीदास के जन्म, स्थान, माता - पिता, विवाह आदि के संबंध में कुछ भी कहना कठिन है। प्रस्तुत निबंध के द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी (हिंदी परिषद् – १७वाँ अधिवेशन, १९६०) में उपस्थापित अपने विचारों को हिंदीजगत् के समक्ष रखा गया है। लेखक के मत से सोरों का पुराना नाम सूकर खेत है, वह तीर्थ स्थान भी है, गंगातट पर भी है। वहाँ कभी प्रतापी हिंदू राजा का राज्य भी था जिसके महलों के खंडहर अब भी आसपास मौजूद है। तुलसीदास ने राज-दरबार का ढाँचा उसीसे लिया होगा, अतः वही उनका जन्मस्थान हो सकता है। तुलसी की जन्मभूमि वही हो सकती है जिसमें ये सब गुण विद्यमान हों।

तुलसीस्मारक के संबंध में लेखक का मत है कि यदि कोई पार्थिव स्मारक बनाना ही है तो उसके लिए निर्विवाद स्थान काशी ही है, जहाँ उन्होंने देहत्याग किया।

*

जनपद फतेहपुर से प्राप्त कुछ 'रागमाला' ग्रंथ

डा० शिवगोपाल मिश्र

•

'हिंदुस्तानी' भाग २१, अंक २ में प्रकाशित निबंध का सार —

'राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' में 'रागमाला' नामक एक दर्जन ग्रंथों का उल्लेख है जिनका रचनाकाल सं० १६९१ से सं० १७५८ तक है। एक ओर जहाँ राग-रागिनियों के चित्र चित्रकला के द्योतक है वहीं 'रागमालाएँ' हिंदी-पद्य-साहित्य की निधियां भी है। इनकी भाषा-शैली प्रदेशों के अनुसार बदलती रही है किंतु उनमें वर्णित राग-रागिनियों के स्वरूप स्थिर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फतेहपुर में संगीतसंबंधी चार रागमाला ग्रंथ एकडला ग्राम के निवासी रावत भीमप्रकाशसिंह जी के यहाँ से मिले हैं। इनमें तीन सचित्र रूप में तथा चौथा काव्य - ग्रंथ - रूप में है। ग्रंथ हैं — १-लक्ष्मणदास कृत रागमाला, २ – अनंत कृत रागमाला, ३ – गोविंद कृत रागमाला तथा ४ – चंद्रदास कृत रागमाला। लक्ष्मणदास, गोविंद तथा अनंत के संबंध में अद्यावधि कोई साधार जानकारी नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा के खोज - विवरण १९२३–२५ (पृ० ६२१) में अनंत का उल्लेख शृंगारी कवि के रूप में है। लक्ष्मणदास का कोई परिचय प्राप्त नहीं। चंद्रदास हसवा (फतेहपुर) के निवासी थे (मृत्युकाल सं० १८२८)।

लक्ष्मणदास कृत रागमाला – ३६ पत्रों की सचित्र पोथी, राजस्थानी शैली के चित्र तथा पृष्ठ पर राग या रागिनी का पद्यात्मक वर्णन कैथी लिपि में है।

गोविंद कृत रागमाला — एकडला से प्राप्त १२″×८″ के ३६ चित्रों के दूसरे संग्रह के ऊपरी भाग में गोविंद द्वारा चित्रपरिचय स्वर्णाक्षरों में दिए हुए हैं। इन्हीं चित्रों पर काली स्याही से अनंत ने भी चित्रपरिचय दिए हैं। ये परिचय बाद के हैं, जब कि गोविंद के परिचय चित्र के भीतर ही हैं। गोविंदरचित परिचय सवैया - कवित्त में है।

अनंतकृत रागमाला — अनंत ने विभिन्न राग-रागियों के परिचय ४ पंक्तियों में दिए हैं। ३६ में केवल ३५ पर ही परिचय हैं। संभवतः भूल से उसकी प्रतिलिपि रह गई है।

चंददास कृत रागमाला — चंददास भक्त थे। उन्होंने रागों के स्वरूपवर्णन के बदले उनके नामों के महत्व पर दोहों की रचना की। १२० दोहों के संकलन का नाम 'रागमाला' प्रसिद्ध है; तथा भाषा है अंतर्वेद की ठेठ भाषा।

चारो ग्रंथों का परिचय देने के उपरांत लेखक ने रागमाला ग्रंथों का तुलनात्मक विवेचन किया है और यह आशा व्यक्त की है इन चित्रों के आधार पर राग-रागिनियों के नवीन तथ्य ढूँढ़ने की चेष्टा होगी।

जायसी कृत 'मसलानामा'

अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'

हिंदुस्तानी भाग २१ : अंक २, अप्रैल - जून में प्रकाशित सामग्री का सारांश—

मसलानामा की प्रथम पांडुलिपि लेखक को जायस क्षेत्र के विधायक श्री वसी नकवी के पास नवंबर १९५९ में मिली। यह प्रति परिवार में परंपरागत थी। लिपि हिंदी होने के कारण यह कभी उपयोग में नहीं आई। माता के अवसान के कारण ही नकवी साहब इसे लेखक को दिखा पाए। पुस्तक में जायसी के पदमावत, अखरावट, कहरानामा एवं मसलानामा की पांडुलिपियाँ ग्रंथावली के रूप में संगृहीत हैं। हस्तलेख पर समय या तिथि नहीं है और न लिपिकार का नाम ही है। ग्रंथ का आकार ७॥″×१२॥″ है।

कुछ समय बादः लेखक को एक दूसरा हस्तलेख सेमरौता जू० हा० स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री त्रिभुवनप्रसाद त्रिपाठी के पास होने का पता चला। इसे देखने पर पता चला कि इस पर लिपिकार का नाम तथा संवत् भी था। संपूर्ण ग्रंथ ५॥″×८॥″ के ३३० पृष्ठों में है। इसमें पदमावत, कहरानामा, मसलानामा, एवं अखरावट क्रम से संगृहीत है। लिपिकार हैं मनदास जी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे लेखक ने दोनों हस्तलेखों का विवेचन प्रस्तुत करते हुए अंत में मसलानामा भी अविकल रूप से दे दिया है। मनदासवाली प्रति के प्रथम तथा अंतिम पृष्ठ के छायाचित्र भी दिए गए हैं।

*

निर्देश

हिंदी साहित्य, पटना, वर्ष १० अंक २, जुलाई १९५९

काशकृत्स्न व्याकरण के उपलब्ध सूत्र—श्री युधिष्ठिर मीमांसक। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने अद्यावधि उपलब्ध समस्त सूत्रों को हिंदी व्याख्या सहित उपस्थित कर दिया है तथा यथास्थान टिप्पणियाँ भी दी हैं।

भारतीय साहित्य, वर्ष ४, अंक २, अप्रैल १९५९

मध्यकालीन हिंदीसाहित्य की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० राम प्रसाद त्रिपाठी।

भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान—डा० विश्वनाथ प्रसाद

लोरिकायन का तुलनात्मक अध्ययन—श्री विक्रमादित्य मिश्र

लोरकहा और मैना सत—डा० माताप्रसाद गुप्त

तमिल साहित्य में भक्ति परंपरा का स्रोत—श्री जे० पार्थ सारथि

अंक ३, जुलाई १९५९

तेलुगु के ऐतिहासिक नाटक—श्री वि० वेंकट राव शर्मा

कन्नड के ऐतिहासिक नाटक—श्री गुरुनाथ जोशी

गुजराती साहित्य में ऐतिहासिक नाटक—श्री नटवरलाल अंबालाल व्यास

मैना को सतु—श्री उदयशंकर शास्त्री

संमेलन पत्रिका, भाग ४८ संख्या २

सिंहल भाषा २—राहुल सांकृत्यायन

सौंदर्य का स्वरूप—हरद्वारीलाल शर्मा

अंगरेजी

जर्नल आव द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा खंड ९, संख्या २

द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आव राम स्टोरी इन जैन लिटरेचर (जैन साहित्य में रामकथा का उद्भव और विकास)

बुलेटिन आव द डेकन कालेज रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना खंड १९ संख्या १-२

रीसेंट ट्रेंड्स इन द रिसर्चेज आन द साइको फिजिक्स आव इंडियन म्यूजिक (भारतीय संगीत में मनोभौतिक शोधसंबंधी आधुनिक प्रवृत्तियाँ)—सी० आर० शंकरन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द नेचर आव सिंबालिज्म एंड द डेवलपमेंट आव स्पीच (प्रतीकवाद की प्रवृत्ति और बोली का विकास)—वी० चैतन्य देव।

हार्वर्ड जर्नल आव एशियाटिक स्टडीज, भाग २, संख्या ३-४

द बिगिनिंग आव द माडर्न जापानीज नावेल : कना जोशी १६६०-१६८२ (आधुनिक जापानी उपन्यास का आरंभ १६६०-१६८२ : कना जोशी)—लेन रिचर्ड।

द विश्व भारती क्वार्टर्ली, भाग २५, सं० १, १६५६

ए वर्ल्ड लैंग्वेज (विश्व भाषा)—एडमंड प्रिवट

इमोशनल इंटिग्रेशन इन कंटेंपररी इंडिया (आधुनिक भारत का संवेगात्मक ऐक्य)—विश्वनाथप्रसाद वर्मा।

इंडिया एंड माडर्न आर्ट (भारत और आधुनिक कला)—विष्णु दे

भाग २५, संख्या २, १६५६

ह्वाट हैपेंस इन द थिएटर (नाटक में प्रेक्षक की रसानुभूति का विश्लेषण)—जितेंद्र महंती

डाक्ट्रिन आव कथार्सिस री-एक्जामिंड (कथार्सिस सिद्धांत का पुनर्परीक्षण)—राजेंद्र कुमार सेन।

द इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग ३५ संख्या २, जून १६५६

निरुक्त एंड द ऐतरेय ब्राह्मण—प्रो० विमान चंद्र भट्टाचार्य

बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज, युनिवर्सिटी आव लंदन, खंड २२, भाग १

ऐन एनलिसिस आव ऋग्वेदिक रेसिटेशन (ऋग्वैदिक पाठ का एक विश्लेषण)—जे० ई० बी० ग्रे।

द वैशेषिक थियरी आव वर्ड्स (शब्दों का वैशेषिक सिद्धांत)—पद्मनाभ एस० जैनी।

खंड २२, भाग २

ऐन एनलिसिस आव नंबूद्रि ऋग्वेदिक रेसिटेशन एंड द नेचर आव द वेदिक एक्सेंट (नंबूद्रि ऋग्वैदिक पाठ का विश्लेषण एवं वैदिक उच्चारण की प्रकृति)।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स मी क्षा

विचार प्रवाह

यह डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के समय - समय पर लिखे गए निबंधों और भाषणों का संग्रह है। इस संग्रह में कुछ विचारप्रधान निबंध हैं तो कुछ निबंध निबंध। दोनों प्रकार के निबंधों पर द्विवेदी जी के व्यापक अध्ययन और गहन चिंतन की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है। द्विवेदी जी आलोचक से अधिक चिंतक हैं; उनके पास अपना जीवन - दर्शन है जो उनके निबंधों, आलोचनाओं, उपन्यासों, भाषणों आदि में अंतःसलिला की भाँति प्रवहमान रहता है। यह जीवन-दर्शन ही उनके विचार - प्रवाह को गति देता है, दिशा - निर्देश करता है।

कविवर रवींद्रनाथ की छाया में उन्होंने बहुत कुछ सीखा और आत्मसात किया है। 'रवींद्रनाथ की आशा भूमि' निबंध में उन्होंने कवि के संबंध में लिखा है--"वे मनुष्य की एकता में विश्वास रखते थे "वही जीतेगा जिसमें प्राण की उच्छल धारा का वेग होगा। जो सड़े विचारों और सूखे आचारों से लिपटे हैं वे जितने भी शक्तिशाली क्यों न हों, अपने ऊपर उन्होंने स्वेच्छा से मृत्यु की खाल डाल ली है। मनुष्यता आगे बढ़ेगी, उसे रोकने का प्रयत्न व्यर्थ होगा…" कहना न होगा इस जीवन - दर्शन को द्विवेदी जी ने भी अपने ढंग से पूर्णतया आत्मसात कर लिया है। उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का संघटन इन्हीं तत्वों से हुआ है। वे मनुष्य की श्रेष्ठता, उसकी विजय - यात्रा के अडिग विश्वासी हैं। 'अभी थकने का समय नहीं आया', 'संकीर्णताओं पर हथौड़े की चोट', 'जनता का अंतःस्पंदन' में उसी जीवन - दर्शन के विविध रूप मिलते हैं।

'संस्कृत के महाकाव्यों की परंपरा' का विवेचन करते हुए भी वे नव्यतर मानवीय मूल्यों को नहीं भूलते--"महाभारत उज्ज्वल चरित्रों का विशाल वन है। इस ग्रंथ में ऐसे पात्र बहुत कम हैं—नहीं हैं, कहना अधिक ठीक है—जो महलों में पलकर चमके हों। सबके सब एक तूफान के भीतर से गुजरे हैं…।" उसी निबंध में वे दूसरे स्थान पर लिखते हैं—"महाभारत और रामायण दोनों में ही वीरत्व का आदर्श मनुष्यता का उन्नायक है, छीना - झपटी की बहादुरी का प्रतिषेधक है।" दोनों का प्रधान स्वर है अनीति का दमन, नीति का उन्नयन, पशुता का विरोध और मनुष्यता का प्रवर्धन।…"

दृष्टिकोण वहाँ और भी उभर कर सामने आता है जहाँ वे अपने व्यापक, पर गहन अध्ययन के आधार पर 'भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति', 'साहित्य विचार में प्राचीन ग्रंथों का महत्व', 'साहित्य का मर्म' आदि का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। टी० एस० ईलिएट के अर्थ में वे ऐतिहासिक चेतना को बहुत ही अच्छी तरह अर्जित तथा आत्मसात कर चुके हैं, उनका नया दृष्टिकोण उसीका फल है। 'भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति' को समझने के लिए कर्म - फल - प्राप्ति और पुरुषार्थ के शास्त्रीय सिद्धांतों की जानकारी अत्यंत आवश्यक है। कर्मफल - प्राप्ति के सिद्धांत से हिंदू समाज और साहित्य का बहुत ही अहित हुआ। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए जो कुछ लिखा गया वह अद्वितीय है। इस दृष्टि से विचार न करने पर पाश्चात्य पंडितों ने भारतीय साहित्य के संबंध में बहुत - सा ऊलजलूल लिखा है। प्राचीन ग्रंथों के महत्व की विद्वत्तापूर्ण विवेचना करते हुए वे यह नहीं कहते कि उन ग्रंथों में सब कुछ कह दिया गया है, वे यह भी नहीं कहते कि प्राचीन ग्रंथों के ज्ञान - विज्ञान को यथावत पुनः स्थापित करना चाहिए। लेकिन उन्हें वे प्रेरणा - स्रोत के रूप में अवश्य स्वीकार करते हैं। वे कुछ नया सोचने के लिए प्रेरणा देते हैं, कुछ नई सर्जना के लिए उत्साहित करते हैं। उनकी वास्तविक सार्थकता भी इसी में है।

'साहित्य का मर्म' उनका विशिष्ट भाषण - निबंध है। इसका मूल प्रतिपाद्य है कि काव्य में, उच्चकोटि के काव्य में प्रयोजनातीत सत्य की अभिव्यक्ति होती है। जीवशास्त्रीय लालसा प्रयोजन की पूर्ति करती है। मनुष्य का ऐश्वर्य प्रयोजनों के बाहर है। प्रयोजनातीत पदार्थ का नाम प्रेम है, भक्ति है—मनुष्यता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास इसी 'मनुष्यता' के गायक थे। लेखक की धारणा से बहुत से लोग सहमत नहीं हो सकते हैं, पर भारतीय साहित्य का उद्देश्य बहुत कुछ वैसा ही रहा है।

'साहित्य की नई मान्यताएँ' में लेखक नए युग के ज्ञान - विज्ञान को स्वीकार करता हुआ, पुराने युग की संवृद्ध विरासत को आधार मानता हुआ, मनुष्यता की अपूर्व संभावनाओं में दृढ़ विश्वास व्यक्त करता है। वह आज के मानवीय मूल्य और मनुष्य की मर्यादा के बोध पर बल देकर नव मानवतावाद का समर्थन करता है। वह व्यक्ति मानव से कहीं आगे बढ़कर सामूहिक मानव की मुक्ति का आकांक्षी हो जाता है—इसके मूल में वही संयम है, तप है, प्रयोजनातीत होने की स्पृहा है। द्विवेदी जी के मानवतावादी सिद्धांतों को समझने के लिए उनका 'मानव - सत्य' निबंध बहुत उपयोगी है। "...साहित्य का मर्म वही समझ सकता है जो साधना और तपस्या का मूल्य समझ सके। 'मनुष्य' रूपी पुरुष ही—अर्थात पशु सुलभ धरातल से ऊपर उठता मनुष्यत्व धर्मी जीव ही सृष्टि की सबसे बड़ी साधना है। उससे बड़ा कुछ भी नहीं 'पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः'।"

'मध्यकालीन साहित्यिकों की परस्पर सापेक्षिता', 'साहित्य में मौलिकता का प्रश्न', 'साहित्य में व्यक्ति और समष्टि', हिंदी में शोध का प्रश्न', 'हिंदी और अन्य भाषाओं का संबंध' आदि निबंधों में अनेक समस्याओं पर नए ढंग से विचार किया गया है जो द्विवेदी जी के विकसनशील व्यक्तित्व का द्योतक है।

प्रस्तुत संग्रह द्विवेदी जी की ऐतिहासिक चेतना, नवीन मानवतावाद, नए - पुराने मूल्यों की समंजन - भावना पर प्रचुर प्रकाश डालता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न निबंधों में भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए जिस अपेक्षित दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है, वह भारतीय साहित्य के मूल्यानुचिंतन की दिशा में विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।[1]

—चंद्रहास

१. विचार प्रवाह, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक हिंदी - ग्रंथ - रत्नाकर, प्रा० लिमिटेड, बंबई ४ मूल्य ५.०० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंत जी के दो काव्य संग्रह : चिदंबरा और रश्मिबंध

'चिदंबरा' और 'रश्मि बंध' हिंदी के कृती कवि सुमित्रानंदन पंत की चुनी हुई कविताओं के संग्रह-ग्रंथ हैं। चिदंबरा में 'युगवाणी' से 'वीणा' तक की चुनी हुई रचनाएँ संगृहीत हैं और इस दृष्टि से यह पल्लविनी (जिसमें वीणा से युगांत तक की विशिष्ट कविताएँ संकलित हैं) की पूरक है। 'रश्मिबंध' में 'वीणा' से 'वाणी' तक की चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं। प्रथम के आधार पर पंत जी के द्वितीय उत्थान का आकलन किया जा सकता है तो द्वितीय के आधार पर उनकी रुचियों का समग्रतः मूल्यांकन। यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कविताओं के चयन का कार्य स्वयं पंत जी ने किया है, इसलिए उनकी रुचि और परिष्कृति के विकासक्रम को समझने के लिए इन दोनों संग्रहों का विशेष महत्व है। इनके साथ जो चिंतनपूर्ण भूमिकाएँ जुड़ी हुई हैं, वे पंत जी के क्रमिक विकास तथा उनके काव्यगत मान-मूल्यों पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं, उनसे सर्वत्र सहमत न होना अलग बात है।

भूमिका में पंत जी ने लिखा है—'पल्लविनी' में सन् १८ से लेकर ३६ तक, मेरे उन्नीस वर्षों के कृतित्व के पदचिह्न हैं, और चिदंबरा में सन् ३७ से ५७ तक, प्रायः बीस वर्षों की विकास-श्रेणी का विस्तार। मेरी द्वितीय उत्थान की रचनाएँ, जिनमें युग की, भौतिक, आध्यात्मिक दोनों चरणों की प्रगति की चापें ध्वनित हैं, समय समय पर, विशेषरूप से, कटु आलोचनाओं एवं आक्षेपों की लक्ष्य रही हैं। ये आलोचनाएँ, प्रकारांतर से, उस युग के साहित्यिक मूल्यों तथा रूप - शिल्प - संबंधी संघर्षों तथा द्वंद्वों की निदर्शन हैं, और स्वयं अपने में एक मनोरंजक अध्ययन भी। आनेवाली पीढ़ियाँ निश्चयपूर्वक देख सकेंगी कि उस युग का साहित्य, विशेष कर, आलोचना क्षेत्र, किस प्रकार संकीर्ण, एकांगी, पक्षधर तथा वादग्रस्त रहा है और उसमें तब की राजनीतिक दलबंदियों के प्रतिफल स्वरूप किस प्रकार मान्यताओं तथा कला - रुचि - संबंधी साहित्यिक गुटबंदियाँ रही हैं...।'

यह सही है कि पंत जी की द्वितीय उत्थान की कविताओं का मूल्यांकन निरपेक्ष दृष्टिकोण से नहीं हुआ और वादग्रही आलोचकों ने कुछ रचनाओं को उछाला और कुछ को हीन बतलाया। इससे सहृदय पाठकों को क्षोभ भी हुआ। पर चिदंबरा में संगृहीत रचनाओं के संबंध में पंत जी ने जो वक्तव्य दिया है उसके आधार पर विचार करना अधिक संगत होगा। भूमिका में पंत जी ने कुछ महत्त्वपूर्ण बातें उठाई हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१. कुछ आलोचकों को युगवाणी से उत्तरा तक की मेरी रचनाओं में कला - ह्रास के चिह्न दृष्टि गोचर होते हैं, जिसे मैं दृष्टिभेद की विडंबना कहूँगा। 'उत्तरा' को सौंदर्यबोध तथा भावऐश्वर्य की दृष्टि से, मैं अब तक अपनी सर्वोत्तम कृति मानता हूँ।

२. काव्यगुण तथा लोकमांगल्य की दृष्टि से मेरी उत्तर कृतियों के चैतन्य तथा कला-बोध के सामने पल्लव की कला अल्पप्राण बालिका के समान तुतलाती प्रतीत होती है।

३. युग संघर्ष के अनेक रूपों को मैंने अपने काव्य - रूपकों द्वारा भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

४. 'मेरा काव्य मुख्यतः आध्यात्मिक काव्य नहीं है, और, यदि है भी, तो प्राचीन रूढ़ि अर्थ में नहीं जिसमें अध्यात्म, वैराग्य के सोपान पर अन्न, प्राण, मन की श्रेणियों को पार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर केवल ऊर्ध्वमुख चिदाकाश की ओर आरोहण करता है। मेरे द्वितीय उत्थान के काव्य के लिए उपयुक्त संज्ञा होगी, नवीन चेतना काव्य, जिसके अंतर्गत मानव जीवन मन के उच्च एवं समदिक् दोनों स्तरों की संस्कृत, संतुलित, व्यापक सामाजिकता तथा नव मानवता के तत्व वर्तमान हैं।

५. युगवाणी से वीणा तक मेरा समस्त काव्य युगमानव एवं नव मानव के अंतर्तम संघर्ष का काव्य है।

युगवाणी से उत्तरा तक की रचनाएँ विशेष - विशेष बाह्य प्रभावों से उद्‌भूत हैं। कवि सर्वत्र उन प्रभावों को आत्मसात नहीं कर सका है और फलस्वरूप उसकी कुछ रचनाएँ इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक हो गई हैं। इन समस्त कविताओं को बहुत कुछ उसकी कलात्मक प्रौढ़ता ही संभालती है। पर कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जिनमें उनके भाव-सौंदर्य तथा कला-दृष्टि में काफी निखार आ गया है। युग उपकरण, मार्क्स के प्रति, साम्राज्यवाद, धनपति, कृषक, धोबियों का नृत्य, मजदूरनी के प्रति, द्वा सुपर्णा, कौवे के प्रति, ज्योति वृषभ, काल अश्व, पुरुषार्थ, अंतिम पैगंबर आदि पहली श्रेणी में रखी जायगी। पर ग्राम श्री, संध्या के बाद रेखा चित्र, हिमाद्रि और समुद्र, चंद्रोदय, प्रभात का चाँद, चौथी भूख, स्वप्रबंधन, स्वप्रदेही, कवींद्र रवींद्र के प्रति आदि रचनाएँ द्वितीय श्रेणी में आएँगी। ये क्यों श्रेष्ठ हैं? इस प्रश्न पर हम आगे विचार करेंगे।

पंतजी ने उत्तरा को सौंदर्यबोध तथा भावऐश्वर्य की दृष्टि से अपनी सर्वोत्तम रचना माना है। वस्तुतः उत्तरा की अधिकांश कविताओं में भावसौंदर्य और शिल्पसौष्ठव को सहज ही एकरूपता प्राप्त हो गई है। गीत विहग, युगविराग, जीवनउत्सव, निर्माणकाल, शोभाक्षण, युगदान, जीवनदान, शरदागम, शरद चेतना आदि को उक्त मत की पुष्टि में उद्‌धृत किया जा सकता है। पल्लव के उद्दाम वेग और मांसल कल्पना को यहाँ ढूँढ़ने पर निराशा ही हाथ लगेगी।। उन्हें पल्लव में ही ढूँढ़ना चाहिए। यहाँ पर वाणी और विचारों में शांतिपूर्ण संयम है जो दीर्घकालीन साधना के उपरांत ही प्राप्त होता है। पर इस संग्रह में ऐसे स्थल भी हैं जो दार्शनिक शब्दावली में काव्यसौंदर्य को छिपा लेते हैं।

पंत जी लोकमांगल्य तथा काव्यगुण में अपनी उत्तर कृतियों को पल्लव से प्रौढ़तर मानते हैं। पर उन्होंने दोनों को इस तरह नहीं देखा है कि उनकी विभाजक रेखा स्पष्ट हो जाय। विभाजक रेखा का तात्पर्य है भाव तथा कलागत प्रौढ़ता के विभिन्न स्तर। अभी तक कुछ लोग पल्लव को ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। इन दोनों दृष्टियों में भारी असंगति है। सूक्ष्म विचार करने पर दोनों बातें अपनी अपनी जगह पर उचित और संगत प्रतीत होंगी।

युग संघर्ष के जिन अनेक रूपों को पंत जी ने अपने काव्य - रूपकों में व्यक्त किया है वे निर्विवादरूप से काव्य - सौंदर्य से विरहित हैं। पंत जी ने अपने उत्तर काव्य को आध्यात्मिक काव्य न मानकर 'नवीन चेतना काव्य' माना है। लेकिन इस काव्य का मूल्यांकन करने के लिए 'नव - चेतना' की व्याख्या अपेक्षित है।

सब मिला कर पंत जी का काव्य आध्यात्मिक काव्य नहीं है, ऐसा होने पर उसे काव्य के अंतर्गत नहीं रखना होगा। पर ऐसी बहुत सी कविताएँ हैं जिनमें आध्यात्मिक संदेश आध्यात्मिक शब्दावली में दिए गए हैं। ऊपर जिन श्रेष्ठ कविताओं का उल्लेख है वे श्रेष्ठ क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं ? वे प्रायः प्रकृति की भी सुषमा से समन्वित हैं। प्रकृति के प्रति पंत जी का जो सहज अनुराग है वह उन कविताओं में निश्चल रूप से अभिव्यक्त हो उठा है। पंत जी इन समस्त चित्रों में उत्तरोत्तर संयमित होते गए हैं। यह संयम भावोच्छ्वास तथा शैली दोनों में देखा जा सकता है। अतिमा और शशि के 'जन्म दिवस', स्मृति, शांति और क्रांति, गिर प्रांतर, युगमन के प्रति, कूर्मांचल के प्रति के सौष्ठव के मूल में भी वह गहन अनुभूति और प्रवृत्ति के प्रति आत्यंतिक अनुराग अनुस्यूत है। इन कविताओं में जहाँ उनके अंतर्दर्शन का सहज स्पर्श हो गया है वे एक नव्यतर ज्योति से चमक उठी हैं।

शेष कविताओं को दो कोटियों में बाँटा जा सकता है, १ - दर्शन का गद्यात्मक कथन और २ - भविष्यत् का सुख - स्वप्न - दर्शन। पहली कोटि के संबंध में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि वह काव्य के अंतर्गत नहीं आती। भविष्यत् के सुख - स्वप्न - दर्शन में पंत जी की आस्था सर्वत्र, अखंडित और पूर्ण है। इन कविताओं पर अरविंद दर्शन और फ्रायड के उपचेतन मन संबंधी विचारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'गीतों का दर्पण' में उन्होंने लिखा है—

यदि मरणोन्मुख वर्तमान से
  ऊब गया हो कटु मन,
उठते हों न निराश लौट पग,
  रुद्ध श्वास हो जीवन!

× × ×

तो मेरे गीतों में देखो
  नव भविष्य की झाँकी
निःस्वर शिखरों पर उड़ता
  गाता सोने का पाँखी

× × ×

यदि यथार्थ की चकाचौंध से
  मूढ़ दृष्टि अब निष्फल,
डूबो गीतों में, जिनका,
  चेतना द्रवित अंतस्तल।

वर्तमान की कटुता से ऊबकर भविष्यत् में शरण लेना रोमैंटिक प्रवृत्ति ही है। यथार्थ की चकाचौंध से मूढ़दृष्टि होकर गीतों में डूबना उसी तथ्य का सूचक है। यह सच है कि अधिकांश कविताओं में कवि न तो किसी दार्शनिक पद्धति का लेखा - जोखा उपस्थित करता और न उपचेतन सिद्धांत को ही प्रस्तुत करता है। उनके प्रभावों को वह अच्छी तरह आत्मसात् कर सका है, इसमें भी संदेह नहीं। किंतु जीवन की वास्तविकताओं से कट कर यह भविष्यत् सुख - स्वप्न - दर्शन पाठकों को स्पर्श नहीं कर पाता। पृथ्वी पर स्वर्गिक शिखरों का वैभव लुटाने से, स्वर्ण - किरण बरसाने से, नव अरुणोदय, नव लोकोदय की कल्पना से, आत्मा से ऊर्ध्व संचरण से इस धरती का क्या बदला। क्या यह 'विशफुल थिंकिंग' नहीं है? फिर भी पंत जी अपने कला - सौष्ठव के स्थलों पर पाठकों को अपने साथ बहा ले जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रश्मिबंध' की भूमिका में कवि अपने विकास - क्रम का लेखा - जोखा प्रस्तुत करता है जो उसकी क्रमशः विकसित होती हुई काव्य - चेतना को समझने के लिए बहुत आवश्यक है। प्रसंगात् उन्होंने 'छायावाद' और 'प्रयोगवाद' के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं वे मननीय हैं। छायावाद के संबंध में उनका कहना है—"छायावादी काव्य वास्तव में भारतीय जागरण की चेतना का काव्य रहा है। उसकी एक धारा राष्ट्रीय जागरण से संबद्ध रही है। और दूसरी धारा का संबंध उस मानसिक-दार्शनिक जागरण की भावनात्मक तथा सौंदर्य-बोध-संबंधी प्रक्रियाओं से रहा है जिसका समारंभ औपनिषदिक विचारों तथा पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभावों के कारण हुआ है।" प्रगतिवाद के संबंध में उनका विचार है—

"प्रगतिशील कविता वास्तव में छायावाद की ही एक धारा है। दोनों के स्वर में जागरण का उदात्त संदेश मिलता है—एक में मानवीय जागरण का दूसरे में लोक-जागरण का।"

प्रयोगवाद के संबंध में उनका कहना है—

"प्रगतिवाद के अतिरिक्त छायावादी काव्य - भावना ने एक और आत्माभिव्यक्ति की पगडंडी पकड़ी जो, पीछे, स्वतंत्ररूप धारण करने पर प्रयोगवादी कविता कहलाई।"

इनके संबंध में पंत जी ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ लोगों ने अन्यत्र भी इसी तरह के उद्‌गार व्यक्त किए हैं। पर विश्लेषण करने पर इस कथन की सत्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है। इस दृष्टि से सन् २० के बाद का काव्य - साहित्य छायावादी साहित्य ही है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के संबंध में उनकी आगे की टिप्पणियाँ भी द्रष्टव्य हैं—

"विचार दर्शन की दृष्टि से, वह (प्रगतिवाद) नवीन जनभावना को अभिव्यक्ति न दे सकने के कारण केवल तात्कालिक परिस्थितियों के कोरे राजनीतिक नारों को बार बार दुहरा कर उनका पिष्टपेषण मात्र करता रहा।"

"जिस प्रकार प्रगतिवादी काव्यधारा मार्क्सवाद एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नाम पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक आर्थिक तथा राजनीतिक तर्क - वितर्कों में फँसकर एक किमाकार यांत्रिक सामूहिकता की ओर बढ़ी, उसी प्रकार प्रयोगवाद की निर्झरिणी कल - कल छन - छन करती हुई, फ्रायडवाद से प्रभावित होकर स्वर-संगतिहीन भावना-लहरियों में मुखरित अवचेतन की रुद्ध ग्रंथियों को मुक्त करती हुई एवं दमित कुंठाओं-आकांक्षाओं को वाणी देती हुई, लोक-चेतना के स्रोत में द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने पृथक् अस्तित्व पर अडिग जमी रही।... उनमें उर्दू शायरी की सी बारीकियों, रीतिकालीन स्वरैक्यपूर्ण चित्रणों, अत्युक्तियों, भेदोप-भेदों की विचित्रताओं तथा सस्ती अहंजन्य अपसाधारणाओं के कारण सभी ओर से ह्रास के चिह्न प्रकट होने लगे हैं।"

एक समय प्रयोगवादी कविता में उपर्युक्त ह्रासोन्मुखता के तत्त्व अवश्य मौजूद थे, पर आज कई संग्रहों के निकल जाने से, वह स्थिति बहुत कुछ बदल गई है। उनके आधार पर उसका पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है।

जो हो, पंत जी के ये दोनों काव्यसंग्रह उनके विकास - क्रम को जानने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे। दोनों संग्रहों की भूमिकाएँ पंत जी की जिस वैचारिक भूमि को प्रस्तुत करती हैं उसके आधार पर केवल पंत जी के अपने काव्य - संबंधी विचारों को ही नहीं जाना जा सकता है बल्कि उससे काव्यसंबंधी उनकी स्वतंत्र मान्यताओं तथा आधुनिक युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अनेकानेक साहित्यिक समस्याओं पर भी प्रचुर प्रकाश पड़ता है। हम इन दोनों संग्रहों का स्वागत करते हैं।[२]

—चंद्रहास

आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य

यह एक शोध - प्रबंध है। इसमें एक लंबी भूमिका, सात प्रकरण और पाँच परिशिष्ट हैं। यद्यपि लेखक ने अपने प्रबंध को खंडों में नहीं विभक्त किया है तथापि स्पष्टतः इसके दो खंड किए जा सकते हैं। पहले खंड में भूमिका और पहला प्रकरण संमिलित किया जा सकता है। इन दोनों के लिए कुल दो सौ पृष्ठ और शेष प्रबंध के लिए (परिशिष्टों को छोड़कर) २८० पृष्ठ दिए गए हैं। केवल सैद्धांतिक विवेचन में इतने अधिक पृष्ठ लगा देना औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। जब सिद्धांत और व्यावहार अलग अलग रास्ता पकड़ने लगते हैं तो संतुलन और भी खो जाता है।

'प्रेम और सौंदर्य का स्वरूप' प्रकरण में लेखक प्रेम के स्वरूप को समझाने के लिए 'सृष्टि के अनादि तत्त्व (ब्रह्म तत्व) से प्रारंभ करता है। फिर तो वह कई पृष्ठों तक सत, चित, आनंद; चित्त, आत्मा, देह, आदि के विवेचन में संलग्न हो जाता है। पाठक यहीं से अंदाज लगा सकता है कि आधुनिक कविता के प्रेम और सौंदर्य का विश्लेषण करते समय लेखक इस मेटाफिजिकल विवेचन का कहाँ तक उपयोग कर सकता है। प्रेम का थोड़ा - बहुत मनोवैज्ञानिक विवेचन तो हुआ है पर सामाजिक नहीं। लेखक मुख्यतः प्रेम की नीतिमूलक और आदर्शवादी व्याख्या में ही अनावश्यक रूप से उलझ गया है। सौंदर्य की विवेचना के समय भी ऋग्वेद में 'सुंदर' शब्द का प्रयोग कहाँ - कहाँ हुआ है, यह खोजना भी आवश्यक समझा गया है। फिर तो उसकी परिभाषा में देशी - विदेशी विचारकों, कवियों, लेखकों की परिभाषाओं की काफी लंबी उद्धरणी दी गई है। सौंदर्य की व्यक्तिनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता की समस्या सुलझाने में १५ – २० पृष्ठ लगा दिए गए हैं। इस तरह यह प्रकरण मूल विषय से अनेक स्थलों पर असंपृक्त हो गया है।

फिर तो प्रत्येक काल का स्थूल लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए समय-सामान्य, युग चेतना, साहित्य पर प्रभाव के नाम पर सन् १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम, महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र, रेल - तार - डाक के प्रचलन आदि का आकलन प्रस्तुत किया गया है। कविताओं पर टिप्पणियाँ करते समय पं० पद्मसिंह शर्मा से शैली उधार माँग ली गई है। एक उदाहरण देखिए—

"कितनी गजब की हार्दिकता है, व्यथा में कैसी सचाई है। प्राचीन राजपूती ऐंठ और आनबान की पृष्ठभूमि में देखने पर यह विवशता और करुणा हृदय को गला डालनेवाली है। 'ठाठ मारि भू फारि चहत पाताल सिधावन' की सचाई पर सैकड़ों गीत तुल सकते हैं।"

द्विवेदीकाल की विवेचना के पूर्व फिर वही लेखा - जोखा, वंग - भंग, लैंसडाउन, कर्जन,

१. चिदंबरा, ले० श्री सुमित्रानंदन पंत प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, बंबई, इलाहाबाद, पटना, मद्रास; मू० १०.०० रु०

२. रश्मि बंध—लेखक और प्रकाशक वही; मू० २ रु० ५० न० पै०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिंटो, हार्डिंज की नीतियाँ, रौलेट एक्ट, खिलाफत आंदोलन का ब्योरा। टिप्पणियों का नमूना देखिए—

"और, कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी तो फेफड़े की सारी शक्ति लगाकर और पूरा कंठ खोलकर प्रेम का गौरव - गान करते नहीं अघाते हैं।"

छायावादी कवियों के प्रेम और सौंदर्य की व्याख्या करते हुए भी लेखक बदले हुए नैतिक मूल्यों का विचार नहीं करता। इसलिए यहाँ भी वह स्वकीया और परकीया प्रेम को जाँचना चाहता है। प्रयोगवादी कविता के संबंध में लेखक का दृष्टिकोण उलझा हुआ है, प्रगतिवाद के संबंध में पुरानी बातें दुहरा दी गई हैं। फिर भी लेखक ने सामग्री जुटाने का प्रयास किया है जो व्यवस्था तथा गहन व्याख्या के अभाव में निष्प्रभ हो गई है।[3] —अजीत

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण 'अभिनंदन - ग्रंथ'

हिंदी-भारती के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का जीवन और कृतित्व हमारे देश का अमर गौरव है। अतः वे सर्वथा अभिनंदनीय हैं। इस दिशा में श्री 'बरुआ' जी ने ३०० पृष्ठों के अभिनंदन ग्रंथ का जो प्रकाशन किया है वह सराहनीय है। इस ग्रंथ में राष्ट्रकवि के ७३ वर्षों की जीवन - गाथा को संपादक ने समर्थ भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा गुप्त जी के जीवन का सहज, पर साथ ही गौरवपूर्ण एवं आदरणीय चित्र पाठक के अंतरपट पर अंकित होता है। यह प्रकाशन गुप्त जी के व्यक्तिरूप और कलाकार रूप दोनों का पूर्ण परिचय देता है।

जिस लगन, अध्यवसाय, श्रम, निष्ठा तथा मर्मज्ञता के साथ सामग्री - संकलन किया गया है, उसके लिए संपादक बधाई का पात्र है। सामग्री में विविधता के रहने पर भी गुप्त जी के साहित्य का समीक्षणात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया होता तो ग्रंथ का महत्त्व और भी बढ़ जाता। कुछ कारणों के फलस्वरूप श्री बरुआ जी इस अभिनंदन - ग्रंथ की मूल कल्पना को साकार न कर सके। तथापि यह निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रंथ अपनी अपूर्णता में भी पूर्ण है।

साहित्यिक दृष्टि से अपने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होने के साथ - साथ प्रकाशन - कला और संपादन - शिल्प की दृष्टि से भी यह ग्रंथ अत्युत्कृष्ट और आकर्षक है। अभिनंदन - ग्रंथों की भीड़ में आज के संपादन, उपर्युक्त दृष्टि से इतने कलापूर्ण, शिल्प - संघटित एवं वैशिष्ट्य - संपन्न, देखने में प्रायः नहीं आते। प्रकाशन - कला की सभी दृष्टियों से भी यह प्रकाशन सुरुचिपूर्ण एवं प्रशंसास्पद है।

ग्रंथ का मूल्य, देश की निर्धन जनता का विचार करते हुए यद्यपि कुछ अधिक है और यद्यपि एकाध सामान्य अशुद्धियाँ [जैसे—'ख्यात्' का 'त्' हलंत है जो 'त' होना चाहिए। दे०—'प्रकाशकीय अभिनंदन' में 'लोकख्यात्' पृ० १, पंक्ति प्रथम 'विश्वविख्यात्'] ऐसी हैं जिन्हें भ्रमवश नहीं कह सकते, तथापि ग्रंथ, भाषा और शैली की प्रौढ़ता, प्रांजलता एवं समर्थता से

३. आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य, ले० डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, प्र० नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, मू० १२.५० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आद्यंत भरा हुआ है। 'गुप्त जी के जीवनदर्शन और राष्ट्रीय व्यक्तित्व' की इस मंजूषा का हम स्वागत करते हैं और इसके लिए बरुआ हमारे साधुवाद के पात्र हैं।[४]

वृंदावनी हथेली (कलकत्ता)

वृंदावनी हथेली 'बरुआ' जी का कविता-संग्रह है। कथा-साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा-सूक्तियों की नूतन कल्पना द्वारा कलाकार अपना परिचय दे चुका है। काव्य के क्षेत्र में श्री 'बरुआ' का यह संकलन अपनी विशेषता रखता है। नई शैली, नूतन जीवन-दृष्टि, नवीन अभिव्यंजना और नए प्रकाशन-शिल्प को लेकर आविर्भूत यह कृति स्वागताई है। काले पृष्ठों में रुपहले तारों से चमकते अक्षरों में मुद्रित यह रचना सामान्य से विलक्षण एवं साथ ही हृदयस्पर्शी भी है। यद्यपि अक्षरों के पढ़ने में आँखें सुखी नहीं होतीं तथापि तमसाच्छन्न पृष्ठों में जीवन की किरणों का आभास मिल ही जाता है। आशा है, अपने शिल्पविकास में 'बरुआ' जी अग्रसर होते चलेंगे।[५]

हिंद पाकेट बुक्स की चार पुस्तकें

हिंद पाकेट बुक्स, प्रा० लि० ने हिंदी में, अमेरिकन प्रकाशकों के अनुकरण पर उक्त सिरीज का सर्व प्रथम प्रकाशन, बड़े पैमाने पर आरंभ करने का प्रयास किया है। अब अनेक प्रकाशक इस प्रकार की ग्रंथमालाएँ प्रकाशित कर रहे हैं। विदेशों में ऐसी अनेक ग्रंथमालाएँ छपती हैं। इनसे उच्चतम लेखकों के उच्चतम ग्रंथों तक का प्रकाशन सस्ते मूल्यों में जन-सामान्य को सुलभ हो जाता है। हिंदी-प्रकाशकों के प्रस्तुत प्रयास से यदि हिंदी में भी उत्तम कृतियों के सस्ते संस्करण, पर्याप्त मात्रा में मिलने लगें तो, अध्ययनशील पर सामान्य मध्यवर्गीय पाठकों की अध्ययन तृष्णा अधिक तृप्त हो सकेगी।

'एक सवाल'—श्री अमृता प्रीतम का लघु उपन्यास है। अमृता प्रीतम जी पंजाब की साहित्यिक हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। कविता, कहानी और उपन्यास—सभी क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा का मनोरम स्फुरण हुआ है। 'साहित्य अकादमी' और पंजाब के भाषा-विभाग ने पुरस्कार द्वारा उन्हें संमानित किया है। अनेक भाषाओं में अनूदित होने का सौभाग्य—उनकी कृतियों को प्राप्त है। पंजाब के लोक-जीवन को गहराई के साथ देखने तथा सहज रूप से उन्हें अंकित करने में अमृता जी को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रस्तुत रचना उनका एक रोमांटिक उपन्यास है। इसमें कलाकार 'जगदीप' के भावुक हृदय और रोमांटिक प्रेम का चित्रांकन किया गया है। नूरां, रामिंदर और रेखा—तीन नारियाँ जगदीप के जीवन में अपना प्रेम लेकर आती हैं। तीनों ही अपने-अपने रोमांटिक रूपों में कलाकार के हृदय को विकलता से भर देती हैं। अंत में 'रेखा' का प्रेम अपना 'एक सवाल' पेश करता है। पर चित्रकार जगदीप उसे पढ़ता है और, यतः उस समय तक 'रेखा' इस दुनिया से चली जा चुकी है, अतः जगदीप चुपचाप, सर नीचा किए चल देता है। अमृता जी का यह

४. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ ;संपादक, श्री ऋषि जैमिनी 'बरुआ'। प्रकाशक—जैमिनी प्रकाशन, कलकत्ता। मूल्य २१.०० रु०।

५. वृंदावनी हथेली नगरी कलकत्ता, रचयिता श्री 'बरुआ' प्रकाशक — जैमिनि प्रकाशन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास लघुकाय होने पर भी कला और अभिव्यक्ति, गहराई और शैली की दृष्टि से सफल कृति है।

भूल—श्री गुरुदत्त का सामाजिक उपन्यास है। इसके नायक - नायिका मदनमोहन और निर्मला का प्रेम - विवाह हुआ और दोनों नौकरी करते हुए अपना जीवन अपने ढंग से बिता रहे थे। पर 'पटरानी' नाम की एक नौकरानी घर में आती है। निर्मला का असहिष्णु और ईर्ष्यालु हृदय पति के प्रति संदेह से भर जाता है। मित्रपत्नी धनवती के प्रति भी वह अकारण संदेह करने लगती है। निर्मला नौकरी छोड़ना नहीं चाहती और मदनमोहन नौकरी कराना नहीं चाहता। दोनों के बीच दरार पड़ जाती है। अंततः दोनों में विच्छेद हो जाता है। निर्मला का जीवन - क्रम घूस और अनौचित्य के पथ पर बढ़ चलता है। फलतः उसके पुत्र और पुत्री दोनों के जीवन नष्ट हो जाते हैं। निर्मला की सारी अनुचित कमाई लेकर दोनों भाग भी जाते हैं। अनुचित उपायों से धन - संपन्न निर्मला अंत में नौकरी से भी पृथक् कर दी जाती है और उसकी सारी कमाई भी चली जाती है। अपनी छोटी - सी 'भूल' के कारण नारी केवल अपना जीवन ही नष्ट नहीं करती वरन् सारे परिवार का जीवन अव्यवस्थित कर देती है। उपन्यास में गहराई नहीं है। पर वह साधारण शिक्षाप्रद है।

आज की उर्दू शायरी—श्री प्रकाश पंडित द्वारा संकलित एवं संपादित प्रस्तुत रचना अपने उद्देश्य में सफल कही जा सकती है। वर्तमान युगीन चुने हुए उर्दू के शायरों की 'बेहतरीन गजलों, रुबाइयों और शेरों का इसमें अच्छा संकलन किया गया है। सबद्ध विषय के मर्मज्ञ होने के कारण संपादक का संग्रह, अपनी लघु परिधि में उत्तम ही कहा जायगा। संपादक ने 'शायरों' का जो रेखाचित्रात्मक परिचय दिया है वह भी विषय में लेखक की पैठ और पैनी आलोचक दृष्टि का परिचायक है। हम कृति का स्वागत करते हैं।

जैसा चाहो वैसा बनो—स्वेट मार्डेन की पुस्तक का हिंदी सारांश - रूपांतर है। इसके लेख दुर्बल - हृदय व्यक्ति के अंतःकरण में आत्मावलंब और आत्मविश्वास की प्रेरणा देनेवाले हैं। मानव को आत्म - निर्भरता के माध्यम से सफलता के पथ पर आगे बढ़ाने वाले हैं। हमारे जीवन में, इस पुस्तक की शिक्षा पर चलने से मनोबल, कर्मठता और चरित्र - दृढ़ता उत्पन्न होगी जो हमें उन्नति के पथ पर अवश्य ले जायगी। जीवन-यात्रा में प्रविष्ट होनेवाले युवक - युवतियों को ऐसी रचनाओं का मनन अवश्य करना चाहिए।[६]

—कृ० प० त्रि०

चित्ररेखा

रस - रोमांस की लोक - प्रचलित कथा - कहानियों के आधार पर लोकभाषा अवधी में प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना करनेवाले हिंदी के सूफी मुसलमान कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी शिरमौर माने गए हैं। दोहे और चौपाई की प्रबंधशैली में लिखा गया इनका 'पदमावत' नामक मनोहर काव्य लोकप्रसिद्ध है। इसकी रचना तुलसीदास के जन्म से कोई

६. एक सवाल (उपन्यास), भूल (उपन्यास), आज की उर्दू शायरी, जैसा चाहो वैसा बनो। प्रकाशक—हिंद पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली प्रत्येक का मूल्य १.०० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह वर्ष पूर्व ही हुई थी। 'रामचरित मानस' में इस ग्रंथ की रचनापद्धति — भाषा, शैली और छंद का पूर्ण प्रतिफलन हुआ। अद्यतन शोधों से पता चला है कि जायसी ने लगभग डेढ़ दर्जन ग्रंथों की रचना की थी। दुर्भाग्यवश अभी उनमें से कुछ थोड़े से ग्रंथ ही प्रकाश में आ पाए हैं। तीन ग्रंथों का संपादनकार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया था। ये तीन ग्रंथ पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम जायसी ग्रंथावली के अंतर्गत काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हैं। 'ग्रंथावली के प्रथम संस्करण (१९२४ ई०) में केवल 'पदमावत' और 'अखरावट' नामक कृतियाँ ही थीं। 'आखिरी कलाम' की उपलब्धि शुक्ल जी को बाद में हुई और १९३५ ई० में जायसी ग्रंथावली का एक अभिनव संस्करण प्रकाशित किया गया। इसके विद्वान संपादक डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी की उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त उनकी एक चौथी रचना 'महरी बाइसी' (कहरानामा) को भी हिंदी संसार के संमुख उपस्थित कर दिया। अब श्री शिवसहाय पाठक के सत्प्रयास से जायसी की यह पाँचवीं कृति 'चित्ररेखा' प्रकाश में आई है और जायसी ग्रंथावली के पूर्वोक्त संस्करणों में एक महत्वपूर्ण अभिवृद्धि की आवश्यकता आ पड़ी है।

'चित्ररेखा' एक छोटा सा प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी रचना में जायसी ने पदमावत-पद्धति की ही आवृत्ति की है। भाषा भी लोककंठ की मिठास से रससिक्त वही अवधी है। छंद की दृष्टि से सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहा लगाने के क्रम का वैसा ही निर्वाह किया गया है। आरंभ में ईश्वर की वंदना की गई है, मुहम्मद साहब और चार यारों का वर्णन किया गया है, गुरु परंपरा का स्पष्ट उल्लेख है और कहा गया है कि 'चित्ररेखा' की लोकप्रचलित कहानी को काव्यनिबद्ध किया जा रहा है। लोक प्रचलित कथा-कहानियों के साहित्य-गृहीत रूप तथा उनमें व्यवहृत होनेवाली कुछ कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन की दृष्टि से 'चित्ररेखा' की कहानी बहुत महत्वपूर्ण है। आकस्मिक घटनाओं, संयोगों और दैवकृपा अथवा किसी ऋषि के आशीर्वचन के संतुलित संमिश्रण द्वारा संपूर्ण कथानक को मध्ययुगीन परिधान देने में जायसी को उनकी इस कृति में भी अच्छी सफलता मिली हैं। 'पदमावत' की तुलना में इस कथा-काव्य की एक प्रमुख बिशेषता यह है कि यह दुःखांत नहीं है। किसी व्यास के आशीर्वाद से कथानायक प्रीतम कुँवर को जीवन का बरदान मिलता है और वह निराशा का परित्याग करके मरणपुरी काशी से वापस लौट आता है तथा अपनी प्रिया चित्ररेखा को दर्शन देकर उसे चिता में भस्म होने से बचा लेता है। 'चित्ररेखा' के प्रस्तुत संस्करण में संपादक श्री शिवसहाय पाठक ने प्राक्कथन जोड़कर उसकी उपर्युक्त विशेषताओं पर यथाशक्ति विचार किया है। प्राक्कथन के चालीस पृष्ठों में से कोई चौबीस पृष्ठ जायसी के जीवन वृत्त पर व्यय किए गए हैं। ९–१० पृष्ठों में जमकर 'चित्ररेखा' की गद्यानुवादित कहानी लिखी गई है और बाकी के मात्र छह-सात पृष्ठों में कृति का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है।

नागरीप्रचारिणी सभा की १९४७ ई० की खोज रिपोर्ट में 'चित्ररेखा' की सूचना थी, किंतु यह कृति अब तक अज्ञात और अप्रकाशित रही। श्री पाठक ने परिश्रमपूर्वक उसकी दो प्रतियाँ खोज निकालीं। एक प्रति हैदराबाद के सालारे जंग संग्रहालय में मिली और दूसरी अहमदाबाद में। प्रस्तुत संपादन में उन्होंने उक्त दोनों प्रतियों की सहायता ली है और मूलपाठ के साथ पादटिप्पणियाँ लगाकर पाठांतरों का उल्लेख कर दिया है। 'चित्ररेखा' का प्रकाशन हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके द्वारा जायसी के काव्य के अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संभावनाएँ विस्तृत होती हैं। प्रस्तुत संस्करण का महत्व इसलिये भी द्विगुणित हो उठा है कि इसका आरंभ आचार्य श्री पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के 'एक बोल' तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की 'भूमिका' से होता है।[७]

—रवींद्र 'भ्रमर'

रूपाजीवा

एक व्यापारिक मंडी के जीवन पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास महायुद्धजन्य व्यापक प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्रता मिलने के बाद तक यथार्थ चित्रण है। सभी पात्र व्यापारिक क्षेत्र से संबद्ध हैं अतः महायुद्ध के आरंभ से उनके गिरते हुए स्तर और संमान विहीन अस्तित्व का परिचय पदे पदे प्राप्त होता है। यथार्थ के समीप होते हुए भी यह कटु नहीं है, ममता और सहानुभूति से आप्लावित है अतः पाठक उपन्यास लेखक के विचारों और पात्रों के साथ एकात्मता का अनुभव सा करता आगे बढ़ता है। इस प्रकार इसकी रोचकता और एकरसता अंत तक बनी रहती है।

उपन्यास के ३ भाग हैं जिनके नाम क्रमशः बड़ा रुपया, छोटा रुपया और पीली दुअन्नी है। रुपया गिरते हुए मानव मूल्यों का प्रतीक है। इस दृष्टि से तीनों उपशीर्षक प्रतिपाद्य की सक्षम अभिव्यक्ति करते हैं। उपन्यास का प्रत्येक पात्र सजीव है गोरेमल से गुलजारीलाल तक पर सभी पात्रों से अधिक सजीव एवं सबल पात्र हैं ममतामयी मधू बुआ और सरल एवं निश्छल चेतराम। वैसे रूपा बहू भी अपनी स्पष्टवादिता में कम नहीं। उसका जारज पुत्र सूरज हताश विद्रोही होते हुए भी पाठक की उतनी सहानुभूति अर्जित नहीं कर पाता। संतोष का चरित्र कुछ प्रसंग-संबद्ध किया सा गया है। संभवतः सूरज की भावनाओं के उद्वेजन और रामन के दृष्टिकोण से पर उसका पात्र की दृष्टि से कोई विशेष स्थान नहीं। सेठ गोरेमल जो रूपा का पिता और चेतराम का ससुर है, रुपये से ऊपर किसी सामाजिक या नैतिक विधान को और व्यक्ति को नहीं मानता पर उसकी इस धारणा पर तीव्र आघात होता है उसी की लड़की रूपा बहू द्वारा। ईशरी एक क्रांतिकारी है, पर आंदोलन और स्वतंत्रता के बाद जैसे किंकर्तव्यविमूढ़। यह स्थिति उसे छिपे हुए त्याग का फल पाने के लिए बेचैन कर देती है। इन सब विशिष्ट चरित्रों से युक्त यह उपन्यास रोचकता के साथ अपने में पूर्ण है और चिंतन की सामग्री देता है। उपन्यास चूँकि एक मंडी के जीवन पर आधारित है अतः यह व्यापारी-वर्ग और उनके निरंतर संपर्कीजनों के जीवन की वास्तविक झाँकी उपस्थित करता है न कि मध्यवर्गीय समाज के विशृंखल जीवन की।[८]

शुक्रग्रह पर मानव

हिंदी में वैज्ञानिक उपन्यासों का अभाव है। इस संबंध में कुछ मौलिक उपन्यास लिखे गये हैं। अनुवाद द्वारा इस साहित्य की अभिवृद्धि भी हो रही है। एच० जी० वेल्स, ज्यूल्स

७. चित्र रेखा—मालिक मुहम्मद जायसी विरचित प्रेम काव्य, संपादक, श्री शिवसहाय पाठक प्रकाशक, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; एक बोल, भूमिका, निवेदन, प्राक्कथन और मूल पाठ सहित पृष्ठ संख्या ११३, क्राउन, मूल्य २.५० न० पै०

८. **रूपाजीवा** (उपन्यास) लेखक डा० लक्ष्मीनारायणलाल, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृष्ठ संख्या ३७४, मूल्य ६ रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग आदि के उपन्यास हिंदी में अनूदित हो चुके हैं और इस ढंग के उपन्यास हिंदी के पाठकों द्वारा रुचिपूर्वक पढ़े भी जाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की कहानी सामाजिक है जिसे विज्ञान का पुट दिया गया है। कहानी आद्यंत रोचक और हृदयग्राही है। भाषा सरल है। शुक्र ग्रह के रहनेवाले विशाल चींटे हैं और मनुष्य का दिमाग पाया है उन्होंने। एक मनुष्य से मिलती हुई पर भिन्न आकृति की जाति भी है। इन दोनों के साथ मानव संपर्क की रोचक कथा का अंत तक उत्तम निर्वाह हुआ है। प्रूफ की त्रुटियाँ खटकती हैं। छपाई और आवरण पृष्ठ सुंदर है। प्रेमियों के लिए यह उपन्यास पठनीय है।[९]

दशकुमार चरित

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि दंडी के गद्य काव्य 'दशकुमार चरितम्' का यह हिंदी अनुवाद है। अनुवाद शब्दशः नहीं है, पर पूरी कथा को सरल भाषामें सँवार कर लिखा गया है। प्रारंभिक पृष्ठों में भूमिका भाग है जिसमें 'दशकुमार चरितम्' के आधार पर तत्कालीन सामाजिक स्थिति और मान्यताओं का अनुवादक द्वारा विश्लेषण किया गया है। मूल संस्कृत ग्रंथ की भाषा की झलक इस अनुवाद से प्राप्त न हो सकेगी क्योंकि अनुवादक ने उस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग सरलता को ध्यान में रखते हुए नहीं किया है। दशकुमार चरितम् की पूरी कथा का आस्वादन इस अनुवाद से भलीभाँति प्राप्त हो जाता है। हिंदी के पाठकों के लिए यह अनुवाद रोचक लगेगा, इसमें संदेह नहीं।[१०]

संगीत निबंधावली

संगीत निबंधावली के प्रस्तुत प्रथम भाग में संगीत के आधिकारिक विद्वानों के २३ लेखों का संग्रह है। संग्रह इस दृष्टि से उपयोगी है कि संगीत के विभिन्न अंगों का इससे संक्षेपात्मक परिचय प्राप्त हो जाता है। वैदिक और पौराणिक संगीत, ख्याल और ध्रुपद, ठुमरी, लोकगीत, वाद्ययंत्र, नृत्य कला आदि पर व्यक्त विचार सरल भाषा में बोधगम्य हैं तथा अध्ययन कर्ता को साधारणतः पूरी जानकारी देने में सक्षम हैं। इसके साथ ही भारतीय संगीत का इतिहास, उसकी प्रगति और स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय संगीत का विकास आदि लेखों द्वारा भारत में संगीत की अद्यतन स्थिति और उसकी रूपरेखा पर समीक्षात्मक प्रकाश डाला गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संगीत और नृत्य का, जो हमारी संस्कृति के प्राण रहे हैं, महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से संगीत के विद्यार्थियों शिक्षकों, कलाकारों और जिज्ञासुओं के लिए यह संग्रह उपादेय है। आवरण पृष्ठ और छपाई सुंदर है।[११]

—विश्वनाथ त्रिपाठी

९. **शुक्रग्रह पर मानव** (उपन्यास) मूल लेखक - राल्फ एम० फार्लें; अनुवादिका - स्वर्णलता भूषण; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ६६ दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या १०२, मूल्य ३.०० रु०।

१० **दशकुमार चरित**—अनुवादक - श्री रांगेय राघव; प्रकाशक राजपाल एंड संस, दिल्ली ६; पृष्ठ संख्या २३१; मूल्य ३.०० रु०।

११. **संगीत निबंधावली** संपादक—लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस (उत्तर प्रदेश); पृष्ठ संख्या १५६; मूल्य २.०० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने की बातें

यह पुस्तक बंगला पुस्तकमाला 'जानवार कथा' के पहले भाग 'प्रकृतिविज्ञान' का अनुवाद है। इसके अध्याय इस प्रकार हैं, आकाश की कहानी, सौर मंडल, नक्षत्र मंडल, पृथ्वी की कहानी, जीव की कहानी, उद्भिद् की कहानी, प्राणियों की कहानी, मनुष्य कहाँ से आया, मनुष्य का शरीर। विषय का विवेचन ऐसी शैली में किया गया है जो बालकों के लिये सुबोध है। अनुवाद की भाषा आसान और चलती हुई है। पुस्तक बालकों के लिये मनोरंजक और उपयोगी है।[१२]

त्रिलोचन

प्राप्तिस्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकें सधन्यवाद समीक्षार्थ प्राप्त हुईं। इनमें समीक्ष्य पुस्तकों की समीक्षाएँ यथासमय प्रकाशित होंगी।—संपादक

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-१४		
मेरे सपनों का भारत, गाँधी जी	...	२.५०
शरीरश्रम, गाँधी जी	...	०.२५
ईसा मेरी नजर में, गाँधी जी	...	०.२५
ग्रामोद्योग, गाँधी जी	...	०.३०
गाँवों की मदद में, गाँधी जी	...	७.४०
गाँधी जी के पावन प्रसंग, श्री लल्लू भाई मकन जी	...	०.२५
गाँधी जी का विनोद ,, ,,	...	०.६०
विचार दर्शन, भाग २, श्री केदारनाथ	...	१.५०
आशा का एक मात्र मार्ग, रिचर्ड वी० ग्रेग	...	२.००
संरक्षकता का सिद्धांत, श्री रवींद्र केलकर	...	०.३०
राजकमल प्रकाशन, ८, फैज बाजार, दिल्ली		
द्रौपदी, (कविता) नरेंद्र शर्मा	...	७.००
साहब बीबी गुलाम (उपन्यास) विमल मित्र, अनु० हंसकुमार तिवारी	...	१०.००
साठ वर्ष—एक रेखांकन, सुमित्रानंदन पंत	...	३.५०
श्री सुमित्रानंदन पंत—स्मृतिचित्र	...	६.५०
हिंदी काव्य में अन्योक्ति, डा० संसारचंद्र	...	१२.५०
हिंदी साहित्य - संसार, दिल्ली-६		
आधुनिक हिंदी के कवियों के काव्य - सिद्धांत, डा० सुरेशचंद्र गुप्त	...	२५.००
कबीर : एक विवेचन, डा० सरनामसिंह शर्मा	...	१२.५०
कबीर, भारतभूषण 'सरोज'	...	२.५५

१२. जानने की बातें (१) प्रकृति विज्ञान संपादक, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय। अनुवादक, हंसकुमार तिवारी। मूल्य, दो रुपये पचास नए पैसे। पृष्ठ संख्या, ८+१५२। सजिल्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी (प्रश्नोत्तर रूप में), ओमप्रकाश शर्मा	...	१.५०
सन्यासी (,, ,,), रुद्रदेव शर्मा	...	१.५०
मृगनयनी (,,), ओमप्रकाश सिंघल, श्यामनारायण पांडेय	...	१.५०
केशव की काव्य साधना (,,) ओम्प्रकाश शर्मा	...	२.५०
साकेत (,,) ओम्प्रकाश सिंघल	...	१.५०
हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	...	१.२५
राजस्थान : साहित्य, परंपरा और प्रगति, डा० सरनामसिंह	...	२.००
अलंकार विवेचन (प्रश्नोत्तर रूप में), तिलकधर शास्त्री	...	१.१२
महाकवि बिहारी (,,) रामगोपाल शर्मा, कनकचंद्र	...	२.५०
व्याकरण चार्ट, देशराजसिंह भाटी, जगमोहन नंदा	...	०.७५
मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारीभावना, डा० उषा पांडेय	...	१०.००
साहित्य भवन प्राइवेट लि०, प्रयाग		
श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, डा० जयराम मिश्र	...	८.००
कुटीर प्रकाशन, माडल टाउन, दिल्ली-९		
ना घर मेरा, वियोगी हरि	...	१७.५
उद्यान ,,	...	२.००
बापू बापा और सरदार ,,	...	१.००
अनुराग मंजरी ,,	...	१.००
बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र, वियोगी हरि	...	१.५०
बानर प्रकाशन, जयपुर		
चरणों के धागे, डा० कन्हैयालाल सहल	...	१.२५
पापुलर बुकडिपो, बंबई		
भारतीय साहित्य शास्त्र, गणेश त्र्यंबक देशपांडे	...	?
भारतीय विश्व प्रकाशन, फव्वारा, दिल्ली		
महात्मा गाँधी, सेठ गोविंददास	...	२.५०
स्मृतिकण ,,	...	४.००
दिगंबर जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर		
प्रद्युम्नचरित	...	४.००
प्राच्य विद्यामंदिर, बड़ौदा		
वर्णक समुच्चय, भाग २, भोगीलाल ज० सांडेसरा, रमणलाल ना० मेहता		८.२५
हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१		
कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना, विश्वनाथलाल 'शैदा'	...	८.००
ए० आर० शेठ एंड कंपनी, गोविंद बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, बंबई, २		
निर्माण - विज्ञान के सिद्धांत, भ० ने० धधाणी	...	१५.००

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० श्रीधर जी पाठक

पद्मधर पाठक

इस वर्ष स्व० पाठकजी के जन्म को पूरे १०० वर्ष हो गए। इस अवसर पर उनके प्रति श्रद्धांजलि-स्वरूप उनके संस्मरण तो लिख नहीं सकता क्योंकि उनके दर्शन तक मैंने किए नहीं। उनके स्वर्गवास के ५ वर्ष बाद तो मेरा जन्म ही हुआ। इतना अवश्य है कि मैंने उनके द्वारा छोड़े पत्रादि, लेख, डायरी, एवं अन्य अज्ञात साहित्य कई बार देखा भाला है। कभी कोई नई वस्तु सामने आ जाती है तो उसे साहित्य-जगत के समक्ष उपस्थित करता रहता हूँ। यहाँ स्वं० पाठक जी की डायरी के कुछ अंश तथा उनसे संबंधित पत्रादि से कुछ संकलन प्रस्तुत है।

सबसे प्रथम मैंने उनकी सन् १९१५ की डायरी उठाई। किसी व्यक्ति का निकटतम अध्ययन या तो उसको स्वयं जानने से होता है, या उसकी निजी डायरी के हाथ लगने से। हर तरह की बात डायरी में लिखी जा सकती है। पुराने समय में हमारे यहाँ ऐसे 'गुटके' लिखे जाने की प्रथा थी। यद्यपि किसी डायरी के सभी अंश, उल्लेखनीय नहीं हुआ करते, फिर भी पाठक जी की इस डायरी में अनेक महत्वपूर्ण स्थल हैं। यहाँ अधिकांश सामग्री अपने मूल रूप में ही प्रस्तुत है। इस डायरी में हिंदी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं का बराबर प्रयोग हुआ है। पाठक जी के ही शब्दों में—

यदि बंगाली संस्कृत से साहाय्य न पाती तो क्या संभव था कि इतनी उन्नत हो जाती—

Should we not use in elegant or *Khadi* Hindi some very expressive words which are now used in villiage lauguage only. With the advance of times such words will die natural deaths. Can't we save the catastrophe ?

हिंदी राष्ट्रभाषा पहले ही से है और क्यों है—

(१) मुख्य तीर्थ हिंदी भाषी, प्रांतों में हैं।

(२) मुसलमानों की दास सल्तनत हिंदी भाषी देश में थी।

(३) वाणिज्य का मुख्य स्थान वहीं था।

Hindi and Urdu same language.

Poets make epochs, they create कुछ or सब कुछ from न कुछ।

खड़ी Hindi as लड़ी between Marwari, ब्रज भाषा and Panjabi—

We should have bock-stalls in Hindi works at Railway Stations etc.

Hindi lovers shd. pledge themselves to using as far as possible only Hindi words—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक एक रस का एक एक दिग्गज जब हिंदी में हो जायगा उसका Progress रथ खूब ही धूमधाम और कृतकार्यता से चलेगा—

हिंदी और उर्दू दोनों हमारी ही हैं—

हिंदी में जितने लिखनेवाले हैं उतनी styles है। इत्यादि।

किसी किसी पृष्ठ पर उनकी कविताएँ लिखी हुई हैं कम से कम ४-५ बार कविताओं को पेंसिल से काँट छाँट कर दोहराया गया है। अंतिम रूप जब आ गया तब रचनाकाल, लिख दिया गया है। अधिकांशतः ये कविताएँ रात्रि में रची गई हैं। उनको दमे का कष्ट था, अपनी चारपाई के पास मोमबत्ती, कागज - पेंसिल रख लेते थे। जब साँस उठी, अपने माथे को कुर्सी पर टेक कर, वे काव्य - सृजन द्वारा अपना कष्ट भुला दिया करते थे। उनके माथे पर हलकी लकीर तक ऐसे बैठे रहने से पड़ गई थी। नीचे दी हुई पंक्तियां उसी डायरी की हैं—

कुलेख

जिस रचना मे सुलभ माधुरी मोहन मंत्र न
अलभ अमोल विचार चातुरी सरणि स्वतंत्र न
निपट निडर निःशंक निरंकुश भाव - प्रभाव न
कर विवेचना सहित अहित हित का अलगाव न
वह रचना विफल - प्रयास - फल, विकल प्रमाद प्रलाप है,
वह कविता कुकवि कुबुद्धि कृत केवल कुपद कलाप है।

सुधामयी सूक्ति नव प्रवाला
विचार मुक्तावलि श्री विशाला
हिताहित ज्ञान गुणांतराला
संता शिरोधार्य 'निबंधमाला'।

(अधिकारी 'निबंध माला' कार्यालय, भरतपुर के लिए) १५.५.१५ को रात्रि १०.१५।

स्व० पं० रामदास गौड़, के 'विज्ञान' के लिए उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ नैनीताल से उत्तर में रची थीं—

"विज्ञानिवर, विद्युत्प्रवर, शुभ आया आपका
नगराज दर्शन लाभ सुख वृत्तांत पाया आपका
मस्तिष्क रोग विमुक्त हो घर आइयेगा शीघ्र ही
विज्ञान वर्धन कार्य में लग जाइयेगा शीघ्र ही
हिम शैल शुभ्र - विभामयी शुभ लाइयेगा भावना
जिस्से समर्थित हो कोई विज्ञान नव प्रस्तावना"—

इसी प्रकार गौड़ जी के "विज्ञान" पत्र के लिए निम्नलिखित 'मंगलाचरण' की रचना, पाठक जी ने की थी। डायरी में रचना का समय १-९-१५, रात्रि लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जिसने सबसे प्रथम सृष्टि के क्रम को जाँचा
जाँच-जंत्र का रचा प्रथम ही अद्भुत ढाँचा
जिसके संमुख साँच लाज तज निर्भय नांचा
ऊँचे स्वर सद्-ग्रंथ गूढ़ गाथा का बाँचा
जिसने स्व-साँच की आँच से जगती तल दीपित किया
उस भारतीय विज्ञान का ध्यान करै हर्षित हिया।"

स्वं० पाठक जी ने अपनी सभी रचनाओं का रचना-काल एवं स्थान दिया है। यह उनके जीवन की मनोवृत्तियों का परिचय देता है। उनका संपूर्ण साहित्य स्वच्छंदतावादी भावना से ओत-प्रोत है। उनका अपना अलग पथ था, जिस पर वह जीवन के अंतिम क्षणों तक अग्रसर रहे। इसमें संदेह नहीं कि उनका साहित्य किसी युग-विशेष से प्रभावित वस्तु नहीं वरन् उनकी मौलिक देन थी, जो आज के साहित्य की पीठिका एवं प्रेरणा रही है।

पाठक जी को अपनी रचनाओं को बार बार माँजने की आदत थी। प्रेस भेजते भेजते तक न जाने कितनी बार उसमें कांट-छांट करते थे। नए नए शब्दों की सूझ उनमें गजब की थी। ऐसे शब्दों की मैं एक सूची उनकी डायरियों से बना रहा हूँ। उनके संग्रह में एक बड़ा रोचक पत्र श्रद्धेय टंडन जी का मिला है। मंगलाप्रसाद पारितोषिक के वितरण के संबंध में पाठक जी ने अपनी संमति भेजी। इस संमति पर भी उन्होंने सुधार करना चाहा। पर यहाँ उनकी दाल नहीं गली। इसमें काँट-छाँट नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ, कि उनको टंडन जी ने बड़े सरल ढंग से निम्नलिखित पत्र भेजा—

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन कार्यालय प्रयाग

मिति ज्येष्ठ १०, १९९०

पूज्यवर

आज वियोगी हरि जी ने मुझसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक की निर्णायक समिति की सम्मति के प्रकाशन के संबंध में सलाह लेते हुए यह बतलाया कि जो सम्मति सम्मेलन में आपलोगों की ओर से पढ़ी गयी थी और जिस पर आपलोगों के हस्ताक्षर प्रस्तुत हैं, उसके अतिरिक्त सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् आपने एक सम्मति लिखी है और आपकी इच्छा है कि समिति की ओर से यही सम्मति प्रकाशित की जाय। मेरा नम्र निवेदन है कि आप ऐसा करने की आज्ञा न दीजिए जब अंतिम रूप आपकी सम्मति का सम्मेलन के पहले निश्चित हो गया और उसका एक एक अक्षर सम्मेलन में पढ़कर सुना दिया गया और कुछ समाचार पत्र संपादकों ने उसकी प्रतिलिपि भी ले ली, तो अब परिवर्तन करना कहाँ तक नीतियुक्त है, यह आपके विचारने की बात है। आप तीनों के हस्ताक्षर भी असली सम्मति पर हैं, जो नयी लिखकर आपने भेजी है उस पर तो अभी किसी के हस्ताक्षर भी नहीं हैं। अदालतों से संबंध छोड़ देने पर भी पुरानी आदत के अनुसार एक दृष्टांत द्वारा अपने तात्पर्य को आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ। किसी मुकदमें में जब एक बार किसी जज का फैसला हो जाता है तो उसकी शब्दावली में भी वह तभी तक परिवर्तन कर सकता है, जब तक उसने उस पर हस्ताक्षर नहीं किए, उसके बाद फैसला उसके हाथ से निकल जाता है और साधारणतः वह शब्दों में परिवर्तन नहीं कर सकता। आपलोग भी इस साहित्यिक मुकदमें में जज थे। फैसला हो गया, सुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया गया, आपने अपनी डिगरी भी दे दी, डिगरी के इजराय का काम भी समाप्त हो गया, अब केवल छापेखाने में फैसला प्रकाशित होने के बाद कागजात का दाखिल दफ्तर होना बाकी है। ऐसे समय जिस असली फैसले पर डिगरी हुई, उसी का परिवर्तन यह तो अनसुनी बात है। यह मैं जानता हूँ कि कवि गरम नियमों का अंकुश नहीं माना करते किंतु यह निरंकुशता तो उनके काव्यों ही तक परिमित होनी चाहिए। इस निरंकुशता का आनंद भी इसी में है। साधारण व्यवहार में तो प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध (जब तक असाधारण कारण न हो) अपने सेवकों को आज्ञा देना उन्हें महा असमंजस में डालना है।

सेवक
(ह०) पुरुषोत्तमदास टंडन

श्रद्धेय टंडन जी ने किसी आवेश में आ जाने के बजाय बड़े साहित्यिक ढंग से 'जज' के संमुख अपने विचार रक्खें हैं।

पाठक जी का बहुत लोगों से पत्र व्यवहार हुआ था। उन्होंने जिनको पत्र भेजे थे, उन्हें पाना तो संभव नहीं, हाँ उनके उत्तर अवश्य पड़े हैं। किंतु जब तक दोनों पत्रों की बात न ज्ञात हो, आसानी से कुछ लिखना संभव नहीं। हाँ, कुछ पत्र विना किसी टीका - टिप्पणी के यहाँ प्रस्तुत हैं। पाठक जी के नाम आए हुए स्वं० द्विवेदी जी, बदरीनाथ भट्ट, पिन्काट, देवीप्रसाद पूर्ण, मिश्रबंधुओं आदि के पत्र, ऐतिहासिक महत्व के हैं जिनमें खड़ी बोली के भविष्य पर काफी आलोचनात्मक चर्चाएँ की गई हैं। इनके प्रकाशन की बात प्रायः मन में आई है किंतु कोई ठोस काम नहीं हो सका है। अस्तु,

पाठक जी के नाम द्विवेदी जी का एक पत्र नीचे दिया जा रहा है। द्विवेदी जी का एक और पुराना पत्र (१६-११-१८६६) मैं अन्यत्र प्रकाशित कर चुका हूँ। आज द्विवेदी जी का १-७-१६०१ का पत्र देखिए—पत्र का माप ८'×५'';३६ पंक्तिया, जीर्ण दशा, अंग्रेजी में पृष्ठ संख्या २ है।

Jhansi
1-7-01

My dear Panditjee

Your favour of 29 th to hand. I am very glad you hold such a good opinion of my work, but you see, Sir, friends are generally partial to one's friends. However your kind words will go a great way to encourage me in the field of literary criticisms and I am obliged to you for the expressions which you have made in your letter.

The edition of this book contains 250 Eopies only, out of which I have sent 50. The others are in the course of preparation. Kindly let me know how many more you require and I be glad to send the same to you. Your suggestions in connection with रघु & मेघदूत have been given effect almost in their entirety. As regards the other 2 books Rai Sahib said I must publish the same as I had

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

done once in the newspapers or else Lala Sahib might say that I softened the articles because I thought they were too strong and defamatory. This is why I did not carry out your seggestions.

Hoping you are getting on well. It is cooler here since last 2 days, but no rain yet.

Yours Very Sincerely
(Sd.) Mahabir Prasad

इस पत्र की लिखावट इतनी अस्पष्ट है कि मुझे आधा घंटा केवल किसी एक शब्द को पढ़ने में ही देना पड़ा। पाठक जी व द्विवेदी जी के बीच अधिकांशतः पत्रव्यवहार अंग्रेजी में ही हुआ था। मैंने कुछ पत्रों पर महीन कागज लगवाकर सुरक्षित कर लिया है। उक्त पत्र द्विवेदी जी के 'रघुवंश' एवं 'मेघदूत' के अनुवादों के संबंध में है। इन ग्रंथों पर पाठक जी ने जो अपनी अनुमति भेजी थी उसी को सहर्ष स्वीकार करते हुए द्विवेदी जी का यह उत्तर है। इन अनुवादों के लिए द्विवेदी जी ने एक पत्र में लिखा था "I have translated in your khari Boli कुमार संभव and मेघदूत"

पाठक जी की रचना 'मनोविनोद' को पढ़कर ही मिश्रबंधुओं को संभवतः 'मिश्रबंधुविनोद' शीर्षक की प्रेरणा मिली। पं० श्यामबिहारी मिश्र का एक पत्र पाठक जी के नाम, नीचे दिया जाता है। इसमें उन्होंने पाठक जी के प्रति अपने विचार व्यक्त किए हैं। यह पत्र भी मूल रूप में प्रस्तुत है।

Chhatarpur
Bundelkhand, C. I.
The 3rd. Septr 1919.

My dear Pathaka Ji,

Many thanks for your kind letter of the 30th August and the third volume of your मनोविनोद। I have gone through it with great interest and have liked it immensely. I think I need hardly say much about the poetic effusion of a genius who has already established his reputation as almost the very first poet of the day. Suffice it to say that the booklet under consideration fully sustains your great reputation. The verses under the heading बाल-विलास are certainly suitable for children's schools; and you would be putting the Hindi world ? a further ... ... of gratitude by bringing out similar other productions.

I feel greatly obliged to you for having written much about our History of the Hindi Literature, specially when you are forbidden by your doctors from doing any literary work. I am

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

really sorry to learn this, and shall be glad to know of an improvement in your health. With kind regards.

Yours Sincerely

(Sd.) Shyam Behari Misra

स्मरण रहे कि 'मनोविनोद' पाठक जी की स्फुट कविताओं का संग्रह है, जिसको पू० पिताजी स्वं पं० गिरिधर पाठक जी ने संपादित एवं प्रकाशित किया था।

पाठक जी का काव्य, भारतेंदु तथा द्विवेदी-युग को पार करके वर्तमान युग को जन्म देता है। वे द्विवेदी जी के कठोर नियमों से झुंझला जाते थे, और कहा करते थे कि "ये हमेशा बासी बातें करते हैं।" धीरे धीरे न जाने किस कारण इन लोगों के बीच पत्र - व्यवहार भी रुक गया। पं० सुमित्रानंदन जी पंत ने पाठक जी के निधन पर अंग्रेजी में जो पत्र स्व० पू० पिताजी को भेजा था, उसका बड़ा महत्व है —

21, Stanley Road

19. 9. 1928

Dear Mr Pathaka,

Permit me to condole with you in the great bereavement of your revered father. I find myself tongue-tied to express my feelings of deep sorrow at the sudden, hence more sad, departure of that sublime soul from our world. Peaee be to his immortal self!

He was never old. Even at the age of sixty eight years his spirit was so young, full of Joy and Poetic Fire. It is so difficult to forget him because it is so easy to recall the sacred memory of the few luminous moments I had the good fortune to pass in his Golden Company although they are as rare as they are dear.

Death is not the proper word for the glorious change of his mortal coil. His claims are beyond that. He has captivated death in the ever sonorous cage of his immortal speech. With the radiant strokes of his pen he has made that all devouring darkness resplendent for himself. Nought can hide him from us, he is too, shining for that.

But, alas the graet loss that his sudden and quiet departure has brought to the Hindi world. It's brightest star is set, the tallest Tower of Glory disappered! our loss is too deep for tears; long, long shall we rue it!

I pray God to lend you all strength and courage to bear with this great calamity.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

My brother is doing better now, I hope to come to you on Sunday the 23rd.

Yours in Sorrow
(Sd) Sumitranandan Pant

पाठक जी के विषय में सत्य यह है—"उन्होंने एक ओर स्वछंदतावाद की वह धारा बहाई जिसमें प्रेम, स्वतंत्रता, और पर्यटक भावना की ललक है; दूसरी ओर प्रकृति के ललक भरे चित्रण की मंदाकिनी बहाई; तीसरी ओर शिल्प के सर्वाधिक नये प्रयोग किये। चौथी ओर परंपरा से चले आते हुए पौराणिक कथानकों का आधार छोड़ा; पाँचवे वे खड़ी बोली के प्रथम और स्वच्छंद कवि हुए और अंततः भारतेंदु परंपरा की कई श्रेष्ठ, उदात्त, और जातीय वसीयतें ग्रहण कीं। श्रीधर के बिना जयशंकर प्रसाद का वह स्वच्छंद काव्य न आया होता (संभवतः) और छायावाद का रूप-रंग ही कुछ बदला होता!" (डा० रमेश कुंतलमेघ) पितामह पाठक जी की १००वीं जन्मशताब्दी[1] के अवसर पर मैं भी इस लेख द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करके उनका स्मरण करता हूँ।

१. ११ जनवरी, १८६०, माघ कृष्ण १४, सं० १९१६।

१२ (६५-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय

स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

२९ अप्रैल १९६० को श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का असामयिक देहावसान दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल में हो गया। इस समय उनकी अवस्था ६३ वर्ष की थी। इधर कई वर्षों से नवीन जी पक्षाघात से पीड़ित थे। कई बार उन्हें चिकित्सा के निमित्त अस्पताल भी जाना पड़ा परंतु हरबार वे स्वस्थ होकर मित्रों के बीच आ गए। अंतिम बार जब वे अस्पताल गए तब यह आशंका न थी कि यही आघात अंतिम होगा।

श्री नवीन जी यशस्वी कवि, पत्रकार तथा निर्भीक राष्ट्रसेवी के रूप में विख्यात थे। पत्रकार के रूप में उनकी अमूल्य साहित्यसेवा के अतिरिक्त अपलक, कुंकुम, क्वासि, विनोबा-स्तवन तथा उर्मिला उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

१८९७ की ८वीं दिसंबर को नवीन जी का जन्म मालवा के शाजापुर मंडल के भयाना ग्राम में परम वैष्णव माता-पिता की गोद में हुआ था। पिता जी जो कुछ मिल जाए, उसी पर निर्वाह करनेवाले संतोषी ब्राह्मण थे। माता ने बड़े कष्ट सह कर अपने 'बालकृष्ण' को 'चिर नवीन' बनाया। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव तथा ग्वालियर में यत्रतत्र हुई। उच्च शिक्षा प्राप्त करने ये कानपुर आए। अथवा यों कहें कि यहीं से नवीन जी के भावी जीवनक्रम का रेखांकन होनेवाला था—जिसके मूल में था उनका स्व० गणेश शंकर जी विद्यार्थी के संपर्क में आना। आरंभ से ही वे हिंदी के प्रातिभ लेखक तथा राष्ट्रभावना से ओत प्रोत थे। इस मिलन से स्व० विद्यार्थी जी को योग्य अनुयायी तथा नवीन जी को योग्य पथप्रदर्शक मिला—दोनों एक दूसरे के पूरक। यह सुयोग पाकर नवीन जी तीव्रता से आगे बढ़ चले। हिंदी - पत्रकारिता तथा राष्ट्रसेवा को उन्होंने अपना लक्ष्य चुन लिया। प्रायः ४० वर्षों के संघर्षमय अस्तव्यस्त जीवन में भी नवीन जी ने राष्ट्रभाषा की सेवा के लक्ष्य को ओझल नहीं होने दिया। इनकी अनेक रचनाएँ—अधिकांश भी कहें तो ठीक होगा—जेल जीवन में ही हुई। 'उर्मिला' महाकाव्य जेल में ही पूरा हुआ।

उनकी अधिकांश रचनाओं में देशभक्ति तथा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विविध स्वर मुखरित हुए हैं। गरीबी की मार से मानव की दुर्दशा देखकर जब कवि की आक्रोशतप्त वाणी फूट पड़ती है तो वह अपने पूरे बल से ललकार उठता है जिससे नए निर्माण को बल मिलता है। हिंदी - पत्रकारिता को उनसे बड़ा बल मिला। राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक होने के नाते उसका अपमान उन्हें असह्य था। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर वे अपने सहयोगियों तथा केंद्रीय सरकार तक की आलोचना में नहीं डिगते थे। संविधान - सभा में भी हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने में उनका बड़ा प्रबल हाथ था। अडिग व्यक्तित्व और अटूट निष्ठा की वे जीवंत मूर्ति थे—

मैं हूँ भारत के भविष्य का
मूर्तिमान विश्वास महान,
मैं हूँ अटल हिमांचल सम थिर
मैं हूँ मूर्तिमान बलिदान।

ऐसे अमरकीर्ति, घरफूँक मस्ती के साहित्यकार एवं राष्ट्रभक्त के निधन से देश की अपूरणीय क्षति हुई है। हम उनके प्रति श्रद्धांजलि निवेदित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत् खीष्टपूर्व

१९

१६३९ द्वितीय लेख – मनुष्य और पशुओं का सुख – प्राकृत, ब्राह्मी - खरोष्ठी, अशोक के धर्म लेख ११३ जनार्दन भट्ट, कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम १ - २ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में तथा राज्यांतों में यथा चोल, पांड्य, सतियपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, अतियवक यवनराज तथा उसके समीप अतियवक राज्यों में सर्वत्र देवप्रिय राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा – मनुष्य चिकित्सा और पशु चिकित्सा का प्रबंध किया है। औषधियाँ भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ नहीं थी लाई और रोपी गई हैं। इसी प्रकार मूल और फल भी जहाँ नहीं थे लाए और रोपे गए हैं। मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए वृक्ष रोपे गए और जलाशय खुदवाए गए। १४६२

२०

१६३९ तृतीय लेख-कर्मचारियों का स्थानांतर-प्राकृत, ब्राह्मी-खरोष्ठी ; अशोक के धर्म लेख १२३ जनार्दन भट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ४ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैंने आज्ञा दी कि मेरे राज्य में सर्वत्र युक्त, रज्जुक तथा प्रादेशिकों को प्रति पाँचवें वर्ष स्थानांतर कर दिया जाय। वे धर्मानुशासन तथा अन्य कार्यों के लिए सदा दौड़ा करें और कहें – माता पिता की सेवा करना तथा मित्र, परिचित, स्वजातीय, ब्राह्मण और श्रमणों को दान देना अच्छा है। जीव हिंसा न करना अच्छा है। मितव्ययी होना और मित संचयी होना अच्छा है। परिषद् भी भाव और अक्षर के अनुसार युक्तों को उचित हिसाब किताब (गणना) रखने में सहायक होंगे। १४६२

२१

१६३९ चतुर्थ लेख – धर्मानुष्ठान – प्राकृत ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १३३ जनार्दन भट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ६ हुल्श। बहुत समय बीत गया। सैकड़ों वर्ष से प्राणियों का वध, जीवहिंसा, बंधुओं का अनादर, श्रमण और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। किंतु अब देवप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से जनता को युद्ध के लिये नगाड़े के बदले धर्मघोष सुनाई पड़ता है। युद्ध में हाथी के बदले हाथी पर विमान दिखते है। अग्निस्कंध, अतिशबाजी तथा अनेक दिव्य रूप लोगों को दीखते हैं। आज देवप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों में अहिंसा, जीवरक्षा, बंधुओं का आदर, ब्राह्मण और श्रमणों का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गई है जैसा पहले सैकड़ों वर्षों में न हुआ था। यह तथा अन्य प्रकार का धर्माचरण बढ़ गया है। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा इस धर्माचरण को और भी बढ़ाएँगे। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती, परनाती इस धर्माचरण को और भी बढ़ाएँगे। १४६२

२ (६५।१।२०१७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

धर्म और शील का आचरण करते हुए कल्पतक धर्म का अनुशासन करेंगे। धर्मानुशासन ही श्रेष्ठ कार्य है। जो अशील होता है वह धर्माचरण भी नहीं कर सकता। अतः धर्म की वृद्धि और अहानि अच्छी है। लोग इसकी वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें। इसी उद्देश्य से यह लिखा गया। राज्याभिषेक के १२वें वर्ष में देवप्रिय प्रियदर्शी राजा ने इसे लिखवाया।

२२

१६३६ गुहाभिलेख (बराबर पहाड़, जिला गया, बिहार) – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ४०१ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १८१ हुल्श। राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद यह न्यग्रोधगुहा आजीवकों को दी। १४६२

२३

१६३६ गुहाभिलेख (बराबर पहाड़, जिला गया, बिहार) – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ४०१ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १८१ हुल्श। राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद खलतिका पर्वत पर यह गुहा आजीवकों को दी। १४६२

२४

१६४० पंचमलेख – धर्ममहामात्रों की नियुक्ति – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १५० जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ७४ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं – अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किए हैं। अतः मेरे पुत्र, नाती और उनकी संतान आदि ऐसा करें तो उन्हें पुण्य होगा। किंतु वे इस कर्तव्य का अल्प त्याग करेंगे तो वह पाप होगा क्योंकि पाप सरल है। चिरकाल से धर्ममहामात्रों की नियुक्ति न हुई थी। मैंने राज्याभिषेक के १३वें वर्ष में उन्हें नियुक्त किया। ये धर्म की रक्षा, कर्मवृद्धि, हितकारी सुख के लिए धार्मिक देश यवन, कंबोज, गांधार, राष्ट्रिक (महाराष्ट्र), प्रतिष्ठान तथा अपरांत सीमा पर सभी संप्रदायों में व्यापृत हैं। वे स्वामी, सेवक, ब्राह्मण, वैश्य, अनाथ, वृद्धों के बीच हितसुख के लिये तथा धर्म की वृद्धि के लिये नियुक्त हैं। वे वध और बंधक को रोकने के लिये, अप्रतिहत मोक्ष के लिये, सीमित संतान निग्रह के लिये, अपहृतों के लिए, तथा महावृद्धों के लिए (ओल्ड एज लाइफ इन्श्योरेंस) नियुक्त हैं। वे पाटलिपुत्र में तथा बाह्यनगरों में सर्वत्र अंतःपुरों में, भ्राताओं और भगिनियों के मध्य तथा अन्य जातियों में व्यापृत हैं। ये धर्म महामात्र मेरे राज्य में, सर्वत्र धर्मनिश्रित धर्माधिष्ठान और दान के लिये नियुक्त हैं। अतः मैंने धर्मलिपि लिखवाई जिसमें यह चिरस्थायी रहे तथा प्रजा इसका पालन करे। १४६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

२५

१६४० षष्ठलेख – प्रजा-हित-चिंतन – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १८८ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ११ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – बहुत समय बीत गए। सदा काम की बातें तथा गुप्तचरों से प्रतिवेदन नहीं होता। अतः मैंने यह तय किया कि सदा चाहे मैं भोजन करता रहूँ, अंतःपुर में, शयनगृह में, सड़क पर, विनय (कवायद) में या उद्यान में रहूँ सर्वत्र प्रतिवेदक मुझे प्रजा का हाल सुनाए। मैं प्रजा का काम सर्वत्र करूँगा। यदि मैं मौखिक आज्ञा, दान, या कार्य के विषय में दूं या महामात्रों को कोई आज्ञा दी जाय और उसके पालन में मतभेद हो या मंत्रि-परिषद् उसे अस्वीकार करे तो उसकी सूचना मुझे यथाशीघ्र दी जाय चाहे मैं कहीं रहूँ। चाहे मैं कितना ही परिश्रम करूँ, जिससे प्रजा का उत्थान और धन की वृद्धि हो मुझे संतोष नहीं होता। सारे संसार का हित करना मेरा कर्तव्य है। किंतु इसका मूल उत्थान और धनोपार्जन है। सभी लोगों के हित से बढ़कर कोई अन्य कर्म नहीं है। मैं जो पराक्रम करता हूँ उसका कारण है प्राणियों से उऋण होना। यदि यहाँ मैं प्राणियों को सुख दूंगा तो मुझे परलोक में सुख मिलेगा। अतः मैंने इस धर्मलिपि को लिखवाया। यह चिरस्थायी रहे। मेरे पुत्र, स्त्री, पौत्र, प्रपौत्र सभी लोक-हित के लिए पराक्रम करें। अति पराक्रम के बिना यह कठिन कार्य है। १४६१

२६

१६४० सप्तमलेख – सांप्रदायिक समन्वय – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १८५ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ५६ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सभी संप्रदायों के लोग सर्वत्र मिल कर रहें। सभी संप्रदाय संयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं किंतु मनुष्य की इच्छा और राग उच्च नीच-होते हैं। वे सब मिलकर एक देश की स्थापना करेंगे। प्रत्येक विपुल दान नहीं कर सकता किंतु प्रत्येक व्यक्ति में नित्य संयम, भाव-शुद्धि, कृतज्ञता, और दृढ़भक्ति खूब हो सकती है। १४६१

२७

१६४० अष्टमलेख – धर्मयात्रा – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १९० जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १४ हुल्श। पहले राजा लोग विहार यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया और इसी प्रकार के अन्य प्रमोद होते थे। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा को राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद सच्चा ज्ञान हो गया। उस सत्य ज्ञान से धर्मयात्रा का आरंभ हुआ। इस यात्रा में श्रमण और ब्राह्मणों का दर्शन और उन्हें दान दिया जाता है, वृद्धों का दर्शन, सुवर्णदान, ग्रामवासियों का दर्शन, धर्मोपदेश तथा धर्मविषयक प्रश्न होते हैं। तब से देवप्रिय राजा को इसी में आनंद आता है। १४६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

२८

१६४० नवमलेख – मंगलाचार – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख १४६१
१६६ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १५ हुल्श; एपिग्राफिया इंडिका २ – ४५८ बुहलर। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – मनुष्य आपत्ति, पुत्रविवाह, कन्याविवाह, संतानोत्पत्ति, प्रवास इत्यादि के समय अनेक प्रकार के मंगल करता है। इस अवसर पर बच्चों की माताएँ अनेक प्रकार के क्षुद्र और निरर्थक मंगल करती हैं। मंगल तो अवश्य करना चाहिए। किंतु इस प्रकार का मंगल अपफल दायक होता है। किंतु धर्ममंगल है – दास और सेवकों के प्रति समुचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणों का आदर, श्रमण – ब्राह्मणों को दान। ये तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य धर्ममंगल कहलाते हैं। अतः पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र, साथी और पड़ोसी को कहना चाहिये – अच्छा है, यह मंगल करना चाहिए जब तक कार्यसिद्धि न हो क्योंकि सांसारिक मंगल स्यात् फलदायक हों या नहीं किंतु धर्ममंगल सदा सुखदायक है। यदि इस लोक में कार्यसिद्धि न हुई तो भी परलोक में महान् पुण्य होता है। यदि कार्यसिद्धि हुई तो धर्ममंगल से यह लोक और परलोक दोनों बना।

२९

१६४० दशम लेख – कीर्ति – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख २१४ १४६१
जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १७ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति परलोक के लिए महान् समझता है। वह यश या कीर्ति इसलिए चाहता है कि वर्तमान और भविष्य में मनुष्य धर्मपालन करें और धर्म की सेवा करें। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ पराक्रम करता है वह परलोक के लिए ही करता है जिससे सभी मनुष्य दुःखरहित हो जायँ। दुःख ही अपुण्य है। ऊँच या नीच सभी मनुष्य पराक्रम करके ही इस यश को प्राप्त कर सकते हैं। बड़ों के लिये यह यश पाना कठिन है।

३०

१६४० एकादश लेख – धर्म की परिभाषा – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के १४६१
धर्म लेख २२२ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ४० हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – धर्म से बढ़कर कोई दान नहीं, धर्म जैसा मित्र नहीं, धर्म के समान उदारता नहीं और धर्म के समान संबंध नहीं। धर्म क्या है – दास और सेवकों से उचित व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्र, परिचित, ज्ञाति, श्रमण और ब्राह्मणों को दान और प्राणों का समादर। अतः पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र, साथी और पड़ोसी को कहना चाहिए – यह अच्छा है इसे करना चाहिए। इस धर्मदान से मनुष्य इस लोक में सुख पाता है तथा परलोक में उसे अनंत पुण्य मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

३१

१६४० द्वादशलेख – धर्मसमन्वय – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी, अशोक के धर्मलेख २२८ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ६४ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से सभी संप्रदायों के सन्यस्त और गृहस्थों का आदर करता है। किंतु देवप्रिय राजा पूजा या दान को इतना महत्व नहीं देता जितना सभी धर्मों की सारवृद्धि को। सारवृद्धि अनेक प्रकार से हो सकती है। किंतु इसका मूल वाक्संयम है अतः लोग अपने ही धर्म की पूजा और अन्य धर्म की निंदा न करें। प्रकरण के अनुसार ही दूसरे का धर्म लघु या पूज्य होता है। ऐसा करने से अपने धर्म की वृद्धि और दूसरे के संप्रदाय का अपकार होता है। जो आवेश में आकर अपने संप्रदाय की प्रशंसा और अन्य संप्रदायों की निंदा करता है वह अपने संप्रदाय को बहुत धक्का पहुँचाया है। समवाय (मेलजोल) ही अच्छा है। लोग एक दूसरे के धर्म को सुनें और आदर करें। अतः देवप्रिय की इच्छा है कि सभी धर्मवाले विद्वान् और कल्याण कार्य करनेवाले हों। अतः सभी धर्मानुयायी से कहना चाहिए कि राजा सभी धर्मों की सारवृद्धि को दान - पूजा से अधिक महत्व देता है। इस हेतु अनेक धर्ममहामात्र, स्त्रीमहामात्र, सीमांत अधिकारी इत्यादि अनेक कर्मचारी नियुक्त किए गए हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की वृद्धि और धर्म का विकास होता है। १४६१

३२

१६४० त्रयोदशलेख – धर्मविजय – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख २४० जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ६६ हुल्स। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा ने अपने राज्याभिषेक के अष्टम वर्ष में कलिंग जीता। वहाँ ढाई लाख बंदी हुए, एक लाख मारे गए और इनसे कई गुने मनुष्य (महामारी आदि से) मरे। कलिंग विजय के बाद देवप्रिय का धर्मपालन, धर्मकामना और धर्मानुशासन शीघ्रता से हुआ। कलिंग विजय के बाद राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। अविजित देश के विजय होने पर अनेक लोगों का बध, मरण और अपवाह (कैद) होता है। इससे देवप्रिय को बहुत वेदना हुई। देवप्रिय को इससे और भी दुःख हुआ कि वहाँ जो ब्राह्मण, श्रमण, संन्यासी, गृहस्थ रहते थे और जो ब्राह्मणों की, माता - पिता की, गुरुओं की सेवा करते थे, जो मित्र, परिचित, सहायक, ज्ञाति, दास, सेवकों से सद्व्यवहार करते थे और जो दृढ़भक्त थे उनका वध, विनाश या बलात् वियोग होता है। अपितु जो स्वयं सुरक्षित हैं उनके मित्र, परिचित सहायक और संबंधियों के विपत्ति में पड़ने से उन्हें भी कष्ट होता है। इससे सभी मनुष्यों को कष्ट होता है किंतु देवप्रिय को सबसे अधिक कष्ट होता है। ऐसा कोई देश नहीं जहाँ ब्राह्मण और श्रमणों के अनेक संप्रदाय न हों। ऐसा कोई देश नहीं जहाँ सभी मनुष्य एक ही संप्रदाय १४६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के माननेवाले हों। कलिंग विजय में जितने व्यक्ति हत, मृत या बंदी हुए उनका सौवाँ या सहस्रभाग का भी नाश देवप्रिय को अच्छा नहीं लगता। यदि देवप्रिय का कोई अपकार भी करे और क्षमायाचना करे तो राजा उसे क्षमा कर देगा। देवप्रिय के विजित राज्य में जो जंगली हैं उनसे भी राजा अनुनय करेगा, और उन्हें धर्ममार्ग पर लाने का यत्न करेगा। अन्यथा उसे अनुताप होगा। देवप्रिय का यह प्रभाव है कि वे लज्जित न हों और न मारे जायँ। देवप्रिय की कामना है कि किसी प्राणी को क्षति न पहुँचे, सभी संयमी हों, सभी मिलकर रहें और मृदुता (पोलाइट-नेस) बढ़े। इसी धर्म-विजय को देवप्रिय मुख्य विजय मानता है। इस विजय को देवप्रिय ने पा लिया है। देवप्रिय का धर्मानुशासन सर्वत्र चलता है यथा – यहाँ, सीमांत तथा असुरदेशों में जो सैकड़ों योजन दूर है, अंतियक यवनराज, तुरगमय, अंतकिन्नर, मग, अलीकसिंधुर, चोड, पांड्य, ताम्रपर्णी, सिंहराज, गणराज्य, यवन, कांबोज, नाभक, नाभपंक्ति, भोज, पैठनक, आंध्र और पुलिंद देश। जहाँ देवप्रिय के दूत नहीं पहुँच सकते वहाँ भी लोग देवप्रिय का धर्माचरण, धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार की विजय सर्वत्र आनंददायक है। धर्म-विजय से स्थायी प्रीति होती है। किंतु यह प्रीति भी छोटी है। स्वर्ग में सुख ही महाफल है। अतः मैंने इस धर्म-लिपि को लिखवा दिया जिससे मेरे पुत्र, प्रपौत्र नई विजय अपना कर्तव्य न समझें, बाण-विजय में शांति और नम्रता से काम लें और धर्म-विजय को ही यथार्थ विजय मानें जिससे इस लोक और परलोक में सुख होता है। उद्योग में ही सभों की रति हो जो लोक और परलोक दोनों सुधारती है।

३३

१६४० चतुर्दशलेख – प्राकृत, ब्राह्मी – खरोष्ठी; अशोक के धर्मलेख २७० जनार्दन भट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – २५ हुल्श। इस धर्मलेख को देवप्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया। यह लेख कहीं संक्षेप में कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तार में है। सब जगह के लिए सब बात उचित नहीं है। मैंने बहुत विजय किया, बहुत लिखवाया और नित्य लिखवाऊँगा। कहीं कहीं मधुरता के लिए पुनरुक्ति है जिससे लोग उनका पालन करें। इन लेखों में जो अपूर्णता रह गई है उसका कारण है – स्थानाभाव, संक्षेपीकरण या लिपिक-दोष। १४६१

३४

१६४१ प्रथम कलिंग शिलालेख – राजकर्मचारियों का कर्तव्य – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख २७६ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ९२ हुल्श। देवप्रिय की आज्ञा से तोसली के महामात्य और नगर व्यवहारिक को कहना कि जो मेरी समझ में आता है उसे मैं चाहता हूँ कि मेरे द्वार से कार्यद्वारा आरंभ हो जाय। इन कार्यों के साधक आप ही हैं। आप कई १४६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्र प्राणियों के ऊपर नियुक्त हैं जिसमें आप उनके प्रणयपात्र बनें। सब मनुष्य मेरे प्रजा - पुत्र हैं। मैं चाहता हूँ कि जिस प्रकार मेरे पुत्र इस लोक और परलोक में हितकारी सुख भोगें उसी प्रकार की मेरी कामना मनुष्यों के प्रति है। किंतु आप इसका अर्थ अच्छी तरह नहीं समझते। स्यात कुछ लोग समझते हों किंतु वे भी पूर्ण प्रकार से नहीं। आप इस पर ध्यान दें क्योंकि यह नीति अच्छी है। स्यात कोई व्यक्ति कैद में या कष्ट में हो किंतु वह इस दशा में अकारण हो तो इससे अनेक लोगों को बड़ा दुःख होता है। इस दशा में आप मध्यम पथ अपनावें। असफलता के अनेक कारण हैं यथा – ईर्ष्या, अश्रम, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अनावृति आलस्य और तंद्रा। आप ध्यान रखें कि आप में ये प्रवृत्तियाँ न हों। इनके मूल अथक श्रम और नित्य धैर्य हैं। ऐसा करते आगे बढ़ें और अग्रसर होने का प्रयत्न करें। यदि आप ऐसा भी उचित समझें तो आज्ञा की प्रतीक्षा न करें और कहें कि ऐसा करो यह राजानुशासन है। यह महा फलदायक है अन्यथा करने से महाविपत्तिदायक है। इस आदेश का पालन न करने से वे स्वर्ग न पा सकेंगे और न राजा को प्रसन्न कर सकेंगे। किंतु मन लगाकर काम करने से दोनों फल मिलेगा, स्वर्ग भी मिलेगा और राजऋण से उन्मुक्त हो जायेंगे। इस धर्मलिपि को पुष्य-नक्षत्र में (मास में एक बार) सुनाना चाहिए किंतु अन्यथा भी यथावसर इसे अकेले भी सुन सकते हैं। ऐसा करते हुए आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। इस हेतु यह धर्म लिपि लिखी गई जिससे नगर - व्यवहारिक यत्न करें कि किसी को अकारण कैद या दंड न हो। मैं धर्मानुसार प्रति पाँचवें वर्ष राजपुरुषों को दूर कर दूंगा जिससे वे अकर्कश, अचंड और दयालु रहें और मेरा तात्पर्य समझ कर मेरा अनुशासन पालन करें। उज्जयिनी में कुमार प्रति तीसरे वर्ष लोगों का प्रत्यावर्तन करेंगे।

[अशोक के समय भारतवर्ष पाँच भागों में विभक्त था – पूर्व भारत – राजधानी पाटलिपुत्र; पश्चिम भारत – राजधानी तक्षशिला, मध्य भारत – राजधानी उज्जयिनी, दक्षिण भारत – राजधानी सुवर्णगिरि, तथा कलिंग – राजधानी तोसली।]

३५

२६४१ द्वितीय कलिंग शिलालेख – सीमांत में राजपुरुषों का कर्त्तव्य – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख २९१ जनार्दनभट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ११५ हुल्श। समापा तथा तोसली में कुमार और महामात्रों को राजा की ओर से कहना – मैं अपनी मति के अनुसार आप लोगों को कार्यसिद्धि का मुख्य उपाय बतलाना चाहता हूँ। सब मनुष्य मेरी संतान हैं। जिस प्रकार मैं अपनी संतान के लिए हित - सुख के लिए कामना करता हूँ उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि सभी मनुष्य लौकिक और पारलौकिक हित - सुख पाएँ। सीमांत जातियों के संबंध में राजा चाहता है २४६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे अनुद्विग्न रहें, मुझ पर विश्वास रक्खें, वे मुझसे सुख ही पाएँगे दुःख नहीं। जहाँ तक क्षमा का व्यवहार है उनको राजा क्षमा कर देगा। मेरे लिए वे धर्माचरण करें जिससे उनका यह लोक और परलोक बन जाय। इस कार्य के लिये मैं आप लोगों को अनुशासन देता हूँ। मैं उऋण हो गया। आप लोगों के प्रति मेरा दृढ़ निश्चय और प्रतिज्ञा है। इस अनुशासन के अनुसार आप ऐसा करें जिससे सीमांत जातियाँ मुझ पर भरोसा करें और समझें कि राजा हमारे लिये पिता के समान है, अपने समान हमसे प्रेम करता है और हम राजा के संतान के समान हैं। मैं देश में आयुक्तों को इस कार्य के लिए भावना से भर दूंगा। आप केवल ऐहिक और पारलौकिक हित सुख का आश्वासन उनके अंदर भर दें। ऐसा करने से आप को स्वर्ग मिलेगा तथा मुझसे उऋण हो जाएँगे। अतः मैंने इस धर्मलिपि को लिखवाया जिससे महामात्र लोगों को तथा सीमांत जातियों को धर्माचरण तथा आश्वासन दे सकें। इस धर्मलिपि को लगातार चौमासे में सुनना चाहिए। तिष्य (पुण्य) नक्षत्र में भी सुन सकते हैं यथा अवसर अकेले भी सुन सकते हैं। ऐसा करते मेरी आज्ञा का पालन करें।

३६

१६४६ रानी का लेख (प्रयाग में किले के स्तंभ पर) – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ३६८ जनार्दनभट्ट; कॉर्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १५८ हुल्श। दूसरी रानी ने जो आम्रवाटिका, उद्यान, दानगृह या जो कुछ दान दिया है वे उसी रानी का दान गिनें। ये कार्य दूसरी रानी तीवर की माता के हैं। १४५५

३७

१६४६ गुहाभिलेख (बराबर पहाड़, जिला गया, बिहार) – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ४०१ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १८१ हुल्श। राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १९ वर्ष बाद स्खलतिका पर्वत पर सुप्रिय गुहा आजीवकों को दी। १४५५

३८

१६४७ रुम्मिनदेई स्तंभलेख – प्राकृत, ब्राह्मी (ग्राम बडेरिया, भगवानपुर तहसील नैपाल राज्य। ग्राम से उत्तर रुम्मिनदेई = रुक्मिणी देवी का मंदिर है); अशोक के धर्मलेख ३८१ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १६४ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के २० वर्ष बाद स्वयं आकर यहाँ पूजा की। यहीं शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ अतः पत्थर की प्राचीर और शिलास्तंभ यहाँ स्थापित किया गया। यहाँ भगवान् का जन्म हुआ अतः लुंबिनी ग्राम का कर उठा दिया गया तथा अष्टांश भी उसी ग्राम को दे दिया गया। १४५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

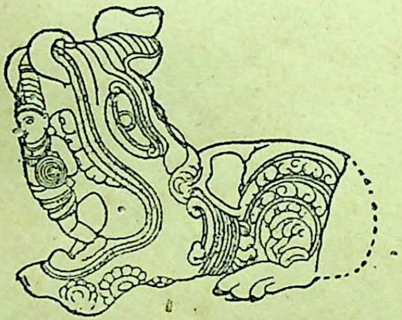

प्रकाशक — डा० राजबली पांडेय, प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक — महताब राय, नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५ संवत् २०१७ अंक २

★

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : श्री करुणापति त्रिपाठी

डा० बच्चनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

★

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

वार्षिक मूल्य १०) :: इस अंक का २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१ – नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२ – हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३ – भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४ – प्राचीन अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

१ – प्रतिवर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं।

२ – पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

३ – पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास में भेजी जाती है।

४ – लेखों की पांडुलिपि कागज के एक ओर लिखी हुई, स्पष्ट एवं पूर्ण होनी चाहिए। लेख में जिन ग्रंथादि का उपयोग या उल्लेख किया गया हो उनका संस्करण और पृष्ठादि सहित स्पष्ट निर्देश होना चाहिए।

५ – पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है। परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५
संवत् २०१७
अंक २

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
श्री करुणापति त्रिपाठी
डा० बच्चनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसूची

१. आदि कालीन हिंदी जैनसाहित्य की प्रतियाँ और लिपि —
श्री हरिशंकर शर्मा 'हरीश' ९३

२. कामायनी : तीन नवीन दृष्टिकोण — डा० रमेश कुंतल मेघ १०६

३. नाट्यशास्त्र और शांतरस — श्री जयमंत मिश्र १२७

४. अलबरूनीकालीन हिंदूविवाह — श्री जयशंकर मिश्र १३१

५. कालिदास के शब्द — श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी १४६

६. हिंदी - व्याकरण - संबंधी गवेषणा - २ (विधेय का कर्ता और प्रधान कर्म से मेल)
— श्री स० म० दीमशित्स ... १५३

विमर्श

ब्रजभाषा का एक अभिनीत काव्य - नाटक - करुणाभरण — श्री गोपीनाथ तिवारी १६१

बिहारी - रत्नाकर की पाठसमस्या — श्री कन्हैया सिंह १६४

चयन तथा निर्देश १७०

समीक्षा

कबीर : एक विवेचन — श्री परशुराम चतुर्वेदी १७३

हिंदी काव्य के अनुभूति — डा० राममूर्ति त्रिपाठी १८०

भारतीय साहित्य शास्त्र — डा० बचनसिंह १८३

श्री सुमित्रानंदन पंत (स्मृतिचित्र) — श्री अजीत १८५

मधुरिमा — श्री अजीत — श्री अजीत १८५

मध्ययुगीन साहित्य में नारी - भावना — श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी १८६

पुरंदरदास के भजन — श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी १८७

सूर - सारावली — डा० ब्रजेश्वर वर्मा १८८

चंदसखी की जीवनी और पदावली — डा० ब्रजेश्वर वर्मा १९५

राधावल्लभ - संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य — श्री करुणापति त्रिपाठी ... १९९

भारतीय अभिलेख सूची — डा० देवसहाय त्रिवेद १७

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५] श्रावण, संवत् २०१७ [अंक २

आदिकालीन हिंदी जैनसाहित्य की प्रतियाँ और लिपि

हरिशंकर शर्मा 'हरीश'

विपुल परिमाण में उपलब्ध होनेवाली आदिकालीन जैन रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि इन जैन प्रतियों में प्रयुक्त जैनों की एक विशेष लिपि है। लेखनप्रकार, भंडारों की व्यवस्था, लिखने की कला, आदि सभी अपने में एक वैशिष्ट्य लिए हैं। जैन लेखनकला जैन - श्रमण - संस्कृति का एक अंग है और इसी श्रमणसंस्कृति के विकास के कुछ विशिष्ट तत्वों में पलकर जैन लेखनकला पुष्ट हुई है। प्रत्येक त्यौहार, पर्व, रीतिरिवाज, आहार, साधना, ध्यान, तप, और धार्मिक क्रिया - प्रक्रियाओं में जिस प्रकार जैनों का इतर धर्मों से एक अंतर और वैशिष्ट्य दिखाई पड़ता है उसी प्रकार लेखनकला, अक्षरों की बनावट, प्रतियों में प्रयुक्त विविध चिह्न, लेखनपरंपरा, लेखकों का सतत प्रयास, प्रतियों की सामग्री, काटछाँट आदि लगभग सभी बातों में वैविध्य और वैशिष्ट्य है। लेखनकला को एक विशिष्ट कला मानकर चलनेवाली इस जैन - श्रमण - संस्कृति ने इस सारे हस्तलिखित साहित्य का सृजन करने, उसकी सुरक्षा करने और उसको प्रामाणिकता देने में बड़ा योग दिया है।

अजैनलिपि, अजैनसाहित्य आदि से यह जैन लिपि और जैन साहित्य भिन्न है। अंकों का क्रम, सूचीचिह्नों को प्रयुक्त करने के विशेष नियम, अक्षरों का विकास, लिखावट में तोड़-मरोड़, बंधन - आवरण - पेटियाँ - सूत्र आदि सब इन प्रतियों के अपने हैं। अतः संवत् १००० से लेकर १५०० तक की इन हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन करने के लिए श्रमण-संस्कृति तथा लेखनकला, जैनलिपि, लिखावट, अक्षरक्रम, संयुक्ताक्षर, अक्षरविकास, अंकों के प्रयोग, प्रतियों में प्रयुक्त विशेष चिह्न और उनमें जैनत्व की छाप आदि बातों का अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है। जैन साहित्य के शोध प्रेमी स्नातकों को एतदर्थ पर्याप्त सुविधा हो, इस दृष्टि से इस विवेचन में जैन - लेखनकला, प्रतियों में प्रयुक्त लिपि, अक्षर, अंक, संयुक्ताक्षर, अजैन अक्षरों से इन अक्षरों की तुलना, प्रतियों में प्रयुक्त विविध चिह्न तथा उनके प्रयोग आदि लगभग सभी दृष्टियों से विचार समीचीन होगा। जैन लिपि, अंक, अक्षर और प्रतियों में प्रयुक्त श्रमणकला के विशेष नियमों का परिचय प्राप्त किए बिना इन प्रतियों का सम्यक् अध्ययन नहीं हो सकता। अस्तु, इन प्रतियों के आधार पर यहाँ जैन - लेखन - कला - संस्कृति का सामान्य अध्ययन अभीष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन लेखनकला और उसका विकास

जब आगमों की अनुश्रुतिबद्ध परंपरा धीरे धीरे शिथिल होने लगी जैन - श्रमण - संस्कृति में लेखनकला को प्रमुखतः सभी लेखकों और जैन कवियों ने स्वीकार किया। बारंबार अकाल पड़ने तथा भिक्षा न मिलने के कारण अध्ययन - स्वाध्याय, पठन - पाठन आदि में अनेक व्याघात उपस्थित हुए। जैन साधुओं की स्मरणशक्ति में शैथिल्य होने एवं अनेक तपोवृद्ध और वयोवृद्ध आचार्यों का महानिर्वाण आदि होने से वीर सं० ९८० में श्रमणों के अध्यक्ष श्री देवर्द्धिगणिन् ने वल्लभीपुर में श्रमण स्थविरों के साथ संघ - समवसरण में श्रमणों का ध्यान लेखनकला की ओर आकर्षित किया और उन्होंने इस तरह लेखनकला के अभाव में विनष्ट होते जैनसाहित्य की ओर लोगों का ध्यान दिलाया। वस्तुतः तभी श्रमणसंस्कृति में लेखनकला का श्री गणेश हुआ। जैन लेखनकला तब से धीरे धीरे विकास को प्राप्त हुई। अनेक संघों तथा समवायों ने इसमें योग दिया और श्रमण संस्कृति ने लेखनकला को जैन साहित्य के लिए परम आवश्यक समझा। यही नहीं, लेखनकला को ग्रहण करने के बाद, उन्होंने इसे जैन-साहित्य के सृजन का प्रधान अंग बनाया। लेखनकला को ग्रहण करने के बाद जैन लिखकों (प्रतिलिपिकारों) के सामने लिपि, सामग्री - लेखन आदि की अड़चनों के अनेक प्रश्न आए। धीरे धीरे वे भी सुलझे। ज्ञानभंडारों की स्थापना हुई। महत्वपूर्ण पर्वों का महत्व, लेखनकला की पुष्टि और विकास के लिए ठहराया गया। वस्तुतः जैन लेखनकला को उत्थान की ओर ले जाने में जिन विशिष्ट कारणों और तत्वों ने योग दिया, उन पर विस्तार से प्रकाश डालने का यहाँ अवसर नहीं है, परंतु परिचयार्थ कुछेक इस प्रकार हैं—

१. ज्ञानभंडारों की स्थापना और वृद्धि,
२. विशिष्ट पर्वों और सांस्कृतिक अवसरों का हस्तलिखित साहित्यसृजन में योग,
३. भंडार और पुस्तक - लेखन - कार्य,
४. जैन श्रमणों का पठन, अध्ययन तथा पाठन,
५. भंडारों की रक्षा,
६. साधुओं का लेखनकार्य — जीवन का एक आवश्यक अंग,
७. राजाओं का योग, तथा
८. कला की उन्नति और उत्थान की आकांक्षा।

इस प्रकार लेखनक्रिया में ज्ञानभंडारों की रक्षा के लिए स्थापित किए गए एक विशेष पर्व — ज्ञानपंचमी जो कार्तिक शुक्ला पंचमी को मनाया जाता है— ने अत्यधिक योग दिया। इस पर्व पर प्रतियों का स्थानांतरण, सफाई, दीमक, कीड़ों आदि से रक्षा, आवरण, बस्ते, थैले, दाबड़े, पेटियों आदि सबका सम्यक् निरीक्षण होता है तथा लेखनी तथा प्रतियों की पूजा होती है, स्याही बनाई जाती है। आज भी इन चीजों का पर्याप्त प्रचार है।

धीरे धीरे भंडारों की संख्या में वृद्धि हुई। जैन साधु निरंतर लिखने लगे। आगमों का चिंतन, जैनेतर ग्रंथों का अध्ययन, पठन - पाठन, लेखनसामग्री एवं भंडारों की रक्षा आदि सब कारण जैन लेखकों, कवियों और जैन समाज के धर्म के एक आवश्यक अंग बन गए और साहित्यप्रेमी जैन राजाओं ने, जैन मंत्रियों ने, धनी जैन गृहस्थों ने उदाहरणार्थ गुजरात के सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल देव, आदि ने अनेक भंडार स्थापित किए। जैन मंत्रियों में वस्तुपाल तेजपाल, पैथड़ शाह, आचार्य जिनसेन, समरसिंह, उदयप्रभ सूरि आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने आर्थिक सहायता देकर अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना करवाई जो स्वतंत्र रूप से शोध के विषय हैं। आचार्य हेमचंद्र जैसे महान पंडित को जन्म देने का श्रेय इसी जैन - लेखन - कला-संस्कृति को है। वास्तव में आदि काल में उपलब्ध अनेक जैन रासों और फागों की यथा भरतेश्वर बाहुबलीरास, पेथड रास, समरारास, आदि की रचना इन्हीं प्रबुद्ध पुरुषों के लेखन-कला - प्रेम से हो पाई है। साथ ही कला की उन्नति और उत्थान की बात भी इन जैन कवियों के मन में गहरी आकांक्षा बनकर समा गई थी। अतः जो कवि जितना सुंदर आलेखन करता था उसकी रचना एवं लेखन को उतनी ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी। इन्हीं सब कारणों का अध्ययन जैनसाहित्य के भगवती सूत्र, कल्पसूत्र, महापुराण आदि ग्रंथों के परिशीलन से सरलता से किया जा सकता है। सूत्ररूप में यहाँ इनकी ओर संकेत मात्र कर दिया गया है और आज जब कि विशाल रूप में यह साहित्य उपलब्ध है इसकी लिपियों, प्रतियों, शाखाओं के साथ स्याही, अक्षरक्रम, चिह्न, तथा लेखनसामग्री आदि तत्वों पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में विचार करना अत्यावश्यक है।

आदिकालीन हिंदीसाहित्य की इन प्रतियों का अनुशीलन करने के लिए सबसे प्रमुख बात प्रतियों के संग्रहालयों की व्यवस्था है। किसी जैन भंडार की व्यवस्थाविशेष जानने के लिए इन प्रतियों के रचनाप्रकार, आवरण, बंधन, सूची आदि को भी जानना परमावश्यक है। लेखनसामग्री की तत्कालीन अवस्था, प्रतियों की स्थिति, धागों का उपयोग, बाँधने का तरीका स्याही तथा उसकी परीक्षा, प्रतियों के ऊपर के पृष्ठ आवरण, उनकी पेटियाँ आदि लगभग सभी आवश्यक बातें हैं। लिखने के विविध प्रकार, अनेक स्याहियों का प्रयोग यथा स्वर्णाक्षरी, रूपाक्षरी, कृष्णाक्षरी, स्थूलाक्षरी, सूक्ष्माक्षरी आदि प्रतियों की सामान्य बातों का ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रतियों की सूची

यद्यपि आदिकाल में इन प्रतियों के संग्रहालयों या ज्ञानभंडारों में आजकल की भाँति प्राप्त वैज्ञानिक सूचीपत्रों का और नामावलियों का अभाव था, परंतु फिर भी इनका अपना एक विशेष क्रम था, जिससे ये जैन लेखक भंडारों का पुस्तकक्रम रखते थे। आज जिस प्रकार छपे हुए रूप में प्रति का नंबर, ग्रंथनाम, रचनासंवत, पत्रसंख्या, भाषा, कर्ता, लेखनसंवत, विषय, प्रतियों के आकार आदि का विस्तार मिलता है, वैसा इन आदिकालीन प्रतियों के जैनभंडारों में नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है उसमें हस्तलिखित रूप में पेटी का नंबर, प्रति का नंबर, ग्रंथनाम, पत्रसंख्या आदि ही मिलते थे। यदा कदा किसी किसी सूची में ग्रंथकार का नाम भी दे दिया जाता था। इसका कारण यह नहीं है कि सूचीनिर्माता उस समय वैज्ञानिक पद्धतियों से अपरिचित थे। मुनिजिनविजय द्वारा संपादित 'बृहद्‌ट्टिपनिका' नामक किसी जैन विद्वान की बनाई हुई सूची बहुत पहले प्रकाशित हुई थी[1]। इसे देखकर कोई भी विद्वान अत्यंत प्राचीन काल में भी इन जैन लेखकों की सूचीसंबंधी वैज्ञानिकता को संदिग्ध नहीं कहेगा। परंतु ऐसी नामवलियाँ अधिक उपलब्ध नहीं होतीं। इसका कारण केवल यही रहा होगा कि इन विद्वानों का ध्यान ही इस कार्य की ओर न गया हो या वे इसे अना-

१. जैन साहित्य संशोधक — मुनिजिनविजय, अंक २ में संपादित बृहद्‌ट्टिपनिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बश्यकसमझते रहे होंगे। इसके मूल में प्रति में लिखा हुआ उसका वर्णन था। प्रत्येक मूल लेखक अपनी प्रति में, हाशिए पर, तथा प्रशस्ति आदि में एतदर्थ कुछ आवश्यक तथा कामचलाऊ सूचना लिख देता था। साथ ही उन लेखकों में आत्मप्रकाशन की भावना भी नहीं थी अतः कई प्रतियों के तो लेखकों के नाम भी अभी प्राप्त नहीं हो सके हैं।

जो भी हो, तत्कालीन प्राप्त सूचियों की संख्या अधिक नहीं है फिर भी गुटकों में प्रतियों के पूर्व उनकी नामावली का क्रम मिलता ही है। कहीं कहीं सूची में अंकक्रम मिलता है और कहीं कहीं नहीं। सूची के बनाते समय प्रति के मध्य में सूचीकार कुछ चौकोर या षट्कोणाकार स्थान खाली छोड़ देते थे। १३वीं शताब्दी के बाद ही सूची बनाने की परंपरा स्पष्ट होती है। इसके पहले कुछ सूचियाँ विभिन्न भंडारों जैसे पाटण, जैसलमेर, बीकानेर आदि में मिलती हैं परंतु उनमें समय या संवत नहीं मिलता। सूचियों की प्रतियाँ अवश्य ही पुरानी हैं।

सूची प्रारंभ करने से पूर्व ओंकार का चिह्न होता है तथा साथ ही प्रारंभ में ही लिखक या लेखक दोनों सूची का वर्ष, समय, मास और दिन का नाम देते हैं तथा जिसके लिए सूची तैयार की गई उसका विवरण, फिर भरतवाक्य। प्रति के बाईं ओर चौथाई इंच का हाशिया मिलता है जिसमें 'पा' लिखा जाता है। यह 'पा' शब्द पाने या पन्ने का सूचक होता है। 'पा' के साथ साथ उसमें संख्या भी लिखी रहती है। यह भी बहुत आवश्यक नहीं है कि उस संख्या में कोई क्रमविशेष हो ही। जैसा भी क्रम हो जाय वही बना दिया जाता है। सूची के उपलब्ध लगभग सभी पत्रों के बीच में जो १ या १॥ इंच की लंबाई - चौड़ाई के आकार से जो भी रिक्त स्थान छोड़ा जाता है उसके बीच में छेद करके सूत्र पिरोया जाता था ताकि प्रति के पन्ने एक सूत्र में आबद्ध रहें। ऐसा रिक्त स्थान बहुधा प्राप्त तत्कालीन प्रत्येक प्रति के मध्य में होता है। संभवतः यह परंपरा ताड़पत्रीय प्रतियों से ही चली आ रही है जिसमें तीन जगह रिक्त स्थान होते हैं। दो दाएँ-बाएँ और एक बीच में। अतः ताड़पत्रीय प्रतियों की परंपरा का निर्वाह अब तक भी लिखक (प्रतिलिपिकार) करते आ रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। यहाँ आदिकालीन या १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अंतिम दशक में लिखी गई एक सूची का विवरण दिया जा रहा है। उससे उसके स्वरूप का परिचय मिल जायगा। सूची की यह आदर्श प्रति अप्रकाशित है।

प्रारंभ में सूचीकार ने उसमें वर्ष, स्थान, दिन, समय आदि दिया है तथा हाशिए पर 'पा' करके, उसके आगे संख्या। संख्या में क्रम व्यवस्थित नहीं है। सूची की प्रति का आकार १०। इंच × २॥ इंच है। सूची पड़ी नहीं लिखी जाकर खड़ी लिखी गई है तथा कुल ४ पृष्ठों में पूरी हुई है। इस सूची की कुल संख्या १ से २४४ तक है। सूची में विषयवार कोई वर्गीकरण परिलक्षित नहीं होता।[२]

एक और अधूरी सूची १४वीं शताब्दी की ही उपलब्ध हुई है।[३] सूची की प्रति का आकार - प्रकार वही है। हाशिए पर 'प' अक्षर इसमें नहीं लिखा है। लेखक ने केवल अंकों को

२. लेखक का शोधप्रबंध 'आदिकाल का हिंदी जैनसाहित्य' अप्रकाशित (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) परिशिष्ट प्रथम, चित्र प्रथम।

३. वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रखा है अक्षरों को नहीं। इसका अंकक्रम २६८ से प्रारंभ होकर चलता है। इसमें भी किसी प्रकार का क्रम परिलक्षित नहीं होता। २६८ से ३४८ तक एक ही लेखन में है फिर लिखक और लेखन में परिवर्तन होता ज्ञात होता है। उत्तरार्द्ध किसी दूसरी कलम से लिखा गया है। प्रति के बीच में सूत्र का रिक्त स्थान बहुत ही थोड़ा है।

इन प्रतियों के आवरण भी बड़े बड़े होते हैं जो लकड़ी के, कूटे हुए कागज के, हाथीदाँत अथवा लोहे या चाँदी के भी हो सकते हैं। इन्हीं प्रतियों के आकार की छोटी छोटी पेटियाँ होती हैं जिनमें ये प्रतियाँ रखी जाती हैं। इन्हें दाबड़े कहते हैं।

जैन लिपि

हमारे देश में पहले सर्वत्र ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग होता था। इस लिपि के सार्वदेशिक होने से जैनों और बौद्धों ने अपने ग्रंथों का लेखन इसी लिपि में किया है। यही नहीं, विद्वानों ने ग्रंथ लिखने से पहले इस लिपि को नमस्कार तक किया है। उदाहरणार्थ जैनों के प्रसिद्ध आगम भगवतीसूत्र में 'नमो बंभीए लिवीए' में ब्राह्मी लिपि को नमस्कार करने का उल्लेख मिलता है। इस लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है अक्षरों की रचना और साथ साथ अंकों की कल्पना। समस्त विश्व में यह भारतीय आर्य लिपि की ही विशेषता है। ध्वनिलिपि, चित्रलिपि, संकेतलिपि आदि भी इसीके अंतर्गत हैं।

इस प्रकार ५०० से ३४० ई० पू० तक भारत की सब लिपियों का समावेश ब्राह्मी में होता था। बाद में ईरानियों के संपर्क से भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ। खरोष्ठी लिपि को भारतीय भाषाओं के उपयुक्त ईरानियों की अरमयिक लिपि से बनाया गया होगा। यह भी संभव है कि इसका बनानेवाला कोई खरोष्ठ नामक ब्राह्मण होगा जिसके कारण इसका यह नामकरण हुआ हो।[४] यह भी संभव है कि तक्षशिला जैसे ही किसी विद्यापीठ में इस लिपि का प्रादुर्भाव हुआ हो।

जो भी हो, ब्राह्मी लिपि से[५] ही लगभग हमारी सभी आधुनिक लिपियों का विकास हुआ। इसका विभाजन उत्तरी और दक्षिणी दो शैलियों में हो गया। उत्तरी शैली की प्रमुख लिपियाँ - गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, नागरी, शारदा, और बंगला; और दक्षिणी शैली में पश्चिमी मध्यप्रदेशी, तेलगू, कन्नडी, ग्रंथलिपि, तामिल लिपि, कलिंग - लिपि आदि है। इन सब लिपियों का मूल उद्भव ब्राह्मी लिपि से है। वस्तुतः कालांतर में अनेकों परिवर्तनों के पश्चात् जैनों की एक विशेष लिपि बनी। इस लिपि को जैन लिपि कहा जा सकता है। पहले जैन मगध निवासी थे फिर स्थानांतर होने से वे राजस्थान और गुजरात में बस गए और इस तरह इस लिपि पर मागधी संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है। यह प्रभाव १० वीं शताब्दी तक रहा और ११वीं शताब्दी से इस लिपि के शिल्प का अपना वैशिष्ट्य प्रारंभ हुआ जिसमें अक्षरों में मोड़-मरोड़; सौष्ठव, माप, परिमाण, मात्रा आदि अपने ही प्रकार के हैं।

४. जैन चित्रकल्पद्रुम लेखनकला विभाग—श्री पुण्यविजय जी कृत, पृ० ८ – ९ प्रकाशक : साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद।

५. लिपिसंबंधी विशेष विवरण के लिए देखिए गुजरात अने लिपिकदंबक, लेखनसाहित्य तथा अक्षरशिक्षण १ – २ – ३, हीरालाल कापडिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकाल की इन प्रतियों में जैन लिपि के सब अक्षरों का संकलन करने पर अजैन लिपि के अक्षरों से उसका अंतर स्पष्ट हो जाता है (देखिए अंत में चित्र सं० १)।

उक्त स्वरों से अजैन लिपि के स्वरों की तुलना की जा सकती है । इस लिपि के व्यंजन अंत में चित्र संख्या २ पर द्रष्टव्य हैं।

सामान्यतः इस लिपि में किसी भी रचना के प्रारंभ में ॥ ॐ ॥ शब्द अवश्य मिलेगा। १४ वीं शती के उत्तरार्द्ध की रचनाओं में तो 'ॐ नमो सिद्ध' भी मिलता है । इस 'ॐ नमो सिद्ध' का प्राचीन रूप अंत में चित्र संख्या २ पर है।

'ॐ नमो सिद्ध' का यह रूप तत्कालीन कुछ प्रतियों को छोड़ कर लगभग सभी प्रतियों में मिल जाता है।

कुछ प्रणवाक्षरों के साथ साथ इन प्रतियों में मिले हुए अक्षर भी बहुत अधिक मात्रा में मिलते हैं। विशेष रूप से १३ वीं तथा १४ वीं शताब्दी की रचनाओं में इस प्रकार के अधिक मिले अक्षरों का बाहुल्य देखा जा सकता है (चित्र सं० ३)।

इस प्रकार चित्र सं० ३ में जो अक्षर दिए गए हैं वे एक ही प्रकार के हैं तथा एक ही अक्षर का परस्पर मिश्रण उसी अक्षर से बताया गया है। इससे इतर भी विभिन्न अक्षरों का यह मिश्रण पर्याप्त महत्व का है। उदाहरणार्थं अन्य शब्दों के मिश्रण के कुछ रूप (चित्र सं० ४)। लिपिचित्र नं० ४ के अक्षरों के जो मिश्रित स्वरूप हैं (जिनमें द्ध, ठ्ठ, ल्ल आदि के प्रयोग अधिक देखने में आते हैं) उनके अजैन लिपि के रूप भी इन चित्रों में जैन अक्षरों के साथ नीचे दे दिए गए हैं।

जैन लिपि में प्रति के पढ़ने में कठिनाई प्रस्तुत करनेवाले अक्षर हैं – संयुक्ताक्षर। संयुक्ताक्षरों को समझने से अक्षरों का क्रम और अधिक स्पष्ट हो जाता है। भरतेश्वर बाहुबली रास, नेमिनाथ फागु, पंच पांडव चरित रासु, प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम के १० वीं शताब्दी के शिलालेख तथा प्रद्युम्नचरित आदि लगभग सभी महत्वपूर्ण प्रतियों का अध्ययन करने के लिए संयुक्ताक्षरों के लेखन को समझना अत्यावश्यक है।[६] विशेषतः अपभ्रंश के कारण प्रादेशिक विभाषाओं में संयुक्ताक्षरों का अधिक प्रयुक्त होना आवश्यक था। इन प्रतियों में प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण संयुक्त अक्षरों के कुछ उदाहरण चित्र सं० ४ में दिए जा रहे हैं। इनसे इस संबंध में स्थिति और अधिक स्पष्ट हो सकेगी। मिश्रित अक्षरों में जो एक ही प्रकार के अक्षरों का मिश्रण नहीं हैं उन्हें भी संयुक्ताक्षर कहा जा सकता है जिनके कुछ उदाहरण चित्र सं० ४ में दिए हैं। कुछ विशिष्ट संयुक्ताक्षर भी हैं (चित्र सं० ५)।

चित्र सं० ५ के इन संयुक्ताक्षरों में प्रमुखतः लगभग यही अक्षर प्रयुक्त होते हैं। इन अक्षरों में चित्र की प्रथम पंक्ति में संयुक्ताक्षर सरल हैं, तृतीय और अंतिम पंक्ति में भी अक्षरों को पहचानने में विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं होती पर मध्यम पंक्ति के द्ध्य से ध्य का तथा स्त्व से क्रमशः ष्च और श्यच का बोध होता है। शेष सब संयुक्त अक्षर सामान्य से ही हैं।

६. इन प्रतियों के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए लेखक का शोधप्रबंध 'आदिकाल का हिंदी जैनसाहित्य' (अप्रकाशित, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में संगृहीत)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REFERENCE BOOK

जैन लिपि के इन अक्षरों पर लगनेवाली ह्रस्व, दीर्घ की कुछ मात्राएँ भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं। मात्राओं के कुछ मोड़ और लेखनक्रम तथा शिल्प आदि में अंतर है। उस अंतर का ज्ञान, कुछ ह्रस्व, दीर्घ, ऊकार, इकार की मात्राओं के अनुशीलन (चित्र सं० ६) द्वारा हो सकेगा।

लिपिचित्र सं० ६ की भांति **ए**, **ऐ** तथा **ओ औ** की मात्राओं पर आगे प्रकाश डाला जायगा। विशेष रूप से इन मात्राओं के शिल्प को समझना भी इन प्रतियों के अध्ययन का एक आवश्यक अंग है। इस प्रकार यहाँ जैन लिपि में प्रयुक्त जितने अक्षरों पर प्रकाश डाला गया है वे एक निश्चित शिल्प के आधार पर बने हैं। जैन लिपि के इन अक्षरों की कुछ अपनी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। उनके शिल्प की प्रमुख बातों का अध्ययन करने में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है —

अक्षरों का घुमाव—इन आदिकालीन जैन प्रतियों में प्रयुक्त अक्षरों में अपेक्षाकृत एक घुमाव दिखाई पड़ता है। जैनों द्वारा प्रयुक्त इस लिपि में भी वैभिन्य तथा वैचित्र्य परिलक्षित होता है। विभिन्न भंडारों की, विभिन्न शाखाओं की, तथा विभिन्न लिखकों द्वारा प्रयुक्त लिपि में भी अंतर है। यहाँ तक कि विभिन्न लिखकों (प्रतिलिपिकारों) के द्वारा एक ही शताब्दी में लिखी गई प्रतियों के अक्षरों में भी अंतर लगने लगता है। यह अंतर व्यक्तिगत लिखावट का तो है ही, अक्षरों में अपेक्षाकृत एक मरोड़ या घुमाव से भी अंतर हो जाता है। जैनों द्वारा प्रतिपादित इन रचनाओं में विभिन्न लेखकवर्गों की लिपियाँ भी भिन्न भिन्न हैं, उदाहरणार्थ जैन लिपि में यति लोगों की लिपि अपनी है, मारवाड़ी लिपि उससे भिन्न है, खरतरगच्छीय श्वेतांबरों की लिपि तथा दिगंबरीय विद्वानों की लिपियों के मोड़ - मरोड़ अलग अलग स्पष्ट होते हैं। किसी के अक्षर गोल, किसी के अक्षर लंबे, किसी में मात्रा खड़ी, तो किसी में पड़ी, किसी में अक्षरों में वैभिन्य तथा किसी किसी में घुमाव या मरोड़ अक्षर लिखने के बाद स्पष्ट होता है। किसी की लिपि में शीर्ष रेखा है, किसी की में नहीं। यति लोगों के अक्षरों में टुकड़े टुकड़े अलग अलग प्रतिभासित होते हैं, खरतरगच्छ में लिपियों के मोड़ - मरोड़ भिन्न प्रकार के हैं तो दिगंबरीय विद्वानों में मरोड़ भिन्न प्रकार के। मारवाड़ के भंडार जैसे बीकानेर, जैसलमेर आदि के भंडारों में उपलब्ध प्रतियों में अक्षरों के नीचे पूंछ सी मिलती है। अक्षर सीधे और पूंछें छोटी छोटी बनाते हैं जब कि गुजराती या अन्य अधिक लंबे।

परंतु इतना सब कुछ होने पर भी अक्षरों में जो जैन शिल्प है वह थोड़े बहुत भेद या परिवर्तन के साथ एक ही है। अक्षरों में झुकाव, उनका सौकर्य, गठन, सुंदर और सुरेख होता है। आगे प्रतियों के चित्रों द्वारा मोड़, मुड़ाव या मरोड़ स्पष्ट हो सकेंगे।

लेखन का सौकर्य—जैन लिपि की दूसरी विशेषता है लिपियों में अपेक्षाकृत सौकर्य। जैन लेखनकला में लिपियों की सुघड़ता मूल लेखकों और प्रतियों के लिपिकारों या लिखकों का अपार श्रम परिलक्षित होता है। श्री मुनिपुण्यविजय जी ने सुंदर लिपि के लिए आवश्यक गुणों से संबंधित—यथा, अक्षर सीधे हों, पुष्ट, गोल, वर्तुल, समशीर्ष, मात्राबद्ध हों आदि—सुंदर श्लोक पर प्रकाश डाला है।[7] इस आधार पर आदिकालीन हिंदी जैनसाहित्य

७. अक्षराणि समशीर्षाणि, वर्तुलानि घनानि च।
परस्परमलग्नानि, यो लिखेत स हि लेखकः॥

REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इन प्रतियों की लेखनी को देखने से स्पष्ट लगता है कि जैनों ने लेखनकला को वास्तव में अपूर्व निखार दिया है। श्री मुनिपुण्यविजयजी के कथन को इस मत की पुष्टि में उद्धृत किया जा सकता है कि "जैन ज्ञानभंडारों ने निरीक्षण करनार ने श्रेम कहेवानी जरूरत भाग्ये ज होइ शके के जैन संस्कृतिए आदर्श लेखको अने आदर्श लिपि ने उत्पन्न करवा अने तेते टकावी राखवा केटली कालजी राखी हती।"

अक्षरों का पारस्परिक अंतर—लिपिसौंदर्य की वृद्धि में सहायता करनेवाली एक विशिष्ट बात अक्षरों के पारस्परिक अंतर की है। अतः यह माप कैसा हो, प्रत्येक अक्षर कितनी दूरी पर हो, लकीरें कैसी हों, अक्षर का प्रारंभ अधिक मोटा तो नहीं, उसकी लकीरें सीधी तिरछी मुड़ी हुई या आवश्यक मरोड़ आदि सभी दृष्टियों से महत्व की होती है। १२ वीं शताब्दी के नवकार महात्म्य से तथा सत्यपुरीय महावीर उत्साह से लेकर १५वीं शताब्दी की अनेक प्रतियों का एतदर्थ परीक्षण किया जा सकता है। आगे कुछ प्रतियों के चित्रों से प्रतियों में प्रयुक्त अक्षरों का अंतर स्पष्ट हो जायगा। पंक्तियों में पारस्परिक दूरी, एक पंक्ति में कितने अक्षर हों आदि सब बातें स्पष्ट होनी चाहिएँ। मध्यकालीन प्रतियों में लिखावट कुछ बड़ी मिलने लगती है। आदिकाल की प्रतियों में जैसलमेर भंडार के प्राचीनतम जिनचंद सूरि फाग से लेकर पाटण भंडार के पंचपांडव चरित तक यदि एक शीर्ष रेखा खींची जाय तो इन रचनाओं में अनेक सुंदर आलेखनवाली सूक्ष्माक्षरी रचनाएँ मिल जाती हैं। पर अतिवर्तमान काल में लेखनकला तथा प्रतियों की इन विशेष बातों का स्वरूप शिथिल होता जा रहा है।

मात्राएँ—इस काल की रचनाओं में दो प्रकार की मात्राएँ मिलती हैं। एक खड़ी या सीधी मात्रा और दूसरी पड़ी मात्रा। मात्राओं का यह स्वरूप रेखाओं के अंतर पर भी निर्भर करता है। जितनी दूरी परस्पर पंक्तियों में होगी, उतना ही अधिक ह्रस्व, दीर्घ इ उ की मात्राओं का प्रसार हो सकेगा। कुछ मात्राएँ ऊपर लगाई जाती हैं या अक्षर के आगे लगाई जाती थीं। अतः जो मात्रा अक्षर के आगे लगाई जाएँ उसे अग्रमात्रा और जो ऊपर लगाई जाय वह ऊर्ध्व मात्रा कहलाती है। इसके अतिरिक्त प्रति में अक्षर के पीछे जो मात्रा लगाई जाती है उसे पड़ी मात्रा कहते हैं। बहुधा ये पड़ी मात्राएँ ए, ऐ, ओ, औ आदि इन चार अक्षरों की ही अधिकतर लगाई जाती हैं। इन मात्राओं के कुछ उदाहरण चित्र सं० ७ में मिलेंगे।

इस प्रकार के कई उदाहरण इन मात्राओं के दिए जा सकते हैं। वस्तुतः लिपिसंबंधी बातों को समझने के लिए इन खड़ी - पड़ी और ऊर्ध्व मात्राओं को समझना आवश्यक है। मात्राओं की भाँति ही लेखनपद्धति, विषयसाधन, उनकी प्रकृति, लेखनविराम आदि सभी बातें महत्त्वपूर्ण हैं। परंतु सामान्यतः दिगंबर तथा श्वेतांबर सभी प्रतियों में थोड़े अंतर के साथ यही शिल्प प्रयुक्त हुए हैं। जैनलिपि के सैद्धांतिक पक्ष पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। अक्षरों के

समानि समशीर्षाणि वर्तुलानि घनानि च।
मात्रासुप्रतिबद्धानि यो जानाति सलेखकः॥

—जैन चित्रकल्पद्रुमः भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला, पृ० ४६ प्रकाशक, साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांकेतिक तथा प्रतीक चिह्नों पर भी प्रकाश डाला गया है। अतः इनके विस्तृत अनुशीलन पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे जा सकते हैं।

यह तो हुई प्रतियों में प्रयुक्त अक्षरों की बात। अब कुछ अंक तथा चिह्नविशेष जो जैन लिपि के शिल्प का ही विशेष तथा दूसरा महत्वपूर्ण अंग हैं, उसका संक्षिप्त परिचय आवश्यक है (चित्र सं० ८)।

अंकों के १ से लेकर १० तक यही रूप लगभग सभी प्रतियों में पाए जाते हैं। पर इन अंकों के प्रतीकरूप भी मिलते हैं। १३वीं और १४वीं शताब्दी की आदिकालीन प्रतियों में इन अंकों के अक्षरात्मक मान या स्वरूप आंशिक रूप से मिल जाते हैं। जैन लिपि के इन अंकों का अक्षरात्मक मूल्य भी है जिसके वर्णन आदि - काल से पूर्व की ताड़पत्रीय प्रतियों में मिलते हैं। आदिकालीन प्रतियों में प्रतियों के पन्ने गिनने आदि के लिए इन अंकों के अक्षरात्मक प्रतीक कहीं कहीं मिलते अवश्य हैं परंतु वे अधिक नहीं हैं। अंकों की इस प्रणाली के १ से १०, १० से १०० और १०० से १००० तक के अंकों के अक्षरात्मक स्वरूपों को समझना जैन लिपि और हस्तलिखित प्रतियों के बड़े महत्वपूर्ण अंश को समझ लेना है। आदिकालीन हिंदी - जैन - प्रतियों की लेखन - परंपरा की पृष्ठभूमि के रूप में, लिपि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, यहाँ अंकों का एक तालिकापट्ट मुनि श्री पुण्यविजय जी के ग्रंथ से प्रस्तुत किया गया है (चित्र सं० ९)।[८] एतदर्थ लेखक उनका आभारी है। इन अंकों के अक्षरात्मक या प्रतीकात्मक स्वरूप से जैन लिपि में प्रयुक्त अक्षरों का महत्व तथा प्रतीकात्मक रूप अवश्य स्पष्ट होगा, ऐसी आशा है (लिपिचित्र सं० ९)।

चित्र सं० ९ के इन अंकों की तालिका से इतर भी इस लिपि में प्रयुक्त अंकों के संबंध में जितने सांकेतिक और प्रतीकात्मक अर्थ हो सकते हैं, उन पर पर्याप्त प्रकाश श्री हीरालाल कापड़िया ने डाला है।[९] इन अंकों का बोध भी उसी प्रकार अक्षरों से होता था। उदाहरणार्थ कुछ अंकों का बोध देखिए[१०] — चित्र संख्या १०।

इसी प्रकार ये अंक अक्षरों के रूप में अपना सांकेतिक महत्व स्पष्ट करते चलते हैं।

इन प्रतियों में प्रयुक्त जैन लेखकों की लिपि की अपनी विशेषता है। तत्कालीन अन्य लिपियों में अंकों और अक्षरों का ऐसा विकास नहीं मिलता। अतः प्रतियों के पन्नों की गणना में अंकों का उपयोग है और विषयविवेचन में इस लिपि या उसके अक्षरों का। प्रतियों में अनेक स्थानों पर हाशिए पर बाएँ और दाहिनी ओर अंकों के स्थान पर उनके पर्यायवाची अथवा तज्जन्य अर्थसूचक अक्षर मिल जाते हैं।

कुछ विशिष्ट चिह्न

इन प्रतियों में प्रयुक्त इन लिपिजन्य अक्षरों और अंकों के अतिरिक्त कुछ विशेष चिह्न भी हैं जिनका प्रयोग प्रतियों में मिलता है। इन चिह्नों में कुछ चिह्न सर्गसूचक, कुछ समाप्ति -

८. भारतीय जैन श्रमण संस्कृत अने लेखनकला, श्री पुण्यविजयजी पृ० ६३।
९. गवर्नमेंट कलेक्शंस ऑव मैनस्क्रिप्ट्स, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; १९३६, एडिटेड बाइ एच० आर० कापड़िया, पृ० १५, परिशिष्ट ३।
१०. वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचक, कुछ हाशिए पर दिए विशेष वर्णनों को स्पष्ट करनेवाले, कुछ मंगलसूचक तथा कुछ विशेष अक्षरों का कार्य करने वाले तथा कुछ विशिष्ट अर्थ के द्योतक होते हैं। इनमें से कई चिह्न ११वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से १२वीं शताब्दी की प्रतियों में कुछ १२वीं से १४-१५वीं शताब्दी की प्रतियों में देखने को मिलते हैं। प्रति का प्रारंभ यदि 'ॐ' से या 'ॐ नमो सिद्धं' से किया जाता है तो इसके लिए कई चिह्न विशेष ही बन गए हैं और यह भी बहुत संभव है कि कालांतर में उनके कई रूप बन गए हों। उदाहरणार्थ कुछ विशिष्ट चिह्नों के चित्र सं० ११ में द्रष्टव्य हैं।

चित्र सं० ११ की तालिका में प्रथम प्रकार के चिह्न शिलालेखों एवं मूर्तियों के चित्रपटों की लिखावट में मिलते हैं। १०वीं शताब्दी के बंबई के एक शिलालेख में भी इस प्रकार के चिह्नविशेष हैं जो विराम, अर्द्ध विराम, प्रारंभ तथा मात्राओं का कार्य करते हैं। द्वितीय प्रकार के चिह्नविशेष १२वीं से १४वीं शताब्दी की प्रतियों में प्रयुक्त हुए हैं और यह परंपरा आज तक मिल जाती है। इनमें कई चिह्न रचना प्रारंभ करने के सूचक, अंतिम विसर्ग आदि तथा रचनासमाप्ति के सूचक हैं। तृतीय विभाग के चिह्नों में प्रथम ऊंकार के लिए प्रयुक्त होता है, उसका दूसरा प्रसूत रूप (६) भी है। और मेंढे की आकृति का यह चिह्न बहुधा **ॐकार** के चिह्न के लिए ही निश्चित हो गया है। दूसरा औ के लिए और इसी तरह चौथा और पाँचवा चिह्न क्रमशः **अ, ई, अनुस्वार, पूर्ण अनुस्वार** आदि के लिए प्रयुक्त हुए हैं। चतुर्थ और अंतिम चिह्न बहुधा सामान्य है, जो अनेक प्रतियों में प्रयुक्त हुए हैं। विशिष्ट **ईकारात्मक** मात्राओं के चिह्नों के लिए चित्र सं० १२ देखिए।

इन चिह्नों के चतुर्भाग में प्रयुक्त चिह्नों के लिए पुण्यविजयजी ने अपने ग्रंथ में एक नई जैन लिपि के चिह्नों से साम्य रखनेवाली सहदेवी लिपि का उल्लेख भी किया है तथा साथ ही उसके लिए कई चिन्ह भी प्रयुक्त किए हैं और उन चिह्नों के संबंध में एक पूरा पद ही उद्धृत किया है जिनके कारण इन चिह्नों पर विशेष प्रभाव पड़ता है[११]। यह तालिका चित्र सं० १३ में दी गई है।

जो भी हो, इन चिह्नों ने लिपि के अक्षरों के विकास में तथा उसे सारपूर्ण बनाने में बड़ा योग दिया है। इन चिह्नों का प्रयोग लेखकों ने तथा रचनाकारों ने प्रारंभ में तथा अंत में किया है। बीच बीच में भी उक्त चिह्नों में से कई चिह्न प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः इन अक्षरों और अंकों में १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक अंतर अवश्य आया है जो प्रदेश का, प्रतिलिपिकारों का तथा लिपिगत विशिष्टताओं का है। इसका आंशिक परिचय अंत में दिए चित्रों द्वारा हो सकता है।

साम्य रखने वाले कुछ अक्षर

जैनों द्वारा प्रयुक्त इस लिपि में अनेक अक्षर ऐसे भी हैं जिनमें परस्पर पर्याप्त साम्य है। इस साम्य को न समझने के कारण प्रो० वेबर और प्रो० ब्यूलर जैसे विद्वानों ने भी भूलें की हैं, ऐसा उल्लेख मिलता है।[१२] अतः विभिन्न प्रतियों के देखने पर जितने साम्यसूचक शब्द

११. देखिए भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला पृ० ६।

१२. १ – "दि लेट प्रो० ए० वेबर वाज मिस्लेड बाइ दि करेस्पांडिंग जैन लिगेचर फार ग्ग। ही मिस्टुक इट फ़ार ग्र।" एच० आर० कापडिया, परि० २, पृ० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उनके कुछ उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है ताकि इस लिपि के इन शब्दों का उचित रूप से सूक्ष्म ध्यान रखा जाय या इन अक्षरों के पारस्परिक सूक्ष्म अंतर को समझ लिया जाय तो लेखक, संपादक तथा शोधस्नातक उनसे होनेवाली भूलों से बच सकते हैं। वे अक्षर तथा शब्द क्रमशः इस प्रकार हैं —

क के लिए रू	छ के लिए ब	म के लिए स, रा, ग
वु ,, तु		व ,, व, त
सू ,, स्त, मू	ह ,, ६	त्र ,, थ
त्त ,, तू	प्र ,, थ	क्र ,, च
प ,, य	भ ,, स, म	य ,, घ

इसी प्रकार —

६ के लिए इ	त के लिए इ
त ,, म	म ,, स
म ,, स	व ,, व
त ,, भ	घ ,, ध्य, व, थ ध्य
ख ,, ख, स्व	ट ,, ठ, द

संयुक्ताक्षर-साम्य—

कुछ संयुक्ताक्षरों में भी साम्य के उदाहरण दिए जा सकते हैं —

न्न के लिए त्र	त्त के लिए न्व, त्म
स्य ,, स्स	त्थ ,, च्छ
त्व ,, च, न	क्व ,, च, क्र, कु
प्त ,, पू ९	ष्ठ ,, ष्व, ष्ट, षृ, ब्द
ग्र ,, रज, रग	प्य ,, पा

२–"टु बिगिन विद् आइ मे से दैट सम आव द कैरेक्टर्स गिवेन हियर आर लाइक्ली टु बी मिस्टेकेन फार सम थिंग एल्स। एज ए मैटर आव फैक्ट ए फ्यू स्कालर्स हैव बीन आलरेडी मिस्लेड, एंड दिस हैज ऐडेड टु द एर्स आव द इग्नोरैंट स्क्राइब्स फार इन्स्टैंस, इट ऐपियर्स दैट द करेस्पांडिंग जैन कैरेक्टर फार धु वाज मिस्टेकेन फार फ बाइ द लेट प्रो० ब्युइलर। दिस काउंड द लेट हिस्टोरियन विंसेंट ए० स्मिथ मेक द फालोइंग रांग स्टेटमेंट इन हिज आर्टिकिल 'द जैन टीचर्स आव अकबर' पब्लिश्ड इन द भंडारकर क० वाल्यूम (पृ० २७३) — "नं० ११८ कमेमोरेट्स वन आव दीज पिल्ग्रिमेजेज, हिच वाज अंडरटेकेन बाई विमलहर्ष एंड २०० अदर्स। द सेम इंस्क्रिप्शन स्टेट्स दैट हीरविजय विलांग्ड टु द सफ रेस। हेंस द वर्ड साधु इज मिस्टेकेन फार सफ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्ट	के लिये	ड्ढ, द्द	स्य	के लिये	सा
ष्य	,,	पा	ज्ज	,,	ब्ब, घ
प्य	,,	प्प, थ, घ	द्द	,,	द्ब, द्ध, द्र
ह्रं	,,	ई	त्स	,,	त्म, ता, त्य
क्र	,,	कू, क्त	द्ध	,,	ब्द
ब्द	,,	द्द	दय	,,	द्य

इस प्रकार के कई उदाहरण त्रुटियों के दिए जा सकते हैं जो पड़ी मात्रा के कारण तथा अक्षरसाम्य के कारण, हाशिया और टिप्पणियों के कारण, प्रतिलिपिकारों, अक्षर तथा शब्द और पाठव्यत्यय के कारण हो जाती हैं।

उक्त लगभग सभी विवेचनों का समाहार लेखक ने जैनलिपि के अंतर्गत किया है। यहाँ एक प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि यह जैन लिपि क्या जैनों की कोई लिपिविशेष थी जिसका प्रयोग केवल जैन लेखक ही कर सकते थे अथवा तत्कालीन अजैन लेखक भी इसका प्रयोग कर रहे थे। इस लिपि का यह शिल्प विशेष रूप से सांप्रदायिक था अथवा तत्कालीन देश एवं काल के आधार पर इसका निर्माण हुआ? प्रश्न महत्व का है परंतु इसका परिहार सरलता से किया जा सकता है। तत्कालीन (आदिकालीन) विभिन्न अजैन काव्यों जैसे वसंत विलास फागु हंसावली, ढोलामारू रा दूहा की प्राचीन प्रतियों की लिपि के मिलाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन लिपि की अपनी एक शैली विशेष थी जो तत्कालीन प्रचलित अजैन लिपि के अक्षरों की नहीं थी। अक्षरों का घुमाव, मरोड़, लकीरों का सीधापन, पंक्तियों की दूरी चिह्नों का प्रयोग, अंकों का अक्षरों के रूप में प्रतीकात्मक वर्णन आदि सभी महत्वपूर्ण बातों में जैनों द्वारा प्रयुक्त लिपि में थोड़ा बहुत अंतर अवश्य है। परंतु जिस प्रकार धर्म कई हैं परंतु फिर भी उनके दर्शन एक दूसरे से विभिन्न हैं और जिस प्रकार जैन धर्म के सिद्धांतों का अन्य धर्मों के कई सिद्धांतों से मेल होने पर स्वतंत्र रूप में जैन धर्म का अस्तित्व पृथक है, ठीक इसी प्रकार अन्य लिपियों से अक्षरसाम्य होते हुए भी जैनों द्वारा प्रयुक्त इस लिपि में तत्कालीन इतर लेखन से पर्याप्त मौलिकता है। इसका मूल कारण श्रमणसंस्कृति में लेखन को एक कला का रूप देकर उसका उत्थान करना था। क्योंकि इन अक्षरों के क्रमविकास, रूप-स्वरूप, मात्राओं तथा अंकप्रयोगों और चिह्नों आदि में एक वैशिष्ट्य है, उनकी अपनी सांस्कृतिक, प्रादेशिक तथा अन्य निजी विशेषताएँ हैं। अतः लेखक ने जैनलिपि कहने का प्रयास किया है। यों इसके पीछे कोई उनका सांप्रदायिक दृष्टिकोण कभी नहीं था। यों तो सभी लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है अतः जैनेतर प्रतियों में प्रयुक्त अक्षर भी जैन प्रतियों के अक्षरों से पर्याप्त साम्य रखेंगे परंतु उक्त विशिष्टताओं का समावेश इतर प्रतियों के अक्षरों में नहीं उपलब्ध होता। बहुत संभवतः यह भी कहा जा सकता है कि इन जैन कवियों के आश्रय में कई लेखक (प्रतिलिपिकार) अपनी आजीविका कमाते थे अतः उन्हें, जैसी उनकी श्रमणसंस्कृति द्वारा मान्य लिपि थी उसी में लिखना पड़ता होगा। जो भी हो, क्योंकि आदिकालीन हिंदी जैन साहित्य के रूप में सबसे अधिक प्रामाणिक रचनाएँ जैनों की ही उपलब्ध होती हैं और इसी आधार पर यदि इन अक्षरों को जैन लिपि के नाम से अभिहित किया जाय तो अनुचित या संदिग्ध नहीं होगा। वस्तुतः इसी लिपिगत शिल्प तथा आवश्यक विशिष्टताओं को आधार मानकर यह सारा वर्णन-विवरण जैन लिपि नाम से लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपिचित्र

स्वर

चित्र-१

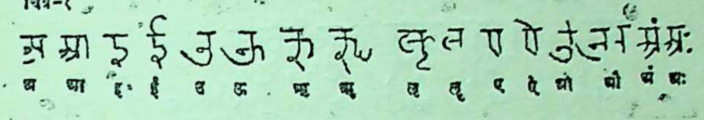

व्यंजन

चित्र-२

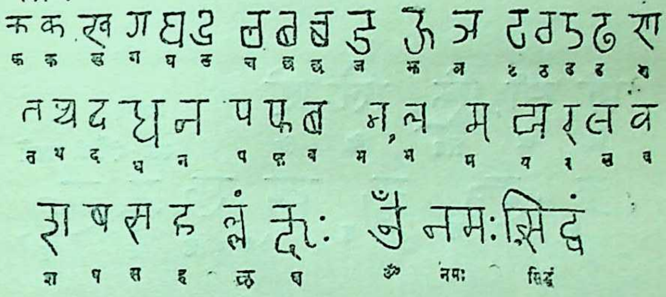

चित्र-३ मिश्रित स्वर

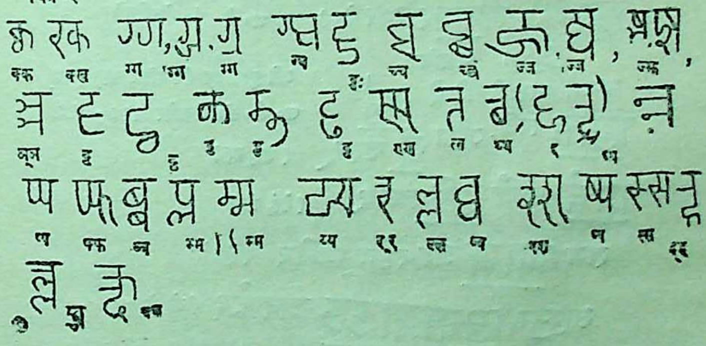

चित्र-४ कुछ अन्य मिश्रित शब्द

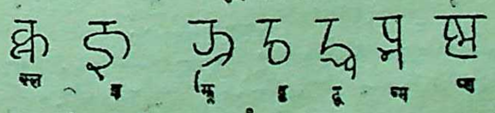

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-५ संयुक्ताक्षर

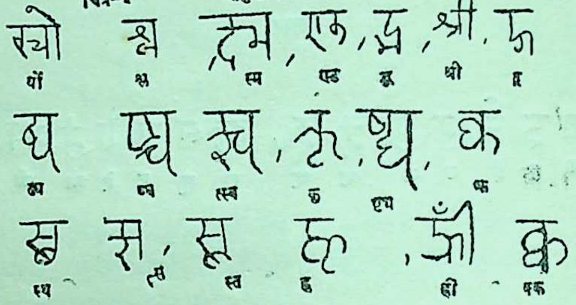

चित्र-६ ह्रस्व - दीर्घ की मात्राएँ

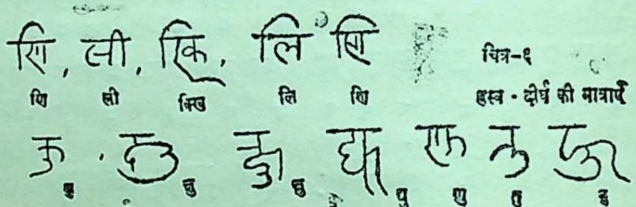

चित्र-७ पडी मात्राओं के कुछ उदाहरण

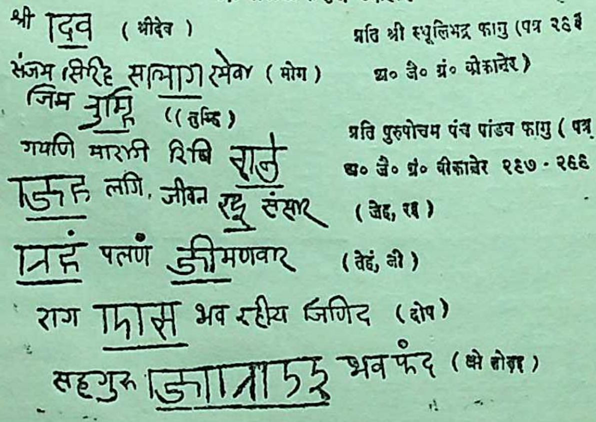

चित्र-८ प्रतियों में प्रयुक्त अंक

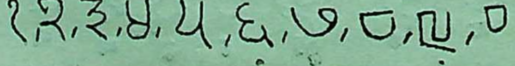

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-९ अंकों के संकेतात्मक चिह्न

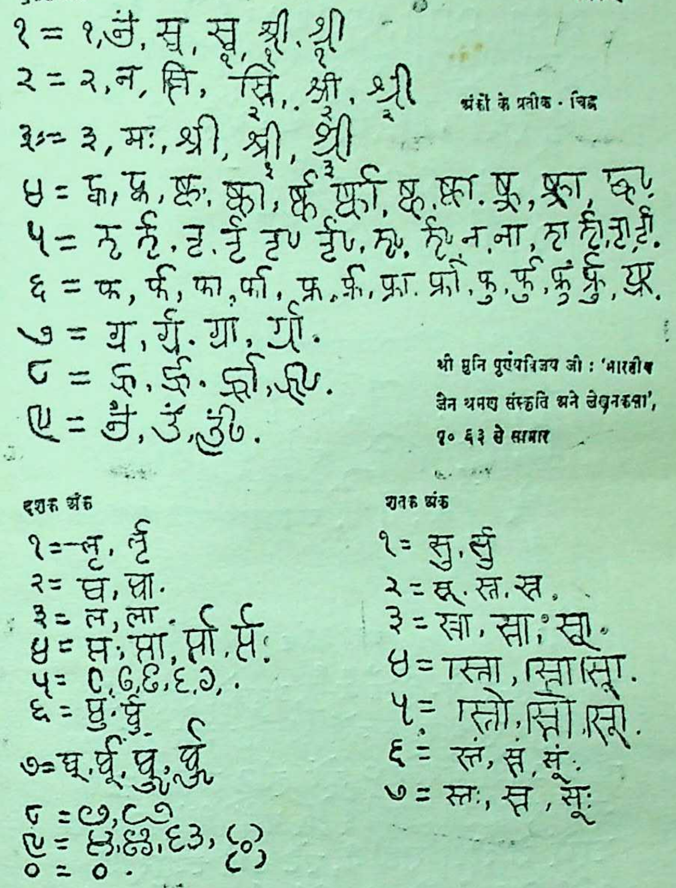

श्री मुनि पुण्यविजय जी : 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला', पृ० ६३ से साभार

चित्र-१० अंकों के कुछ और सांकेतिक चिह्न

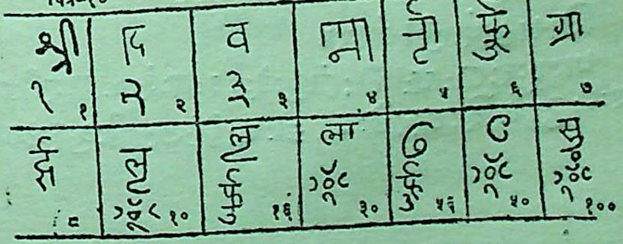

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्र-११ इन प्रतियों में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट चिह्न

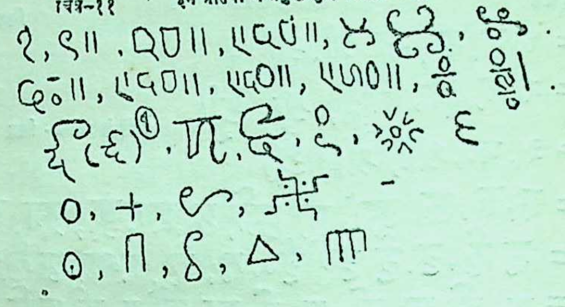

चित्र-१२ विशिष्ट एकारात्मक मात्राओं के प्रयुक्त चिह्न

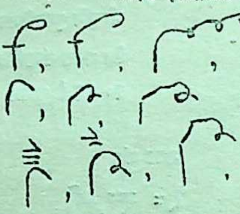

इन प्रयोगों के लिए द्रष्टव्य : प्रतियों का चित्रविभाग — मृगापुत्रकम् तथा आर्द्रकीय प्रतियाँ

चित्र १३ सहदेवी लिपिबद्ध

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
आ-दी-से-र पे-हि-ला नं-भु, अनुक्रमें अक्षर अंक।
क मिंडुं० ख चोकडी+ गजें विवगो वँक ∽ ॥१॥
चाचिं आधो चंदलो ◡ ततें लीह तराल ≡ ।
जजें साथी ओ जाणी इं [illegible] वबिं मिंडुं वाडो॥२॥
घघें दो लीटी खडी ⊓, टटे उभी च्यार ⊓⊓⊓
भभें मिंडुं आंकडो δ, ढढें त्रिखुण विचार △

राता अक्षर राणें रूपें करवा। तेहना काना मात्र जे अक्षरना बोलता होय ते करवा। बीजा अक्षर वाकी रह्या ते अक्षर करवा। इति सहदेवी जाणवि ॥

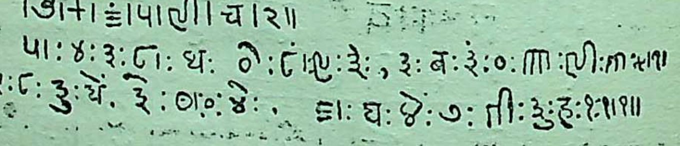

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी : तीन नवीन दृष्टिकोण

रमेश कुंतल मेघ

यहाँ हम 'कामायनी' के कुछ ऐसे पक्षों का ही अनुशीलन करेंगे जिनपर संभवतः कोई कार्य नहीं हुआ है। संप्रति हमारा लक्ष्य महाकाव्य की सर्वांगीण विवेचना अथवा लेखन-परिपाटी के अनुसार उपर्युक्त पक्षों पर अध्यायवद्ध रचना करना नहीं है। यह कार्य तो होता ही आ रहा है। हम प्रसाद के कलाशिल्प की भव्यशैली (ग्रांड स्टाइल) के निखार को प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम पांडुलिपि तथा प्रकाशित प्रति की तुलना उपस्थित करेंगे। फिर कतिपय मनोविश्लेषणात्मक समाधानों द्वारा कवि और कृति के संबंध में कुछ दृष्टिकोण रखेंगे और अंततः कुछ उपेक्षित से रोमांटिक सौंदर्यवादी प्रश्नों को प्रस्तुत करेंगे।

पांडुलिपि और प्रकाशित प्रति

कवि श्री जयशंकर 'प्रसाद' की 'कामायनी' की प्रकाशित प्रति और पांडुलिपि की तुलना करने पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह पांडुलिपि की मूल प्रति तो हो ही नहीं सकती। अक्षरों का अनुपात, लिखावट की सावधानी, छंदों की क्रमिकता, आठ वर्षों तक एक ही रंग की स्याही का सुदीर्घकालीन उपयोग तथा एक ही कापी पर स्वच्छ एवं संपूर्ण आलेखन आदि इस बात को सिद्ध करते हैं कि वह पहली प्रति न होकर प्रेस में भेजी जाने वाली दूसरी अथवा तीसरी प्रतिलिपि होगी। अतएव पांडुलिपि-संबंधी हमारा यह विवेचन कला-शिल्प के क्षेत्र में भी बहुत ही सीमित हो जाता है।

'कामायनी' दो कापियों में लिखी गई है। प्रथम कापी इड़ा सर्ग के **'हाँ तुम ही हो अपने सहाय ?'** शीर्षक गीत के बाद समाप्त हो जाती है। वह हरे रंग की रूलदार कापी साइंस की 'प्रैक्टिकल कापी' की तरह फीतों से बँधी है। दूसरी कापी लंबे रजिस्टर के आकार की है। यह भी फीतों से बँधी है।

संपूर्ण चिंता सर्ग 'सुधा' के आश्विन सं० १९८५ तदनुसार अक्टूबर १९२८ के अंक में छपा था तथा रजनी का प्रेमोन्मादिनी वाला रूपक एवं श्रद्धा का सौंदर्यवर्णन 'माधुरी' में छपा था। इसलिए इस महाकाव्य का रचनाकाल लगभग सन् १९२८ ई० के एक वर्ष पहले से लगाकर सन् १९३५ ई० (सं० १९९२) तक हुआ। आठ नौ वर्षों के बीच में इसका कथानक, विचार, शिल्पसंयोजन कई बार बदला होगा। 'कामना' नाटक से इसका वर्तमान विकास, तथा अंतिम पांडुलिपि में भी अनेक नए अंशों का संयोग-वियोग इस बात के सूचक हैं कि प्रसाद जी इसे निरंतर परिष्कृत करते रहे होंगे। उदात्त भव्य शैली के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्रेरणा के तीव्रोदीप्त क्षणों में ही उन्होंने इसका अधिकांश लिखा होगा।

पांडुलिपि देखने से यह भी ज्ञात होता है कि प्रसाद ने सूक्ष्म और लघु विस्तार तक के लिए परिश्रम किया है। परिवर्तनों और विकल्पों का जो भी चयन किया गया है उनसे निस्संदेह उन्नति हुई है। परिवर्तित शब्दों, ध्वनिव्यवस्थाओं, रंगों और रूपरेखाओं द्वारा यह भव्य शैली और भी उत्कर्षमयी हो गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वप्रथम सूक्ष्म विस्तार (माइन्यूट डिटेल्स) और रूपरेखाओं (आउटलाइंस) से संबंधित कुछ अंशों को लें। कर्म सर्ग में 'असुर पुरोहित उस विप्लव से ' लेकर 'जहाँ सोचते थे मनु बैठे मन से ध्यान लगाये !' तक का किलात - आकुलि प्रसंग जोड़ा गया है। वासना सर्ग में 'देखता हूँ दूसरा कुछ मधुरिमामय साज' के बाद 'जन्म संगिनी एक थी जो कामबाला नाम' से लेकर 'प्रणय विधु है खड़ा नभ से लिये तारक हार' तक का अंश भी जोड़ा गया है। निर्वेद सर्ग में श्रद्धा का प्रसिद्ध गीत — 'तुमुल कोलाहल कलह में' पहले स्वप्न - सर्ग में — 'करुणा वही स्वर फिर उस संसृति में बह जाता है गल के' के बाद से — संलग्न था। यहाँ इसकी चौदहों पंक्तियाँ कटी हैं। उपर्युक्त सभी संयुक्त अंश कथानक के विस्तार को अभिव्यक्त करते हैं। किलात - आकुलि - प्रसंग असुर और देव संघर्ष को उपस्थित करने के साथ साथ मनु के दंभ, दर्प और उच्छृंखलता की ओर जाने का कारण बताता है तथा पौराणिक कथा के रूपक को अधिक प्रभावशाली भी बनाता है। मनु पर असुरों की सांस्कृतिक विजय हो जाती है और सोमपान तथा मांसभक्षण करने से उनमें तरल वासना जाग उठती है। वासना और संघर्ष सर्ग के द्वंद्वों के लिए यह उचित प्रसंग-सूत्रधार अपेक्षित था। वासना सर्ग के संयुक्तांश द्वारा माधवी राका की पृष्ठभूमि में प्रलयोपरांत की कथा की स्मृतियाँ साकार की गई हैं। श्रद्धा के गीत को निर्वेद सर्ग में जोड़कर कथा के वातावरण तथा वृत्तसंघटन को अनिवार्य क्रम दिया गया है। किंतु विच्छिन्न अस्वीकृत अंशों में तो कवि ने अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा अवचेतन के मुक्त प्रवाह को अधिक स्वच्छंद किया है। कर्म सर्ग के अंत में ('अपने अभिनय से मन को सुख में उलझा लेती' के बाद) यह विच्छिन्न अंश है —

'श्रद्धा फिर भी भावमयी नारी थी केवल सरला नारी
जो होने पर सतत विजयिनी नर से रहती हारी
स्फूर्तिमयी हो चली चित्त था नूतन भाव जगाये
अंग अंग माधुरी किरन से रोम हर्ष में छाये।

अंतिम छंद के बाद यह भी विच्छिन्न अंश है—

रोम रोम से चिनगारी थे सघन जघन थहराते
वेणी शिथिल खुल पड़ती थी पलक अश्रु भर लाते
वंचित कौन भला करता मनु को शारीरिक सुख से,
निस्सहाय अस्वीकृति कहती नहीं नहीं थी मुख से।'

इसी के साथ लज्जा - सर्ग में —'प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बन जाता है सपना' के बाद — एक विच्छिन्न अवतरण यों है —

यह कंपन ! यह गुदगुदी ! रहो कितने कोमल आघातों से
इच्छा हो सृजन किया करती छिपने की मधु के घातों से।'

इनमें से प्रथम दो अवतरण उन्मादक यौनकेलि को भी संवृत करते हैं। अंग अंग के रोमों का, माधुरीकिरण का हर्षित होना, रोम रोम से चिनगारी उठना, सघन जघनों का थहराना, शिथिल वेणी का खुलना आदि तथा अंतिम अंश में गुदगुदी, कंपन, कोमल आघात, मधु की घात प्रसाद को स्थूल रीतिकालीन शृंगारिक संस्कारों की ओर मोड़ते हैं। प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति में इन्हें हटा दिया गया है क्योंकि अन्य छंदों के संकेत 'पर्याप्त थे तथा सांस्कृतिक उदात्ती' करण की माँग भी यही थी। किंतु उनके सौंदर्यवर्णन, कामवर्णन के गुरु गांभीर्य, मर्यादा और संयम का आदिरूप ऐसा ही है। इसी प्रकार नीचे के दो अंश उनके व्यक्तित्व की प्रवृत्यात्मक झलक देते हैं क्योंकि वे सर्वदा भोले भाले शैशव की खोज में ही उषा निर्मल जल के दर्पण के नानार्थक प्रतीकों को रखते हैं एवं करुणा तथा आनंद के दो विरोधी ध्रुवों के बीच अपने साधक जीवन को स्थित करते हैं —

'आनंद भैरवी जीवन की वह ललित राग कोई गा दो
उस भूले भाले शैशव को कोई खोजो कोई ला दो।
(काम सर्ग)

गुदगुदी आह हँसते हँसते कितना रोने का तार बँधा
उलझन में इन दोनों ही के कोई साधक है आज सधा।'
(वही)

और यह 'साधक' कोई निर्गुण भक्त न होकर दो विरोधी द्वंद्वों के बीच सजनेवाला स्वयं कवि है।

इसी प्रकार आशा सर्ग में 'आहुति नव अन्नों की पा नभ को सौरभ से किया समृद्ध' नामक चरण का 'आहुति की नव धूम गंध से नभ कानन हो गया समृद्ध' में परिवर्तन, गंध का केवल नभ की अपेक्षा 'नभ कानन' तक दुहरा विस्तार करता है; 'धँसती धरा, धधकती ज्वालामुखियों के मिस ले निश्वास' का 'धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास' में परिवर्तन प्रलय के लिए दो से तीन उपादानों का संचय करता है और 'पिता ने भेजा मुझे सहर्ष सीखने ललित कला का ज्ञान' का 'भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान' में परिवर्तन प्रलय के बाद के निर्हंग वातावरण में पिता का आधार छोड़कर श्रद्धा के साहसी नव उत्साह को प्रकट करता है।

'काव्यात्मक संगीत' (— दे० सेंट्सबरी) नामक तत्व भव्य शैली की प्रमुख कसौटी है। शब्दों की पुनर्व्यवस्था, ध्वनियों की पुनर्योजना तथा अनुप्रासादि इसकी प्राप्ति के प्रमुख साधनों में से है। शब्दों की पुनर्व्यवस्था करते समय प्रसाद ने सर्वनामों को अंत या बीच में, विधेयों को शुद्ध रूप से अंत में तथा कारकविभक्तियों को स्वराघात के अनुकूल प्रयुक्त किया है और यह ध्यान भी रखा है कि पदरचना यथासंभव शुद्ध होने के साथ साथ पदलालित्य से भी मंडित हो। निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं —

मूल	परिवर्तित
१. जैसे बनकर पत्थर ठिठुरे अड़े रहे (चिंता)	जैसे पत्थर बनकर ठिठुरे अड़े रहे
२. वे सब विकल वासना के प्रतिनिधि मुरझाये चले गये (चिंता)	विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाये चले गये
३. कब तक चला मृत्यु का काला शासन चक्र न स्मरण रहा (चिंता)	काला शासन चक्र मृत्यु का कब तक चला न स्मरण रहा
४. अपने कर में मनु ने श्रद्धा की धीरे से ले ली (कर्म)	श्रद्धा की, धीरे से मनु ने अपने कर में ले ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. मैं तो आया हूँ देवि मुझे समझा दो जीवन सहज मोल (इड़ा)	मैं तो आया हूँ देवि बता दो जीवन का क्या सहज मोल
६. एक चित्र बस रेखाओं का अब उनमें है रंग कहाँ (स्वप्न)	एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमें है रंग कहाँ
७. निर्जन में क्या एक ! अकेला तुम्हें ! प्रमोद मिलेगा (कर्म)	निर्जन में क्या एक अकेले तुम्हें प्रमोद मिलेगा !

सातवें उदाहरण में 'अकेला प्रमोद' 'अकेले मनु' के लिए अकेलेपन का त्याग कर देता है। इसमें संबोधनचिह्नों का गलत प्रयोग भी संशोधित किया गया है और प्रश्नसूचक चिह्न लगाकर मनोभाव को सार्थक बनाया गया है। छठे में मूल में चित्र की रेखाओं की पृथकता थी किंतु पुनर्व्यवस्थित पंक्ति में रेखाओंवाले संपूर्ण चित्र को देखा गया है।

ध्वनि - पुनर्योजनाओं में भी पदलालित्य की गूँज में संवर्धन हुआ है। कुछ उदाहरण—

मूल	परिवर्तित
१. उषा सदृश वह हँसी, ज्योत्सना-सा यौवन निश्चित विहार (चिंता)	उषा ज्योत्सना-सा वह यौवन - स्मित मधुप सदृश निश्चित विहार
२. होती थी, अब रही प्रालेय लयकरी भीषण वृष्टि (चिंता)	होती थी अब वहाँ हो रही प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि
३. धँसती धरा, धधकती ज्वालामुखियों के मिस ले निश्वास (चिंता)	धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास
४. बजते थे नूपुर, झंकृत होते कंकण हिलते थे हार (आशा)	कंकण - क्वणित रंणित नूपुर थे हिलते थे छाती पर हार
५. मधु पवन प्रेरित जैसे बाल साल हिलते सौरभ संयुक्त (आशा)	मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त

पहले उदाहरण में हँसी और यौवन के प्रभावसाम्यों को एक करके उषा की लज्जा और चाँदनी की मुस्कान के साथ जोड़ने के बाद निश्चित विहार के धर्म को मधुप के साथ उचित ढंग पर संलग्न किया गया। दूसरे उदाहरण में प्रलय का संगीत उत्पन्न करने वाली भीषण वृष्टि को प्रलयकारिणी मानकर प्रभावसाम्य का संघटन किया गया है। तीसरे उदाहरण में धारा और ज्वालामुखियों के साथ ज्वाला भी जोड़ी गई है तथा स्वराघात को अधिक ठाठ दिया गया है। चौथे उदाहरण में तो ध्वन्यर्थ - व्यंजना ही साक्षात् उपस्थित की गई है। पाँचवें में 'प्रेरित' को 'क्रीड़ित' तथा 'हिलने' को सुशोभित बनाकर चित्रमय सौंदर्य का संघटन हुआ है तथा 'बालसाल' का 'शिशुशाल' में परिवर्तन एक अतिरिक्त 'स' - ध्वनि की उपलब्धि के अतिरिक्त '···शिशुसाल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त' द्वारा अनुप्रास की छटा उपस्थित करता है। इसके अतिरिक्त इसमें अनुप्रास का निरर्थक मोह छोड़कर एक 'इमेज' की आंतरिक रचना भी हुई है। ध्वनियोजना में प्रसाद ने वर्णमाला के कोमल वर्गों का विशेष उपयोग किया है।

अनुप्रास के विषय में तो सौंदर्यवादियों की धारणाएँ काफी अप्रीतिकर हैं। वे इसे अपेक्षाकृत यांत्रिक मानते हैं। किंतु वर्णावृत्ति के स्थान पर जब (डियोनोसियन शब्दावली के अनुसार) 'सुंदर वर्णों' का उपयोग किया जाता है तब वे कवि के कौशल को सिद्ध करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रसन्न पद' की कल्पना भी कुछ ऐसी ही की थी। कुछ उदाहरण —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	मूल	परिवर्तित
१.	बजते थे नूपुर, झंकृत होते कंकण हिलते थे हार × (फिर) कंकण - क्वणित रणित नूपुर से थे हिलते छाती पर हार × (चिंता)	कंकण क्वणित रणित नूपुर थे हिलते थे छाती पर हार
२.	इंद्रनील का महा चषक था···(आशा)	इंद्रनील मणि महा चषक था
३.	उस रमणीय दृश्य में खुलने लगीं चेतना की आँखें (आशा)	खुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें
४.	अन्य अति रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम (वासना)	दूसरा रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम

यहाँ पहले उदाहरण में परिवर्तित पंक्ति ने ध्वनियों की जो गूँज उत्पन्न करके तीन पूर्ण 'इमेजों' को प्रस्तुत किया है, वह अनुप्रासशक्ति का ही परिणाम है। हाँ, 'छाती भर हार' 'छाती पर हार' से अधिक पूरी इमेज उत्पन्न करता था — उन्नत वक्षस्थल के भराव के लिए। दूसरे उदाहरण में एक अतिरिक्त 'म'-वर्ण बैठाया गया है; लेकिन यदि 'मणि' के स्थान पर पर्यायवाची 'रत्न' लिखें तो ? यह अनुप्रास का ही चमत्कार है। तीसरे उदाहरण में ई-कार ध्वनियों ने ज्यादा साँस भर दी हैं और 'अलस' के संयोग ने तो 'स' वर्ण की वृद्धि के साथ 'आँखें' से भी मेल बैठाया है। यहाँ भी यदि अनुप्रास त्यागकर 'विश्रांत' का उपयोग होता तो ऐसा सौंदर्यसंघटन न हो पाता। चौथे में अनुप्रास की निकटवर्ती मधुरता का त्यागकर 'र' – वर्णों की अधिकता के बावजूद भी लालित्य कम हुआ है; किंतु 'अन्य' की अपेक्षा 'दूसरा' द्वारा अधिक निकटता स्थापित की गई है।

शब्दों के सामर्थ्य और सौंदर्य के अंतराल को प्रकट करने के लिये तीव्र रागात्मक संवेदनाएँ चाहिए। प्रसाद कभी भी भद्दे शब्दों का प्रयोग नहीं करते। उनका सजग चयन ही काव्य में चारों ओर आलोक, रंग और संगीत बिखरा देता है। उदाहरणार्थ कवि अमर देवताओं की बालाओं के मधुरतम अक्षय शृंगार का चित्रण करना चाहता था। साधारण फूल मुरझा जाते हैं और उनकी गंध लुप्त हो जाती है; साधारण मणियों में आलोक नहीं होता। स्वर्ग के पारिजात के फूल और चंद्रकांत मणियाँ भी ऐसे गुणों से पूर्ण हैं। इसलिए कवि कहता है—

'वे अम्लान **कुसुम** सुरभित, मणि रचित मनोहर मालायें'

यहाँ शब्दचयन एवं व्यवस्था का संगीत मणियों का व्यंजक आलोक और रंग तथा सुरभित कुसुमरचित मालाओं के झूलने का संगीत सौंदर्य को चरमावस्था तक पहुँचा देता है। इसके पहले उन्होंने निम्नलिखित पंक्ति लिखी थी जिसमें साधर्म्य का लोप तथा असुंदर चयन था —

'वे सुवास मणिरत्न और आलोक कुसुम की मालायें।'

न मणिरत्नों में सुवास होती है, और न कुसुमों में आलोक। इसके अतिरिक्त अमरता और विहार की निश्चितता का बोध भी कम होता है। कुछ दूसरे उदाहरण निम्नलिखित हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	मूल	परिवर्तित
१.	कल कुसुमित कुंजों में वे पुलकित आलिंगन हुए विलीन (चिंता)	कुसुमित कुंजों में वे **पुलकित प्रेमालिंगन** हुए विलीन '+'
२.	वर्षा - सरिता सदृश वासनाओं का वह मदमत्त प्रवाह (चिंता)	**भरी** वासना-सरिता का **कैसा** था मदमत्त '+' '+' प्रवाह
३.	कर रहे निर्जन का **निर्वेद** प्रभा की धारा से अभिषेक (आशा)	कर रहे निर्जन का **चुपचाप** प्रभा की धारा से अभिषेक
४.	उस रमणीय दृश्य में खुलने लगी चेतना की आँखें (चिंता)	खुली उसी रमणीय दृश्य में **अलस चेतना** की आंखें
५.	मनु **अकेले** निज नियति का खेल बंधन मुक्त (वासना)	मनु **चमत्कृत** निज नियति का खेल बंधन मुक्त
६.	**अचल रजनी मूर्ति** बनकर स्तब्ध बैठा कौन (वासना)	**विमल राका मूर्ति** बनकर स्तब्ध बैठा कौन
७.	बिखरती है तामरस सुंदर **मरण** के प्रांत (वासना)	बिखरती है तामरस सुंदर **चरण** के प्रांत
८.	नारी जीवन का ऐसा ही क्या **चित्र** रंग भर देती है (लज्जा)	नारी जीवन का चित्र यही क्या **विकल** रंग भर देती हो
९.	गैरिक वसना **लाली में** उपहार लिये थी जिसके (आनंद)	गैरिक वसना **संध्या-सी** जिसके चुप थे सब कलरव

इनमें से कुछ तुलनात्मक वाक्यांशों का चयन करें, जैसे, पुलकित आलिंगन > पुलकित प्रेमालिंगन, वर्षा - सरिता - सदृश > भरी वासना-सरिता, निर्वेद > चुपचाप, चेतना > अलस चेतना, मनु अकेले > मनु चमत्कृत, अचल रजनीमूर्ति > विमल राका मूर्ति, सुंदर मरण > सुंदर चरण, चित्र रंग > विकल रंग। यहाँ पर मुख्यतः विशेषणों का परिवर्तित प्रयोग भव्य शैली की परिष्कृति को प्रकट करता है। पुलकित आलिंगन के साथ प्रेमोन्माद उसे 'प्रेमालिंगन' बना देता है; सादृश्य की दूरान्विति को हटाकर 'मदमत्त प्रवाह' के लिये वासना - सरिता — और 'भरी वासना - सरिता' का रूपक ही इस प्रवाह का वहन कर सकता है; निर्जन का 'चुपचाप' अभिषेक वातावरण के अनुकूल हो जाता है; रमणीय दृश्य में चेतना की आँखों का एक दम नहीं, 'अलसता' के साथ खुलना अनिवार्य है; बंधनमुक्त खेल खेलनेवाले अकेले मनु का 'चमत्कृत' मनु होना ही समीचीन है; स्तब्ध बैठनेवाली अचल रजनीमूर्ति एक ही अर्थ को दुहराती है इसलिए विमलराका मूर्ति में अर्थ के दुहरेपन की ओर 'विमल' के रंग से शांति के भाव की सार्थकता है; 'सुंदर मरण' के प्रांत में यदि तामरस बिखरे तो सौंदर्य की अमरता कहाँ रही ? उसे तो 'सुंदर चरण' के प्रांत में बिखर कर पूर्ण समर्पण करना चाहिए — अमर सौंदर्य द्वारा परिवर्तित होने के लिए। चित्र में रंग तो होते ही हैं, परंतु 'विकल रंग' के भराव से जीवन का एक विशिष्ट चित्र बनता है, लाल की अपेक्षा संध्या सचमुच 'गैरिक वासना' होती है। ऐसे उत्तम विशेषणों का प्रयोग कवि की महान प्रतिभा और शब्दमर्म को बेधता है। इसी प्रसंग में हम प्रकाशित प्रति के कुछ अपरिवर्तित विशेषणों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि इससे हमारा उपर्युक्त मूल्यांकन समृद्ध होता है कि मिल्टन की तरह प्रसाद भी विशेषणों के प्रयोग के महान शिल्पी थे। इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषणों ने इनके काव्य में वातावरण, सौंदर्य, संगीत, आलोक, इमेज की पूर्णता आदि को छिटकाया है—मुसक्याती मधु राका, मानभरी मधु ऋतु रातें, उन्मत्त विलास, सुरभित आँचल, शिथिल वसन, मधुमय चुंबन, भैरव मिश्रण, धुँधले तट, सुनहले तीर, अलसाई वनस्पतियाँ, विजन जगत, उलझी अलकें, बिखरी अलकें, फेनिल लहरें, सुंदर मौन, शिशुमाल, अभिराम इंद्रजाल, नील परिधान, अचेत ज्वालामुखी, माधवी रजनी, घुँघराले बाल, नील कुंज, फेनिल फन, निस्तेज गोलक, दृप्त ईर्ष्या, रागरंजित चंद्रिका, भोला सुहाग, धवल हँसी, उन्नत वक्ष, दुर्ललित लालसा, मीठी अभिलाषाएँ, निर्वसन प्रकृति, जलती छाती, शीतल प्यार, निष्ठुर विजय, रुद्र हुंकार, दूरागत वंशीरव, अजस्र वर्षा, श्यामल कर्म-लोक आदि आदि। इन्हीं विशेषणों ने रंगों के कई इंद्रधनुष खींचे हैं — सुंदर चरण, विमल राका, चमत्कृत मनु, तरल अग्नि की दौड़, रजनी की भीगी पलकें पतझड़ की सूनी डाल आदि के रंगों का नामकरण अभी शेष हैं किंतु प्रकाशित प्रति में ही अपरिवर्तित इंद्रनील, हिमधवल, अरुण, स्वर्णिम रंग, रंग विरंगी छींट, आँखों में अंजन, सरस कपोलों में लाली, नयनों की नीलम घाटी, केतकी गर्भ-सा पीला मुख, कोमल काले ऊनों की नव पट्टिका, नील परिधान, सोने की सिकता में कालिंदी का उल्लासयुक्त बहाव, स्वर्गंगा में इंदीवर की एक पंक्ति, पीला पीला दिवस, श्यामल घाटी, संध्या की अरुण जलज केसर, क्षितिज भाल का कुंकुम, हरित कुंज की छाया, रुपहली रातें, अति नीले पीले धूमकेतु, रक्तिम उन्माद, महाश्वेत गजराज, चपला के गहने इत्यादि परिपूर्ण दृश्यात्मक विंबों (विजुअल इमेजेज) की अद्भुत दुनियाँ बसा देते हैं।

कुछ विकल्पों (आल्टर्नेटिव्ज) का प्रयोग करके प्रसाद ने भाषा के भद्देपन को दूर किया और भावों में शालीनता तथा सौंदर्य की भी अभिवृद्धि की है —

मूल	परिवर्तित
१. ज्वालामुखी स्फोट की भीषण प्रथम कंप सी मतवाली (चिंता)	ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप सी मतवाली (लिंगसुधार)
२. उस विराट आलोड़न के बुल्ले से उपग्रह लगते	उस विराट आलोड़न में गृहतारा बुदबुद से लगते
३. परिचित जोड़ा चाह रहा था द्वंद्व आज अपना अनजान	चिरपरिचित-सा चाह रहा था द्वंद्व सुखद करके अनुमान
४. लेट रही श्रद्धा भी अपना कोमल चर्म बिछा के	कामायनी पड़ी थी अपना कोमल चर्म बिछा के
५. मादकता सुख के पेंग बढ़े पालने पौढ़ कर झूलो	मादकता दोलापर प्रेयसि! आओ मिलकर झूलो '+' '+'

और निम्नलिखित अवतरणों में विकल्पों द्वारा वातावरण के अनुकूल भावों में परिवर्तन हुआ है—

मूल	परिवर्तित
१. आज मनन करता हूँ जितनी उस अतीत की उस सुख की (चिंता)	चिंता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की उस सुख की
२. दुख है सुख प्रतिभा की पीठ चिरंतन कला कुशल विश्राम ×	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये हैं जहाँ रोककर हाथ और तुम लखते मुख छविधाम × विषमता की मधु पीड़ा लिये काँपता है यह विश्व महान × (श्रद्धा)	विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पंदित विश्व महान
२. जो **मधुर नियति** बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही	जो **आकर्षण** बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही
४. वह दुर्गंध बनेगा फिर आमोद कहाँ पाओगे (कर्म)	फिर आमोद कहाँ से मधुमय वसुधा पर लाओगे
५. **वासना** चलेगी अंतहीन (इड़ा)	**यातना** चलेगी अंतहीन
६. उठा तुमुल रणनाद **मौन** थी दलित व्यवस्था (संघर्ष).	उठा तुमुल रणनाद **भयानक** हुई व्यवस्था
७. हृदय हमारा सीपी सा था तुम उसमें **मकरंद** बनीं (निर्वेद)	हृदय बन रहा था सीपी सा तुम स्वाती की बूँद बनीं

पहले, तीसरे, पाँचवें और छठे उदाहरण में वातावरण की अनुकूलता का ध्यान रखा गया है; यथा मननशील होने पर मनुष्य स्थितप्रज्ञ - सा हो जाता है किंतु चिंता करनेवाला अभी भी आसक्ति लिए रहता है और दुखी रहता है; रति मधुर नियति बनकर नहीं, आकर्षण बनकर हँसती हुई वासना को उद्दीप्त करती है; तुमुल रणनाद के बाद की अवस्था मौन नहीं, भयानक हो जाती है, और वासना नहीं, यातना अंतहीन होती है। सातवें उदाहरण में पुरुष के सीपी-से हृदय में नारी मकरंद नहीं, स्वाती की बूँद बनकर रूपक के औचित्य को सिद्ध करती है। कतिपय परिवर्तनों द्वारा प्रसाद ने सौंदर्यसंघटन के विस्तार का लोप भी किया है; यथा — 'नासापुट के नीचे और कपोलों पर बन ज्योती' (कर्म) > 'मुख मंडल पर करुण कल्पना उनको रही पिरोती।

किसी भी काव्य में व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ (थोड़े अंशों में जातिवाचक संज्ञाएँ भी) चतुर्दिक रंग, प्रकाश और संगीत तो बिखेरती ही हैं, पौराणिक कथाओं, सांस्कृतिक द्वंद्वों तथा मनोवैज्ञानिक, दशाओं का प्रतीक भी हो जाती हैं। इनके द्वारा काव्य का साधारणीकरण होता है, वर्णनों में सौंदर्यप्रसार का अवसर मिलता है तथा कथात्मकता का सूत्र सधा रहता है। प्रसाद ने मनु, श्रद्धा, इड़ा, किलात-आकुलि और नटेश तथा हिमालय, मानसरोवर, सारस्वत नगर, सरस्वती नदी आदि का उपयोग पौराणिक (माइथोलाजिकल) एवं सांस्कृतिक संदर्भों में तो किया ही है, इसके अतिरिक्त मानवता के विकास तथा मनुष्य के मनोविज्ञान के लिये असंबद्ध प्रतीकों के रूप में भी किया है। ये सभी मानव महाकाव्य के पात्र हैं। इसके अलावा विश्वदेव, सविता, पूषा, सोम, मरुत, पवमान, मित्र, वरुण आदि वैदिक देवताओं ने भी अपने ऋचात्मक, अनंत, रमणीय, आदिमयुगीन रहस्मय सौंदर्य और संदेश को बिखराया है। एक परिवर्तित पंक्ति में एक नई देवशक्ति पूषा को संमिलित किया गया है — 'विश्वदेव! या वरुण सोम सवितः अथवा चंचल पवमान' > 'विश्वदेव सविता या पूषा, सोम, मरुत चंचल पवमान'। इसके अलावा सर्गों में 'कर्म' के लिये 'यज्ञ', 'बुद्धि' के लिये 'इड़ा', 'युद्ध' के लिये 'संघर्ष' और 'स्वीकृति (= संधि)' के लिए 'निर्वेद' नाम ग्रहण करने का ध्येय वस्तुतः यज्ञ, युद्ध, संधि जैसे प्रसंगों को अधिक वर्णनात्मक बनाना प्रतीत होता है। 'कामायनी' की इन व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में डा० फतहसिंह ने अतिरंजित उत्साह दिखाकर उनसे संबंधित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसंगों के स्रोत ऋग्वेद, ब्राह्मण - ग्रंथों, उपनिषदों के अतिरिक्त अग्निपुराण, श्रौत एवं गृह्यसूत्रों, तथा कूर्मपुराण आदि में खोज निकालकर विराट तुलना की है।

अब तक के सूक्ष्म विस्तारों की अन्विति, विकल्पों के प्रयोग, अनुप्रास, विशेषण, विकल्पों के चयन, ध्वनि - पुनर्योजना, वाक्य - पुनर्गठन और व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की तुलनात्मक समीक्षा के उपरांत हम प्रसाद की भव्य शैली के काव्यात्मक संगीत तथा कलाकार की शिल्प - कुशलता को भलीभाँति समझ सकते हैं। 'उपनिषदों को शय्या के सिरहाने रखकर सोनेवाले' जयशंकर प्रसाद ने वैदिक, पौराणिक और दार्शनिक साहित्य से दर्शन एवं चिंतन ग्रहण किया है और संस्कृत कवियों की श्रेष्ठ कृतियों का अवगाहन करके जातीय परंपरा में महत्वपूर्ण हस्ताक्षर किए हैं। 'रहस्य' सर्ग के हिमालयवर्णन में सुरधनु की माला पहिने और चपला के गहने चमकाते हुए जलधर, महाश्वेत गजराज - गंड से बिखरी हुई मधुधाराओं जैसे निर्झर आदि पर कालिदास के हिमालयवर्णन का प्रभाव प्रतीत होता है। इसी प्रकार श्रद्धा के पशु की शारीरिक चेष्टाएँ शकुंतला के हरिण की याद दिला देती हैं। संध्यावर्णन, रात्रिवर्णन, सरोवरवर्णन, सारस्वत नगर वर्णन, यज्ञवर्णन, शिववर्णन आदि भी संस्कृत परंपरा के ग्रहण को नए रोमांसवादी तत्वों से जोड़ते हैं। प्रकाशित प्रति के अधिकांश परिवर्तन संस्कृत - शैली के समासगुंफन को ग्रहण करने की ओर हुए हैं। इस परंपरा के साथ साथ कवि पर ब्रजभाषा की परंपरा का भी हलका वासंती रंग शेष है। गैल, नखत, परम, ठिठकना, बीन, गली, छली, पली और 'मादकता सुख के पेंग बढ़े पालने पौढ़कर झूलो' के पेंग, पौढ़ना आदि शब्द ब्रजभाषा के संस्कार को बताते हैं। अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा प्रसाद में मधुमयी प्रवृत्ति की अधिकता के कारण का भी यह परिणाम है। वे ब्रजभाषा की परंपरा से विकसित होनेवाले भारतेंदुयुग की शृंगारिक परंपरा को ग्रहण करके आए थे और उसी युग के प्रतीकों के साथ रीतिकालीन ऐंद्रियता भी चर्चित करते गए। अतः उनमें स्पष्ट रूप से ब्रजभाषा की रीतिकालीन शृंगारिक परंपरा, संस्कृत की क्लासिकल परंपरा और समकालीन छायावादी स्वच्छंद परंपरा का संगम हुआ है। अतः उनके व्यक्तित्व और विवेच्य विषय के आधार पर हम कई मनोविश्लेषणात्मक समाधान पा सकते हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

मनोविश्लेषणात्मक समाधान

मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि स्वप्न और कविता, दोनों का ही तानाबाना कल्पना द्वारा बुना जाता है—पहले में साधारण बोधात्मकता और दूसरे में परिष्कृत बोधात्मकता के साथ। किसी कवि की कल्पना के विश्लेषण के लिए बाल्यकालीन संस्मरणों का ज्ञान अत्यंत अपेक्षित होता है। ये बाल्यकालीन प्रभाव ही सर्वोत्तम और अत्यंत प्रेरक होते हैं, यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। ये ही 'चेतन के मुक्त प्रवाह' के कुछ खंडों की रचना करते हैं तथा जीवन पर्यंत कृतियों में बार बार दुहराए जाते हैं। ये अतीत और वर्तमान के भी संगम होते हैं। दुर्भाग्यवश प्रसाद की बाल्यकालीन स्मृतियों का ज्ञान नहीं के बराबर है। किशोरावस्था की कुछ याददाश्तों और रचनाओं के क्रमिक विकास के द्वारा इसकी आंशिक पूर्ति की जा सकती है। बार बार उनकी कविता में शांत सरसी, जल के निर्मल दर्पण में प्रतिबिंबित होती हुई प्रकृति की बाल्यकालीन आत्मरति की प्रमुख अंतर्मुखी प्रवृत्ति का संकेत करती है जो बार बार उनके प्रौढ़तर कृतित्व में अंकित हुई है। यह आत्मरति (नार्सिसिज्म) एक प्रतीकात्मक पौराणिक गाथा के संदर्भ द्वारा मनोविज्ञान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहीत हुई है। विकसित होकर प्रसादकाव्य के ये लघु शांत सरोवर, निर्भर आदि 'कामायनी' के मानसरोवर और जलप्रलय तक हो जाते हैं। बाल्यकाल से ही वे निरंतर अपने गृह-आँगन के उद्यान में विभिन्न प्रकार की पुष्पक्यारियों का हँसना-खिलना, सुरभिमत्त लताकुंजों का झूमना, काशी के गंगातटों पर अरुणोदय और सूर्यास्त देखते रहे थे। एतदर्थ प्रसाद ही अकेले छायावादी कवि हैं जिन्हें पुष्पक्यारियों से 'विशेष' अनुराग है और जो लताकुंजों की उन्मादक छाँह तले विश्राम खोजते हैं। यह विश्राम-ग्रहण-वृत्ति 'चंद्रगुप्त' जैसे वीररस-प्रधान संघर्षपूर्ण नाटक में तो अति की हद तक पहुँच गई है। फिर ग्यारह वर्ष की अवस्था में अपनी माता के साथ तीर्थयात्रा के मिस मानो उन्होंने एक प्रेमपथिक होकर कलायात्रा ही की। विंध्याचल के ऊँचे शैलशृंग, शिप्रा, नर्मदा, यमुना की लघु लघु लोल लहरें, जगन्नाथपुरी का गंभीर फेनिल समुद्र आदि उनके कैनवस बने। बाद में संभवतः वे ही नए परिशीलों के साथ हिमगिरि के उत्तुंग शिखर, सरस्वती का कल कल नाद, प्रलयवादी गर्जितोर्मि सिंधु, सुनहले तीर बरसाती हुई जयलक्ष्मी-सी उषा, मधु की मानभरी रातें, उदास संध्याएँ होकर 'कामायनी' में बार बार वर्णित हुई हैं। यद्यपि इनका विकास भी हुआ और कतिपय विचारों का 'अनुषंग' भी इनसे जुड़ गया, किंतु इनका मूल तो बाल्य-कैशोर-संस्मरणों में ही है। यदि उनके 'प्रेम-पथिक' नामक खंडकाव्य का मनन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि बचपन की कोई घनिष्ठ प्रीति ही रही होगी जो लगभग एक ही प्रकार के कथावृत्त के प्रयोजनों को 'कामायनी' में भी विकसित करती है। 'प्रेम-पथिक का सुख, समृद्धि, स्नेह और शांति के वातावरण से युक्त 'आनंद-सागर', तापसी चमेली का, युवक प्रेमी को प्रेम-पथिक बनाकर अप्रत्यक्ष, पंथ-प्रदर्शक होना तथा अंततः दोनों का सौंदर्य-प्रेमनिधि में मिलना (जहाँ अखंड शांति है) आदि 'कामायनी' के विकसित वृत्तों को अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। 'कामायनी' में इस कैशोर प्रेम को दार्शनिक तथा सांस्कृतिक पटल दिया गया है और पात्रों को प्रतीक बनाया गया है। किंतु किशोरावस्था के बीज-भाव समानांतर हैं। यहाँ कल्पना के एक सुंदर लोक की रचना के साथ साथ सारस्वत नगर जुड़ा है तथा श्रद्धा भी सक्रिय होकर मनु का पंथ-प्रदर्शन करती हुई आनंद - लोक की ओर ले जाती है। 'प्रेम-पथिक' के 'सौंदर्य-प्रेमनिधि' से 'कामायनी' के 'आनंद - अंबुनिधि' की तुलना प्रसाद के विकास को स्पष्ट करती है तथा 'कामायनी' में भी कवि की बाल्यस्मृतियों को सांस्कृतिक गौरवपूर्ण स्वरूप प्रदान करती है। 'प्रेम-पथिक' में तो कैशोर भोलापन, कैशोर समर्पण, कैशोर कुतूहल ही परिव्याप्त है। बाल्यकाल की ताजगी की ओर उन्मुख होना मानवस्वभाव है और रोमांटिक कवियों में तो यह एक संप्रदायगत आस्था-सा बन गया। इसी प्रकार रात्रि के प्रति तन्मयता भी रोमांटिक कवियों की एक प्रमुख वृत्ति है क्योंकि वह समय मनन, स्वप्न और अवचेतन का होता है। प्रसाद को मधु-राकाएँ, रजनी के पिछले प्रहर और अलस तंद्रा अति प्रिय हैं। बाल्यस्मृतियों की ओर उन्मुख होने का जोश, पवित्रता, भोले चित्रकार, उषा इत्यादि के माध्यम से प्रकट हुआ है। 'कामायनी' के कामसर्ग में वे शिशु-चित्रकार को जीवन की आँखों में अस्पष्ट लिपि भरते हुए पाते हैं और तदनंतर एक काटे गए अवतरण में कहते हैं —

'आनंद भैरवी जीवन की वह ललित राग कोई गा दो
उस भूले भाले शैशव को कोई खोजो कोई ला दो!'

इस किशोरता की अलस तंद्रा और चंचलता को कई निष्ठाएँ और समस्याएँ आकर भंग किया करती हैं। एक आस्था आती है, तो दूसरी जाती है, या उसकी पूर्ति करती है। इस प्रकार चेतन - अवचेतन एवं अंतर्मुखीनता - बहिर्मुखीनता में निरंतर द्वंद्व चला करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहिर्मुखीनता (एक्स्ट्रोवर्शन) की ओर उत्तरोत्तर बनती हुई रुचियों ने प्रसाद को क्लासिकल परंपराओं की ओर तीव्रगति से अग्रसर किया। इसी स्थिति के बाद से उनकी आंतरिक समन्वय की विजय का समारंभ होता है। 'कामायनी' में रोमांटिक और क्लासिकल रीतियों के विरोधपुंजों में विचित्र एकता स्थित है। इस बात को अधिक साफ सुथरे ढंग से कहने के लिए हम जर्मनी के महाकवि योहान वूल्फगांग वान गेटे के गीतिनाटक 'फाउस्ट' और 'कामायनी' के इस पक्ष में समानताएँ देखेंगे। 'फाउस्ट' के प्रथम खंड में तो वैयक्तिकता और रोमांटिकता है; किंतु दूसरा खंड दार्शनिक है। 'कामायनी' में संघर्ष (कुछ हद तक 'निर्वेद') सर्ग तक वैयक्तिकता और अंतर्मुखी रोमांटिकता है तथा रहस्य सर्ग में सैद्धांतिक दर्शन के प्रति क्लासिक आस्था एवं आनंद सर्ग में सौंदर्यपक्ष के प्रति अंतर्मुखी आस्था प्रकट हुई है। 'फाउस्ट' की हेलेन सौंदर्यवादी मानवता का प्रतीक है और 'कामायनी' की श्रद्धा आनंदवादी मानवता का। चिरंतन नारीत्व (एक्सटर्नल फेमिनिन) दोनों में मंडित है। हेलेन फाउस्ट का पंथ-प्रदर्शन करके चिरंतन कर्म की ओर ले जाती है और श्रद्धा मनु का पंथप्रदर्शन करती हुई हिमालय में 'शक्तिमान युगल' (चिरंतन प्रकृति + चिरंतन पुरुष = 'परमशिव') के आवास में चिन्मय सामरस्य प्राप्त करके समाधिस्थ होने के लिए ले जाती है।

प्रसाद की अंतर्मुखी प्रवृत्ति का बाह्यीकरण पर्याप्त मात्रा में हुआ, किंतु दार्शनिकता, मानसिक द्वंद्वों की प्रबलता और रोमांटिक बोधों के कारण वह पुनः अंतर्मुखी हो गई। हेलेन यूनान की क्लासिकल दुनियाँ से लेकर गेटे के काल तक का 'मानव' (= यूरोपीय) इतिहास प्रस्तुत करती है, तो श्रद्धा इच्छा, ज्ञान एवं कर्म के तीन लोकों, सारस्वत नगर की वर्गीय व्यवस्था के परिणाम आदि को उपस्थित करती हुई नर्तित नटेश के शांत एवं आनंदमय लोक में भारतीय यौगिक आध्यात्मिक जिज्ञासा को संतुष्ट करती है। श्रद्धा के होते हुए भी सामाजिक समस्याएँ वैसी की वैसी ही बनी रहती हैं। फिर भी प्रसाद जैसे प्रबल अंतर्मुखी कवि, दार्शनिक होने के साथ साथ, बहिर्मुखी होने के निरंतर प्रयास करते रहे।

इसके अतिरिक्त जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि सर्गों में 'यज्ञ' का नाम 'कर्म' में, 'बुद्धि' का 'इड़ा' में, 'युद्ध' का 'संघर्ष' में और 'संधि' का 'निर्वेद' में परिवर्तित करना भी सूचित करता है कि नाटक और महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों को वे अधिकाधिक समन्वित करना चाह रहे थे और क्लासिकल रीतियों के प्रति अधिक जागरूक हुए थे। रहस्य सर्ग का हिमालयवर्णन और वासना सर्ग का पशुवर्णन हठात् ही कालिदास के हिमालयवर्णन और मृगशावक - प्रिया शकुंतला के हरिण की याद दिला देता है। 'कामायनी' की वर्णनसूची से तो यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है। 'आँसू' की रोमांसवादी एवं मुक्त परंपरा से 'कामायनी' की प्रबंधपरंपरा की स्वीकृति और सुकृति भी बहिर्मुखता के इस परिवर्धन को बल देती हैं। इसकी प्रामाणिकता के विषय में हम एक मनोवैज्ञानिक सूत्र का उद्घाटन करना चाहेंगे। प्रसाद ने अपनी उपचेतनावस्था में, मानवजाति के इतिहास में मनु के जीवन की क्रांतिकारी घटना की समरूपता (आइडेंटिफिकेशन) अपने जीवन के क्रांतिकारी मोड़ के साथ स्थापित की है। प्रसाद भी अपने अनुभवों तथा आदर्शों के अनुकूल एक ऐसी सामाजिक यूतोपिया रचना चाहते थे जहाँ उनके शैव आस्थावादी आनंद, बौद्ध निष्ठावादी करुणा एवं उपनिषद की ब्रह्मवादी शांति का समन्वय हो। इसी के हेतु अपने उपचेतन से क्रियाशील होकर उन्होंने ऐसी सृष्टि को मानवइतिहास के प्रजापति मनु के साथ जोड़ दिया। इसीलिए कामायनी का नायक मनु वैवस्वत मनु की परंपरा के साथ कोई कड़ी नहीं जोड़ सका। वह विभिन्न विरोधों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से युक्त मुक्त पुरुष ही है। अपेक्षाकृत अधिक बहिर्मुखी कवि 'निराला' ने भी 'तुलसीदास' द्वारा ऐसा ही किया। अपने जीवन के क्रांत बिंदु को उन्होंने 'तुलसीदास' के जीवन के क्रांत मोड़ के साथ समरूप कर दिया जिससे तुलसीदास के संघर्षों - द्वंद्वों के माध्यम से उन्होंने स्वयं को ही यथेष्ट सीमा तक प्रस्तुत किया। प्रसाद 'लहर' जैसी शुद्ध व्यक्तिवादी रोमांटिक कृति में भी तीन ऐतिहासिक काव्याख्यानों द्वारा बहिर्मुखी हुए। वस्तुतः 'आँसू' की स्थिति के 'खिंचाव-तनाव' के अतिरेकपूर्ण संकट से वे निकलना चाहते थे। अतएव पहले वे हिमगिरि के एकांत में मनु से सुर-श्मसान का साधन कराते हैं, फिर अपने अंतर्द्वंद्वों के अनुरूप ही जल-प्लावन का प्रलयंकर चित्र उपस्थित करते हैं। बाह्य जगत के जीवन में पहला पदार्पण कामायनी का मधु गुंजार सुनने पर होता है। उपर्युक्त स्थापना में **'प्रसादवादी-विवेक'** की एक मूल शिला स्थित है। अंतर्मुखी तनावों से मुक्त होने के लिये ही वे प्रकृति की ओर ध्यानस्थ हुए हैं। इसीलिए अब 'मधुप', 'बीणा', 'हँसते-मुसक्याते सुमन', 'जग'', 'मार्ग' आदि बहिर्मुखी-नता के प्रतीक हो जाते हैं। यद्यपि इनमें सौष्ठव और व्यवस्था का अभाव अभी भी रहता है और अभी भी ये 'मौन', 'तुमुल कोलाहल', 'अंधेर', भीड़ से आक्रांत है।

इसी दिशा में एक दूसरा संकेत किया जा सकता है। 'लहर' की तीन आख्यानक रचनाओं के समय के बाद से कवि प्रसाद में जीवन को दुबारा खोजने की उद्विग्न इच्छा आंदोलित होने लगती है और इसी काल में मदिरा के मूर्तिविधान नाना रूपों में विशेष ढंग से चित्रित होते हैं। 'मधुप', 'पराग', 'आसव', 'मधु', 'प्यास', 'एक घूँट' आदि सभी जीवन को दुबारा खोजने की इच्छा - आकांक्षाओं को व्यक्त करते हैं। उनके आरंभिक एकांकी 'एकघूँट' में स्वास्थ्य, सौंदर्य और भोलेपन का प्रतीक एक घूँट प्रेम, आनंद और सौंदर्य को 'प्रसादवादी' दृष्टिकोण का विशिष्ट आधार बना देते हैं और आनंदावस्था की चरम परिणति में पहुँच जाते हैं। यह आनंदवादी अभिव्यक्ति भी उनकी परिणत बहिर्मुखीनता का ही परिणाम है क्योंकि 'आँसू' तक इसके या शैवदर्शन के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते; तब तक करुणा और बौद्धों का क्षणिकवाद और सूफी पद्धति की रागोन्मत्त प्रेमवृत्ति प्रभावशाली रहती है। परंतु 'लहर' में मानस की लघु लहरी के रूप में यह दुःखमय बाह्यजगत का आनंदमय अंतर्जगत से मेल कराती है और 'सूखे तट', 'विरस अधर' को चूमती हुई 'ठहर ठहर' कर 'छिटक छहर' जाती है। 'कामायनी' में यही 'लघु-लोल लहर' 'आनंद-अंबुनिधि' में विराट प्रतीकत्व पा जाती है।

किंतु इस 'मानस-लहर' का एक अन्य अंतर्मुखी पक्ष है जो करुणा की तरंग बनकर दुःखवाद और नियतिवाद का परिवेष्ठन स्वीकार करता है। इसके पीछे पुनः बाल्य-स्मृतियाँ जुड़ी हैं। उनके किशोर मस्तिक पर बारहवें वर्ष में पिता, पंद्रहवें में माता और सत्रहवें में ज्येष्ठ भ्राता के निधन, दो पत्नियों के वियोग ने तथा विधवा भावज की करुण मूर्ति ने स्थायी प्रभाव डाला। वे अंतर्मुखी प्रकृति के तो थे ही। अतः अपने वातावरण से व्यवस्थित होने के लिए, उन्होंने एक वैयक्तिक दृष्टिकोण, धार्मिक दर्शन और समन्वयवादी विश्वसिद्धांत को ग्रहण किया। कार्ल युंग ने अंतर्मुखी व्यक्तियों के लिये सामाजिक व्यवस्था (सोशल एडजस्टमेंट) के हेतु तीन उपर्युक्त मार्ग ही संभावित माने हैं। इसीलिए उनमें बौद्धों का दुःखवाद, शैवागमों का आनंदवाद तथा वैयक्तिक प्रेम - माधुर्य का संगम-सा मिलता है। करुणा और आनंद के इतने विरोधी मानसिक द्वंद्वों के चित्रण से प्रतिष्ठित हिंदीके वे विरले कवि हैं। इतने संकुल द्वंद्वों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्मुखीनता के कारण केवल वे ही ऐसे छायावादी कवि हैं जिन्होंने इतने व्यापक पटल पर किसी पौराणिक गाथा (मिथ) का पुनर्विधान किया है।

अस्तु, किसी कवि के दृष्टिपटल को पूर्णतः समझने के लिये हमें उसकी वैयक्तिक प्रतीकात्मकता (पर्सनल सिंबालिज्म) का अनुशीलन भी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से करना चाहिए। इन वैयक्तिक प्रतीकों के साथ कुछ द्वंद्व संलग्न रहते हैं जो शैशवावस्था से ही इनमें विशेष अर्थ भरा करते हैं। इन प्रतीकों के बिंबों का उद्गम खोजने पर हम कवि की कल्पना और दृष्टि को पहचान सकते हैं; लेकिन यह सदा ध्यान रखना होगा कि यह प्रतीकात्मकता झूठ नहीं होती बल्कि विभिन्न विकासों और अवस्थाओं में निरंतर घटती बढ़ती रहती है। इन प्रतीकों द्वारा कवि के विकास का आंतरिक ज्ञान हो सकता है यदि किसी नियम में बाँधकर इन्हें न जाँचा जाय जैसे, 'आनंदलोक' का उद्गम प्रेम में सौंदर्य और स्वास्थ्य के प्रतीक 'एक घूँट' में, मानसरोवर (के प्रतिबिंबित जल) का उद्गम नार्सीसिस से संलग्न आत्मरति की शैशवकालीन प्रवृत्ति में, मानवीकृत लज्जा के आत्मवर्णन का उद्गम उषा के कपोलों पर लज्जा की लाली में, नर्तित नटेश के संमुख अनहद संगीत का उद्गम मँडराते हुए आनंदसिक्त मलिंदों के गुंजार में मिल सकता है। निःसंदेह उन्होंने अपनी मौनवृत्ति को एक भव्य सांस्कृतिक उदात्तीकरण प्रदान किया है। यौवन की मादकता और प्रेमचर्या की शारीरिक चेष्टाओं की रंगरेलियों को इन्होंने साहसिक संयम के साथ अभिव्यक्त किया है यद्यपि इनकी 'मधुमयी प्रवृत्ति' अर्थात् 'प्रेम-विलासमय मधुर पक्ष की ओर स्वाभाविक प्रकृति' बार बार छलक पड़ी है। आचार्य शुक्ल तक ने प्रसाद की इस प्रवृत्ति के मर्म में पैठकर अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि "इसी मधुमयी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति के अनंत क्षेत्र में भी वल्लरियों के दान, कलिकाओं की मंद मुसकान, सुमनों के मधुपात्र, मँडराते मलिंदों के गुंजार, सौरभहर समीर की लपक झपक, पराग की लूट, उषा के कपोलों पर लज्जा की लाली, आकाश और पृथ्वी के अनुरागमय परिरंभ, रजनी के आँसू से भीगे अंबर, चंद्रमुख पर शरदघन के सरकते अवगुंठन, मधुमास की मधुवर्षा और झूमती मादकता इत्यादि पर अधिक दृष्टि जाती है। ये अधिकांश चेष्टाएँ और व्यापार 'कामायनी' में प्रसारित हुए हैं। इस मधुमयी प्रवृत्ति पर अवचेतना का झीना आवरण बार बार आए 'मद', 'तंद्रा', 'अलसता', 'स्वप्न', 'असंज्ञा की दशा' जैसे शब्दों द्वारा खुल जाता है।"

संमूर्तन (इमेजरी) भी अवचेतन की प्रमुख देन है। यदि हम 'कामायनी' में वर्णित केवल श्रद्धा के सौंदर्यवर्णन के बिंबों का ही मनोविश्लेषण करें तो प्रसाद की कल्पना और अवचेतन के कई स्रोत फूट पड़ते हैं। पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं —

'और देखा वह सुंदर दृश्य, नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम - वैभव में लता समान, चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लंबी काया उन्मुक्त;
मधुपवन क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल, सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

मसृण गांधार देश के नील, रोम वाले मेषों के चर्म।
ढँक रहे थे उसका वपु कांत, बन रहा था वह कोमल वर्म।

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम, बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रविमंडल इनको भेद, दिखाई देता हो छविधाम।

या कि नव इंद्रनील लघु शृंग, फोड़कर धधक रही हो कान्त;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत, माधवी रजनी में अश्रांत।

घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।

और उस मुख पर वह मुस्कयान ! रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम ! ...

'उषा की पहिली लेखा कांत, माधुरी से भींगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक द्युति की गोद।'

इस पद्यांश के संमूर्तन में जो प्रचुर रमणीयता, मधुमयता और मार्मिकता मिलती है उसके तीन कारण हैं—कवि की अवचेतनावस्था के विचारों का मुक्त आसंग (फ्री एसोशिएशन आव आइडियज इन द अन्कांशस स्टेट), वैयक्तिक प्रतीकात्मकता (पर्सनल सिंबालिज्म) तथा रोमांटिक - लाक्षणिक वैचित्र्य। यहाँ हम काव्यबिंबों (पोएटिक इमेजेज) को मनोवैज्ञानिकों की 'इमेज' की परिभाषा तथा कुछ सौंदर्यवादियों की संकुचित परिधि में नहीं ग्रहण करेंगे। इस दृष्टांत में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा से लेकर स्पर्श, दर्शन, श्रुति, गंध और रस के सभी बोध, जो कल्पना या प्रत्यक्षीकरण (इमैजिनेशन एंड पर्सेप्शन) द्वारा विकसित हों, बिंब माने जायँ। निम्नलिखित प्रवृत्तियों ने श्रद्धा के सौंदर्यवर्णन को कवि के अवचेतन एवं सौंदर्यप्रवृत्ति का उज्ज्वल दर्पण बना दिया है। उन्होंने नारीसौंदर्य के लिये प्रकृति के रूढ़ (रीतिकालीन) उपमानों का सर्वथा त्याग किया; बाह्यता से अंतर्मुखीनता में प्रविष्ट हुए; उदात्तीकरण के चेतन आग्रह के कारण यौन आकांक्षा पर गंभीर मर्यादा का अवगुंठन डाला; मूर्त के लिये अमूर्त विधानों की रचना की; अनेक उत्प्रेक्षाओं का अवलंबन लेकर अवचेतनलोक में मुक्त उड़ानें भरीं तथा लघु उपमानों को भी विराट, दूरान्वित और अनूठे सौंदर्यचित्रों से संलग्न किया। कवि ने उपर्युक्त वर्णन में लाल रंग के छह, नीले रंग के चार और श्वेतरंग के सात बिंब प्रस्तुत किए हैं। नील रंग कवि की अवचेतनावस्था की अलस एवं अतल नीली गहराइयों को, लाल रंग कामोद्दीप्ति तथा श्वेतरंग उदात्त शांत शोभा को प्रकट करता है। गुलाबी रंग, अरुण रविमंडल, धधकता लाल 'ज्वालामुखि', अरुण की अलसाई किरण, उषा की पहली लेखा, रक्त किसलय आदि कवि में नारी की अंगमाधुरी के प्रति मादकता को उद्घाटित करते हैं। नील रोमवाले मेषों के चर्म, नील परिधान, इंद्रनील लघुशृंग, नील घनशावक आदि अलसता और अगम गहराइयों में कवि के अवचेतन को ('भुलावा देकर धीरे धीरे') ले चलने का संकेत करते हैं। चंद्रिका और बिजली के भीगे हुए आलोक भी कवि की अंतर्मुखी एकांत मूर्च्छा को चेतना से पृथक करते हैं। चंद्रिका, माधवी रजनी, विधु, तारकद्युति, शुभ्र राका हँसी — इनमें से गुलाबी बिजली की छवि को छोड़कर — आदि प्रकाशवान विवेक के सुंदर शांत संस्कार उपस्थित करते हैं। उसी प्रकार इस आवरण की शारीरिक चेष्टाएँ मधुचर्या का ही प्रस्फुटन करती है। चंद्रिका से लिपटे घनश्याम, मधुपवन के झकोरों से क्रीड़ा करता हुआ शाल, उन्मुक्त काया का संस्पर्श, नीले रोएँवाले मेषों के चर्म के आवरण के कारण कांत अंगों में स्फुरण, अधखुले अंगों का और भी खुलना, गुलाबी रंगवाले (दहकते और उत्तेजक) बिजली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के फूलों का खिलना, माधवी रजनी में लाल लपटों के साथ लघु ज्वालामुखी का धधकना, अमृत भरने की इच्छा से लघु मेघशावकों का घिरना, अरुण किरण का विश्राम लेकर अधिक अलसाना, तारकद्युति की गोद में मदभरी सलज्ज प्रथम उषा का भीगकर उठना, हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब झलकना आदि में सभी क्रियाएँ इंद्रियों के विलास से उन्मद हैं। अतः उपर्युक्त विश्लेषण कवि के अवचेतन और दमित इच्छाओं को (पर्याप्त अंशों तक) प्रकट करने के अलावा एक अन्य मनोवैज्ञानिक तथ्य को भी प्रस्तुत करता है। कवि के सारे प्रतीक अपनी प्रकृत अवस्था में रति-चयन से संबंधित प्रतीत होते हैं जिनमें (मेघ, घनश्याम, उषालेखा, चर्म आदि के व्याज से) सुंदर उत्तेजक रंग, वासना के दहकते विस्फोट, आलिंगन-परिरंभन की मादक चेष्टाओं पर कवि की सुंदर शैली के पदलालित्य, जागरूक भावुकता और गंभीर प्रेमवृत्ति ने पूरा आवरण डाल दिया है। इसमें परंपरागत वर्णनों का परित्याग हमें मोह लेता है तथा उदात्तीकरण नारी के शारीरिक एवं आंतरिक, दोनों पक्षों की शालीनता भी उपस्थित करता है। हमें तो इन संमूर्तनों की विलक्षणता का रहस्य यही प्रतीत होता है।

संक्षेप में इस प्रकार के वैयक्तिक संमूर्तन-विधान में वैयक्तिक प्रतीकात्मकता का बहुत बड़ा भाग होता है जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। इस पद्धति में कवि और कृति, दोनों ही लक्ष्य बनते हैं। यहाँ चंद्रिका किसी कामिनी नारी का, बिजली उत्तेजना का, ज्वालामुखी वासना का, उषा सरल सुरतगोपना का प्रतीक हो गई है। बाद में, इसी कृति में, ये ही प्रतीक अन्य कई अर्थों में भी प्रयुक्त हुए हैं जैसा कि इनके संबंध में हुआ करता है।

कुछ सौंदर्यवादी प्रश्न

कवि के व्यक्तित्व और रोमांसवादी प्रवृत्तियों ने कुछ ऐसे सौंदर्यात्मक प्रश्न उपस्थित किए हैं जिनपर संक्षेप में विचार करना उचित होगा। किसी काव्य में किसी व्यवस्थित दर्शन का ग्रहण किस सीमा तक कवि के दृष्टिकोण को उपस्थित करता है? इससे कवि के दर्शन का मूल्यांकन किस सीमा तक किया जा सकता है? काव्य की महत्ता इस दर्शन के ग्रहण करने से बढ़ती है या उसमें कवि की पैनी अंतर्दृष्टि से। दार्शनिक मौलिकता के आधार पर हम काव्य को कहाँ तक परखेंगे? क्या दर्शन 'सौंदर्य' को सुलभ एवं रसाविष्ट कर सकता है? साहित्य के सिद्धांतों की विवेचना करते हुए ऐसे ही प्रश्न रेने वेलेक एवं आस्टिन वारेन ने उठाए हैं। हम तो कहेंगे कि व्यवस्थित दर्शन के शुद्ध ग्रहण से किसी काव्य का विशेष मूल्यांकन तो कदापि नहीं हो सकता। यदि कृति में दर्शन के प्रति अंतर्दृष्टि सौंदर्यपक्ष का निरूपण और वैयक्तिक चिंतन का समन्वय है तथा परंपरा को बदल देने की शक्ति है तो सौंदर्योद्भावना की दृष्टि से भी वह एक युगप्रवर्तक कृति मानी जाएगी क्योंकि 'सत्यं शिवं सुंदरम्' में सत्य का संबंध दर्शन और जगत से है। **'कामायनी' की कविता में हम 'दार्शनिक कविता' के स्थान पर 'काव्यात्मक दर्शन' पाते हैं।** इसका तात्पर्य यह हुआ कि 'व्यक्ति' प्रसाद का चिंतन और अनुभव शैवदर्शन में सुंदर मधुर और सामरस्य के तत्व पाकर आनंद की ओर मुड़ा है तथा 'कवि' प्रसाद का चिंतन और अनुभव रोमांटिक आदर्शों में अपनी नव्यतर मानवता को खोजता हुआ आदर्शीकृत नारीत्व और शांति के एकांतलोक में समाधिस्थ हो गया है। इस अंतर को स्पष्ट करने के लिए हम काश्मीर शैवदर्शन के शास्त्रीय तत्वों के विषय में कुछ कहेंगे। इसके अनुसार प्रत्येक जीव में रहनेवाला 'शिवतत्व' ही आत्मतत्व है। यह चैतन्यरूप है और 'परमशिव' भी कहलाता है। शिव कतिपय शक्तियों द्वारा स्वयं का विस्तार करते हैं। वे 'चित् शक्ति' द्वारा 'स्वप्रकाश', 'आनंद शक्ति' द्वारा 'आनंदमय', इच्छा शक्ति द्वारा जगत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि, संहार तथा अन्य कार्यों के कर्ता, 'ज्ञानशक्ति' द्वारा 'ज्ञानस्वरूप' और 'क्रियाशक्ति' द्वारा सर्वरूपधारी हो जाते हैं। शक्ति के इन पाँचो रूपों से संपन्न शिव अपने आप समस्त विश्व की अभिव्यक्ति करते हैं जो शक्ति का ही विस्तृत रूप है। अपने 'भारतीय दर्शन' नामक ग्रंथ में डा० उमेश मिश्र इन तत्वों का आगे विवेचन करते हुए लिखते हैं कि जब साधक में प्रकृति अंश चैतन्य में लीन हो जाता है तब शनैः शनैः सूक्ष्म भूमि में प्रविष्ट होने पर "उसे केवल 'अहं' की प्रतीति देख पड़ती है। इसे 'शक्तितत्व' कहते हैं। यही 'परमशिव' की 'उन्मीलनावस्था' है। इसी अवस्था में साधक 'परमशिव' के स्वरूप को समझ सकता है। यहीं आत्मा के आनंदस्वरूप का प्रथम बार भान होता है। यही 'शक्ति' और 'शक्तिमान' की युगल मूर्ति है। यह अवस्था एक प्रकार से 'द्वैत' की है।...यह अवस्था अंत में परमशिव में लीन हो जाती है। यही 'शिवतत्व है।...जहाँ पहुंचकर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को 'परमशिव' में लीन कर देता है वह **चिन्मय सामरस्य की अवस्था** है। किंतु परमशिव में लीन होने पर कोई भी तत्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता। सभी तत्व 'परमशिव' में लीन होकर 'चिन्मय' हो जाते हैं। यही मनुष्य जीवन तथा दर्शन का चरम लक्ष्य है। यहाँ **शुद्ध अद्वैत** है। 'चिन्मय शिवतत्व' में सभी 'चिन्मय' हो जाते हैं। वस्तुतः शिवशक्ति के 'सामरस्य' की अवस्था तो यही है।"

प्रसाद ने इन विभेदों के सैद्धांतिक पार्थक्य स्थिर नहीं रखे हैं। और अपने हृदय के द्वंद्वों के अनुकूल ही अंतःकरण के तत्वों और विमर्ष शक्तियों को संचालित करके उन्होंने और 'समरसता' के वैयक्तिक प्रतिमान ही रचाए हैं। मनु और श्रद्धा, जो शिव और शक्ति के से हो जाते हैं लीन होकर, वस्तुतः अपना पहला आरंभ यथार्थ और आदर्श, अहं और आत्मा, मानवता और बर्बरता के द्वंद्वों को लेकर करते हैं। यही द्वंद्व प्रसाद का भी था — अंतर्मुखीनता से बहिर्मुखीनता की ओर अग्रसर होने में। यहाँ आनंद शक्ति न होकर उपलब्धि हो जाता है तथा 'ज्ञान' - 'क्रिया' - शक्ति विषमतापूर्ण हो जाती है। प्रसाद में इस क्षणिक जीवन को अत्यधिक सुखपूर्वक भोगने की अमिट प्यास थी और नारी के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण था। इन्हीं दो प्रवृत्तियों के कारण उन्होंने जीवन को भोगने की प्यास को प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आनंदवाद से तथा मानवता के प्रति वैयक्तिक आदर्शों को (यथार्थ तथा आदर्श का आदर्श के पक्ष में समन्वय करते हुए) कैलास के शांत, संघर्षहीन, समाज की विषमताओं से दूर के लोक से संबद्ध कर लिया। इसीलिए उनकी दार्शनिक भित्ति में सैद्धांतिकता की अपेक्षा वैयक्तिक आदर्श, धार्मिकता की अपेक्षा काव्य की मधुमयी भूमिका ही मिलती है। यदि 'कामायनी' के अंतिम दो सर्ग निकाल दें तो शायद दार्शनिकता का आतंक और विरुद काफी मंद हो जाएगा। रहस्यवादी आग्रह के कारण उन्होंने तांत्रिकों और योगियों के प्रतीकों का केवल उपयोग किया है। शैवदर्शन में कवि ने जो सर्वतोमुखी अंतर्दृष्टि दिखाई है वह जीवन को सर्वाधिक सुख से भोगने की प्यास के मार्गों की खोज है और वह भी उस समाज में जहां विषमता की पीड़ा हो। नारी को शक्तिस्वरूपा मानने के बाद पंथप्रदर्शिनी और मानवता का ही साक्षात प्रतिरूप मानकर भी उन्होंने सौंदर्यवहन किया है। इसीलिए उनका आनंदवाद वैयक्तिक आदर्शों से ओतप्रोत वैयक्तिक रंगों से भरा है। हिमधवल कैलास-लोक हमारे संघर्षपूर्ण समाज का सारस्वत नगर न होकर एक आदर्श आध्यात्मिक लोक है। वस्तुतः रोमांटिक कवि होने के नाते उनके दर्शन में सौंदर्य—प्रकृतिसौंदर्य एवं नारीसौंदर्य—के प्रति प्रगाढ़ अनुराग है तथा क्लासिकल परंपराओं के सचेतक होने के नाते मानवता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य के प्रति आस्था है। उनमें रोमांटिक और क्लासिकल परंपराओं के अंतःमिश्रण की ओर तो पहले ही संकेत किया जा चुका है।

संपूर्ण महाकाव्य में श्रद्धा विद्यमान है — मूर्तरूप में अथवा अमूर्त (— धारणाओं के) वातावरण के रूप में। बार बार मनु नारी से दूर भागे हैं और बार बार उसके समीप खिंचते गए हैं; बार बार नारी ने उनका मार्ग प्रदर्शित किया है। यह 'नारी' की शक्ति नहीं बल्कि 'नारीत्व' की मधुरता और शक्ति है जो मनुष्य को ही नहीं, सारी मानवता को आगे अग्रसर करती है। श्रद्धा केवल इच्छा - ज्ञान - कर्म की ही एकता नहीं कराती अपितु उस एकता को प्रेम और आनंद की शाश्वतता से मंडित भी कर देती है। वह शक्तिस्वरूपा भी है और मनु की आत्मा की संचालिका भी। नारीत्व की भावना और नारी की सामाजिक भूमिका दोनों मिलकर सारे काव्य को इस 'चिरंतन नारीत्व' से आप्लावित करते हैं। निराला के 'तुलसीदास' में भी 'नारी' रत्नावली की सामाजिक भूमिका और रत्नावली के शारदामय 'नारीत्व' की भावना. दोनों ने मिलकर तुलसीदास को अग्रसर किया है। छायावादी काव्य में अप्सराओं, प्रकृति की अभिसारिकाओं, अतींद्रिय प्रेयसियों की चर्चा तो काफी हुई है लेकिन 'चिरंतन नारीत्व' की इस धारणा को पूर्णतः भुलाया गया है। गेटे के 'फाउस्ट' के अंत में हेलेन फाउस्ट को आगे की ओर अग्रसर करती है। अमरकृति की अंतिम पंक्ति है — "चिरंतन नारीत्व हमें ऊँचाई की ओर लिए जा रहा है।" फाउस्ट की हेलेन होमर के महाकाव्य की हेलेन न होकर गेटे की वह कल्पना और अनुभूति है जिसका तात्पर्य पहले किसी वास्तविक नारी से, दूसरे प्रकृति से एवं तीसरे मानवात्मा से था। इस सौंदर्यवादी विधा को आगे बढ़ाकर विषयांतर अनावश्यक है।

जिस प्रकार युग युग से विश्व के सभी रोमांटिक और क्लासिकल कवियों ने चिरंतन नारीत्व का वास्तविक नारीसौंदर्य, नारीत्व - शिवतत्त्व और मानवता के सत्य से अभिषेक किया है, उसी प्रकार 'नारी सुलभ पंथ प्रदर्शन' भी सौंदर्यवहन का एक उदात्त माध्यम और चिरंतन नारीत्व का पूरक रहा है। दान्ते अपनी 'दिवाइन कोमेदिया' की स्वर्गयात्रा बैयाट्रिस के पंथप्रदर्शन द्वारा ही पूर्ण करता है; हेलेन फाउस्ट का पंथ - प्रदर्शन करके मानवता का अंतिम संदेश देती है; रत्नावली (निराला के 'तुलसीदास' में) तुलसीदास का पंथ-प्रदर्शन करके उन्हें संस्कृति का अग्रचेता बना देती है। श्रद्धा भी अपनी मुस्कानों से इच्छा, ज्ञान और कर्म के तीन लोकों को मिलाती हुई मनु को कैलास तक ले जाती है। इस भावना के पीछे मातृसत्ताक अवस्था के जातीय अवशेष तो हैं ही; महाकवियों के प्रेम और नारी, दोनों से संबंधित दृष्टिकोण भी गुँथे हैं। नारी के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण अगाध श्रद्धा और आदर्श का रहा है। प्रसाद ने भी नारी को संसार की प्रदर्शिका तथा मानवता को आगे बढ़ानेवाली और प्रेम को सभी मंगल श्रेयों का साधन और विश्वनियामक माना है। इसीलिए मंगलमयी नारी और उसका विश्वनियामक प्रेम मनुष्य और मानवता आदि का निर्देशन करता चला आ रहा है — कभी मातृशक्ति, कभी पत्नी, कभी जननी, कभी सखी और कभी प्रिया होकर। प्रसाद उसे हृदय की अधिष्ठात्री कोमलता एवं संसार में सरसता लानेवाली शक्ति मानते थे। जो कुछ भी सौंदर्य, शक्ति, कोमलता, एकता और प्रीति की सार्वभौम शाश्वत क्षमताएँ हैं, उनकी चरम परिणति नारी में स्वीकार करके 'नारीसुलभ पंथ प्रदर्शन' को उन्होंने अति गंभीर धरातल प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य सौंदर्यवादी प्रश्न। प्रकृति के सौंदर्यदर्शन के अन्य दृष्टिकोणों में अंतःअनुभूति या 'इंपैथी' नामक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की भी प्रधानता रही है। इसका विवेचन भी लगभग नहीं ही हुआ है। इसमें हम यह नहीं देखते कि कोई वस्तु किस प्रकार निर्मित होनी चाहिए, बल्कि यह विवेचना करते हैं कि उस वस्तु के निर्माण में कला का क्या योगदान है। गार्डनर मर्फी के अनुसार इसके द्वारा मनुष्य कलावस्तु के 'अभ्यंतर में स्वयं की अनुभूति' करता है। यहाँ दो बातों पर गौर करना चाहिए: प्रथम कलावस्तु दृश्य हो और दूसरे मनुष्य की भावनाओं का प्रक्षेपण हो। इसीलिए हमें लगता है कि प्रासादों के शिखर आकाश को छूते हैं, गुंबद फूलते हैं, स्तंभ-मालिका अचल प्रहरियों-सी खड़ी रहती है; इसीलिए लाल रंग में अनुराग, पीले में वियोग, श्वेत में शांति तथा नीले में गहराई है; इसीलिए वीणा के स्वर करुण हैं, मुरली की तान छलिया है, मृदंग में उल्लास है, घुँघुरुओं में घुमाव है; इसीलिए पपीहे की रटन, चातक की प्यास, कोकिला की मिठास, हरिणी का भोलापन, कागा की चतुरता, भ्रमरों का लोभ आदि है। तात्पर्य यह है कि 'प्रतीत होने' के साथ ही अन्तःअनुभूति क्रियाशील होती है। इस प्रक्रिया में 'मुद्रामूलक तनाव' (पोस्चरल स्ट्रेन्स) की भी चर्चा होती है। नर्तक का नृत्य देखते समय, रमा लेनेवाली रचना को पढ़ते समय या अद्भुत चित्र देखते समय अंतः-अनुभूति की उत्तम अवस्था होती है। मानवीयकरण और उत्प्रेक्षाओं में इस मनोवैज्ञानिक सौंदर्यप्रक्रिया की प्रचुरता ढूँढ़ी जा सकती है। 'कामायनी' का काव्य इस मार्मिक प्रक्रिया द्वारा सौंदर्यशाली हुआ है। हिमालय में प्रलयप्रवाह के बीच तपस्वी मनु-से दो चार देवताओं का खड़ा होना, व्योम चूमने के लिए लहरों का उठना, पवन का शब्दों को पीना, पवन का मृदु साँस लेना, हिमालय की हँसी का फूटना, धरा की भयभीत सिकुड़न सा हिमालय का दिखना, माधवी निशा का अलसा जाना, सृष्टि का हँसना, आँखों में अनुराग का खिलना, छवि के भार से दबना, सोने की सिकता में कालिंदी का उसास भरकर बहना, अंबर छूने को मचली-सी ऊँचाई का बढ़ते जाना, पवन का चक्कर काटना, जलधरों का दौड़ना, आदि 'कामायनी' में विभिन्न प्रकार से ग्रहण की गई अंतरानुभूति के उदाहरण हैं। अस्तु, यह सौंदर्यशास्त्र का एक स्वतंत्र विषय है।

इस निबंध में 'कामायनी' को नई दृष्टि से परखने का अयास-प्रयास है। हो सकता है कि कई स्थापनाएँ-विवेचनाएँ काफी उत्तेजक प्रतीत हों किंतु मूल में कामना यही है कि अब श्री जयशंकर 'प्रसाद' और उनकी महत्तम कृति 'कामायनी' का समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से मूल्यांकन हो।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्यशास्त्र और शांतरस

जयमंत मिश्र

राजशेखर की काव्यमीमांसा के अनुसार भरत ने नाट्यविषय पर और नंदिकेश्वर ने रसविषय पर सर्वप्रथम अपनी-अपनी ग्रंथरचना की। किंतु अद्यापि नंदिकेश्वर की कृति से अलंकारशास्त्र का परिचय न होने के कारण राजशेखर का साक्ष्य रहने पर भी, अलंकारशास्त्र के पर्यालोचकों ने रससंप्रदाय के प्रवर्तक रूप में भरतमुनि को ही माना है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से पूर्व भारतभूमि को कदाचित् वृद्ध भरत का वृहत्तर नाट्यशास्त्र प्रत्यक्ष गोचर हुआ था जो शारदातनय के भाव प्रकाशन में प्रतिपादित 'यथोक्तं वृद्ध भरतेन' इत्यादि वाक्यों से ही केवल नहीं माना जाता अपितु नाट्यशास्त्र के आनुवंश्य श्लोकों के आधार पर भी माना जा सकता है। परंतु आज उपलब्ध काव्यों के आधार पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को ही निर्भ्रांत रूप से अलंकारशास्त्र का प्रथम ग्रंथ होने का श्रेय दिया जाता है।

अभी नाट्यशास्त्र के कतिपय संस्करणों में गायकवाड संस्कृत सीरीज (बरोदा) संस्करण एवं चौखंबा संस्कृत सीरीज (काशी) संस्करण अधिक प्रचलित तथा प्रामाणिक हैं। नाट्यशास्त्र के इन संस्करणों में, गायकवाड संस्करण में, जिसमें आचार्य अभिनव गुप्त की प्रसिद्ध टीका अभिनव भारती प्रकाशित है, शांतरस का सांगोपांग विस्तृत विवेचन मिलता है। किंतु काशी संस्करण में यह अंश उपलब्ध नहीं है। अतः प्राचीनकाल से ही काव्यशास्त्र में यह विवाद का विषय रहा है कि नाट्यशास्त्र में वस्तुतः भरत ने शांतरस का विचार किया था। एक पक्ष का कहना है कि यदि नाट्यशास्त्र में भरतमुनि के द्वारा शांतरस का विचार हुआ होता तो —

> 'शृङ्गार - हास्य - करुणा - रौद्र - वीर - भयानकाः।
> वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥' (ना० शा० अ० ६, १५)
> 'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।' (वही ६, १६)

इत्यादि स्थलों में केवल आठ रसों का ही उल्लेख न होता। इतना ही नहीं —

> 'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
> जुगुप्सा विस्मय श्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥' (वही ६, १७)

में यहाँ केवल आठ ही स्थायी भावों के नाम न बतलाए जाते और न कालिदास अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में 'मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतिष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः' कहकर भरत मुनि के द्वारा प्रयुक्त आठ रसों का ही उल्लेख करते। वररुचि की उभयाभिसारिका में भी 'अष्टौरसाः' ऐसा ही उल्लेख मिलता है। भामह और दंडी को भी केवल आठ रसों का ही पता था। इसलिये दंडी ने काव्यादर्श में आठ रसों के ही उदाहरण दिए हैं और —

> 'इह त्वष्ट रसा यत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्' (काव्यादर्श, २, २९२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अष्ट संख्या का ही निर्देश किया है। अतः इस पक्ष के अनुसार शांतरस का सर्वप्रथम उल्लेख उद्भट के काव्यालंकार सारसंग्रह में ही हुआ है जहाँ —

'शृङ्गार···बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्येरसाः स्मृताः' (४, ४)

ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

दूसरा पक्ष है अभिनव गुप्त आदि का जिनके अनुसार नाट्यशास्त्र में भी भरत मुनि के द्वारा शांतरस का प्रतिपादन हुआ है। अभिनव ने अभिनव भारती में स्पष्ट शब्दों में लिखा है —

'रसाः ते च नव। शान्तायलायिनस्तु अष्टाविति तत्र पठन्ति'
(ना० शा० गायक० द्वि० सं० पृ० २६७)

अर्थात् रस की संख्या नौ है। शांत के आलाप करनेवालों ने नाट्यशास्त्र में 'अष्टौ' यह पाठ कर दिया है। स्थायी भावों का नाम निर्देश करते हुए 'शांत का स्थायी शम है' यह भी यहाँ बतलाया है।[1]

इसीलिए प्राचीन पुस्तकों 'स्थायि भावान् रसत्वमुपनेष्यामः' अर्थात् स्थायी भावों का रसत्व बतलाते हैं; इसके बाद ही 'शांतोनाम शम स्थायि भावात्मकः' इत्यादि शान्तलक्षणं पठ्यते' (वही पृ० ३३९) अर्थात् शम स्थायी भावात्मक शांत का लक्षण नाट्यशास्त्र में बतलाया गया। अतः अभिनव के अनुसार —

'शृंगारहास्य···बीभत्साद्भुत **शान्ताश्च नव नाट्ये रसाः** स्मृताः तथा 'रतिर्हासश्च···जुगुप्सा **विस्मय शमाः** स्थायिभावा प्रकीर्तिताः।' ऐसा ही पाठ था। इसी तरह 'एते ह्यष्टौ रसाः' यहाँ 'एते नव रसाः' इस प्रकार का पाठ था।[2]

षष्ठाध्याय के अंतिम उपसंहारात्मक श्लोक में जहाँ 'एवमेते रसा ज्ञेयास्त्वष्टौ' ऐसा पाठ मिलता है, वहाँ भी अभिनव ने 'एवमेते रसा ज्ञेया नव' ऐसा ही प्रतीक मानकर उसका व्याख्यान किया है।

शृंगार, हास्य आदि से भी पहले नाट्यशास्त्र में शांत का प्रतिपादन क्यों हुआ इसका रहस्य बतलाते हुए अभिनव गुप्त ने कहा है कि शृंगारादि सब रसों का आस्वाद शांतप्राय ही होता है अतः सब रसों की प्रकृति शांत है, यह बतलाने के लिए शांत का ही पूर्व में प्रतिपादन हुआ है।[3] इतिहास, पुराण, कोश आदि में भी नवरस ही कहे गए हैं। जैसा कि कहा गया है —

अष्टानामिह देवानां शृङ्गारादीन् प्रदर्शयेत।
मध्ये च देव देवस्य शान्त रूपं प्रकल्पयेत॥
(वही पृ० ३४०)

१. **तत्र शान्तस्य स्थायी 'विस्मय शमाः' 'इति कैश्चित् पठितः।'** वही पृ० २६८।
२. द्रष्टव्य ना० शा०, गायकवाड सं०, पृ० २६७ – ८।
३. **तत्र सर्वरसानां शान्तप्राय एवास्वादः × × ×। तन्मुख्यतालाभाद् केवलं वासनान्तरोपहित इत्यस्य सर्वप्रकृतित्वाभिधानाय पूर्वमभिधानम्।** वही पृ० ३३९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् आठो देवताओं के श्रृंगार आदि रस दिखलाने चाहिए और उनके मध्य में देवाधिदेव शांत रूप की कल्पना करनी चाहिए।

नाट्यशास्त्र के बरोदा संस्करण में शांत का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है —

अथ शान्तो नाम शम स्थायिभावात्मकः मोक्षप्रवर्तकः। ××××

न यत्र न दुःखं न सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः॥
भावा विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।
स्वं स्वं निमित्त मासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥
एवं नव रसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः॥

(ना० शा० अ० ६)

अर्थात् शमस्थायी भावात्मक तथा मोक्ष का प्रवर्तक शांत रस है। जहाँ न दुःख है न सुख है और न द्वेष है न मत्सर है और जो सब भूतों में समान है उसे शांतरस कहा गया है। इत्यादि सभी भाव विकार हैं और शांत उनकी प्रकृति हैं। प्रत्येक भाव अपने-अपने निमित्त को प्राप्त कर शांत से हीं प्रवृत्त होता है। पुनः निमित्त के विनष्ट होने पर शांत में ही लीन हो जाता है। इस तरह नाट्यज्ञों ने अपने अपने लक्षण से युक्त नव रसों का प्रतिपादन किया है।

इसके बाद अभिनव ने शांतरस के अनेक स्थायियों का उल्लेख किया है जो वहीं द्रष्टव्य हैं।

इन उभय पक्षों के विचार के बाद भी समालोचकों के समक्ष असमाहित समस्या रहती ही है। इस संबंध में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार विचारकों के समक्ष अपना मत प्रकट करना चाहता हूँ।

(क) छंद की दृष्टि से काशी संस्करण के 'अष्टौ' वाले पाठों से बरोदा संस्करण के 'नव' वाले पाठ अधिक सुसंगत हैं। क्योंकि 'अष्टौ' वाले पाठों में सर्वत्र छंदपूर्ति के लिए 'च, हि, तु, इति' आदि पाठ मिलते हैं। यह दोष 'नव' वाले पाठों में नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि 'नव' की जगह 'अष्टौ', यह परिवर्तित पाठ है।

(ख) श्री पी० वी० काणे महोदय ने अपने 'हिस्ट्री आफ संस्कृत पोइटिक्स' में इसे सप्रमाण सिद्ध किया है कि 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण के काव्यशास्त्रीय भाग का रसविवेचन नाट्यशास्त्र के आधार पर ही हुआ है और यह पुराण पंचम शतक के बाद का कभी नहीं हो सकता। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खंड के १५, १७ तथा ३० वें अध्यायों में शांत को लेकर नाट्य में नवरसों का विधान हुआ और इससे भी अधिक ध्यान देने योग्य विषय यह है कि इस पुराण में सबसे पूर्व शांतरस का ही स्वरूप बतलाया गया है।[४]

इसके आधार पर भी बिना आपत्ति के यह माना जा सकता है कि नाट्यशास्त्र में भी शांतरस का विचार हुआ है और अभिनव के कथनानुसार सर्वप्रथम हुआ है।

४. द्रष्टव्य वि० ध० तृ० खंड, अध्याय ३०, १ – ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) जैन ग्रंथ अनुयोग द्वार सूत्र, जो पंचम शतक का माना जाता है, शांत के साथ नौ रसों का प्रतिपादन करता है। इसमें जो विभाव आदि का उल्लेख है वह नाट्यशास्त्र के अनुकूल ही है। अतः शांत का प्रथम उद्भावन नाट्यशास्त्र में न मानकर अनुयोग द्वार सूत्र में मानना असंगत हैं।

(घ) दंडी के द्वारा काव्य परत्वेन रस का विचार होने पर भी उद्भट ने जो काव्यालंकार-सारसंग्रह में 'नव नाट्य रसाः स्मृताः' ऐसा लिखा है यह बतलाता है कि उन्हें नाट्यशास्त्र की वह पांडुलिपि उपलब्ध हुई होगी जिसमें शांत सहित नव रसों का प्रतिपादन था। दंडी, धनंजय, धनिक, मम्मट आदि को शांतापलापियों का पाठ उपलब्ध हुआ होगा।

(ङ) यह बात कालिदास के साथ भी कही जा सकती है कि 'उन्हें भी 'अष्टौरसाः' वाला ही पाठ मिला। कालिदास के प्रयोग में दूसरी बात अधिक ध्यान देने योग्य है 'अष्टरसाश्रयः प्रयोगः।' अर्थात् प्रयोग अभिनय के रूप में उन्हें आठ ही रस अभिप्रेत होंगे शांत नहीं, क्योंकि समस्त व्यापार प्रविलय रूप शांत का व्यापार प्रधान अभिनयात्मक नाट्य में प्रयोग नहीं हो सकता जो दशरूपककार धनंजय और उसके टीकाकार धनिक आदि का मत है। इसीके आधार पर शंकर की सौंदर्य लहरी में, जहाँ ४१वें श्लोक में नव नाट्यरसों और ५०वें श्लोक में नव काव्य रसों का उल्लेख है, ५१ वें श्लोक में आठ ही रस बतलाए गए हैं। इसको स्पष्ट करते हुए लोल्ल लक्ष्मीधर ने उसकी व्याख्या में कहा है कि रस विकार के उत्पादक होते हैं इसलिये निर्विकार स्वरूप शांत को नाट्य में न मानकर आठ ही रसों को संगृहीत किया है।[५]

नाट्य में शांतरस का अभिनय हो सकता है कि नहीं यह एक स्वतंत्र विवेच्य विषय है। और मेरी तो निर्भ्रांत धारणा है कि शांत का भी अभिनय हो सकता है, और सफल हो सकता है। इसका विस्तार पूर्वक विचार मैंने 'शांतरस और नाट्य' शीर्षक अपने गवेषणात्मक निबंध में किया है। जिज्ञासु व्यक्तियों से निवेदन है कि इसके लिए 'बिहार संगीत - नृत्य-नाट्य परिषद्' की इसी जनवरी की पत्रिका 'बिहार थियेटर' को देखें।

इन उभय पक्षों पर निष्पक्ष भाव से विचार करने पर नाट्यशास्त्र में भी शांतरस का विचार हुआ है यह कहना असंगत नहीं प्रतीत होता है।

*

५. 'विक्रिया जनका एव रसा इति अष्टौरसा भरतमते।
'शान्तस्य निर्विकारत्वात् न शान्तं मेनिरे रसम्'
इति शान्तस्य रसत्वाभावात् अष्टावेव रसाः संगृहीताः।' सौ० ल० पृ० १५४-५।
द्रष्टव्य डा० राघवन की 'रसों की संख्या'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबरूनीकालीन हिंदूविवाह

जयशंकर मिश्र

अलबरूनी का काल, ११वीं शती, इतिहास में महमूद गजनवी का काल है। यद्यपि वह महमूद के उत्तराधिकारी मसूद के समय तक जीवित रहा, किंतु उसके जीवन का महत्वपूर्ण काल महमूद के समय का ही है। जब महमूद भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों पर आक्रमण कर रहा था, तब उसके दरबार का प्रमुख सदस्य और राजज्योतिषी अलबरूनी गजनी में संस्कृत ग्रंथों का चिंतन और मनन करने में लगा था।[१] महमूद आक्रमण और युद्ध करने में लगा था, अलबरूनी भारतीय भाषा और साहित्य के अध्ययन करने में। उसने यहाँ के धर्म - दर्शन, ज्योतिष - भूगोल, साहित्य - संस्कृति आदि अनेकानेक विषयों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन - मनन किया; यहाँ के आचार - व्यवहार, रहन - सहन, रीति - रवाज को देखा-परखा। आश्चर्य की बात है कि महमूद गजनवी भारत में अराजकता, विनाश और लूट-पाट का प्रतिनिधित्व कर रहा था और उसका प्रमुख दरबारी अलबरूनी इस देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति शांतिपूर्वक लिपिबद्ध कर रहा था। महमूद इतिहास का एक पात्र है और अलबरूनी उसका लेखक। महमूद की मृत्यु के बाद मसूद के शासनकाल में २९ दिसंबर १०३१ ई० में, उसने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'तारीख - उल - हिंद' (भारत का इतिहास) को पूर्ण किया। इस पुस्तक में उसने भारतीय गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, भौतिक विज्ञान और रसायन आदि विषयों का अनुसंधानपूर्वक तुलनात्मक यथातथ्य विवरण तो दिया ही है, समसामयिक आचार - पद्धति, संस्कृति और समाज - रचना का व्यवहारिक निरूपण भी किया है। यहाँ उसके द्वारा निरूपित तत्कालीन हिंदू विवाह को परखने की योजना है।

हिंदूविवाह का स्वरूप

अलबरूनी ने अपनी पुस्तक में अन्य विषयों के अतिरिक्त अपने समय की अर्थात ११वीं शती की हिंदू - विवाह - पद्धति पर भी बड़े संयत और स्पष्ट रूप से लिखा है। भारत में विवाह सामाजिक कर्तव्य ही नहीं धार्मिक कर्तव्य भी माना जाता रहा है। विवाहप्रथा प्राचीनकाल से ही हिंदूसमाज के संगठन में प्रमुख नियामक तत्व थी जो सामाजिक भी थी, धार्मिक भी।[२]

१. "जिन स्थानों से मुझे संस्कृत ग्रंथों के मिल सकने की संभावना होती है, वहाँ से उन्हें इकट्ठा करने और उन पुस्तकों को समझने और मुझे समझा सकने में समर्थ सुदूर स्थानों में निवास करनेवाले हिंदू विद्वानों की सहायता लेने के लिए धन व्यय करने और कष्ट सहन करने में कोई त्रुटि नहीं करता।"—अलबरूनी : 'तारीख - उल - हिंद', पृ० १२; सचाऊ : अलबरूनीज इंडिया', भा० १, पृ० २४, १९१०।

२. डा० राजबली पांडेय - हिंदू संस्कार – अष्टम् अध्याय, 'विवाह संस्कार'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिकता की छाप होने के कारण व्यक्ति और समाज के आचरणों में मर्यादा की स्थिति रहती थी। विवाह का यह स्वरूप समयानुसार यत्किंचित परिवर्तन के साथ मध्ययुग में भी प्रायः परंपरागत ही था।

हिंदुओं ने विवाह को यौन समस्या के रूप में नहीं देखा, यद्यपि अलबरूनी हिंदू-विवाह-व्यवस्था पर लिखते समय यौन समस्या को ही मस्तिष्क में रखता है — व्यवस्थित वैवाहिक जीवन के बिना कोई जाति नहीं रह सकती, क्योंकि इसके द्वारा वासना के उस ज्वार का निरोध होता है जिसे सुसंस्कृत लोग पसंद नहीं करते।[3] विवाह को भारतीय विचारकों ने प्राचीनकाल से ही महत्व दिया तथा गृहस्थाश्रम का प्रारंभ इसी से माना गया है।[4] किंतु उनकी दृष्टि में विवाह का कारण 'वासना के ज्वार का निरोध' न होकर विवाह ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने का एक सामाजिक और सुसंस्कृत पग रहा।[5] यौन समस्या को प्रमुख मानकर हिंदू विवाह की व्यवस्था नहीं की गई। प्रत्येक पुरुष पर मर्यादा और शील का अंकुश रहा। मनु के अनुसार देवों के द्वारा दी गई स्त्री को ही पति प्राप्त करता है, अपनी इच्छा से नहीं।[6] अतः इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारतीय विचारकों ने विवाह को न यौन समस्या का समाधान माना था और न पुरुष की अपनी इच्छा (कामना) को ही महत्व दिया था। तत्कालीन समाज में बिना 'देवों' की आज्ञा के कोई भी हिंदू स्त्री नहीं प्राप्त कर सकता था। उसके ऊपर देवों की मर्यादा का अंकुश रहता था, इसलिए उसकी कोई अपनी यौनपरक इच्छा नहीं रहती थी। अतएव यौन समस्या हिंदू-विवाह-पद्धति का प्रमुख तत्व न थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि समाज के कामाचार की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करनेवालों का मत अलबरूनी जैसा ही होगा किंतु ऐसी व्याख्या हिंदू विचारकों की नहीं है। उन्होंने विवाह को 'वासना के ज्वार का निरोध' न मानकर नैतिक और सामाजिक जीवन की मर्यादा के रूप में माना। इसीलिए हिंदू धर्मशास्त्रों में स्त्री को कामोपभोग का साधन तथा यौनसमस्या का समाधान न मानकर 'शरीरार्द्ध'[7] माना है, 'पूज्या'[8] कहा गया है। दोनों का एक दूसरे से अटूट संबंध है। बिना स्त्री के पुरुष अधूरा है और बिना पुरुष के स्त्री। दोनों की पूर्णता समष्टि में ही कही गई है। मनु के कथनानुसार केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं, अपूर्ण है।[9] स्त्री, स्वदेह तथा संतान इन तीनों की समष्टि से ही पुरुष

३. अलबरूनी – तारीख-उल-हिंद, पृ० २७८, अंग्रेजी अनु० सचाऊ – भाग २, पृ० १५५।

४. गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ मनु० ३, ४।

५. कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रयहं गृही।
दायकालाहृते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु॥ याज्ञ० स्मृ० ५, ९७।

६. देवदत्तां पति भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः। मनु० स्मृ० ९, ९५।

७. आम्नाये स्मृतितंत्रे च लोकाचारे च सूरिभिः।
शरीरार्द्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्य फले समाः॥ अपरार्क, पृ० ७४०।

८. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ मनु० स्मृ० ३, ५६।

९. एतावानेव पुरुषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना॥ मनु० स्मृ० ९, ४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्ण) होता है, ऐसा ब्राह्मण कहते हैं।[१०] जो पति है, वही स्त्री है। घर की शोभा स्त्री से मानी गई है। 'श्री' तथा 'स्त्री' में कोई भेद नहीं।[११] स्त्री से परिवार बनता है, बढ़ता है, अतः विवाह गार्हस्थ्य जीवन का मूल है और सभी आश्रम गार्हस्थ्य जीवन पर निर्भर करते हैं।[१२] इसके 'पालन'[१३] के लिए गृहस्थाश्रम आवश्यक भी रहा। अलबरूनी स्वयम् कहता है—आचार्य उसे (शिष्य को) विवाह करने की अनुज्ञा देता है। वह विवाह करके एक परिवार की स्थापना करता है।[१४] आचार्य से अनुमति लेकर विवाह करने की बात मनु[१५] ने कही है, याज्ञवल्क्य[१६] भी इसका समर्थन करते हैं। ब्रह्मचर्य के बाद विवाह करके गृहस्थ बनने के लिए सभी हिंदू धर्मशास्त्रकारों का निर्देश है,[१७] क्योंकि पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास तथा वंश का उत्थान विवाह से ही संभव है। विवाह ही स्त्री और पुरुष की पूर्णता का आधार है।

विवाहवय : अल्पआयु

मध्यकाल में भी प्राचीनकाल की ही तरह वधू की वय वर से अपेक्षाकृत अत्यधिक अल्प रही। वैदिककालीन प्रौढ़ विवाह प्रथा कालांतर में अल्प-वय-विवाह में परिणत हो गई। अलबरूनी के अनुसार, "हिंदू बहुत छोटी अवस्था में विवाह करते हैं।[१८] बारह वर्ष से अधिक आयु की कन्या से विवाह करने का विधान नहीं है।"[१९] वर की आयु वह पच्चीस वर्ष बताता है।[२०] मनु का कथन है कि तीस वर्ष की अवस्था वाला वर बारह वर्ष की अवस्थावाली सुंदरी

१०. "तथा च वाजसनेयब्राह्मणम् अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विन्दते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति, तथा चेतद्वेदविदो विप्रावदन्ति क यो भर्ता सैव भार्या स्मृता इति।" कुल्लूकभट्ट – म० मु०।

११. प्रजार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ मनु० स्मृ० ६, २६।

१२. यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ मनु० स्मृ० ३, ७७।

१३. विद्यार्थं ब्रह्मचारीस्यात्सर्वेषासंपालनेगृही।
वानप्रस्थः संदमने सन्यासी मोक्षसाधने॥ शु० ४, ३४१।

१४. अलबरूनी – ता० हिं०, पृ० २६८; सचाऊ, भाग २, पृ० १३१।

१५. मनु० स्मृ० ३, ४।

१६. गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा॥ याज्ञ० स्मृ० १, ५१।

१७. सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया।
समुद्वहेद्दात्येतत्सम्यगूढं महाफलम्॥ वि० पु० ३, ११, २३।

१८. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, भाग २, पृ० १५५।

१९. अलबरूनी, वही, पृ० २६८; सचाऊ, भाग २, पृ० १३१।

२०. सचाऊ, भाग २, पृ० १३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या के साथ विवाह करे अथवा शीघ्र विवाह करनेवाला वर चौबीस वर्ष की अवस्था में आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे।[२१] पराशर स्मृति में भी बारह वर्ष की अवस्था में रजोदर्शन होने पर तुरंत कन्यादान का विधान किया गया है, ऐसा न करनेवाला नरकगामी कहा गया है।[२२]

ऐसा लगता है कि ११वीं शती में कन्या की विवाहवय बहुत कम मानी जाने लगी थी। अतः इस तरह के अल्प - वय - विवाह का समर्थन गृह्यसूत्रों में भी किया गया है, "रजस्वला कन्या को अविवाहित नहीं रखना चाहिए।"[२३] अल्प - वय - विवाह (बालविवाह) के कतिपय ऐतिहासिक उदाहरण हमें मिलते हैं। रायपिथौरा का पहला विवाह[२४] मंडोवर के परिहार (प्रतिहार) नाहरराय की कन्या से और दूसरा विवाह[२५] आबू नरेश सलख परमार की पुत्री जैतपरमार की बहन इंच्छिनी से हुआ था। विक्रमांक (कल्याण) चालुक्य की कन्या का विवाह गोवा के कदंब युवराज से अल्प वय में ही हुआ था। अलबरूनीकालीन भारत में लघु वय में विवाह की प्रथा थी, यह उसके विवरण से तथा उस काल के ऐतिह्य से पूर्णतः स्पष्ट है।

अल्प - वय - विवाह का कारण

अल्प - वय - विवाह (बालविवाह) पर तो अलबरूनी ने लिखा है किंतु उसके कारण पर उसने कहीं कुछ भी नहीं कहा। उस काल के तथा उसके पूर्ववर्ती इतिहास को देखने से यह विदित होता है कि बालविवाह का कारण विदेशियों के अभियान ही रहे, जो तीसरी - चौथी शती में भारत के पश्चिमोत्तर प्रांतों पर होने लगे थे। ऐसे आक्रमणों से स्त्रियों की सुरक्षा की बात उठने लगी। फलतः तीसरी - चौथी शती से बाद के समाजशास्त्रियों ने विदेशी आक्रामकों द्वारा होनेवाले नारीअपहरण से त्रस्त होकर, बालविवाह की व्यवस्था की। वही व्यवस्था सदियों तक हिंदूविवाह को प्रभावित करती रही। अतः विदेशियों के अनवरत आक्रमण हिंदू समाज में बालविवाह के प्रचलन के मुख्य कारण बने। हिंदू समाज में स्त्रियों

२१. त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ मनु० स्मृ० ६, ६४।

२२. प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम्॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ परा० स्मृ० ७, ६-८।

२३. वशि० १७।
दद्याद् गुणवती कन्या नग्निका ब्रह्मचारिणे।
अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलागम॥
वी० मि० स० भा० २, बौधायन का कथन उद्धृत।

२४. पृथ्वीराज रासो – सातवाँ समय – ना० प्र० सभा, काशी।

२५. वही, चौदहवाँ समय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

को सदा से पावन और पूज्या के रूप में देखा जाता रहा है।[26] उनके प्रति हिंदू समाज में आदर और सहानुभूति की भावना रही है, जब कि विदेशी आक्रामकों की दृष्टि में स्त्रियाँ सर्वदा विलासिनी और भोग्या के रूप में देखी जाती रहीं। अतः उदात्त सामाजिक स्वरूप को सुरक्षित एवं स्थिर रखने के लिए भारतीय नियामकों ने विवाह में, हिंदू समाज के सुरक्षार्थ अल्पायु का प्रतिबंध लगाकर नारीअपहरण में अवरोध उपस्थित किया। यह स्मरणीय है कि पश्चिमी व्याख्या के विपरीत भारतीय तर्क सर्वदा सदाचार और नैतिक बल पर आधारित रहा है। श्री चिंतामणि विनायक वैद्य[27] के अनुसार अल्प - वय - विवाह का कारण स्त्रियों का बौद्ध भिक्षुणी हो जाना है, जिसे रोकने के लिए बालविवाह की प्रथा चली। किंतु यह बात ठीक नहीं लगती कि बौद्ध भिक्षुणी हो जाने के डर से ही अल्प - वय - विवाह की प्रथा चल पड़ी होगी। अल्प - वय - विवाह का कारण धार्मिक न होकर राजनैतिक[28] ही अधिक है।[29] ६०० ई० के बाद राज्यश्री का विवाह युवती होने पर हुआ था। अतः बाण के इस उल्लेख से प्रकट है कि सातवीं शती तक प्रौढ़ विवाह का प्रचलन रहा, जब भारत में बौद्ध प्रभाव था।

विवाह की आज्ञा

प्राचीनकाल से हिंदू समाज में यह व्यवस्था थी कि गुरु के यहाँ निश्चित अवधि तक ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर स्नातक गृहस्थाश्रम प्रारंभ करने के निमित्त अपने घर जाया करते थे। गृहस्थाश्रम का प्रारंभ विवाह से ही होता था। आज की आधुनिक सभ्यता की तरह प्राचीनकाल अथवा मध्यकाल में यह व्यवस्था नहीं थी कि स्नातक बिना गुरु और माता-पिता की अनुज्ञा के विवाह कर ले। अलबरूनीकालीन विवाहव्यवस्था इस प्रकार थी — "आचार्य उसे (शिष्य को) विवाह करने की अनुज्ञा देता है।"[30] इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन विवाह में गुरु की आज्ञा अत्यंत आवश्यक थी। विवाह में गुरु के आदेश का निर्देश प्राचीनकाल के धर्मशास्त्रकारों ने भी किया है। मनु के अनुसार गुरु की अनुमति प्राप्त कर सुंदरी कन्या से पाणिग्रहण - संस्कार संपन्न करना चाहिए।[31] कामंदक ने तो गुरु अथवा गुरुपुत्र की अनुज्ञा के अभाव में 'स्वेच्छा' का निर्देश भी किया है।[32]

२६. मनु० स्मृ० ३, ५६।
२७. वैद्य : हिंदू मेडिवल इंडिया — भा० ३, बुक ८, सेक्शन - २।
२८. डा० राजबली पांडेय : हि० सा० वृ० इति०, भाग १, पृ० १२६ - १३०।
२९. हर्षचरित।
३०. अलबरूनी – वही, पृ० २६८; सचाऊ, भा० २, पृ० १३१।
३१. गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ मनु० स्मृ० ३, ४।
३२. तदभावे गुरुसुते तथा स ब्रह्मचारिणि।
कामतो वा अमान्यत्वं स धर्मो ब्रह्मचारिणः॥ का० २, २३।

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकाल में प्राचीनकाल की तरह ही गुरु की अनुज्ञा के बाद माता - पिता की शुभाशंसा भी आवश्यक थी। अलबरूनी के कथनानुसार "माता पिता अपने पुत्रों के विवाह की व्यवस्था करते हैं।"[33] इससे यह स्पष्ट है कि पुत्र पर माता - पिता का स्वाभाविक स्नेह और आशीर्वाद रहता था, जिनकी अनुज्ञा से वह विवाह करता था।[34]

दहेज की प्रथा

आज हिंदू विवाह में दहेज की प्रथा का जो प्राधान्य है, उसका पहले अस्तित्व न था। अलबरूनी स्वयम् लिखता है, "किसी प्रकार के लेन - देन की बात दोनों पक्षों में नहीं होती।"[35] इससे यह सिद्ध होता है कि 'लेन-देन' अथवा 'दहेज' जैसे नाम की कोई चीज मध्यकाल में भी न थी। यह आधुनिककाल की ही देन है। अतः स्पष्ट है कि मध्यकाल में विवाह दहेज के बिना, क्रयविक्रय से परे, दोनों पक्षों के आपसी मिलाप से होता था। मनु[36] ने 'कन्याशुल्क' लेनेवाले पिता को 'विक्रयी' और स्त्रीधन लेनेवाले बांधव को अधोगति प्राप्त करनेवाला 'पापी' बताया है।

विवाहक्रिया

हिंदू समाज में विवाह का आयोजन अत्यंत शुभदायक तथा मंगलकारी माना गया है। विवाह के शुभ अवसर पर दानादि के साथ यज्ञक्रिया भी की जाती थी। अलबरूनी अपने समय के प्रचलित विवाहसंस्कार पर लिखता है — "उस अवसर पर ब्राह्मण यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं तथा एक दूसरे को दान मिलता है। विवाह के उपकरण उपस्थित किए जाते हैं। किसी प्रकार के लेनदेन की बात दोनों में नहीं होती। पति स्त्री को विवाह के पहले एक उपहार देता है, जिसको वह लौटा सकने का अधिकार नहीं रखता, यदि पत्नी चाहे तो अपने इच्छानुसार लौटा सकती है।"[37] अलबरूनी का उक्त विवरण दैवविवाह का है, जिसका

३३. अलबरूनी – वही, पृ० २७८; सचाऊ, भा० ३, पृ० १५५।

३४. समावृत्त आचार्यकुलान्मातापितरौ बिभृयात्ताभ्यामनुज्ञातो भार्यामुपयच्छेऽसजाता-नग्निकां ब्रह्मचारिणीम्। – हिरण्यकेशिण, गृह्यसूत्र – हस्तलेख, पूना।

३५. अलबरूनी, वही पृ० २७८; सचाऊ भा० २, पृ० १५५।

३६. न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णन्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्॥ मनु० स्मृ० ३, ५१–५२।

३७. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ भा० २, पृ० १५४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुष्ठान बिना यज्ञ के संपन्न नहीं होता था,[३८] जिसमें दोनों पक्ष के लोग उत्तम मंगलकामना के साथ उपस्थित होते थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण[३९] में विवाह को एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। पाणिनि[४०] ने भी यज्ञ के संयोग की बात कही है। विवाह के उपकरणों में क्या-क्या होता था, इसका अलबरूनी ने कोई विवरण नहीं दिया है। इसी तरह विवाह के पहले वर द्वारा वधू को दिए जानेवाले जिस उपहार का उसने संकेत किया है, वैसे उपहार का हिंदू धर्मशास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। संभव है मध्ययुग में ऐसा उपहार प्रचलित रहा हो। आज उत्तर भारत में इसका कोई संकेत नहीं।

विवाह के भेद

दैव विवाह – प्राचीनकाल से ही हिंदू समाजशास्त्री विवाह के आठ प्रकार की व्याख्या करते आ रहे थे।[४१] मध्ययुग में भी आठ ही प्रकार के विवाह की चर्चा तत्कालीन हिंदू समाजशास्त्रियों ने की है।[४२] किंतु अलबरूनी ने विवाह के प्रकार पर कुछ भी नहीं लिखा है। उसने केवल यज्ञ के प्रकरण का वर्णन किया है, जिसमें वर और वधू यज्ञ के संमुख उपस्थित होते हैं तथा वर, वधू को विवाह के पूर्व एक उपहार देता है।[४३] विवाह के इस प्रकार को मनु,[४४] याज्ञवल्क्य,[४५] विज्ञानेश्वर[४६] और देवल[४७] ने 'दैव विवाह' कहा है। इससे यह

३८. यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥ मनु० स्मृ० ३, २८।
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायर्षस्तु गोद्वयम्।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्॥ याज्ञ० स्मृ० ३, ५९।
३९. अयज्ञियो वा एष यो पत्नीकः। २, २, २, ६।
४०. प्रत्युनो यज्ञ - संयोगे। ४, १, ३३।
४१. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचाष्मोऽधमः॥ मनु० स्मृ० ३, २१।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजपत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वराक्षसौ चान्यौ पैशाचश्चाष्टमोमतः॥ वि० पु० ३, ११, २४।
४२. विज्ञानेश्वर - मिताक्षरा। याज्ञ० स्मृ० ३, ५८-६१।
४३. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ भा० २, पृ० १५५।
४४. यज्ञे तु वितते सम्यक् ऋत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥ मनु० स्मृ० ३, २८।
४५. यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्यनारजश्च षट्॥ याज्ञ० स्मृ० ३, ५९।
४६. स दैवो विवाहः यस्मिन् यज्ञानुष्ठाने वितते।
ऋत्विजे शक्त्यलंकृता कन्या दीयते॥ विज्ञा० मिता० ३, ५९।
४७. अन्तर्वेदि समानीय कन्यां कनकमण्डिताम्।
ऋत्विजे तु ददात्येष विवाहो दैवसंज्ञकः॥ गृह० रत्ना० ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट होता है कि अलबरूनीकालीन हिंदू समाज में दैव विवाह की प्रणाली ही अधिक व्यवहार्य और प्रचलित थी।

सवर्ण विवाह – हिंदूसमाज में प्राचीनकाल से 'सवर्ण'[४८] अथवा 'सजातीय'[४९] विवाह को महत्व दिया जाता रहा है। प्रत्येक हिंदू को अपने वर्ण और जाति के भीतर ही विवाह करने का विधान था।[५०] हिंदूधर्मशास्त्रों में सवर्णा नारी को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।[५१] इस संदर्भ में अलबरूनी का कहना है —"एक वर्ण का पुरुष अपने वर्ण की या अपने से निचले वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है।"[५२] अलबरूनी यहाँ पहले सवर्ण विवाह का ही समर्थन करता है, बाद में अनुलोम विवाह का। इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन भारतीय समाज में भी प्राचीन काल की तरह सवर्ण विवाह का प्रचलन था। धंगदेव के खजुराहो अभिलेख से विदित होता है कि "कामारि हर्षदेव ने सम कुलशील (सवर्ण) चाहमान वंश में उत्पन्न सुयोग्य कन्या से विवाह किया।"[५३] किंतु अलबरूनी के उक्त कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में सवर्ण विवाह का कठोरतापूर्वक पालन नहीं किया जाता था।

अनुलोम विवाह – भारत में अनुलोम विवाह का प्रचलन वैदिकालीन है। प्रत्येक युग के समाज में कोई न कोई विषम तत्व सर्वदा रहा है। अनुलोम विवाह अंतर्जातीय विवाह ही है, जिसे समाज में साधारणतः अच्छा नहीं माना जाता था। अलबरूनी के उपरिलिखित कथन से यह पूर्णतः प्रकट है कि मध्यकाल में अनुलोम विवाह प्रचलित था। नारद स्मृति के अनुसार ब्राह्मण अनुलोम से तीन स्त्रियाँ और ब्याह सकता है।[५४] किंतु अलबरूनी का उक्त कथन प्रत्येक वर्ण के लिए लागू होता - सा प्रतीत होता है, जिससे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय की कन्या से; क्षत्रिय, वैश्य की कन्या से; और वैश्य शूद्र की कन्या से

४८. सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन सम्भूता जात्या ज्ञेयस्त एव ते॥ मनु० स्मृ० १०, ५।

४९. 'सजातानाग्निका' — पाणिनि, ६, ३, ३४;
'ब्राह्मण - क्षत्रिय - विशां शूद्राणांच परिग्रहे।
सजातिः श्रेयसी भार्या सजातिश्च पतिः स्त्रियाः॥ ना० ४।

५०. वैदिक इंडेक्स, २, २६८;
भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम्॥ मनु० स्मृ० ३, ४।

५१. सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्यु क्रमशो वराः॥ वही, ३, १२।
पाणिग्राह्याः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम्।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदनेत्वग्रजन्मनः॥ याज्ञ० स्मृ० ३, ६२।

५२. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, भा० २, पृ० १५५ – १५६।

५३. एपिग्राफिया इंडिका, भा० १, पृ० १२६, श्लोक २० – २१।

५४. ब्राह्मणस्यानुलोम्येन स्त्रियोऽन्यास्तिस्र एवतु। ना० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह कर सकता था, किंतु क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने से ऊँचे वर्ण वालों में विवाह नहीं कर सकते थे।[५५] अथर्व वेद में यह कहा गया है कि ब्राह्मण को सभी वर्णों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार है,[५६] किंतु मनु के इस कथन से[५७] अलबरूनी के अनुलोम विवाह का अनुमोदन होता है, "ब्राह्मण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्या से; क्षत्रिय, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्या से; वैश्य, वैश्य, शूद्र कन्या से विवाह कर सकते हैं।" याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विश्वरूप ने भी क्षत्रिय कन्या से ब्राह्मणों को विवाह करने का अधिकार बतलाया है।[५८] मध्यकालीन इतिहास में अनुलोम विवाह के कतिपय उदाहरण मिलते हैं। महाकवि बाण के सौतेले भाई चंद्रसेन और मातृषेण शूद्रा से उत्पन्न हुए थे।[५९] कविवर राजशेखर की पत्नी अवंतिसुंदरी क्षत्रिय थी।[६०] प्रतीहारों की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष हरिश्चंद्र और क्षत्रिय स्त्री के संयोग से हुई थी।[६१] अलबरूनी के समय से एक सदी पूर्व होने वाले अरबी लेखक इब्नखुर्दादबा के कथन से अलबरूनी द्वारा निर्दिष्ट अनुलोम विवाह की पूर्णरूपेण पुष्टि होती है। वह क्षत्रियों को कहता है कि, "वे ब्राह्मणों की कन्याओं को पत्नी नहीं बना सकते, बल्कि उनकी कन्याओं को ब्राह्मण पत्नी बना सकते हैं।"[६२] इस कथन से अलबरूनी के विवरण की ऐतिहासिकता और बढ़ जाती है तथा यह सिद्ध हो जाता है कि मध्यकालीन हिंदू समाज में अनुलोम विवाह प्रचलित था।

प्रतिलोम विवाह – भारतीय समाज में प्रतिलोम विवाह को प्राचीनकाल से ही हेय दृष्टि से देखा जाता था और इनसे उत्पन्न संतान को अस्पृश्य तथा नीच (वर्णसंकर) माना गया है।[६३] रक्त की इस संकरता को सभी शास्त्रकारों ने निंद्य और वर्जित माना है। मध्ययुग के हिंदू समाज में भी प्राचीनकाल का यह

५५. ब्राह्मेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति।
क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव भवति।
वैश्येन शूद्रायामुत्पादितः शूद्र एव भवतीति॥ शंख, – विज्ञा० मिता० १, ४।
याज्ञ० स्मृ० ४, ९१ – ९२।

५६. अ० वे० ४, १७, ८, ९।

५७. शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च विश स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञस्य ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥ मनु० स्मृ० ३, १२।

५८. भातृजाया च ब्राह्मणस्यापि क्षत्रिया भवत्येव। वही, ३, २८३।

५९. हर्षचरित, १।

६०. कर्पूरमंजरी १, ११।

६१. बाउक के जोधपुर का लेख — एपि० इंडि० जि० १८, पृ० ८७।

६२. इलिअट एंड डासन, भाग दो, पृ० १६।

६३. शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः॥ मनु० स्मृ० १०, १२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप तद्वत वर्तमान रहा। यह अलबरूनी के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है—"किसी मनुष्य को अपने से ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह करने की आज्ञा नहीं।"[६४] यह ठीक है कि निम्न वर्ण को अपने से ऊँचे वर्ण की कन्या से विवाह करने का विधान नहीं था। ऐसा लगता है, ऐसे नियमों के प्रणेता ब्राह्मण थे जिन्हें इतर वर्ण को अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं था, बल्कि उन्हीं की कन्या लेना स्वीकार था। यही कारण है कि सवर्ण-विवाह-व्यवस्था की सुरक्षा हिंदू समाज में हो पाई। यद्यपि ऋग्वैदिककालीन उदाहरण मिलता है कि ब्राह्मण कन्या अंगिरसी क्षत्रिय भावयव्य की पत्नी थी।[६५] किंतु ऐसे विवाह की संतान को याज्ञवल्क्य ने 'सर्वधर्मबहिष्कृत' किया है।[६६] आश्चर्य होता है जब अलबरूनी के सवर्ण तथा अनुलोम विवाह की संमति की परीक्षा उसी जैसे अरबी लेखकों ने की हैं। इब्नखुर्दादबा जहाँ अलबरूनी का समर्थन करता है, वहाँ अल-इद्रिसी खंडन। अलइद्रिसी लिखता है—'क्षत्रिय ब्राह्मणों की कन्या से विवाह कर सकते हैं, किंतु ब्राह्मण क्षत्रियों की कन्याओं को पत्नी नहीं बनाना चाहते।'[६७] लेकिन ऐसे स्थलों पर हम अलबरूनी को ही प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि उसने भारतीय आचार-विचारों पर इस देश में वर्षों रहकर निरख-परख कर लिखा है। उसके कथन की पुष्टि भारतीय धर्मशास्त्रों से भी होती है तथा उसी जैसे अरबी लेखक इब्नखुर्दादबा से भी। निष्कर्ष यह कि मध्ययुग में सवर्ण और अनुलोम विवाह का प्रचलन रहा, प्रतिलोम विवाह कादाचित्क था। प्रतिलोम विवाह का मध्यकालीन शिलालेखीय उदाहरण मिलता है। चंदेलों की उत्पत्ति गहड़वार नरेश इंद्रजित् के काशिस्थ पुरोहित हेमराज की कन्या हेमावती और आकाशवासी चंद्रमा के संयोग से हुई थी।[६८] किंतु यह वृत्तांत साहित्यिक ही अधिक प्रतीत होता है।

सगोत्र विवाह—हिंदू, विवाह में गोत्र का ध्यान प्राचीनकाल से रखते आए हैं, तदनुसार वर-कन्या का गोत्र भिन्न होना आवश्यक था। असगोत्र विवाह की व्यवस्था सभी स्मृतिग्रंथों ने की है, यद्यपि वैदिक ग्रंथों में सगोत्र विवाह भी वर्जित नहीं माना गया है। किंतु प्राचीनकाल के हिंदू धर्मशास्त्रों में सगोत्र विवाह को निंद्य माना जाने लगा जो क्रमशः पूर्ण रूप से निषिद्ध हो गया। मध्ययुगीन हिंदू परिवार में भिन्न गोत्र विवाह की ही व्यवस्था थी, यह अलबरूनी के इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है—"वे अपनी विवाहव्यवस्था के अनुसार परिवार के बाहर किसी अपरिचित के यहाँ विवाह करना उचित समझते हैं। पति और पत्नी का संबंध जितना दूर का हो उतना ही अच्छा है। अपनी वंशजा अर्थात् पोती या परपोती तथा अपनी पूर्वजा माता, दादी या परदादी दोनों प्रकार की सगोत्र कन्याओं के साथ विवाह वर्जित है।"[६९] मध्यकालीन हिंदू समुदाय में भी सगोत्र कन्या प्राचीनकाल की ही तरह

६४. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ भाग २, पृ० १५६।
६५. ऋग्वेद १, १२६।
६६. ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः। या० स्मृ० ४, ९३।
६७. इलियट एंड डासन, भाग दो, पृ० ७६।
६८. आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भा० २, पृ० ४४५।
६९. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, भा० २, पृ० १५५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह के लिए निषिद्ध ठहराई गई, यह अलबरूनी के उक्त कथन से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। बौधायन ने सगोत्र कन्या से मातृवत व्यवहार करने को लिखा है।[७०] "मातुरसगोत्रा च या पितुः' का मनु,[७१] गौतम[७२] और याज्ञवल्क्य[७३] आदि स्मृतिकारों ने निषेध किया है। सगोत्र कन्या से विवाह करने पर चांद्रायण व्रत के अनुष्ठान का निर्देश किया गया है।[७४] बुआ, मौसी एवं मामा की कन्या से विवाह करनेवाले को मनु ने 'नरकगामी' बताया है।[७५] इतना ही नहीं, समान गोत्र - प्रवरा कन्या से विवाह करनेवाले ब्राह्मण को चांडाल उत्पन्न करनेवाला कहा गया है।[७६] समानगोत्रवाली कन्या का निषेध मध्यकालीन व्याख्याकार विज्ञानेश्वर ने अपनी मिताक्षरा में किया है।[७७] इस प्रकार मध्ययुग में समान गोत्रवाली कन्या का विवाह अ.- समान गोत्रवाले से ही किया जाता रहा। भारतीय व्याख्याकारों से अलबरूनी के कथन की पुष्टि होती है तथा उस काल के वैवाहिक विधान के रूप का पता चलता है।

सपिंड विवाह

हिंदू विवाह में सपिंडता का भी निषेध किया गया है। एक ही पिंड की कन्या से विवाह वर्जित था। "मध्यकालीन व्याख्याकार विज्ञानेश्वर के अनुसार "असपिंडा वह स्त्री है जो सपिंडा नहीं है। सपिंडा वह है जिसमें समान पिंड (अर्थात् एक ही शरीरांश) हो। व्यक्तियों में सपिंडता का संबंध इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि दोनों में एक ही शरीर के अंश हैं। पुत्र का पिता के साथ सपिंड संबंध इसलिए है कि पिता के शरीर के कण उसमें वर्तमान हैं। इसी प्रकार पितामह और प्रपितामह आदि से उसका सपिंड संबंध है। पुत्र का माता के साथ सपिंड संबंध इसलिए है कि उसमें माता के शरीर के अंश वर्तमान हैं। इसी प्रकार मातामह,

७०. सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्।
बौधायन – पारा० स्मृ० द्वारा उद्धृत – आ० का० १, २।

७१. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ मनु० स्मृ० ३, ५।

७२. गौ० ४, २।

७३. अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पंचमात्सप्तदूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥ याज्ञ० स्मृ० आचाराध्याय, ३, ५३।

७४. अपरार्क, पृ० ८०।

७५. पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान्।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः॥ मनु० स्मृ० ११, १७१ – १७२।

७६. समान गोत्र प्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च।
तस्यामुत्पाद्य चांडालं ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
आपस्तंब द्वारा पृ० ११६ पर उद्धृत, बंबई, १८६८ – ७२।

७७. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ मनु० स्मृ० ३, ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातुल, मातृस्वसा आदि से उसका सपिंड संबंध है। अतएव शरीर के अवयवों की क्रमिकता से समानपिंडता सिद्ध होती है।"[७८] अलबरूनी भी सपिंड विवाह को मध्ययुग में प्रचलित नहीं बताता — "सपिंड संबंधियों के साथ भी, जैसे कि बहन, भतीजी, मौसी या बुआ और उनकी पुत्रियों के साथ विवाह निषिद्ध है। सिवा उस दशा में जब संबंधियों का जोड़ा, जो आपस में विवाह करना चाहता है, पाँच क्रमागत पीढ़ियों द्वारा एक दूसरे से दूर हो चुका हो, उस अवस्था में निषेध नहीं रहता, किंतु इतना होने पर भी ऐसा विवाह उनमें प्रशस्त नहीं।"[७९] हिंदुओं में सपिंड बहिन, बुआ, मौसी तथा उनकी पुत्रियों से विवाह नहीं किया जाता था।[८०] साधारणतः माता की पाँच पीढ़ी तथा पिता की सात पीढ़ी तक सपिंडता मानी जाती थी।[८१] इस तरह सपिंड विवाह भी सामान्यतः हिंदू समाज में वर्जित था। गौतम के अनुसार सात और पाँच पीढ़ी के बाद सपिंडता से निवृत्ति मिलती है।[८२] पाणिनि ने सामान्यतः सात पीढ़ी तक का संकेत किया है।[८३]

पत्नियों की संख्या

प्राचीन भारतीय हिंदू समाज में बहुपत्नीत्व का विधान रहते हुए भी एक पत्नीत्व को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। संपूर्ण हिंदू धर्मशास्त्र एक पत्नीत्व की

७८. "असपिण्डां समान एकः पिण्डो देहो यस्याः सा सपिण्डा न सपिण्डा असपिण्डा ताम्। सपिण्डता च एकशरीरावयवान्वयेन भवति। तथाहि पुत्रस्य पितृशरीरान्वयेन पित्रा सह सापिण्ड्यम। एवं मातृशरीरावयान्वयेन मात्रा। तथा मातामहादिभिरपि मातृद्वारेण। तथा मातृष्वसृमातुलादिभिरपि एकशरीरावयवान्वयात्। तथा पितृव्यपितृष्वस्रादिभिरपि। तथा पत्या सह पत्न्या एकशरीरारम्भकतया। एवं भ्रातृभार्याणामपि परस्परमेकशरीरावधैः सहैकशरीरारम्भकत्वेन। एवं यत्र तत्र सपिण्डशब्दस्तत्र तत्र साक्षात्परम्परया वा एकशरीरावयवान्वयो वेदितव्यः।"—विज्ञानेश्वर – मिताक्षरा – याज्ञ० स्मृ० १, ५२।

७९. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, भा० २, पृ० १५५।

८०. मनु० स्मृ० ११, १७१

भगिनियोर्भगिनीभ्रात्रीर्भ्रातृपुत्री पितृव्योः।
विवाहेद्यादिभूत्वाच्छारवाभेदो गम्यते॥
वसिष्ठ – विज्ञानेश्वर द्वारा मिताक्षरा में उद्धृत ३, ५३;
याज्ञ० स्मृ० आचारध्याय, ३, ५३।

८१. पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात्।
सपिंडता निर्तत सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥ नारद – उद्वाह० पर उद्धृत, पृ० १०८।
पंचमी मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम्।
गृहस्थश्चोद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप॥ वि० पु० ३, ११, २३।
पंचमी सप्तमी चैव मातृतः पितृतस्तथेति।
त्रीनीत्य मातृतः पंचातीत्य च पितृतः॥
पैठीनसि – विज्ञानेश्वर द्वारा मिताक्षरा में उद्धृत ८२, ५३।

८२. पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा। गौ० स्मृ० १, ४, ४३।

[८३]. ४, १, १६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालीनता का समर्थन करता है, किंतु मध्ययुग में पत्नियों की संख्या पर अलबरूनी लिखता है — "पुरुष एक से चार स्त्रियाँ ब्याह सकता है। उसे चार से अधिक रखने का विधान नहीं, किंतु उनमें से कोई एक मर जाय तो वह संख्या की पूर्ति के निमित्त चौथी पत्नी रख सकता है, किंतु उसे इसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।"[८४] वह आगे कहता है, "कुछ हिंदुओं का विचार है कि पत्नियों की संख्या वर्ण पर आधारित है, इसके अनुसार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक पत्नी के अधिकारी हो सकते हैं"।[८५] अनेक पत्नीत्व की प्रणाली तो वैदिककालीन है। अथर्ववेद में ब्राह्मण को प्रत्येक वर्ण से पत्नी पाने को कहा गया है।[८६] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण की चारों पत्नियाँ प्रत्येक वर्ण से मिलाकर होती थीं। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं कि वैदिककालीन प्रौढ़ - विवाह-व्यवस्था कालांतर में अल्प - वय - विवाह के रूप में परिवर्तित हो गई, किंतु ब्राह्मणों का चार पत्नियों का अधिकार अलबरूनी के कालतक अपरिवर्तनीय बना रहा। अलबरूनी का कथन देवल के कथन से पूर्णतः मिलता है। उसके अनुसार ब्राह्मण की चार, क्षत्रिय की तीन, वैश्य की दो और शूद्र की एक पत्नी हो सकती है।[८७]

एक से अधिक पत्नी की प्रथा निःसंदेह राजकुलों से संबंधित रही।[८८] साधारण जनता में तो एक पत्नी का ही प्रचलन था, क्योंकि उसके पास इतना साधन न था कि वह तीन - चार विवाह करके निभा सके। बहुपत्नीत्व के साधारणतः निम्नलिखित कारण माने जा सकते हैं —

१. कामलिप्सा से अनेक स्त्रियों को पत्नी बनाना,
२. संततिलिप्सा से, उसके अभाव में, अनेक विवाह, तथा
३. शौर्यलिप्सा से सबल की कन्या अपहरण कर कई विवाह।

अलबरूनी के कथन पर भारतीय धर्मशास्त्रकारों की संस्तुति को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण प्रत्येक कर्म में मध्ययुग में भी प्राचीन युग की तरह श्रेष्ठ और पूज्य माने जाते थे। इसीलिए उन्हें विवाह में भी विशेषाधिकार प्राप्त था और वे चार पत्नियों के स्वामी होते रहे। और, यह असत्य नहीं कि अलबरूनीकालीन अधिकांश संपन्न ब्राह्मण चार पत्नियों के पति रहते रहे। इतिहास में तो राजाओं की पत्नियों की संख्या अलबरूनी द्वारा विवृत चार से अधिक भी देखने को मिलती है। पृथ्वीराज चौहान की आठ पत्नियाँ थीं।[८९] जबलपुर में पाए गए यशःकर्णदेव के लेख से विदित होता है कि चेदिवंशीय गांगेयदेव ने अपनी सौ

८४. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, वही, भाग २, पृ० १५५।
८५. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, वही, भाग दो, पृ० १५५।
८६. अ० वे० ५, १७, ८, ६।
८७. एक शूद्रस्य वैश्यस्य द्वे तिस्रः क्षत्रियस्य च।
चतस्रो ब्राह्मणस्य स्युर्भार्या राज्ञो यथेच्छतः॥ गृहस्थरत्नाकर, पृ० ८५।
८८. डा० राजबली पांडेय – हिं० सा० वृ० इतिहास, भाग १, पृ० १३५।
८९. पृथ्वीराज रासो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गृहिणियों' के साथ प्रयाग में मुक्तिलाभ किया था।[९०] अतः बहुपत्नीत्व की प्रथा राजघरानों में ही अधिक थी। साधारण समाज में इसका प्रचलन नहीं के बराबर था। आज भी यत्रतत्र एक से अधिक पत्नियों वाले पति दीख पड़ते हैं।

एक पत्नीत्व का महत्व

साधारणतः पत्नियों की संख्या राजकुलों में ही अधिक थी, जो राजाओं के कामशमन की साधन थी। एक से अधिक पत्नी हिंदू धर्म और समाज में वर्जित मानी गई हैं, एक से अधिक पत्नी होने का विशेष निर्देश हुआ है। किंतु श्री चिंतामणि विनायक वैद्य का यह कहना कि बहुपत्नीत्व पर हिंदू धर्मशास्त्रों में कहीं प्रतिबंध नहीं है, युक्तियुक्त नहीं।[९१] आपस्तंब धर्मसूत्र में कहा गया है कि "धर्मप्रजायुक्त पत्नी के रहते हुए भी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करना चाहिए।"[९२] हिंदू समाज में सभी पत्नियाँ 'धर्मपत्नी' के नाम से संबोधित नहीं की गई हैं। धर्मपत्नी एक ही कही गई है जिसका पद हिंदू समाज में बहुत ऊँचा रहा है, इसीलिए वह 'शरीरार्द्ध' (अर्धांगिनी) भी कही गई है।[९३]

संबंधविच्छेद (तलाक)

हिंदू समाज में पति - पत्नी का संबंध अत्यंत पावन और पवित्र माना जाता रहा है। पत्नी पति को सच्चे सात्विक स्नेह से सदा 'देवता'[९४] के रूप में पूजती रही है और पति पत्नी को एकनिष्ठ आस्था से आदरास्पदा के रूप में देखता था।[९५] दोनों का पारस्परिक संबंध और स्नेह अविच्छिन्न और अटूट रहा। मध्यकाल में भी पति - पत्नी का संबंध प्राचीनकाल की ही तरह था। एक बार विवाह संबंध की छाया में आ जाने पर वे 'आमरण'[९६] उसी छाया के नीचे 'धर्मकार्य' करते हुए बने रहते थे, और ये परस्पर कभी 'पृथक्'[९७] होने की बात नहीं सोचते थे। शुक्र के अनुसार 'पति के समान कोई 'नाथ' और 'सुख' नहीं।[९८] वह सर्वस्व है,

९०. प्राप्ते प्रयागवटमूलनिवेश बन्धौ सार्धं शतेन गृहिणिभिरमुत्र मुक्तिम्।
—एपि० ग्रा० इंडि०, जि० २, पृ० ४।

९१. वैद्य – 'हिंदू मेडिवल इंडिया' — भाग ३, बुक ८, सेक्शन २।

९२. धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीत। आ० ध० सू० २, ५, ११ – १२।

९३. 'शरीरार्द्ध' स्मृता भार्या पुण्यापुण्य फले समाः॥ अपरार्क, पृ० ७४०।

९४. स्मृति० व्यवहार०, पृ० २५१; पाराशर माधवीय, भाग २, खं० १, पृ० ३८; भा० पु० ७, ११, २६।

९५. मनु० स्मृ० ३, ५६।

९६. अन्योन्यस्याव्यभिचारी भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसौः परः॥ वही, ९, १०१।

९७. तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ताविततरेतरम्॥ वही, ९, १००।

९८. नास्तिभर्तृसमोनाथोनास्तिभर्तृसमंसुखम्॥ शुक्र ४, ३६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शरण'[९९] का दाता।' आज की तरह उस समय संबंधविच्छेद (तलाक) नाम की कोई वस्तु न थी। उनका पारस्परिक सौहार्द्र जीवनपर्यंत 'क्षमायुक्त था।[१००] अलबरूनीकालीन भारत में आज की पश्चिमी सभ्यता की संबंधविच्छेद की प्रथा प्रचलित नहीं थी। वह लिखता है – "पति - पत्नी का संबंधविच्छेद मृत्यु द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि उनमें पार्थक्य की प्रथा नहीं।"[१०१] अलबरूनी का यह कथन शतप्रतिशत सही है, आज भी हिंदू समाज में पति-पत्नी का संबंध अविच्छिन्न रूप में अटूट है। शतपथ ब्राह्मण में सुकन्या अपने पति च्यवन के लिए कहती है – "जिसके लिए मेरे पिता ने मुझे अर्पित कर दिया है, उसका जीवनपर्यंत परित्याग नहीं करूँगी।"[१०२] यह कथन भारतीय हिंदू पत्नी की मर्यादा और आदर्श का मानदंड है।

इस प्रकार अलबरूनी ने मध्ययुगीन भारतीय हिंदू विवाहपद्धति पर समालोचनात्मक ढंग से लिखा है। यह सही है कि उसने विवाह की संपूर्ण कार्य-पद्धति और उसकी संस्कार-प्रणाली पर अधिक विस्तार से नहीं लिखा है, किंतु जो कुछ भी उसने लिखा है, सर्वेक्षणपर्यवेक्षण करने पर उसकी पुष्टि धर्मशास्त्रों से भी होती है। उसका यह विवरण अन्य मध्यकालीन लेखकों की अपेक्षा अत्यधिक प्रौढ़ और विश्वसनीय हैं। अतः मध्ययुगीन हिंदू-विवाह-पद्धति के अध्ययन - परीक्षण में अलबरूनी के विवरण का अत्यधिक महत्व है।

९९. विसृज्यधनंस्वभर्ताविशरणंस्त्रियः।
मितंददातिहिपितामितं भ्रातामितं सुतः॥ वही, ४, ३६७।

१००. आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एक पत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्॥ मनु० स्मृ० ५, १५८।

१०१. अलबरूनी, वही, पृ० २७८; सचाऊ, भाग २, पृ० १५५।

१०२. शतपथ, ४, १, ५, ९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के शब्द

रेवाप्रसाद द्विवेदी

महाकवि कालिदास को आचार्य अभिनव गुप्त 'भगवदनुग्रहपवित्रवाक्'[1] कहते हैं, अर्थात् उनकी वाणी निर्मल है और दैवी साधनों से निर्मल है। आचार्य आनंदवर्धन महाकवि[2] कहते हैं और महाकवि के शब्द तथा अर्थों के प्रति सामाजिक को सावधान करते हुए वे लिखते हैं —

यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः (ध्वन्यालोक १।८)

'महाकवि के शब्द और अर्थ को पहचानने में श्रम करना अपेक्षित है।' महाकवि भारवि ने महाकवि के शब्दों में दो विशेषताएँ दरसाईं — प्रसन्नता और गंभीरता। उन्होंने लिखा —

प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (किरात० १४।३)

'जो पुण्यकर्म (तप) से रहित होते हैं उनसे प्रसाद और गांभीर्ययुक्त सरस्वती की धारा नहीं फूटती।' आचार्य आनंदवर्धन इसी तथ्य को दुहराते हुए कहते हैं —

'प्रसन्नगंभीरपदाः काव्यबन्धाः सुखावहाः' (ध्वन्या० ३।३५)।

'जिन काव्यों की पदावली प्रसाद और गांभीर्य लिए रहती है वे सुखावह = सुगम और विद्वानों को सुख पहुंचाने वाले होते हैं।' अभिप्राय यह कि महाकवि की पदावली कारकरचना में साफ होती है। वह लोकप्रचलित होती है। किंतु अर्थदृष्टि से उतनी ही गहन रहती है। 'महाकवि या महाकाव्य की भाषा की यह पहचान उसके तलस्पर्शी अर्थ को निकालने की कुंजी है। महाकवि कालिदास में वाणी का यह रहस्य अपनी पराकाष्ठा पर है। उनमें ऐसे अनेक शब्द हैं जिन्हें पाठक आपाततः साधारण समझते हैं और व्याख्या करने पर अतीव रहस्यपूर्ण। हम ऐसे दो शब्द यहाँ प्रस्तुत करते हैं — शेषा और प्रसिद्ध।

शेषा

संस्कृत तथा हिंदी दोनों भाषाओं में 'शेष' शब्द सुप्रचलित है। भानुजि दीक्षित[3], मल्लिनाथ[4], वाचस्पत्य और कल्पद्रुम के निर्माता सभी के अनुसार यह शब्द 'शिष्' धातु से बनता है। इसका अर्थ होता है — बचा हुआ या अवशिष्ट। संस्कृत की प्रवृत्ति में यही शब्द

१. नाट्यशास्त्र – अभिनव भारती पृ० ३०७, बड़ौदा संस्करण।
२. ध्वन्यालोक – १।६, पृ० ९३ चौ० सं०।
३. अमरकोष १।८।४
४. कुमारसंभव संजीवनी ५।५७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीलिंग में 'शेषा' बन जाता है। अर्थ वही रहता है। कालिदास ने स्त्रीलिंगांत शब्द के रूप में इसका अनेक बार प्रयोग किया है। रघुवंश में देवतागण भगवान् विष्णु की स्तुति में कहते हैं —

केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः।
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि॥ (रघु० १०।२६)

'जब आप स्मरणमात्र से पुरुष के पाप धो देते हैं तो इससे आपके प्रति दर्शन, पूजन आदि अन्य भावों का फल तो स्पष्ट ही है। यहाँ शेष शब्द स्त्रीलिंग वृत्ति शब्द का विशेषण होने से स्त्रीलिंगांत रूप में 'शेषा' इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है। मल्लिनाथ ने इसका अर्थ अवशिष्ट किया है। कीथ द्वारा प्रशंसित[५] अतिप्राचीन अंग्रेजी अनुवाद में नंदर्गीकर ने भी यही अर्थ किया है[६] — रिमेनिंग फंक्शंस।

शाकुंतल में (६।१८ के गद्य में) भी – 'सेसाओ' — (संस्कृत = शेषः) शब्द इसी अर्थ में आया है। कुमारसंभव में पार्वती की कामदशा का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं —

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमीलय नेत्रे सहसान्यबुध्यत (कु० ५।५७)

'पार्वती' को रात के तीनों पहरों में नींद नहीं आती थी। कभी आँख झँपती तो एक ही क्षण के बाद खुल जातीं। मल्लिनाथ ने – त्रिभागशेषासु का अर्थ त्रिभ्योभागेभ्यः शेषासु भी किया है। उन्होंने यहाँ भी शेषा शब्द को अवशिष्टार्थक माना है।

यही 'शेषा' शब्द कुमारसंभव के ३।२२ पद्य में आया है। यहाँ इसका अर्थ ऊपर के अर्थों के समान केवल यौगिक ही नहीं है – वह रूढ़ भी है। पद्य है —

'तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञमादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे।'

'अपने स्वामी इंद्र की आज्ञा स्वीकार कर काम चल पड़ा।' यहाँ आज्ञा के लिए 'शेषा' का प्रयोग है। ऊपर दिए प्रयोगों से इसका अर्थ – 'इंद्र आज्ञा दे नहीं पाए, कि कामदेव उसे स्वीकार कर चल पड़ा – यही निकलता है। किंतु यह अर्थ कलागत सौंदर्य से दूर है! इसका सुंदर और यथार्थ अर्थ मल्लिनाथ ने किया है। उन्होंने शेषा को 'प्रसाददत्ता माला' के अभिप्राय में प्रयुक्त माना है। एतदर्थ उन्होंने केशव, वैजयंती और विश्व इन तीन कोषों से प्रमाण दिए हैं। वे इस प्रकार हैं —

१. प्रसादान्निजनिर्माल्यदाने शेषेति कीर्तिता —विश्व
२. माल्याक्षतादिदाने स्त्री शेषा — केशव - वैजयंती

५. ए हिस्टरी आव संस्कृत लिटरेचर – कीथ, पृ० ९३।
६. धंगदेव की, खजुराहो से प्राप्त वि० सं० १०११ की, प्रशस्ति में भी 'शेषा' का प्रयोग इसी रूप में मिलता है —

'संभ्रान्ताः शिरसाऽवहन् नृपतयः शेषामिवाज्ञां भयात्' – १८।१०
सेलेक्ट संस्कृत इंस्क्रिप्शंस — डा० कर्दवेलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह कि शेषा का अर्थ वह माला या अक्षत आदि वस्तु हैं जो किसी पूज्य पुरुष द्वारा सेवित रहती हैं और जिन्हें वह प्रसन्न होकर अपने प्रीतिपात्र व्यक्ति को प्रसाद रूप में प्रदान करता है, जिसका पर्याय निर्माल्य[७] भी हैं।

इस अर्थ में यह शब्द बहुत कम प्रचलित प्रतीत होता है। कालिदास के कुछ ही बाद बने अमरकोष में यह शब्द नहीं है। मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत - अंग्रेजी कोष में इसे नहीं अपनाया। शब्दार्थ चिंतामणि नामक संस्कृत के अतिश्रम पूर्ण कोष में यह शब्द है अवश्य किंतु उक्त अर्थ में न होकर छंद के लिए अपनाया गया है। वाचस्पत्य कोष में इसपर विशेष जोर नहीं दिया गया। इसे शेष शब्द के ही संदर्भ में डाल दिया गया है। ब्लूमफील्ड के वैदिक कांकाडेंस में यह नहीं है और विश्वबंधु के वैदिकपदानुक्रमकोष (ब्राह्मण, उपनिषद्) में भी बाथलिंक ने सुभाषित रत्न भांडागार से एक शेषाभूत शब्द लिया है। स्वतंत्र शेषा नहीं।

ऐसा भी प्रतीत होता हैं कि शेषा शब्द केवल कालिदास ने ही अपनाया है। वाचस्पत्य और शब्दार्थकल्पद्रुम इन दोनों विस्तृत कोषों में इस शब्द के लिए कालिदास का उद्धृत पद्य ही प्रमाण रूप से उपस्थित किया गया है।

कालिदास में भी यह शब्द केवल उपर्युक्त ३।२२ कुमारसंभव में ही है। अन्यत्र नहीं। आप्टे ने अपने 'संस्कृत अंग्रेजी' कोष में इस संदर्भ के अलावा एक शाकुंतल का संदर्भ भी दिया है (५. ३)। शाकुंतल में (तृतीय अंक में १०वें पद्य का परवर्ती गद्य) शकुंतला की सखियाँ उसका मदनलेख देवनिर्माल्य के बहाने पुष्पों में छिपाकर दुष्यंत तक पहुँचाने की योजना बनाती हैं। वे कहती हैं —

७. अर्वाक् विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते। 'विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवतिक्षणात्' अर्थात् देवता को चढ़ाए फल - फूल आदि उसके विसर्जन के पहले नैवेद्य कहलाते हैं। विसर्जन के बाद उन्हीं को निर्माल्य कहा जाता है (गरुडपुराण)। स्पष्ट रूप से निर्माल्य देवता को चढ़ाई गई सामग्री है जो दूसरी पूजा तक चढ़ी ही रहती है। दूसरी पूजा के पहले उस सामग्री को उतारने का बड़ा माहात्म्य और न उतारने का उतना ही अरिष्ट बतलाया गया है। अत्रिस्मृति में निर्माल्य उतारने का विधान है — प्रातःकाले च कुर्यान्निर्माल्योत्तारणं बुधः। नारदपांचरात्र में निर्माल्य उठाने का माहात्म्य इस प्रकार दिया गया है —

'यः प्रातरुत्थाय विधाय नित्यं निर्माल्यमीशस्य निराकरोति।
न तस्य दुःखं न दरिद्रता च नाकालमृत्युर्न च रोगमात्रम्॥'

कालिकापुराण में उतारे निर्माल्य के विसर्जन का स्थान पानी या तरुमूल बतलाया गया है — उदकेतरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत्. (कालि० ५५ अध्या०)। प्रातः निर्माल्य न उतारने का अनिष्ट अत्रिस्मृति में इस प्रकार बतलाया गया है - तृषिता पशवोबद्धाः कन्यका च रजस्वला। देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ अर्थात् प्यासे बँधे पशु, ऋतुमती अविवाहित बेटी और निर्माल्यसहित देवता, पुराकृत पुण्य नष्ट करते हैं। — द्रष्टव्य शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवताशेषापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि (३.११ शा०)

मूल वाक्य प्राकृत में है। उसमें भी अनेक पाठांतर है। सर मोनियर विलियम्स द्वारा १८७६ में आक्सफोर्ड से प्रकाशित शाकुंतल से ज्ञात होता है कि उक्त – 'देवताशेषापदेश' को कारयवेम – देवताव्यपदेश मानते हैं। बंगीय प्रति के अनुसार – वह देवतासेवापदेश – है। शंकर तथा चंद्रशेखर के अनुसार — 'देवताशेषापदेश' ही है। १९२२ में दूसरी बार प्रकाशित रिचर्ड पिशेल के शाकुंतल में ये पाठांतर दिए हुए हैं। मूलपाठ – देवताशेषापदेश ही माना गया है। (३.१५)। '०शेषापदेश' में सवर्ण संधि है। उसके अनुसार दो प्रकार का पदच्छेद हो सकता है। देवताशेष + अपदेश और देवताशेषा + अपदेश। आप्टे इनमें से '०शेषा - अप०' ही मानते हैं। सर मोनियर विलियम्स ने इसे शेष माना है। इन्होंने अपने पदच्छेद की पुष्टि में चंद्रशेखर की टीका का प्रमाण दिया है। चंद्रशेखर ने उसे 'देवताशेष' माना है। उसकी व्याख्या निर्माल्य की है। वस्तुतः वाक्यशेष, भुक्तशेष, आदि के समान देवताशेष ही मानना उचित है। फिर स्त्रीलिंग मानने का कोई स्वारस्य भी नहीं निकलता। अतः उसे देवताशेष ही मानना चाहिए। इस प्रकार कालिदास - साहित्य में भी शेषा शब्द निर्माल्य अर्थ में केवल एक ही बार उक्त पद्य में आया है।

निर्माल्य अर्थ करने पर उक्त पद्य में प्रकाश चला आता है। उसके अनुसार अर्थ होता है – 'कामदेव अपने स्वामी इंद्र की आज्ञा, शेषा = प्रसन्न होकर दी हुई माला के समान, स्वीकार कर चल दिया।'

कालिदास-साहित्य से ही ज्ञात होता है कि यह शब्द अपने युग की लोकप्रथा का वाहक है। कालिदास ने ऐसी घटना का भी उल्लेख किया है। शाकुंतल में देवराज इंद्र प्रसन्न होकर नाटक के नायक दुष्यंत को अपने वक्षस्थल के हरिचंदन से सनी मंदारपुष्पों की माला प्रदान करते हैं —

> **'अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।**
> **आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ॥** (७.२ शाकुं०)।

'इंद्र ने वक्ष के हरिचंदन से अंकित अपनी मंदारमाला, (अपने पुत्र) जयंत को उसे मन ही मन चाहता देख मुस्कराकर – दुष्यंत को पहना दी।'

शेषा के संदर्भ ३.२२ कुमारसंभव में मल्लिनाथ शाकुंतल की इस घटना का उल्लेख नहीं करते और सर मोनियर विलियम्स तथा वीरराघव शाकुंतल के उक्त पद्य की व्याख्या में कुमारसंभव के शेषा शब्द का। इससे इस शब्द और उसके अर्थ की गंभीरता के प्रति युगों प्राचीन उपेक्षा का ज्ञान होता है।

प्रसिद्ध

प्रसिद्ध शब्द भी शेषा जैसा ही एक दुरूहार्थ शब्द है। लोक में इसका विख्यात अर्थ में काफी प्रचलन है। संस्कृत कोषों में इसके दो अर्थ मिलते हैं — 'विख्यात' और 'भूषित'। कालिदास ने प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग अपने पूरे साहित्य में केवल चार बार किया है। किंतु विख्यात अर्थ में इसका स्पष्ट प्रयोग कहीं भी नहीं है। भूषित अर्थ में भी केवल तीन ही प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। शेष एक प्रयोग कोषों में अप्राप्त — एक तीसरे अर्थ में है। वह है — संसिद्ध, संपन्न या भली भाँति विहित।[८]

पार्वती की तपश्चर्या के वर्णन में कालिदास लिखते हैं — पार्वती का चेहरा पहले जिस प्रकार सँवारे केशों से मधुर लगता था, जटाओं से भी वह वैसा ही लगता रहा —

'यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।' (५।९ कुमा०)।

सातवें सर्ग में वे विवाहकाल में वधूवेश में सजे हुए अलकों को पुनः प्रसिद्ध कहते हैं —

'तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्यकथाप्रसङ्गम्' (७।१६ कुमा०)।

'उसकी मुखश्री ने अपने प्रसिद्ध अलकों में सादृश्य की कथा ही समाप्त कर दी।'

शंकर दिगंबर[९] थे जब तक अपरिग्रह[१०] = पत्नी रहित थे वे अमंगलाभ्यासरति[११], कपालधारी[१२] और श्मशान[१३] - गोचर थे। इस प्रकार उनकी वेषभूषा अत्यंत अव्यवस्थित थी। पार्वती को[१४] स्वीकार करने के बाद विवाह के पहले जब पुनः परिग्रही होने का अवसर आया तो उन्हें भी व्यवस्थित वेष अपनाना पड़ा। कवि ने उस समय उन्हें पहली बार ('प्रसिद्धनेपथ्य विधि' का 'विधाता' कहा। ७।३६ कु०)। प्रसिद्ध शब्द भूषित अर्थ में ही अपनाया गया।

रघुवंश में ६ वर्ष के बालक सुदर्शन का अपने पिता के राजसिंहासन पर मूर्धाभिषेक हुआ। राजाओं ने अपने हार, रत्न आदि से विभूषित मुकुटों द्वारा उस बालक राजा के यावक रंजित चरणों को प्रणाम किया। कवि ने मंत्रियों के मुकुटों के लिए 'प्रसिद्ध' शब्द का प्रयोग किया—

'सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ।' (रघुवंश १८।४१)।

यहाँ प्रसिद्ध शब्द का अर्थ मल्लिनाथ ने 'उन्नत' किया है। वह निश्चित ही अर्थविस्तार की दृष्टि से लाक्षणिक अर्थ है। प्रमुख अर्थ विभूषित ही है।

प्रसिद्ध शब्द शेषा के समान अप्रचलित नहीं है। आचार्य आनंदवर्धन ने भी उसका ऐसा ही प्रयोग किया है —

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥ ध्व० १।४॥

यहाँ प्रसिद्ध शब्द विख्यात और अलंकृत दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इस कारिका की वृत्ति में स्वयं ग्रंथकार लिखते हैं —**प्रसिद्धेभ्यः अलंकृतेभ्यः प्रतीतेभ्यश्च।**

८. द्रष्टव्य हमारा — कालिदासशब्दानुक्रम।
९. कुमारसंभव ५।७२।
१०. वही १।५३।
११. वही ५।६५।
१२. कुमारसंभव — ५।७१, ७८।
१३. वही ५।६८, ७७।
१४. वही ५।८६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः - संसिद्ध, विहित या संपन्न अर्थ में प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग कालिदास ने दो बार किया है। मालविकाग्निमित्र में कहा गया है — समान अनुरागवालों का विरह में शरीर त्याग भी भला, अनातुर और उत्कंठित का मिलन हो जाना भी भला नहीं।

'अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्ध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरपातोऽपि समानुरागयोः ॥ ३.१५ ॥

यहाँ शतृ प्रत्ययवाली उसी धातु से 'प्रसिद्ध्यत्' रूप बनता है जिसमें क्त प्रत्यय लगने पर प्रसिद्धि शब्द बनता है। यहाँ एकमात्र संसिद्ध या संपन्न अर्थ के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं बनता।

कुमारसंभव में इंद्र कामदेव से शिवविजय में सफल होने लिये जाने की आज्ञा[१५] देते हैं। वे इस कार्य की दुष्करता से आशंकित अनुत्साह को दूर करते हुए कहते हैं —

'अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म।' (३.१९ कुमार०)।

'यश केवल काम बन जाने से नहीं मिलता, अपितु ऐसे काम में हाथ लगाने भर से भी होता है जिसे और कोई न कर सकता हो।' मल्लिनाथ ने इस प्रसिद्ध शब्द का अर्थ विख्यात ही किया है। किंतु उसका स्वारस्य 'सिद्धहोने' अर्थ में ही है। कवि ने शिवविजय के उद्यम के पहले ही – असिद्धि वाचक अप्रसिद्ध शब्द का अमंगल करा परिणाम में असफलता और कामदाह की अमांगलिक घटना की सूचना दी है। आनंदवर्धन ने प्रसिद्ध शब्द का (१२० पृष्ठ चौ० सं०) पुनः प्रयोग किया। अभिनवगुप्त ने अपने लोचन में उसके तीन अर्थ किए – 'उपर्युक्त-विख्यात और अलंकृत ये दो तथा तीसरा – एक प्रामाणिक। शास्त्रकार यथार्थ या सिद्धि को ही प्रामाणिक मानते हैं। उनके यहाँ असिद्धि - दोष है। वह प्रामाण्य का विरोधी पदार्थ है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने भावों का निर्वचन करते हुए सप्तम अध्याय में लिखा – विभाव और अनुभाव लोक प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रतिज्ञा है विभाव और अनुभाव के साथ भावों का लक्षण और उदाहरण करने की[१६] लक्षण द्वारा वस्तु की सिद्धि की जाती है। मुनि ने विभाव अनुभाव की सिद्धि के लिए अलग से लक्षण करना आवश्यक नहीं समझा। उन्हें लोकप्रसिद्ध भर कहा। यहाँ लोक का अर्थ लोकप्रमाण है। महिमभट्ट ने व्यक्तिविवेक के प्रथम विमर्श में लोक, वेद और अध्यात्म – ये तीन प्रमाण माने भी हैं। प्रसिद्ध का अर्थ है लोकप्रमाण से सब प्रकार से सिद्ध।

पद्मप्राभृतक भाण में उसका वक्ता शश नामक विट निज को प्रसिद्धतर्क[१७] कहता है। उसका अनुवाद अभी हाल ही में प्रकाशित चतुर्भाणी में – 'तर्क के लिए प्रसिद्ध = विख्यात किया गया है। चतुर्थ परिशिष्ट की सार्थक शब्दसूची में भी वैसा ही अर्थ है। वस्तुतः यहाँ भी प्रसिद्ध का अर्थ संसिद्ध ही है। शश को उसके मित्र मूलदेव ने अपनी प्रेयसी देवसेना की

१५. 'तद् गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थांतरभाव्य एव।' कुमा० ३.१८
१६. नाट्यशास्त्र बड़ौदा संस्करण – पृ० ३४८ सप्तम अध्याय।
१७. चतुर्भाणी, पद्मप्राभृतक ३५.२३ वाक्य०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वस्थता का भेद लेने भेजा था।[१८] आते समय उसने अनुमान द्वारा देवसेना की अस्वस्थता का कारण कामवेदना सोचा था। उसका यह अनुमान मूलदेव से कहे इस वाक्य से स्पष्ट है – 'क्या मैं तुम्हारी आखें चार होने का अनजाना हूँ'[१९] अंत में नाटकाचार्य को देवसेना द्वारा भेजे गए अपने अस्वस्थ होने के समाचार से शश का अनुमान और पक्का हो गया। उस समय वह खुशी में कह बैठा, – 'वाह मेरा अनुमान ठीक उतरा।' और इसे उसने उत्तरवाक्य – 'एतदस्याः कामैकतानतां सूत्रयति'[२०] इससे ज्ञात होता है कि यह कामव्यथा में डूबी हुई है – द्वारा व्यक्त भी कर दिया।

कालिदास - साहित्य में और भी ऐसे शब्द हैं जिसका अर्थ प्रचलित अर्थ से सर्वथा भिन्न है। धारा के अर्थ में मुख (रघु० १६।५६), ऐश्वर्य या भूति के अर्थ में भाव (रघु० १६।५७), कारण के अर्थ में प्रत्यय (कुमार० ३।१८), शरीर के अवयवों के अर्थ में विशेष (कुमार० १।२५), अंतर्हित होने अर्थ में अंतर (कुमार० १।२५) नाम अर्थ में वर्ण तथा लक्षण (कुमार० ५।५६), मेघ० १।२६) आदि कालिदास - साहित्य के ऐसे ही शब्द हैं।

*

१८. वही, ८।६ - १२।
१९. वही, ८।१३ वाक्य०।
२०. वही, १५।२४ वाक्य०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी - व्याकरण - संबंधी गवेषणा – २

विधेय का कर्ता और प्रधान कर्म से मेल

स० म० दीमशित्स

हिंदी भाषा में विधेय नियत अवस्थाओं में कर्ता और प्रधान कर्म पर निर्भर करता है। कर्ता और प्रधान कर्म पर विधेय की निर्भरता मेल के स्वरूपों में अभिव्यक्त होती है। मेल के स्वरूप विधेय की अभिव्यक्ति के स्वरूपों पर ही निर्भर होते हैं।

हिंदी भाषा का मेल कर्ता या प्रधान कर्म के अनुसार होता है। यह मेल या तो पूर्ण रूप में पुरुष, वचन और लिंग में होता है, या अपूर्ण रूप में पुरुष और वचन में, अथवा वचन और लिंग में होता है। यह देखते हुए कि विधेय या उसकी क्रिया के अंग का मेल कर्ता या प्रधान कर्म से होता है या वह एक वचन, पुलिंग, अन्य पुरुष और भाववाच्य - रूप में प्रस्तुत है, हिंदी भाषा के वाक्यों की रचना कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य या भाववाच्य में होती है।

कर्तृवाच्यपरक वाक्यरचना

इस तरह की वाक्य - रचना का उपयोग तब होता है जब विधेय में क्रिया या नामिक-विधेय की क्रिया का अंग अभिव्यक्त होता, या तो अकर्मक क्रिया के हर स्वरूप से या सकर्मक क्रिया के उन स्वरूपों से जो अपूर्णकाल के हैं। वाक्य की कर्तृवाच्यपरक रचना में विधेय का मेल कर्ता से होता है। मेल का स्वरूप कर्ता के रूप से और विधेय के प्रकार से निर्दिष्ट होता है।

कर्त्ता से क्रियाविधेय का मेल

वह विधेय जो क्रिया की संकेतवाचक अवस्था के प्रथम भविष्य काल[1] के रूप में अभि-व्यक्त है उसके पुरुष, वचन, और लिंग कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – ये लड़कियाँ इरमों लेनिनग्राद जाएँगी।

जब विधेय क्रिया के द्वितीय भविष्य काल या तृतीय भविष्य काल के रूप में अभिव्यक्त होता है तब कृदंत के लिंग और वचन (पुलिंग) कर्त्ता के अनुसार होते हैं, तथा सहायक क्रिया कर्त्ता के पुरुष, वचन, और लिंग के अनुसार होती है। जैसे – (१) हम यह किताब पढ़ते होंगे। (२) वे आए होंगे।

१. लेखक के मत में भविष्य काल के तीन भेद हैं। प्रथम भविष्य काल, द्वितीय भविष्य काल और तृतीय भविष्य काल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब विधेय क्रिया के वर्तमानकाल या आसन्न भूतकाल के रूप में अभिव्यक्त होता है तब कृदंत का मेल कर्त्ता के लिंग और वचन (पुलिंग) के अनुसार होता है, और सहायक क्रिया का मेल कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार होता है। जैसे – यह ब्राह्मणों का गाँव है, हम न मुर्गियाँ पालते हैं और न खाते हैं। (२) जाकर ताला-वाला लाओ या लाए हो।

वह विधेय जो क्रिया के अपूर्ण भूतकाल, सामान्य भूतकाल या पूर्ण भूतकाल के रूप में अभिव्यक्त है उसके लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – (१) इस गाँव में जमना रहती थी। (२) सरोज हावड़ा पुल पर गया। (३) उसे कहीं नौकरी नहीं मिली थी।

जब विधेय अनुज्ञा अवस्था के रूपों में अभिव्यक्त है तब उसके वचन और पुरुष (मध्यम) कर्त्ता से अनुसार होते हैं। जैसे – तुम घर जाओ।

जब विधेय क्रिया की संभाव्य अवस्था के साधारण रूप में अभिव्यक्त होता है तब उसके पुरुष और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – (१) मैं आऊँ? (२) वह आज मेरे यहाँ आया।

जब विधेय क्रिया की संभाव्य अवस्था के अपूर्ण संयुक्त रूप में या पूर्ण संयुक्त रूप में अभिव्यक्त होता है तब उसमें कृदंत कर्त्ता के लिंग और वचन (पुलिंग) के अनुसार होते हैं, और सहायक क्रिया के पुरुष और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – (१) तुम इस वक्त घूमते हो। (२) शायद वे वहाँ भी गए हों।

वह विधेय जो क्रिया की हेतुहेतुमद्भूत अवस्था के रूपों में अभिव्यक्त होता है उसके लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – (१) मेरे पास रुपए होते तो पहले आपका किराया देती, तब पानी पीती। (२) सुभद्रा कोई काम करती होती तो सुमन खुद उसे करने लगती।

बाध्यतामूलक प्रवर्तनार्थक वाक्यों में विधेय जो अकर्मक क्रिया 'होना' के क्रिया के सामान्य रूप से 'चाहिए' शब्द से अभिव्यक्त है या उसी 'होना' क्रिया के रूपों में अभिव्यक्त होता है, उसका मेल कर्त्ता से भिन्न होता है। अधिकांश अवसरों पर 'चाहिए' शब्द का मेल कर्त्ता से नहीं होता। अगर उसका मेल कर्त्ता से होता है तो सिर्फ वचन में। उस हालत में अंतिम स्वर 'ए' अनुनासिकयुक्त होता है – जैसे – 'चाहिएँ'। 'होना' क्रिया का मेल कर्त्ता से उसी तरह होता है जैसे क्रियाविधेय के प्रयोग में। क्रिया के सामान्य रूप का मेल कर्ता से सिर्फ लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है। जैसे – (१) हालत ऐसी होनी है (थी)। (२) दोस्त साफ़ दिल होने चाहिएँ। (३) किताबें अच्छी होनी चाहिएँ।

नामिक विधेय का कर्ता से मेल

सामान्य नामिक विधेय जो सहायक क्रिया और नामिक से बनता है उसका मेल कर्ता से दो प्रकार का होता है। सहायक क्रिया का कर्ता से मेल उसी तरह होता है जैसे कर्ता से क्रिया-विधेय का होता है। विधेय के नामिक अंग का मेल उस पद परिचय के अनुसार जिससे उसकी अभिव्यक्ति है या तो कर्ता से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है अथवा किसी प्रकार का मेल नहीं होता है। विधेय का नामिक अंग जिसकी अभिव्यक्ति संज्ञा, अविकारी विशेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाम (अकारांत छोड़कर) गणनावाचक संख्या, क्रिया के सामान्यरूप सकर्मक क्रिया के अप्रत्यक्ष कारक[2] के रूप में सामान्य कृदंत या संयुक्त कृदंत से होती है, उसका मेल कर्ता से नहीं होता है। जैसे – (१) वह गाँव का नंबरदार भी था। (२) वह गरीब थी, बदसूरत थी। (३) तुम कौन हो? (४) सागर में —···और फसलें भी दो होती थीं – मकई और धान। (५) मैं उसका हाथ पकड़े हुए था। (६) साठ रुपये ज्यादा नहीं है।

विधेय का नामिक अंग जो अप्रत्यक्ष कारक में 'का' लगाकर संज्ञा या क्रमवाचक संख्या या अकर्मक क्रिया के भूतकालिक सामान्य या संयुक्त कृदंत के रूप में होता है, उसका मेल कर्ता से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है। यथा – (१) उसका लड़का अब **दो साल का** हो गया है। (२) लारी एक दुकान के सामने सड़क पर **खड़ी** थी। (३) यह किताब **मेरी अपनी** है। (४) कल हम **थके हुए** थे।

पहले प्रकार के क्रिया नामिकविधेय का मेल कर्ता से भी दो तरह का होता है। विधेय की क्रिया के अंग का मेल कर्ता से क्रियाविधेय की भाँति होता है। विधेय का नामिक अंग जो विकारी विशेषण, या क्रमवाचक संख्या, अथवा कृदंत के रूप में प्रयुक्त होता है उसके लिंग और वचन (पुलिंग) कर्ता के अनुसार होते हैं। जैसे – (१) उसका चेहरा **पीला** पड़ गया। (२) वह **पहली** घर चली गई। (३) यह लोग **घबराए** से मालूम होते हैं।

विधेय का नामिक अंग जो संज्ञा के रूप में अभिव्यक्त है उसका वचन कर्ता के अनुसार होता है। जैसे – **तुम मुझे अच्छे लड़के** दिखाई देते हो।

विधेय का नामिक अंग जो अविकारी विशेषण से अभिव्यक्त होता है उसका मेल कर्ता से नहीं होता है। जैसे – हमें खिड़की बंद मिली।

दूसरे प्रकार के क्रियानामिक विधेय में केवल सकर्मक क्रिया का मेल क्रियाविधेय की भाँति कर्ता से होता है। जैसे – हम उनको अपना दोस्त **मानते** हैं।

वचन में कर्ता से विधेय के मेल का उल्लंघन

हिंदी भाषा में वचन में कर्ता से विधेय के मेल का उल्लंघन आम प्रचलित है। लेकिन यह उल्लंघन एक विशेष प्रकार का होता है, कर्ता एक वचन में होता है और विधेय बहुवचन में। आमतौर पर ऐसा प्रयोग तब होता है जब व्यक्ति के प्रति संमान का भाव प्रकट किया जाता है। जैसे (१) बड़े पंच जी कहाँ **गये** हैं। (२) फिर सुबह को अम्मी ही उसे **जगाती थीं**।

समान कारक के कर्ताओं से विधेय का मेल

यदि विधेय के साथ दो या दो से अधिक समान कारक के रूप के कर्ता हैं जो बहुवचन में प्रयुक्त हुए हैं तो विधेय बहुवचन में प्रयुक्त होता है। ऐसे वाक्यों में लिंग में मेल इस प्रकार

२. लेखक के मत में हिंदी में केवल तीन कारक हैं —
(१) प्रत्यक्ष कारक – जैसे – बच्चा (एक वचन), बच्चे (बहुवचन)।
(२) अप्रत्यक्ष कारक – जैसे – बच्चे (एक वचन), बच्चों (बहुवचन)।
(३) संबोधन कारक – जैसे – अरे बच्वा! (एकवचन), बच्चे (एकवचन), बच्चो! (बहुवचन)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। यदि कर्ता बहुवचन में एक ही लिंग के शब्दों से अभिव्यक्त होता है तो विधेय उस लिंग के बहुवचन का रूप ग्रहण कर लेता है जिस लिंग के ये कर्त्ता हैं। जैसे (१) इस घर में मेरे दोस्त, बेटियाँ और बहनें रहती थीं। (२) डाकखाने में सदा लिफाफे और टिकट मिलते हैं। (३) इस दुकान में कापियाँ, दवातें, तथा दूसरी चीजें बिकती हैं।

यदि कर्त्ता बहुवचन में विभिन्न लिंगों के शब्दों के रूप में प्रयुक्त होता है तो विधेय —

(क) पुलिंग, बहुवचन का रूप ग्रहण कर सकता है। जैसे : इस कक्षा में तीन लड़के और दो लड़कियाँ पढ़ते हैं। (२) तरकारी की दुकानों में आलू, खीरे, टमाटर और दूसरी सब्जियाँ बिकते हैं।

(ख) निकटतम कर्ता से मेल कर सकता है। जैसे : (१) नदी के किनारे पर लड़के और लड़कियाँ खेलती थीं। (२) गाँव की औरतें और मर्द पटवारी के घर के आँगन में, दालान में और कमरों में जमा थे।

अगर एक विधेय के साथ दो या दो से अधिक समान कारकीय कर्ता विभिन्न वचनों में या एक वचन में होते हैं तो विधेय का उनसे विभिन्न प्रकार से मेल होता है —

(१) वाक्य में जब कर्ता विभिन्न वचनों के विभिन्न शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हों तब विधेय का प्रयोग या तो पुलिंग बहुवचन में होता है या फिर विधेय का मेल निकटतम कर्ता से होता है। जैसे : (१) मनोहर, सादिक, नूरां, खेतरी, हसनी और दूसरे कई लड़के लड़कियाँ रेत के टीले खोदकर घर बना रहे थे। (२) खेत पर दो बैल और एक गाय चरती थी।

(२) एकवचन के एक ही लिंग के शब्दों से अभिव्यक्त कर्ताओं के साथ विधेय का प्रयोग उस लिंग के बहुवचन के रूप में होता है जिस लिंग के वे कर्त्ता होते हैं। जैसे : (१) खेलते खेलते नीला और खेतरी झूले के पास चली गईं और झूले पर बैठकर पेंगें बढ़ाने लगीं। (२) कमरे में एक मेज और एक कुर्सी थीं।

अप्राणीवाचक या भाववाचक संज्ञाओं वाले एकवचन में प्रयुक्त कर्ताओं के साथ विधेय का प्रयोग एकवचन में होता है। जैसे : दही, मक्खन, और पनीर दूध से बनता है।

(३) विभिन्न लिंगों के किंतु एकवचन के कर्ताओं के साथ विधेय का प्रयोग या तो बहुवचन में होता है अथवा उसका मेल निकटतम कर्त्ता से होता है। जैसे : (१) छत्रपति और मखनी पटवारी के घर से निकल आये, और एक हरे खेत के किनारे पत्थर की छोटी सिल पर बैठ गए। (२) उसदिन से नीला और रफी दोनों साथ खेलने लगे। (३) कागज और पेंसिल मेरे पास हुआ करती हैं।

कर्मवाच्यपरक वाक्यरचना

वाक्य की कर्मवाच्यपरक रचना का उपयोग तब होता है जब कर्म संज्ञा या सर्वनाम से प्रत्यक्ष कारक में अभिव्यक्त होता है और क्रियाविधेय या नामिक विधेय की क्रिया का अंग निम्न द्वारा अभिव्यक्त होता है – (क) कर्तृवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में सकर्मक क्रिया से अर्थात उन रूपों में जिनमें भूतकालिक कृदंत संमिलित है। (ख) कर्मवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में सकर्मक क्रिया से। (ग) सकर्मक क्रिया के सामान्यरूप और 'चाहिए' या 'होना' और 'पड़ना' के रूपों से (बाध्यतामूलक प्रवर्तनार्थक वाक्यों में)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मवाच्य की रचना के वाक्य में विधेय का मेल प्रधान कर्म से होता है किंतु यह मेल केवल वचन और लिंग में होता है। मेल का ठोस स्वरूप प्रधान कर्म के रूप से और विधेय के प्रकार से निर्दिष्ट होता है।

विधेय की क्रिया कर्तृवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में क्रियाविधेय का प्रधान कर्म से मेल

विधेय में जो क्रिया से भविष्यकाल के रूप में अभिव्यक्त है कृदंत का मेल कर्म से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है, और सहायक क्रिया का मेल वचन और लिंग में। जैसे : उसने यह किताबें पढ़ी होंगी।

विधेय में जो क्रिया के आसन्न भूतकाल के रूप में अभिव्यक्त है कृदंत का मेल प्रधान कर्म से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है, और सहायक क्रिया का मेल केवल वचन में। जैसे : मैंने यह खत भेज दिया है।

क्रिया के सामान्य भूतकाल या पूर्णभूतकाल के रूप में अभिव्यक्त विधेय के लिंग और वचन प्रधान कर्म के अनुसार होते हैं। जैसे : (१) जमुना ने वह रात नंबरदार के घर बिताई। (२) उसने तो आज तक रफ़ी से कभी बात भी नहीं की थी।

वह विधेय जो क्रिया की संभाव्य अवस्था के पूर्ण संयुक्त रूप में अभिव्यक्त है उसमें कृदंत का मेल प्रधान कर्म से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है, और सहायक क्रिया का केवल बचन में होता है। जैसे : यहाँ ऐसा कोई ही आदमी होगा जिसने उनके नाम न सुने हों।

विधेय जो क्रिया की हेतुहेतुमद्भूत अवस्था के संयुक्त पूर्ण रूप [3] में अभिव्यक्त है तो उसका मेल प्रधान कर्म से लिंग और वचन में होता है। जैसे : अगर दूसरे ने हरकत की होती, तो आज उसका खून पी जाता।

नामिकविधेय का प्रधान कर्म से मेल

नामिकविधेय में जब क्रिया का अंग सकर्मक क्रिया से बना होता है और विधेय के नामिक अंग संमिलित होते हैं तब नामिकविधेय का मेल प्रधान कर्म से विभिन्न रूपों में होता है।

क्रिया के अंग का मेल प्रधान कर्म से क्रियाविधेय की भाँति होता है। विधेय के नामिक अंग का मेल पदपरिचय के अनुसार जिससे उसकी अभिव्यक्ति है या तो प्रधान कर्म से लिंग, और वचन (पुलिंग) में होता है, या कोई मेल नहीं होता है।

विधेय का नामिक अंग जिसकी अभिव्यक्ति अविकारी विशेषण से की गई है उसका मेल नहीं होता है। उदाहरण : उसने यह चीज खराब कर दी है।

३. लेखक के मत में हेतुहेतुमद्भूत अवस्था (मूड) के तीन रूप होते हैं – (१) सामान्य रूप। जैसे – अगर मैं जानता। (२) संयुक्त अपूर्ण रूप। जैसे – अगर मैं जानता होता। (३) संयुक्त पूर्ण रूप। जैसे – अगर मैं जान लिया होता :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधेय के नामिक अंग का मेल जिसकी अभिव्यक्ति विकारी विशेषण से हुई है, प्रधान कर्म से लिंग और वचन (पुलिंग) में होता है। जैसे : (१) हमने अपने वायदे पूरे किये (२) अगर अल्लाह ने तुम्हारी शक्ल - सूरत मुझे दी होती तो मैंने अब तक सोने की दीवार खड़ी कर ली होती।

विधेय का समान कारक वाले प्रधान कर्मों से मेल

कर्मवाच्य की रचना वाले वाक्यों में विधेय का मेल समान कारकीय प्रधान कर्मों से उसी तरह होता है जिस तरह विधेय का मेल समान कारकीय कर्ताओं से कर्तृवाच्यपरक रचना के वाक्यों में होता है। जैसे – (१) मास्को यूनिवर्सिटी ने हजारों शिक्षक, इंजीनियर इत्यादि तैयार किए हैं। (२) मैंने यह किताबें, और कापियाँ उससे लीं। (३) शिकार खेलते वक्त हमने तीन बत्तखें, और दो खरगोश मार डाले। (४) उसने डाकखाने में एक लिफाफा और एक टिकट खरीदे। (५) मैंने उसको दो चिट्ठियाँ और एक तार भेज दिया है।

कर्मवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में विधेय की क्रिया

विधेय जिसकी अभिव्यक्ति क्रिया से कर्मवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में की गई है उसका मेल प्रधान कर्म से उसी तरह होता है जिस तरह उस विधेय का जो क्रिया से कर्तृवाच्य के पुरुषवाचक रूपों में अभिव्यक्त है। जैसे – (१) सोवियत यूनियन में इलाज मुफ्त किया जाता है। (२) इस नहर की लंबाई २७० किलोमीटर है, और यह सिर्फ ३८ दिनों में बन.ई गई थी। (३) तेल के कुएँ मशीनों से खोदे जाते हैं। (४) घरों की नालियाँ गलियों में मिला दी गई हैं। (५) आबपाशी के लिए विशेष इंजीनियर और टेकनीशियन तैयार किए जाते हैं।

बाध्यतामूलक प्रवर्तनार्थक वाक्यों में विधेय

बाध्यतामूलक प्रवर्तनार्थक वाक्यों में विधेय जिसमें सकर्मक क्रिया का सामान्य रूप और शब्द 'चाहिए' या क्रियाएँ 'होना' और 'पड़ना' के रूप में शामिल हैं, उसका मेल प्रधान कर्ता से विभिन्न प्रकार से होता है। शब्द 'चाहिए' का मेल आमतौर पर प्रधान कर्म से नहीं होता। वचन में प्रधान कर्म से उसका मेल होने की दशा में इस शब्द का अंतिम स्वर अनुनासिक हो जाता है, याने 'चाहिएँ'। यदि शब्द 'चाहिए' के साथ सहायक क्रिया 'था' होती है तो उसका मेल प्रधान कर्म से लिंग और वचन में उसी तरह होता है जिस तरह क्रियाविधेय की स्थिति में। जहाँ तक क्रिया के सामान्य रूप का संबंध है उसका मेल प्रधान कर्म से लिंग और वचन (पुलिंग) से कभी होता है और कभी नहीं होता है। किंतु यह याद रखना चाहिए कि क्रिया के सामान्य रूप का मेल प्रधान कर्म से बहुधा होता है। जैसे – (१) मुझे एक खत लिखना चाहिए। (२) हमको दो तार भेजने चाहिएँ। (३) उसको दो किताबें पढ़नी चाहिएँ थीं। (४) साठ रुपये इस काम के लिए देने होंगे। (५) स्त्रियों को अगर गहने बनवाने होते तो वह अमरनाथ से कहतीं। (६) उन्हें बड़ी तकलीफें उठानी पड़ीं। (७) हमें बहुत काम करने पड़ते हैं।

भाववाच्यपरक वाक्यरचना

भाववाच्यपरक रचना के वाक्यों में विधेय का मेल कर्म से नहीं होता है। विधेय में क्रिया सदा पुलिंग, एकवचन और अन्य पुरुष के भाववाच्य के रूप में प्रयुक्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाववाच्यपरक रचना के वाक्यों का उपयोग विधेय की उस रचना में होता है जो रचना कर्मवाच्यपरक रचना के वाक्यों वाली होती है। किंतु उसका उपयोग उस दशा में होता है जब प्रधान कर्म का (क) या तो निर्देश नहीं होता है अथवा सहायक वाक्य से उसकी अभिव्यक्ति होती है। जैसे – (१) तुम कौन हो? औरत ने दबी से आवाज में पूछा और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से सरोज की तरफ देखा। (२) नीला ने सिर हिलाकर कहा भूठ! हमारी कुवानियाँ सबसे मीठी हैं। (३) कहा जाता है कि वह बीमार पड़ा है। (४) हमको बहुत पढ़ना पड़ता है।

(ख) जब प्रधान कर्म की अभिव्यक्ति संज्ञा या सर्वनाम के अप्रत्यक्ष कारक के रूप में विभक्ति चिह्नों के साथ होती है, अथवा सर्वनाम के कर्म कारक के रूप में होती है। जैसे – (१) उसने चटाई के पास पड़े हुए बूटों के एक जोड़े को उठा लिया। (२) मेरे रफी को किसने मारा है? (३) रात को उसे अच्छी तरह सहेज दिया गया था कि पौ फटने से पहले गाड़ी तैयार कर लेना। (४) इन किताबों को मुझे दे देना है।

कर्तृवाच्य - कर्मवाच्यपरक, कर्तृवाच्य - भाववाच्यपरक, कर्मवाच्य - कर्तृवाच्यपरक और भाववाच्य - कर्तृवाच्यपरक रचनाएँ

उक्त रचनाओं के वाक्यों के उपयोग तब होते हैं जब एक कर्त्ता के साथ ऐसे दो या दो से अधिक विधेय होते हैं जिनमें सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत शामिल हैं। क्रियाओं का रूप इन विधेयों में उनके अर्थ से निर्दिष्ट होता है, और कर्त्ता का रूप उसके निकटतम विधेय के अनुसार होता है। यदि कर्त्ता के निकटतम विधेय में अकर्मक क्रिया का भूतकालिक कृदंत शामिल है और शेष विधेयों में सकर्मक क्रिया का भूतकालिक कृदंत शामिल है जिसका प्रधान कर्म संज्ञा या सर्वनाम के प्रत्यक्ष कारक से अभिव्यक्त है तो हमारे सामने कर्तृवाच्य - कर्मवाच्यपरक रचना का वाक्य होगा। जैसे – लेकिन वह हिम्मत न हारे, आगे बढ़कर पर्दा हटा दिया।

जब विधेयों की उसी रचना में सकर्मक कृदंत के साथ प्रधान कर्म संज्ञा या सर्वनाम के अप्रत्यक्ष कारक के रूप में 'को' के साथ, या सर्वनाम के कर्म कारक के रूप में अभिव्यक्त है तो वाक्य की रचना कर्तृवाच्य - भाववाच्यपरक होती है। जैसे – वह अंदर आई और रोते हुए बच्चे को गोद में उठा लिया।

अगर विधेयों का क्रम उल्टा होता है और हमारे सामने कर्मवाच्य - कर्तृवाच्यपरक रचना का वाक्य होगा। जैसे – झाबरमल ने घर में ताला डाल दिया, और अदालत से रुपये वसूल करने की धमकी देकर चले गये।

जब विधेयों की उसी रचना में सकर्मक क्रिया के साथ प्रधान कर्म की अभिव्यक्ति संज्ञा या सर्वनाम के अप्रत्यक्ष कारक रूप में 'को' के साथ या सर्वनाम के कर्म कारक के रूप में होती है तो वाक्य की रचना भाववाच्य - कर्तृवाच्यपरक होती है। जैसे – कोदई ने लाल-लाल आँखों से दरोगा की तरफ देखा और जहर की तरह गुस्से को पी गये।

कभी मिश्रित रचना के वाक्य का उपयोग होता है अर्थात कर्तृवाच्य - कर्मवाच्य - कर्तृवाच्यपरक, कर्मवाच्य - कर्तृवाच्य - कर्मवाच्यपरक, भाववाच्य - कर्मवाच्य - कर्तृवाच्यपरक

REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। जैसे – (१) फिर वह अचानक खड़ा हो गया, अपनी छोटी आँखें सरोज के चेहरे पर जमा दीं, और दुम हिलाने लगा। (२) यह कहती हुई सुशीला अंदर चली गई, बच्चों को भोजन कराया, एक रोटी आप किसी तरह निगली, बर्तन धोये, फिर एक्का मँगवाकर अपना मुख्तसर सामान लादा और भारी दिल से उस घर से हमेशा के लिए विदा हो गई। (३) दारोगा ने उसके तेवर देखे तो फौरन घोड़े पर सवार हो गया और कोदई को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। (४) उसने रामप्रताप को उठाया उसे थपकी दी और फिर स्टेशन के अंदर चला गया।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श

ब्रजभाषा का एक अभिनीत काव्य - नाटक — करुणाभरण

करुणाभरण नाटक के निर्माणकाल के विषय में मतभेद है। डॉ० ब्रजरत्नदास[1] एवं डा० दशरथ ओझा[2] ने इस काव्य - नाटक का निर्माण काल १७१५ ई० (१७७२ वि०) माना है। इन विद्वानों के इस निर्णय का आधार है, सरस्वती भवन उदयपुर वाली हस्तलिखित प्रति जो १७७२ वि० की है। किंतु याज्ञिक संग्रह की एक हस्तलिखित पुस्तक[3] में लिपिकाल १६६४ ई० (१७५१ वि०) मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह काव्य-नाटक १६६४ ई० के पूर्व ही कभी निर्मित हुआ होगा। करुणाभरण नाटक के सातवें अंक में लिखा है कि लछिराम ने इस नाटक को बनाकर तत्कालीन प्रसिद्ध संन्यासी कवीन्द्र सरस्वती को दिखाया। महात्मा कवींद्र सरस्वती योगवाशिष्ठ सार के प्रणेता हैं। योगवाशिष्ठ सार का रचनाकाल १६५७ ई० है। अतः हम करुणाभरण का निर्माणकाल १६५७ ई० के लगभग कूत सकते हैं।

कृष्णजीवन लछिराम ने इस काव्य - नाटक को रामायण महानाटक की दोहे चौपाई वाली शैली में लिखा। नाटक अंकों में विभाजित है और अंकों का नामकरण किया गया है जैसे कि व्रजवासी अवस्था, सतिभामा - ईर्षा, राधाअवस्था, राधामिलन। एक बार महाराज कृष्ण अपनी रानी रुक्मणी, सत्यभामा इत्यादि के साथ सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पधारे। उधर ब्रजवासी भी आए जिनमें थे, नंद, यशोदा, राधा, गोपियाँ एवं गोप। नाटक में नंद, यशोदा, राधा एवं अन्य गोप-गोपियों से कृष्ण का मिलन ही वर्णित है।

यद्यपि काव्य नाटक में सात अंक मिलते हैं किंतु ऐसा भासित होता है कि मूलतः कवि ने छह ही अंक लिखे थे, सातवाँ अंक बाद में जोड़ा गया है। इस निष्कर्ष के कई प्रमाण हैं —

१. नाटक के जितने हस्तलेख मिले हैं उनमें से अधिकांश में छह अंक ही हैं।
२. सातवाँ अंक अलग से मिलता है।
३. छठे अंक के अंत में कवि का कथन है —

लछीराम की बुद्धि बिसाला। छंद तीन सै करे रसाला॥

यदि छंदों की गणना की जाय तो छठे अंक के अंत तक तीन सौ छंद प्राप्त होते हैं (४२ + २६ + ४३ + ४८ + ७५ + ६३) सातवें अंक में ३५ छंद हैं। यदि सातवें अंक को भी संमिलित माना जाय तो छंद संख्या ३३५ हो जाती है।

१. हिंदी नाट्य साहित्य (ब्रजरत्नदास) च० सं०, पृ० ६०।
२. हिंदी नाटक – उद्भव और विकास (डा० दशरथ ओझा), प्र० सं०, पृ० १६१.
३. याज्ञिक संग्रह ८१२।३६ (काशी नागरी प्रचारिणी सभा का आर्यभाषा पुस्तकालय)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. छठे अंक के अंत तक नाटक दुःखांत है क्योंकि राधा और कृष्ण विलग होकर अपने अपने देश को चले जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने मूलतः दुःखांत नाटक ही लिखा था। नाटक के नामकरण से भी यही ज्ञात होता है कि नाटक करुणा से भरा हुआ है। नाटक के दो हस्तलेखों में नाम है — करुणाभर और शेष में करुणाभरण। एक हस्तलेख में 'करुणा नाटक' नाम भी मिलता है।[४] कवि का कथन भी इसी बात की पुष्टि करता है —

नाटक करुनाभरनि तुम लछिराम करि देहु।
प्रेम बढ़ै उर निपट ही अरु आवै अवरोह।
करुना और सिंगार रस जहाँ वहुत करि होइ॥

लोगों ने इस दुःखांत काव्य नाटक को देखकर बुरा भला कहा होगा। या संभव है कि कवीन्द्र सरस्वती ने देखकर कहा हो कि भई, अंत ठीक नहीं रहा। फलतः कवि ने सातवाँ अंक जोड़ दिया।

५. सातवें अंक के अंत में पुष्पिका है – "इति श्री करुणानाटक देवीदास कृत संपूर्ण।" इससे यह भी अनुमान होता है कि सातवाँ अंक किसी देवीदास द्वारा निर्मित हुआ हो। यह देवीदास कौन है? एक दूसरे हस्तलेख के अंत में 'देवदत्त गुरु' नाम भी मिलता है।[५] देवीदास और देवदत्त गुरु एक ही व्यक्ति के नाम हो सकते हैं। ये लछिराम के गुरु थे। संभवतः गुरु ने कहा हो — दुःखांत नाटक ठीक नहीं। अतः कवि ने सातवाँ अंक रचा हो।

काव्य नाटक का कथानक अत्यंत प्रौढ़ एवं शृंखलित है। पात्र मनोवैज्ञानिक भूमि पर खड़े हैं और उनमें अंतर्द्वंद्व भी दिखलाई पड़ता है। नाटक में संघर्ष भी है जो मानसिक अधिक है। सत्यभामा की ईर्षा काव्य नाटक का केंद्रबिंदु है। भाषा सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण है। वर्णनों एवं संवादों में बड़ी सरसता है।

करुणाभरण नाटक ब्रजभाषा काल का अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य - नाटक है —

१. यह नाटक अत्यंत लोकप्रिय हुआ क्योंकि इसके अनेक हस्तलेख प्राप्त होते हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा में ही इसके पाँच हस्तलेख सुरक्षित हैं और सरस्वती भवन, उदयपुर में तीन।

२. आगे उदय कवि ने 'राम करुणाकर' नाटक इसीसे अनुप्राणित होकर लिखा, नाम से ही यह प्रकट है।

३. प्रबंध काव्य की शैली पर लिखे ब्रजभाषा काव्य नाटकों को प्रायः सभी आलोचकों ने नाटक नहीं माना है। यह नाटक इन सभी विद्वानों को उत्तर देता हुआ कहता है — हम नाटक हैं। हाँ, हैं काव्य - नाटक, जन - नाट्य - शैली के। आप प्रमाण चाहते हैं। मेरे पास हैं।

करुणाभरण नाटक का अभिनय हुआ था। कवि कहता है —

रसिक भगत पंडित कवित कही, महाफल लेहु।
नाटक करुनाभरनि तुम लछिराम करि देहु॥ १॥

४. हस्तलेख २८६ (काशी नागरीप्रचारिणी सभा)।
५. हस्तलेख ५७१। २०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछिराम नाटक कियो, दीनो गुनिन पढाय।
भेष रेष नित्तन निपुन लाए नट निस धाइ ॥ ३ ॥
सुहृद मंडली जोरि तहाँ कीनो बड़ो समाज।
जो उनि नाच्योे[६] सो कह्यो कविता मैं सुष साज ॥ ४ ॥

नाटककार स्पष्टतया घोषित कर कहता है कि रूप - वेश - निपुण नट बुलाए गए। इनको नाटककार ने नाटक पढ़ा दिया। तब उन - नाट्य - शैली पर नाचकर इसका अभिनय हुआ। अभिनय रात्रि में हुआ।

४. नाटक का दूसरा नाम 'कुरुक्षेत्र लीला' भी मिलता है। "अथ कुरुक्षेत्र लीला लीषते" इससे भी प्रमाणित होता है कि यह नाट्यशैली – रासलीला शैली – पर लिखा गया था।

५. नाटक का निर्माण रस की दृष्टि से किया गया था —

करुना और शृंगार रस, जिहँ बहुत करि होय

६. इस नाटक के पहाड़ी शैली के सत्रह चित्र प्राप्त हुए हैं।[७] ऐसा अनुमान है कि ये चित्र या तो नाटक के चित्राभिनय के लिए बने थे अथवा दृश्यों की आयोजना के लिये। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस नाटक को अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी।

७. नाटक का महत्व इससे भी आँका जा सकता है कि तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् कवींद्र सरस्वती ने इस नाटक की परीक्षा की और इसकी सराहना की —

जब कबइंद्र यूँ लई परिच्छा।
तब जानी सब गुरु की सिच्छा॥ अंक ७

— गोपीनाथ तिवारी

६. "काछयो" पाठांतर।
७. कलानिधि पत्रिका, (संपादक – श्री रायकृष्णदास) श्रावण २००५ में श्री गोपाल कृष्ण का लेख 'करुणाभरण नाटक और उसकी चित्रावली'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बिहारी - रत्नाकर' की पाठसमस्या

हमें यह भलीभाँति ज्ञात है कि सामान्य संपादन का जो रूप मुद्रण - यंत्रों के आविष्कार से लेकर सन् १९४२ ई० तक चलता रहा, वह वैज्ञानिक संपादन या पाठालोचन से सर्वथा भिन्न था।[1] हमने हिंदी संपादन का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते समय उन सभी संपादनों के क्रमिक विकास की रूपरेखा देख ली है। यह निर्विवाद है कि सामान्य संपादन के अंतिम चरण में ही वैज्ञानिक संपादन का सूत्रपात हो चुका था। मनमाने पाठचयन के संबंध में देखी जानेवाली प्राचीन संपादकों की निरंकुश वृत्ति समाप्त हो चुकी थी। प्रतियों के साक्ष्य पर संपादन होने लगा था तथा उचित प्रतीत होने वाले पाठ को प्रस्तुत करने के उपरांत पादटिप्पणियों में पाठांतर प्रस्तुत किया जाने लगा था। संपादकों के इस वर्ग को पूर्णतः वैज्ञानिक संपादक नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत इनके संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि प्रामाणिकता पूर्वक हस्तलिखित प्रतियों के साक्ष्य पर पाठ प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार के संपादकों में सर्वश्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तम स्वामी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, जगन्नाथदास रत्नाकर एवं उमाशंकर शुक्ल आदि का नाम लिया जा सकता है। इनके कार्यों को पाठालोचन की उस वैज्ञानिक विधि का संबल प्राप्त नहीं था, जिसका अनुगमन डा० माताप्रसाद गुप्त ने सन् १९४२ से प्रारंभ किया। अतः वे पाठ वैज्ञानिक न हो सके। इस दृष्टि से विचार करने के लिए सर्वप्रथम हम रत्नाकर जी द्वारा प्रस्तुत 'बिहारी - सतसई' के पाठ की समीक्षा करेंगे।

रत्नाकर जी ने, सतसई के पाठ को बिहारी - रत्नाकर के नाम से गंगा पुस्तक माला, लखनऊ द्वारा प्रकाशित कराया। इसके पूर्व बिहारी - सतसई के कई संपादित संस्करण प्राप्त थे।[2] इनमें से तीन प्रमुख थे। प्रथम संस्करण रायल एशियाटिक सोसायटी के संरक्षण में डा० सर जार्ज ग्रियर्सन ने प्रस्तुत किया था। इसमें ग्रियर्सन महोदय ने किसी विधिविशेष का अनुगमन न करते हुए हरजू मिश्र द्वारा तैयार आजमशाही क्रम के आधार पर प्रस्तुत की गई लल्लूलाल की 'लालचंद्रिका टीका' के पाठ एवं क्रम को स्वीकार किया। द्वितीय प्रमुख प्रयास पं० पद्मसिंह शर्मा का साहित्य - कुटीर दिल्ली से प्रकाश में आया। इनमें न तो बिहारी के पाठ के संबंध में कोई समस्या उठाई गई और न कोई समाधान प्रस्तुत किया गया। शर्मा जी बिहारी के अत्यंत प्रबल समर्थकों में से थे। अतः सतसई को लंबी भूमिका एवं टीका के साथ प्रस्तुत करके बिहारी का हिंदीसाहित्य में स्थान प्रतिपादन और तत्संबंधी एक योग्य तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने में ही उनका महत्व रहा, इससे इतर नहीं। तीसरा महत्व का प्रकाशन लाला भगवान दीन ने बिहारी - बोधिनी के रूप में किया। यह पाठ्य - पुस्तक के रूप में बहुत दिनों तक विद्यार्थियों में समादृत रहा। इसमें भी सतसई के पाठ का कोई योग्य निराकरण न करते हुए, जैसा इन प्रकाशन के नाम से ही स्पष्ट है, टीका द्वारा बिहारी के समझे जानेवाले पाठ का 'बोध' ही मात्र कराया गया। पाठालोचन के सिद्धांतों की कसौटी पर कसकर सतसई की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों की परीक्षा करने पर इन सभी के दोष (पाठ - संबंधी) प्रकट हो सकते हैं। उदाहरण स्वरूप दीन जी के संस्करण के दो पाठों पर दृष्टिपात कीजिए। उक्त संस्करण के सत्तरवें दोहे का पाठ है —

१. हिंदी पाठालोचन और संपादन का इतिहास, संमेलन पत्रिका, भा० ४४, सं० १।
२. वही (परिशिष्ट)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सट पटाति सी शशि मुखी, मुँख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमकि के, गई झरोखे झाँकि॥

आगे अस्सीवें दोहे का पाठ है :—

नावक सर से लाय के, तिलक तरुनि इक ताकि।
पावक झर सी झमकि के, गई झरोखे झाँकि॥

इन दोनों दोहों के अंतिम चरण एक ही हैं। विहारी जैसे सिद्धहस्त कवि से इस प्रकार की पुनरावृत्ति की कल्पना व्यर्थ है। निश्चित ही यह भूल सतसई की प्रतिलिपि - परंपरा से स्मृति - विभ्रम या पद - साम्य - दोष के कारण आई होगी।[3] संपादक के संमुख पाठालोचन की कसौटी नहीं थी अन्यथा वह इन सामान्य पाठ - विकृतियों का अत्यंत सरलता से निराकरण कर लेता। इसी प्रकार दो अन्य पाठ हैं :—

१. यह जग कांचो कांच सो, मैं समुझ्यो निरधार।
प्रतिबिंबित लखिए जहाँ, एकै रूप अपार॥
२. जो अनेक पतितन दिए, मोहूँ दीजै मोष।
तो बांधौ अपने गुनन, जो बांधे ही तोष॥

अन्य सभी पाठों में लगभग ये सोरठे के रूप में मिलते हैं। सोरठा की दोनों पंक्तियों के चरणों के क्रम में परस्पर परिवर्तन करने से वर्तमान दोहे का रूप हो गया। यह स्पष्ट ही प्रक्षेप है। चाहे यह प्रक्षेप किसी प्रतिलिपिकार द्वारा हुआ हो अथवा स्वयं संपादक द्वारा। उपर्युक्त पाठों में अंतिम पाठ का प्रारंभिक 'जो' और 'तो' स्पष्ट प्रक्षेप घोषित करते हैं क्योंकि ये प्रयोग विहारी जैसे सिद्धहस्त कवि के लिए अत्यंत अस्वाभाविक लगते हैं। इस प्रकार के पाठ - संबंधी दोष उपर्युक्त सभी संस्करणों में मिल जायँगे।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार रत्नाकर जी ने विहारी की पाठ - समस्या को हल करने में लगभग बीस वर्ष का समय लगाया। मैं अपने विषय की सीमा में इतना ही प्रकट करना चाहूँगा कि इतने दिनों के योग्य श्रम के बाद भी सतसई की पाठ - समस्या अधूरी ही रह गई है। इसका मूल कारण यह है कि पाठालोचन की विधि का अनुगमन नहीं हुआ, अन्यथा इससे कम ही समय में वे समस्याएँ सुलझ गई होतीं। रत्नाकर जी द्वारा प्रस्तुत पाठ में कुछ स्पष्ट समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो इस बात का संकेत करती हैं कि विहारी के पाठ - शोध का पुनर्प्रयास होना चाहिए।

इसमें संदेह नहीं कि रत्नाकर जी व्रजभाषा के पंडित थे और व्रजभाषा के इस सुप्रसिद्ध ग्रंथ का संपादन उन्होंने प्रतियों के साक्ष्य पर ही किया, पर कहीं कहीं निरंकुशता स्पष्ट लक्षित होती है। वैसे स्वतंत्र रीति से उन्होंने प्रक्षेपों के निराकरण का प्रयास किया और 'हाशिए के पाठ के संमिश्रण' (इन्कार्पोरेशन आफ मार्जिनेलिया) आदि भूलों का निराकरण भी किया, किंतु फिर भी समग्र रूप से पाठालोचन के सिद्धांतों का आदर्श संमुख न होने के कारण वे विहारी का अभीष्ट पाठ प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके। फिर भी उन्होंने इतनी सामग्री का

३. प्रतिलिपिकार और उसकी भूलें—संमेलन पत्रिका, भा० ४४, सं० ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह किया और उनका इतना विस्तृत अध्ययन नागरी प्रचारिणी पत्रिका में समय समय पर प्रस्तुत किया कि अब वैज्ञानिक विधि की सहायता से सतसई की पाठसमस्या को सरलता से सुलझाया जा सकता है। प्राच्यपरिषद के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के पद से बोलते हुए डा० धीरेंद्रवर्मा ने कहा था कि 'बिहारी - रत्नाकर' हिंदी में पहला वैज्ञानिक संपादन है। वैज्ञानिक शब्द का प्रयोग यहाँ सामान्य अर्थ में किया गया है। पाठालोचन की दृष्टि से विचार करने पर इस शब्द का प्रयोग यहाँ अनुपयुक्त ही प्रतीत होता है, जैसा आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायगा। सतसई की पाठसमस्या पर आधिकारिक रूप से तो उसकी समग्र प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों तथा अन्य सहायक सामग्रियों के अनुशीलन के उपरांत ही कुछ कहा जा सकता है। यहाँ मात्र 'बिहारी - रत्नाकर' के अंतर्गत स्पष्टरूप से लक्षित होने वाली संपादनसंबंधी त्रुटियों का निर्देश किया जायगा।

सामग्री—रत्नाकरजी ने सतसई के संपादन में जिन सामग्रियों का उपयोग किया, वे प्रायः नागरीप्रचारिणी सभा के संग्रहालय में मिल सकती हैं। उन्हें कई हस्तलिखित प्रतियाँ सतसई की प्राप्त थीं, जिनमें से उन्होंने प्रमुख रूप से पाँच का उल्लेख अपने 'कविवर बिहारी' नामक ग्रंथ में किया है।[४] वे निम्नलिखित हैं —

१. जयपुर के निजी संग्रहालय से प्राप्त प्रति जिसमें ४६३ दोहे हैं। कहा जाता है इसे स्वयं बिहारी ने लिखा है। यह प्रति जयसिंह के पुत्र रामसिंह के पढ़ाने के लिए लिखी गई थी। ४६३ दोहे होने के कारण रत्नाकर जी का अनुमान है कि संभवतः बिहारी ने उस समय तक उतने ही दोहों की रचना की थी।

२. जयपुर के निजी पुस्तकालय में विद्यमान सं० १८०० की प्रति, जो कदाचित् बिहारी के किसी शिष्य द्वारा की गई प्रतिलिपि है।

३. विजयगढ़ वाले मानसिंह की टीका के साथ लिखी हुई सं० १७७२ की प्रति जो खंडित है। इसकी एक पूर्ण प्रति भी जोधपुर से प्राप्त हुई।

४. पं० शंभुनाथजी के हाथ की लिखी हुई सं० १७८६ की प्रति तथा

५. लक्ष्मीरत्न नामक लेखक के हाथ की लिखी हुई सं० १७६३ की प्रति।

पाठसंपादन—प्राप्त प्रतियों का शाखागत स्थान निर्धारण एवं वर्गीकरण न करने के कारण रत्नाकर जी को अपने संपादन में प्रतियों के अंतर्गत मिलनेवाले पाठ का बहुमत ही ग्रहण करना पड़ा किंतु पाठालोचन का विद्यार्थी भलीभाँति जानता है कि प्रतियों की गणना महत्वपूर्ण नहीं होती है प्रत्युत मूल्य (मेरिट) महत्व का होता है। प्रतियों के निरीक्षण द्वारा रत्नाकर जी की जो भी स्थापनाएँ रहीं वे इस बात की घोषणा करती हैं कि ऊपर पाँचो प्रतियाँ, जो रत्नाकर जी की आधारभूत प्रतियाँ हैं, एक ही प्रतिलिपि परंपरा में पड़ती हैं अतः एक ही शाखा की हैं। इसका विस्तार हम क्रम - निर्धारण शीर्षक के अंतर्गत करेंगे। यहाँ इतना ही निवेदन करना पर्याप्त होगा कि प्रतियों के शाखागत वर्गीकरण के अभाव में हम किसी भी मान्यता पर विश्वस्त नहीं हो सकते।

४. यह ग्रंथ समय समय पर ना० प्र० प० में प्रकाशित उनके लेखों का संग्रह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम प्रति के संबंध में रत्नाकर जी यह मानकर चलते हैं कि वह बिहारी कृत है और उस समय तक कदाचित् उन्होंने ४६३ दोहे ही लिखे थे। इस मान्यता को कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है, उनकी कल्पना सत्य हो पर वह उतनी ही भ्रांत भी हो सकती है। पाठालोचन के विद्यार्थी 'मानस' की राजापुरवाली प्रति के संबंध में देख चुके हैं। जो प्रति तुलसी के हाथ की लिखी कही जाती थी, वह कितनी भ्रष्ट एवं बाद की प्रति निकली। यदि यह मान भी लिया जाय कि वह बिहारी-कृत प्रति है तो स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि संभवतः बिहारी ने ४६३ दोहों की ही रचना की हो और शेष दोहे प्रतिलिपि-परंपरा से प्रक्षिप्त हो गए हों। इन प्रश्नों का कोई भी समाधान रत्नाकर जी द्वारा प्रस्तुत पाठ द्वारा नहीं होता है और पाठालोचन की विधि की अवहेलना करके उसका कोई भी समाधान प्राप्त करना संभव भी नहीं है।

इसी प्रकार रत्नाकर जी ने दोहों की संख्या के निर्धारण के संबंध में तथा प्रक्षेपों के निराकरण के संबंध में भी किसी सिद्धांत को ग्रहण नहीं किया। सहज विद्या-बुद्धि से रत्नाकर जी ने प्रक्षेपों का निराकरण कुछ स्थलों पर किया है जो उचित प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ प्रति नं० २ में दोहा सं० ६८६ के पश्चात् ७३ दोहे ऐसे संगृहीत हैं जो किसी भी अन्य प्रति में नहीं मिलते। अतः यह सिद्ध होता है कि किसी भी दशा में चाहे सभी प्रतियाँ एक शाखा की हों या विभिन्न शाखाओं की वह पाठ अंतरंग परीक्षा के आधार पर प्रक्षिप्त है। रत्नाकर जी ने बहिरंग परीक्षा द्वारा भी यह बताया कि भाषा-शैली आदि की दृष्टि से भी ये सभी छंद बिहारीकृत नहीं प्रतीत होते। इसी भाँति प्रति नं० ४ में कुछ दोहे बढ़े हैं जिनके प्रारंभिक दो दोहे निम्नलिखित हैं—

१. मान छुटैगो मानिनी, पिय मुख देखि उदोत।
जैसे लागे घाम के, पाला पानी होत॥

२. प्यौ बिछुरत तन थकि रह्यो, लागि चल्यो चितु गैल।
जैसे चोर चुराइ लै, चलि नहिं सकै चुरैल॥

ये दोहे भी शेष प्रतियों में नहीं हैं, अतः प्रक्षिप्त माने जायँगे। साथ ही रत्नाकर जी ने यह भी बताया कि ये दोहे 'अमर-चंद्रिका' के हैं। इन्हें किसी पाठक ने सतसई की किसी प्रति के हाशिए में तुलनार्थ लिख दिया होगा और आगामी प्रतिलिपिकार ने उसे सतसई का दोहा मानकर मूलपाठ में समाविष्ट कर लिया होगा। इस प्रकार उन्होंने इस प्रक्षेप का भी निराकरण किया। साथ ही कुछ ऐसे भी दोहे हैं जो पूर्ववर्ती चारों प्रतियों में तो विद्यमान हैं, किंतु इस प्रति में नहीं हैं। इनके संबंध में रत्नाकर जी का अनुमान है कि एक साथ एक के स्थान पर दो पन्ने उलट जाने के कारण प्रतिलिपिकार उन दोहों को न लिख सका होगा। इस संबंध में रत्नाकर जी की मान्यता अनुमान मात्र है। क्योंकि जिन चार प्रतियों में यह पाठ मिलता है वे एक ही शाखा की प्रतियाँ हैं, अतः यह संभव हो सकता है कि यह पाठ प्रक्षिप्त हो। जो भी हो, इतना निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि अपने सीमित साधनों द्वारा रत्नाकरजी जितनी भी संभव सतर्कता का निर्वाह कर सकते थे, उन्होंने किया। उन्होंने बिहारी-रत्नाकर में कुल दोहों की संख्या ७१७ रखी। प्रति नं० १ के तो बिहारी-कृत होने का आग्रह स्वयं रत्नाकर जी करते हैं तथा उसके लिए कई ऐतिहासिक साक्ष्य भी वे प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं।[५] अतः उसके ४६३ दोहों को तो उन्होंने स्वीकार ही लिया। शेष दोहों में से सामान्य प्रक्षेपों का निराकरण करके उन्होंने ग्रहण किया। उन्होंने यथासंभव पाठांतरों का भी उल्लेख किया। इस प्रकार उनका कार्य परिश्रम, सतर्कता एवं प्रामाणिकता के साथ तैयार किया गया किंतु पाठालोचन की विधि से तैयार न होने के कारण उसमें पर्याप्त रिक्तता रह गई।

क्रमनिर्धारण—बिहारी - सतसई की प्रतियों में प्राप्त दोहों के क्रमों का विश्लेषण करने के उपरांत रत्नाकर जी ने १४ क्रमों का उल्लेख किया है जिनमें सतसई के दोहे सजाए गए हैं। ये क्रम अन्यान्य काव्यरसिकों द्वारा रचना के सौष्ठव की वृद्धि के लिए तैयार किए गए हैं। उदाहरणार्थ आजमशाही क्रम, जिसके आधार पर लल्लूलाल ने अपनी लालचंद्रिका टीका तैयार की, तथा जो आजमगढ़ के राजा आजमशाह के हेतु वहीं के हरजू मिश्र द्वारा तैयार किया गया था। इसी प्रकार अन्य भी क्रम बनाए गए थे। अपनी दृष्टि से बिहारीकृत दोहों की संख्या तथा पाठ निर्धारित कर लेने के उपरांत रत्नाकर जी विभिन्न क्रमों के बीच बिहारी के अभीष्ट क्रम को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। प्रति सं० ३ और ५ में क्रम लगभग एक ही है। उनमें केवल दो दोहों के क्रम में अंतर है। इन दोनों प्रतियों में दोहों की संख्या भी बराबर है अर्थात् ७१३। प्रति सं० एक में प्राप्त ४६३ दोहों का क्रम भी इनसे पर्याप्त साम्य रखता है। प्रति सं० दो में भी वही क्रम है केवल भगवत् संबंधी दोहे जो बीच - बीच में आए हैं, उन्हें इस प्रति में एकत्र कर दिया गया है। साथ ही इसमें तीन चार दोहे नहीं हैं। इस क्रम के समर्थन में उन्हें एक कृष्णलाल की पुरानी टीका भी प्राप्त हुई तथा आनंदी लाल की टीका में भी ६४० दोहों तक यही क्रम है। प्रति सं० ४ का भी क्रम लगभग यही है। इस प्रकार रत्नाकर जी की मान्यता है कि "इन पुस्तकों में से भी ३ और ५ अंकों की पुस्तकों में केवल दो ही स्थानों पर अंतर होने के कारण, वे ही बिहारी के निज क्रम की प्रतियाँ मानने योग्य है। और इन दोनों में भी ३ अंक की पुस्तक सटीक होने के कारण अधिक मान्य है। अतएव बिहारी - रत्नाकर के क्रमस्थापन में वही आधार मानी गई है।"[६] इस क्रमसाम्य से इस बात की स्पष्ट सूचना मिलती है कि ये प्रतियाँ एक ही शाखा की हो सकती हैं। अतः इस साम्य का पाठालोचक की दृष्टि से बहुत महत्व नहीं। साथ ही सटीक होने के कारण कोई प्रति अधिक मान्य स्वीकार कर ली जाय, यह तो किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है। प्रति सं० ३ और ५ के संबंध में स्वयं रत्नाकर जी ने उन्हें एक शाखा का होना स्वीकार किया है—'इन दोनों प्रतियों के क्रमों में साम्य होना इस बात को प्रमाणित करता है कि ये दोनों किन्हीं ऐसी प्रति से लिखी गई हैं जिनकी मूल एक ही प्रति थी।" फिर इस प्रकार के साम्य का पाठालोचन की दृष्टि से क्या महत्व हुआ?

क्रमनिर्धारण के संबंध में रत्नाकर जी ने एक और विशेष बात प्रस्तुत कर दी है जो किसी भी प्रकार पाठालोचन की दृष्टि से उचित नहीं कही जा सकती। उनका स्पष्ट मत है, "यद्यपि बिहारी सतसई में अधिकांश दोहों का पूर्वापर क्रम वही रहने दिया गया, तथापि प्राचीन पुस्तकों के देखने से प्रतीत होता है कि उनके हृदय में इतना क्रम स्थापित करने की अभिलाषा अवश्य थी कि प्रति दश - दश या बीस - बीस दोहे के पश्चात् एक - एक भगवत्

५. कविवर बिहारी।
६. वही पृ० १६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधी या नीति - विषयक दोहे आ जाँय।"[7] अतएव बिहारी - रत्नाकर के पाठ में उन्होंने ऐसा कर दिया है। लेखक या कवि के मन में क्या रहा होगा इसका अनुमान करके संपादक अपनी ओर से कुछ कर दे, यह पाठालोचन की दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार के कार्य तो पाठालोचक के लिए निषिद्ध हैं। किंतु रत्नाकर जी ऐसा करते समय सतर्क अवश्य थे और इसीलिए उन्होंने बिहारी - रत्नाकर के अंत में मानसिंह वाली टीका का क्रम, जो अकारादि क्रम में है, प्रस्तुत कर दिया है ताकि पाठक स्पष्ट रूप से यह जान सकें कि रत्नाकर जी ने उक्त प्रति के क्रम में कहाँ कहाँ पर अंतर किया है।

भाषारूप—बिहारी - रत्नाकर की भाषा में व्याकरण की एकरूपता ले आने के प्रयत्न में सतसई के मूलपाठ को भाषा में जो हस्तक्षेप रत्नाकर जी ने किया है उसका समर्थन नहीं किया जा सकता है। ब्रजभाषा के प्रकांड पंडित होने के नाते रत्नाकर जी ने बिहारी के भाषासंबंधी दोषों का परिमार्जन करने का प्रयास किया तथा एक ही शब्द या क्रिया के विविध रूपों में किए गए प्रयोगों को एकरूपता की परिधि में कसने का जो प्रयास उन्होंने किया उससे उन्होंने पाठालोचन के सिद्धांतों की अवहेलना की, साथ ही बिहारी के प्रयोग - वैविध्य एवं भाषा के प्रवाह पर भी उन्होंने रोक लगा दी। पाठालोचक का यह कर्तव्य होता है कि वह लेखक द्वारा प्रस्तुत पाठ को उसी रूप में प्रस्तुत करे चाहे उसमें भाषा एवं व्याकरण या छंदसंबंधी दोष भले ही हों। उनमें सुधार करके वह लेखक का अभीष्ट पाठ नहीं, प्रत्युत अपना पाठ प्रस्तुत करता है।

बिहारी - रत्नाकर की भाषा के संबंध में विचार प्रस्तुत करते समय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "उन्होंने (रत्नाकर जी ने) उन रूपों को खोज निकालने का प्रयास किया है जिन्हें बिहारी ने परिनिष्ठित रूप देने का प्रयास किया था। यद्यपि बिहारी ने कहीं स्पष्ट रूप से इन परिनिष्ठित रूपों के संबंध में कोई बात नहीं कही तथापि रत्नाकर जी ने इन्हें दृढ़तापूर्वक बिहारी - संमत मानकर पाठ - संशोधन किया है।"[8] प्रश्न है, रत्नाकर जी नें किस आधार पर इन्हें बिहारी - संमत माना है? स्पष्टतः यह मात्र अनुमान के कुछ भी नहीं है। कवि की भाषा में वैभिन्य मिलना अत्यंत स्वाभाविक होता है। उसकी भाषा को परिनिष्ठित रूप देना भाषा की स्वच्छंद गति को अवरुद्ध करना है। इस प्रकार मनमाने ढंग का पाठ - संशोधन पाठालोचन की परिधि में प्रक्षेप माना जाता है। भाषा - विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान डा० धीरेंद्रवर्मा ने बिहारी - रत्नाकर की भाषा के संबंध में लिखा है—"संपादक ने पाठों में एक रूपता ला दी, यद्यपि हस्तलिखित पोथियों में यह नहीं मिलती, उदाहरणार्थ उन्होंने समस्त अकारांत संज्ञाओं को उकारांत बना दिया, यद्यपि ऐसे रूप हमें पोथियों में कहीं भी नहीं मिलते। क्योंकि कुछ ब्रजभाषा परसर्गों में अनुनासिकता मिलती है इसलिये उन्होंने समानता लाने के लिए समस्त व्रज परसर्गों को अनुनासिक कर दिया। इस प्रकार हमें सर्वत्र कौं, सौं, तैं, वैं ही मिलते हैं। मूल पाठ को बनाए रखने के स्थान पर उन्होंने अपने पाठ में एक कृत्रिम समानता ला दी है जो कदाचित सतसई के मूल पाठ में वास्तव में विद्यमान नहीं थी।"[9] अतः रत्नाकर जी द्वारा प्रस्तुत पाठ में किए गए श्रम, प्रामाणिकता एवं योग्यता के प्रति नतमस्तक होकर मेरा निवेदन है कि इस दिशा में पुनः प्रयत्न होना चाहिए।

— कन्हैया सिंह

७. कविवर बिहारी पृ० १०१।
८. वही (भूमिका)।
९. ब्रजभाषा – डा० धीरेंद्र वर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च य न

वाल्मीकीय रामायण का भूगोल - विज्ञान

मायाप्रसाद त्रिपाठी

जर्नल आव द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, खंड नौ, संख्या १ में प्रकाशित सायंस आव ज्याग्रफी इन द वाल्मीकी रामायण' शीर्षक निबंध का सार —

प्रस्तुत निबंध में वाल्मीकीय रामायण में बिखरी हुई भौगोलिक सामग्री का अध्ययन किया गया है। लेखक ने डा० याकोबी के मतैक्य में रामायण का रचनाकाल छठी से दूसरी शती ई० पू० माना है और अध्ययन की सुविधा के लिये निम्नलिखित विभाजनक्रम से विचार किया है —

१ – विश्वोत्पत्ति (कौस्मोगौनी) ब्रह्मांड विद्या (कौस्मोलौजी), जगद्विवरण (कौस्मोग्राफी)।

२ – ज्योतिर्भूगोल (ऐस्ट्रोनौमिकल ज्यौग्रफी) ।

३ – पृथ्वी - भूगर्भ (इंटीरियर), भूतत्व (जियोलौजी), घनीकरण (सौलीडिफिकेशन), भूकंप, ज्वालामुखी ।

४ – तत्ववर्णन (फिजिओग्राफी), स्थानिकता (टोपोग्राफी), भू - जीव - वर्णन (जिओ-मौर्फोलौजी), पर्वत, नदी, मरुस्थल, मिट्टी तथा अन्य संबद्ध विषय ।

५ – ऋतु विज्ञान, वायु विज्ञान (मेटिरिओलौजी), वर्षा तथा अन्य बातें ।

६ – सागर, सागर विज्ञान, लहरें, धाराएँ, ज्वारभाटे, समुद्रीय लता - पुष्प तथा धन, जल यात्रा, जलीय कृत्य ।

७ – ज्ञात देश, देशों की खोज, स्थानीय भूगोल, वृक्ष पुष्प, आर्थिक तथा व्यापारिक भूगोल (नहरें, खनिज, व्यापार तथा उद्योग, जन गणना) तथा नागरिक भूगोल ।

८ – नृवंशविद्या तथा मानवजातिशास्त्र - विद्या संबंधी धारणाएँ ।

९ – भूमि की नाप जोख, आलेखन - कार्य, नक्शे बनाना, नगरों की रूपरेखा, यज्ञशाला तथा भवन ।

महाभारत में नल का उपाख्यान

आर० मोर्टन स्मिथ

जर्नल आव द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा खंड नौ, अंक ४ (जून १९६०) में प्रकाशित 'द स्टोरी आव नल इन द महाभारत' शीर्षक निबंध का सार —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंबोपाख्यान (म० भा० ५, १७० - ९३) का अध्ययन करते हुए विद्वान् लेखक की दृष्टि में महाकाव्य के अन्य तुलनीय स्थलों का अध्ययन स्वभावतः आवश्यक प्रतीत हुआ। ऐसे स्थलों में स्वाभाविक ध्यान नलोपाख्यान (३, ५० - ७८) की ओर जाता है। यद्यपि नलोपाख्यान का अध्ययन बहुतेरे विद्यार्थी करते हैं फिर भी अँगरेजी में इसकी साहित्यिक समीक्षा नहीं के बराबर है। जारेट के संस्करण पर पील की टिप्पणियाँ भी स्वल्प ही हैं। प्रस्तुत निबंध में नलोपाख्यान का विवेचन पूना के वैज्ञानिक संस्करण पर आधारित है।

सामग्री में अंबा से पर्याप्त वैभिन्य दृष्टिगोचर होता है। सोरेंसन ने महाभारत इंडेक्स में नल - दमयंती का संकेतमात्र प्रायः बारह बार किया है। कथा में पाठभेदों अथवा परिवर्तनों की खोज के लिये यह कतिपय अंतः संकेतों तक ही सीमित है। विद्वान् लेखक ने अपनी वैज्ञानिक प्रणाली से पाठभेदों, वैयाकरण प्रयोगों आदि की तालिकाएँ बनाकर यह मत व्यक्त किया है कि नलोपाख्यान में पर्याप्त संशोधन - परिवर्तन अपेक्षित है। निबंध अध्ययन के लिये एक दिशानिर्देश करने में समर्थ है। लेखक की यह भी मान्यता है कि भारतीय परंपरा के जानकार विद्वान् ही इस दिशा में पर्याप्त कार्य कर सकते हैं जो पश्चात्य विद्वानों के लिये सुकर नहीं है।

मौर्यवंश की पौराणिक तिथियाँ

एच० जी० शास्त्री

जर्नल आव द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, खंड नौ, संख्या ४ (सन् १९६०) में प्रकाशित 'द पुराणिक क्रानोलाजी आफ द मौर्यन डाइनेस्टी' शीर्षक निबंध का सार —

पार्जीटर ने 'द पुराणिक टेक्स्ट आव द डाइनेस्टीज आव द कलि एज' में मत्स्य, वायु, ब्रह्मांड तथा वायु ई पुराणों से मौर्यवंश से संबंधित श्लोक उद्धृत किए हैं तथा विष्णु एवं भागवत पुराणों से सूचनाएँ संगृहीत की हैं।

पुराणों से उपलब्ध विवरणों को संक्षेपतः प्रस्तुत करते हुए तथा उनका विवेचन करते हुए लेखक की स्थापना है कि मौर्यवंश की मुख्य वंशावली भागवत पुराण के आधार पर निम्नलिखित है तथा अन्य पुराणों के साहाय्य से उसका तिथिक्रम इस प्रकार बैठता है—

१. चंद्रगुप्त – २४ वर्ष
२. विंदुसार – २५ वर्ष
३. अशोक – ३६ वर्ष
४. कुणाल - सुयशस् – ८ वर्ष
५. संप्रति – ९ वर्ष
६. शालिशूक – १३ वर्ष
७. सोमशर्मन – ७ वर्ष
८. शतधन्वन् – ८ वर्ष
९. बृहद्रथ – ७ वर्ष

पूर्ण योग ९ सम्राट — १३७ वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वन्यालोक तथा काव्यमीमांसा में क्रौंचवध

जी० एच० भट्ट

जर्नल आव द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा नौ अंक दो (दिसंबर १९५९) में प्रकाशित 'क्रौंचवध इन ध्वन्यालोक एँड काव्यमीमांसा' शीर्षक निबंध का सार —

वाल्मीकीय रामायण का प्रसिद्ध श्लोक –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

(१, ९, १४ बड़ौदा संस्करण)

प्रायः सर्वत्र इसी एक रूप में मिलता है। इसके कुछ पाठभेद भी हैं। परंतु उनसे इस साधारण भावार्थ में अंतर नहीं आता कि निषाद ने क्रौंची के कामसहचर क्रौंच का कामकेलि के समय वध कर दिया और क्रौंची के विलाप से महर्षि वाल्मीकि द्रवित हो उठे।

राजशेखर की काव्यमीमांसा में एक उल्लेख्य वैभिन्य मिलता है। वहाँ कहा गया है कि निषाद ने मादा क्रौंच का वध किया न कि नर क्रौंच का जैसा कि वाल्मीकीय में कहा गया है। आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक में भी उक्त श्लोक का उद्धरण तथा कारिका में उसका आख्यान है। प्रस्तुत निबंध में सप्रमाण लेखक ने प्रमाणित किया है कि निषाद ने मादा क्रौंच (क्रौंची) का ही वध किया था, नर क्रौंच का नहीं।

निर्देश

जर्नल आव् ओरियंटल रिसर्च, मद्रास, खंड २७ भाग १ - ४ (१९५७ - १९५८)

द राइटिंग्स आव् डा० जे० फोगेल — संकलनकार डा० के० डब्लू० लिम। इस रचनासूची में डा० फोगेल के १८९७ से १९५७ तक के संपूर्ण निबंध आदि की सूची तिथिक्रमानुसार संगृहीत है।

ए बिब्लिओग्राफी आव सोवियट इंडोलाजी — संकलनकार प्रो० जी० रोरिक। इस ग्रंथसूची में लेखकक्रम से १९५७ ई० तक के ग्रंथों का परिचय समाविष्ट है।

मद्रास सिटी एंड संस्कृत लिटरेचर — डा० वी० राघवन्। संस्कृत के क्षेत्र में मद्रास नगर के योगदान का विवेचन तथा मूल्यांकन।

इलस्ट्रेटेड मैनस्क्रिप्ट्स — डा० वी० राघवन्। कलकत्ता, सिंधिया आदि संग्रहालयों के सचित्र हस्तलेखों का विवरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

कबीर : एक विवेचन

संत कबीर साहब की चर्चा उनके समसामयिक संतों द्वारा भी की जाने लगी थी और उनके विषय में संत रविदास ने 'तिहूँ लोक परसिध कबीरा' तथा 'देही सहित कबीर सिधाई' जैसे प्रशंसात्मक उल्लेख किए थे। उनके कुछ काल उपरांत फिर भक्त व्यास जी (१५१० – १६१२ ई०) तथा संत दादूदयाल (१५४४ – १६०३ ई०) जैसे भक्त एवं संत कवियों ने भी उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ क्रमशः 'कलि में साँचौ भक्त कबीर' तथा 'अधर एक सों मिलि रह्या जहाँ न झंपे काल' जैसे कथन करते हुए, लिया। इसी प्रकार भक्तों का गुणगान करने वाले नाभादास ('भक्तमाल' सन् १५८५ ई०), अनंतदास ('परिचई' सन् १५८८ ई०) एवं ध्रुवदास ('भक्तनामावली' सन् १६४१ ई०) ने भी इनकी गणना पौराणिक एवं धार्मिक महापुरुषों में करते समय इनका न्यूनाधिक परिचय देने का प्रयत्न किया तथा इनकी परंपरा पीछे प्रियादास (सन् १७१२ ई०) जैसे टीकाकारों की रचनाओं तक में बनी रही। इसके सिवाय उधर के अबुलफजल (सन् १५९८ ई०) जैसे एकाध लेखकों ने भी इनके संबंध में बहुत कुछ जनश्रुतियों के आधार पर लिखा, और इन्हें एक प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हुए, इनका ऐतिहासिक परिचय देने की चेष्टा की। परंतु इस प्रकार किए गए सभी वर्णन या तो अधिकतर चमत्कारपूर्ण अथवा अतिरंजित होकर ही रह गए और इनके आधार पर कबीर के विषय में किसी वास्तविक तथ्य का पता लगाना अत्यंत कठिन कहा जा सकता था।

इसी प्रकार जहाँ तक संत कबीर की रचनाओं को संगृहीत और लिपिबद्ध करने का प्रश्न है, इस कार्य का भी श्रीगणेश बहुत पहले से ही, हो गया कहा जाता है और प्रसिद्ध है कि 'बीजक' का प्रथम रूप संभवतः सन् १५२१ (सन् १४६४ ई०) में ही स्थिर कर दिया गया था तथा वर्तमान 'कबीर ग्रंथावली' की आधारभूत एक हस्तलिखित प्रति में भी, उसका लिपिकाल सं० १५६१ (सन् १५०४ ई०) दिया गया दीख पड़ता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि, यदि इनका देहांत सं० १५७५ (सन् १५१८ ई०) में हुआ हो तो, ये दोनों ही संग्रह इनके जीवन - काल में ही प्रस्तुत कर दिए गए होंगे। फिर, इसके अनंतर सिखों की धार्मिक पुस्तक 'आदिग्रंथ' (सन् १६०४ ई०) तथा निरंजनी संप्रदाय की 'पंचवानी' की नवलगढ़वाली प्रति (सन् १७२२ ई०) में संगृहीत कबीर बानियों के आधार पर, यह भी कहा जा सकता है कि उस समय इन्हें विभिन्न पंथों द्वारा महत्व दिया जाना तक आरंभ हो गया था। इसके सिवाय 'कबीर बानी' की एक प्राचीन टीका के विचार से, हमें इस बात का भी संकेत मिलता है कि कबीर की रचनाओं की व्याख्या लिखने का कार्य भी, संभवतः उसके लिपिकाल सं० १८५६ (सन् १७९९ ई०) के कुछ पूर्व ही, आरंभ हो गया होगा तथा, इस प्रकार, उस समय तक इनके प्रचारकार्य में अच्छी प्रगति भी होने लगी होगी।

परंतु न तो अभी तक उपर्युक्त रचनासंग्रहों के लिपिकाल को सर्वमान्य ठहराया जा सका है और न उक्त टीका के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसी प्रति ही मिल सकी है जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर कोई स्पष्ट निर्णय किया जा सके। अतएव, हम अभी केवल इतना ही कह सकते हैं कि कबीर के संभवतः जीवनकाल से लेकर ईस्वी सन् की अठारहवीं शताब्दी तक, उनके 'व्यक्तित्व' या 'कृतित्व' के विषय में कोई ऐसा कार्य नहीं हो पाया था जिसे हम सर्वथा प्रामाणिक और संतोषजनक बतला सकें। इनकी समझी जानेवाली रचनाओं के संबंध में गंभीर अध्ययन अथवा विस्तृत टीका लिखने का आरंभ वस्तुतः सन् १८०० ई० के आसपास ही होता है जब संत रामटहलदास (१७२५ – १८०६ ई०) ने अपनी प्रसिद्ध 'पंचग्रंथी' लिखी होगी। उस समय से बहुत पूर्व कबीरपंथ की स्थापना हो चुकी थी और 'कबीर बीजक' उसका धर्मग्रंथ भी स्वीकृत हो चुका था। संत रामटहलदास ने, उसके कतिपय विशिष्ट स्थलों का आश्रय ग्रहणकर अपने उक्त ग्रंथ की रचना की और इस प्रकार, उन्होंने उसका मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने की ओर अन्य लोगों का भी ध्यान आकृष्ट किया। फलतः आगे चलकर उस ग्रंथ पर कबीरपंथी साधु पूरनदास ने अपनी 'त्रिज्या' टीका संभवतः सन् १८६० ई० में लिख डाली और सन् १८६८ ई० के लगभग रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह ने भी अपनी 'पाखंड खंडनी' टीका की रचना कर ऐसे कार्य को आगे बढ़ाया।

'कबीर बीजक' की ही भाँति उन दिनों प्रसंगवश, कबीर की उन रचनाओं का भी अंग्रेजी भाषांतर होने लगा जो आदि ग्रंथ के अंतर्गत संगृहीत हैं और इस कार्य का आरंभ डा० ट्रंप तथा डा० मेकालिफ ने क्रमशः सन् १८७७ ई० तथा १९०९ ई० वाले अपने अपने अनुवादों द्वारा किया। वास्तव में, ईस्वी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः प्रारंभ से ही, डेनिश पादरी विशप मुंटर जैसे कुछ ईसाई मिशनरियों का ध्यान कबीरपंथ के अध्ययन की ओर भी जा चुका था और ये भी, उसके ग्रंथों का अनुवाद वा उनपर टीका टिप्पणी करने की ओर, प्रवृत्त हो चुके थे। स्वयं मुंटर ने कबीर के संबंध में 'मूलपंथी' वा 'मूलपंची' नामक एक ग्रंथ इटालियन भाषा में लिखा जो 'माइन्स आफ दि ईस्ट' ग्रंथमाला के तृतीय भाग में प्रकाशित हुआ और उसमें उन्होंने कबीरपंथ की सृष्टि - संबंधी मान्यताओं की आलोचना की। डा० विल्सन ने भी इसके कुछ ही अनंतर सन् १८४६ ई० में हिंदू संप्रदायों के विषय में लिखते समय कबीर विषयक अनेक बातों पर प्रकाश डाला और इसका अनुसरण फिर मन्मथनाथ दत्त ने सन् १८८३ ई० में प्रकाशित अपनी एक वैसी ही रचना के अंतर्गत किया। रेवरेंड प्रेमचंद द्वारा किया गया 'कबीर बीजक' का अंग्रेजी अनुवाद भी सन् १८९० ई० में ही प्रकाशित हुआ जिसके साथ उन्होंने उसका एक मूल पाठ भी छपाया। इसके सिवाय उसी समय के आसपास कबीर - पंथी साधु परमानंद ने अपने उर्दू - ग्रंथ 'कबीर मंसूर' का प्रणयन सन् १८८० में करके कबीर के पौराणिक जीवनवृत्त की रचना का सूत्रपात किया जिसके अनुसरण में पीछे लहना सिंह की 'कबीर कसौटी' (सन् १८८५ ई०) जैसी पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक कबीर तथा उनके नाम पर प्रचलित कबीर-पंथ संबंधी अध्ययन एवं ग्रंथ रचना का कार्य पूरे उत्साह के साथ आरंभ कर दिया गया था और इसकी ओर विभिन्न मनोवृत्तियोंवाले लोग प्रयत्नशील हो चुके थे। तदनुसार बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से, यह और भी अधिक व्यापक होता चला गया। इस समय से न केवल कोरे धार्मिक वा सांप्रदायिक दृष्टिकोण के साथ लिखनेवालों की रचना - शैली में ही बहुत कुछ सुधार देखा जाने लगा, अपितु कबीर को एक चिंतनशील साधक एवं सफल कवि के रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति भी जागृत हो चली और उन्हें तथा कबीर - पंथ को यथोचित रूप में आंकने का प्रयास भी आरंभ हो गया। इस प्रकार ईसाई 'पादरी 'वेस्टकाट' ने, इन विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लेकर सन् १६०६ ई० में अपनी 'कबीर एंड कबीर पंथ' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसकी आलोचना, सन् १६१६ ई० में हरिऔध जी द्वारा की गई और इनकी भी बहुत सी बातों पर विचार करते हुए, पीछे महर्षि शिवव्रतलाल ने एक उर्दू पुस्तक रच डाली। डा० एफ० ई० की का 'कबीर एंड हिज फालोवर्स' शीर्षक शोध प्रबंध एवं डा० मोहनसिंह की पुस्तक 'कबीर एंड दि भक्ति मूवमेंट' भी फिर क्रमशः सन् १६३१ ई० तथा सन् १६३४ ई० में प्रायः इसी प्रकार आलोचनात्मक ढंग से लिखकर प्रकाशित किये गए ग्रंथ कहला सकते हैं। डा० फर्कुहर (सन् १६११ ई०) तथा डा० भांडारकर (सन् १६१३ ई०) ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथों की रचनाकर, उनमें कबीर संबंधी अनेक बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया और पादरी अहमदशाह वाले 'कबीर बीजक' के तथा डा० रवींद्र ठाकुर वाले कबीर की एक सौ कविताओं के अंग्रेजी अनुवादों को क्रमशः सन् १६११ ई० एवं सन् १६१३ ई० में प्रकाशित हुई भूमिकाओं में भी यह कार्य अपने अपने ढंग से किया गया।

उक्त बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल से ही, कबीर की उपलब्ध रचनाओं के साहित्यिक विवेचन की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा। स्वर्गीय मिश्रबंधुओं ने अपने 'हिंदी नवरत्न' (सन् १६२४) के अंतर्गत कबीर को सातवें श्रेष्ठ हिंदी कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, आचार्य शुक्ल ने, अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (सन् १६२६ ई०) में इनका अपने ढंग से मूल्यांकन किया तथा डा० सूर्यकांत शास्त्री एवं डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने अपने वैसे 'इतिहासों' के अंतर्गत, इन पर कुछ विस्तृत रूप में भी प्रकाश डाला। इसके सिवाय, इस काल से ही कबीर की रहस्यवादी रचनाशैली तथा इनके विशिष्ट संतमत की ओर भी लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट होने लगा। डा० रामकुमार वर्मा ने सन् १६३१ ई० में 'कबीर का रहस्यवाद' लिखा तथा डा० बड़थ्वाल का 'दि निर्गुण स्कूल आफ हिंदी पोएट्री' सन् १६३६ ई० में, प्रकाशित हुआ। इस दूसरे ग्रंथ ने कबीर को न केवल एक 'निर्गुणिया कवि' के ही रूप में हमारे सामने ला दिया, अपितु इन्हें वस्तुतः संतमत के प्रमुख प्रवर्तक एवं प्रचारक की पदवी भी प्रदान कर दी जिसका प्रभाव आगे के अनेक लेखकों पर भी बिना पड़े नहीं रह सका। उस समय तक संयोग वश 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' की ओर से सन् १६२८ ई० में, कबीर की रचनाओं का एक सुसंपादित संस्करण भी 'कबीर-ग्रंथावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका था और उसके परिशिष्ट में इनकी उन बानियों को भी दे दिया गया था जो 'आदि ग्रंथ' में संगृहीत है जिस कारण इन दोनों संग्रहों के साथ 'कबीर बीजक' आदि में आई हुई बानियों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रश्न भी स्वभावतः उपस्थित हो गया।

तदनुसार कबीर को अब केवल उनके पुराने भक्त, उपदेशक अथवा मत - प्रवर्तक वाले रूपों तक ही सीमित रख देना पर्याप्त नहीं समझा जाता। इनके विषय में आवश्यक अनु-संधान करके इनके जीवनवृत्त को विशुद्ध ऐतिहासिक रूप में उपस्थित करने, इनकी रचनाओं के प्रामाणिक पाठ की समस्या को हल करने तथा उपलब्ध साधनों के आधार पर विचार करते हुए, इनकी साधना एवं विचारधारा के साथ साथ इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के समुचित मूल्यांकन की प्रवृत्ति भी जागृत हो उठी है। डा० सरनामसिंह शर्मा का 'कबीर : एक विवेचन' ग्रंथ संभवतः इसी उद्देश्य से किए गए प्रयत्नों का परिणाम है और इसका पता इसके शीर्षक के नीचे कोष्ठ में किए गए 'कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गवेषणात्मक अध्ययन' जैसे स्पष्टीकरण द्वारा भी भलीभाँति चल जाता है। लेखक ने इस पुस्तक के 'अध्ययन सामग्री'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक प्रथम अध्याय में 'कबीर के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री' का वर्तमान होना बतलाया है। परंतु उनकी धारणा है कि "चिंतन की व्यापकता के क्षेत्र में उसकी पूर्णता को स्वीकार नहीं किया जा सकता।" यहाँ पर "अनुमानों और नए दृष्टिकोणों के लिए सदैव अवकाश रहता है" और तदनुसार "प्रस्तुत लेखक के प्रयत्नों में भी नया दृष्टिकोण प्रकट हो सकता है", जहाँ तक कबीर के जीवनवृत्त का प्रश्न है उसे इसमें संदेह जान पड़ता है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से कोई नया तथ्य" प्रकट हो सकेगा। (पृ० २४)

आलोच्य ग्रंथ के अंतर्गत 'प्राक्कथन' तथा दो अंतिम 'परिशिष्टों' के अतिरिक्त, २४ अध्याय हैं जिनमें से उक्त प्रथम को छोड़कर शेष २३ को हम (१) वातावरण और परंपरा, (अध्याय ३, ४, ५ व ६), (२) कबीर का जीवनवृत्त और उनका व्यक्तित्व (अध्याय २, ७ व ८), (३) कबीर का सिद्धांत और उनकी साधना (अध्याय ९, १२, १३, १५, १६, १८, १९, २०, २१, २२, २३ और २४) तथा (४) कबीर की कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन (अध्याय १०, ११, १४ एवं १७) जैसे ४ व्यापक शीर्षकों में भी रख सकते हैं। अतएव, कदाचित् अधिक अच्छा हुआ होता यदि, इस पुस्तक के अध्यायों को क्रम देते समय, इस बात पर भी विचार कर लिया गया होता। परंतु जान पड़ता है कि लेखक ने विषयक्रम को निर्धारित करते समय इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया है और कुछ अध्यायों को इधर उधर भी डाल दिया है। उदाहरण के लिए, कम से कम, 'लोक मंगल की साधना' शीर्षक ९वें अध्याय का 'कबीरवाणी में समाज चित्रण' वाले १२वें अध्याय तथा अन्य इस प्रकार के अध्यायों के साथ रखा जाना और 'भाषा शैली और कवित्व' शीर्षक १४वें अध्याय को तथा 'कबीर की उलट वासियाँ' शीर्षक १७वें अध्याय को भी 'लोक काव्य की कसौटी पर कबीर वाणी' वाले १०वें अध्याय तथा अन्य इस प्रकार के अध्यायों के साथ स्थान देना कहीं अधिक सुसंगत कहा जा सकता था। किसी भी ग्रंथ को पढ़ते समय उसके वर्ण्य विषय में व्यतिक्रम का आ जाना खटकने लगता है और इसे निबंध वा पुस्तक रचना की एक त्रुटि भी कहा जा सकता है।

लेखक ने कबीर के समकालीन वातावरण - संबंधी प्रायः प्रत्येक अंग पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया है और ऐसा करते समय उनके ऊपर पड़नेवाले उसके विविध प्रभावों की ओर भी संकेत किया है। फिर 'सिद्धों और नाथों की परंपरा में कबीर' शीर्षक छठें अध्याय द्वारा उसने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि "कबीर ने सिद्धों के ही योग, विचित्र ढंग और शैली को अपनाकर नाथ पंथ पर अधिकार प्राप्त किया" तथा "कनफटे जोगियों की वाणियों में कबीर का स्वर भी लहराता दीख पड़ता है" (पृ० १५२) जिससे परिणाम निकाला जा सकता है कि कबीर कदाचित् सिद्धों के सीधे संपर्क में भी आ गए होंगे तथा उनके द्वारा प्रभावित होकर उन्होंने नाथ पंथियों पर अपना कुछ न कुछ प्रभाव भी डाला होगा। परंतु इस कथन के कुछ ही पहले (पृ० १५१ पर) लेखक ने स्वयं बतलाया है कि "कबीर का सिद्धों से सीधा संबंध बनने का तो प्रश्न ही नहीं है।" और उसने इसके साथ ही वहाँ पर यह भी संकेत कर दिया है कि "निर्वाण, शून्य और सहज को उनकी वाणी में देखकर उनका सिद्धोंसे संबंध नहीं जोड़ा जा सकता। ये शब्द नाथ पंथ में आते आते बहुत कुछ अर्थ बदल चुके थे," इत्यादि। अतएव, लेखक की उपर्युक्त धारणा हमें कुछ विचित्र सी लगती है और पता नहीं चलता कि उसने 'सिद्धों के योग', 'विचित्र ढंग' और शैली आदि के कबीर द्वारा, नाथपंथियों के माध्यम से, अपनाए जाने की बात को पूर्णरूप से क्यों नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार किया है। कबीर, निश्चित रूप से सिद्धों से अधिक नाथ पंथियों के निकट उन सभी बातों की दृष्टि से भी समझे जा सकते हैं जिनकी लेखक ने वहाँ पर चर्चा की है और उसका 'कनफटे जोगियों की वाणियों में कबीर के स्वर' का 'लहराना देखना' भी इस तथ्य का ही समर्थना करता है।

'कबीर का जीवनवृत्त' वाले द्वितीय अध्याय को (जिसे अपने वास्तविक स्थान अर्थात् पृष्ठ २५ से ८६ तक पर केवल 'जीवन' रूपधारी शीर्षक के ही अंतर्गत प्रकाशित होना पड़ा है) विस्तार के साथ लिखा गया है और उसमें कबीर की प्रायः सभी बातों की चर्चा आ गई है। लेखक ने वहाँ पर उपलब्ध सामग्रियों से उद्धरण देकर तथा उनकी आलोचना करके, अपने निष्कर्ष भी निकाले हैं। परंतु ऐसे निष्कर्षों में हमें किसी नवीन एवं उल्लेखनीय सूझ का पता नहीं चलता, अधिकतर पुरानी बातें ही दुहरा दी गई दीख पड़ती हैं। इसके सिवाय कबीर की दो पत्नियों तथा उनके पूरे परिवार के विषय में प्रकट किए गए लेखक के विचार कोरे अनुमान से ही लगते हैं। इसी प्रकार लेखक का यह कथन कि "कबीर का पंथ सत्य पर आधारित था जो उनके अनुभव से अभिन्न था" (पृ० ८५) हमें कुछ भ्रामक सा भी प्रतीत होता है, क्योंकि 'कबीर पंथ' शब्द जिसे उसने यहाँ संभवतः कबीर के मतविशेष के लिये ही प्रयुक्त किया है सर्वथा उपयुक्त नहीं है। 'कबीर पंथ' शब्द का प्रयोग सदा एक संप्रदाय विशेष के लिए ही किया गया दीख पड़ता है जिसके संस्थापक कबीर नहीं भी हो सकते हैं — कम से कम अभी तक इस बात को ऐतिहासिक और विश्वसनीय प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है। परंतु लेखक ने न केवल इस अध्याय के ही अंतर्गत अपितु अन्यत्र भी इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। उसने इसका प्रयोग अपने 'प्राक्कथन' के पृष्ठ ५, ६ एवं ७ पर भी इसी अर्थ में किया है, मूल पुस्तक के पृ० २१ पर कबीर को उसका 'प्रवर्तक' तक होना कहा है, पृष्ठ ३४८ पर बतलाया है कि "अनेक धर्मों में से सार लेकर जो पंथ (उनके द्वारा) तयार किया गया है वही कबीर पंथ है" तथा पृ० ११४ पर जो वर्णन किया गया है उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह 'पंथ' 'निर्गुण पंथ' भी हो सकता है।

कबीर की साधना एवं सिद्धांतसंबंधी विषयों के लिए इस पुस्तक में स्वभावतः कहीं अधिक अध्यायों का समावेश किया गया है और वास्तव में, इस दिशा की ही ओर लेखक द्वारा विशेष ध्यान दिया गया भी प्रतीत होता है। इन प्रायः बारह अथवा कुल की आधी संख्या वाले ऐसे भागों में, भक्ति, प्रेम, योग, 'चिंतन पक्ष' और समाज से लेकर मानववाद एवं साम्यवाद, आध्यात्मिक एकता, लोकमंगल, प्रगतिशीलता, 'रहस्यवाद' तक जैसे प्रश्नों के विषय में भी लिखने का प्रयत्न किया गया है और इनके साथ इस प्रकार की बातों पर भी विचार किया गया है कि 'शून्य के विकास में कबीर का योग' कहाँ तक रहा तथा कबीर एवं गांधी की 'साधना - पद्धति' पर विचार करते हुए इन दोनों महापुरुषों को 'एक ही पंथ के दो पथिक' भी ठहराया गया है। परंतु इन अध्यायों को पुस्तक में स्थान देते समय भी किसी सुनिश्चित क्रम की ओर ध्यान दिया गया नहीं जान पड़ता, किंतु जहाँ तक इनमें कही जानेवाली बातों पर, यथासंभव सम्यक् रूप से विचार करने का प्रश्न है, लेखक ने इसके लिए पूरा प्रयत्न किया है और उसे इसमें अच्छी सफलता भी प्राप्त हुई। कम से कम 'भारतीय परंपरा में कबीर की भक्ति' एवं 'शून्य के विकास में कबीर का योग' जैसे शीर्षक वाले दो चार अध्याय तो वास्तव में उल्लेखनीय हैं। इनमें से भक्तिवाले अध्याय के अंतर्गत लेखक ने न केवल भारतीय भक्ति साधना के क्रमिक विकास पर ही अच्छा प्रकाश डालने की चेष्टा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अपितु, इसमें कबीर की भक्ति को उपयुक्त स्थान देते समय, उसके विविध अंगों तथा अंतरायों तक पर भी विचार किया है। इसी प्रकार 'शून्य के विकास' वाले उपर्युक्त अध्याय में भी वर्ण्य विषय को सुव्यवस्थित रूप देने का ही सुंदर प्रयत्न किया गया है।

परंतु ऐसे अध्यायों में से भी कुछ के अंतर्गत, एकाध स्थलों पर कतिपय शब्दों का प्रयोग भ्रांति उत्पन्न करता जान पड़ता है। उदाहरण के लिए लेखक ने पुस्तक के 'कबीर का योग-दर्शन' शीर्षक अध्याय (पृ० ४६३) में 'त्रिवेणी' का परिचय देते हुए बतलाया है कि "इडा और पिंगला क्रम क्रम से सुषुम्ना के दाँएँ बाँएँ होती हुई ब्रह्मरंध्र तक जाती हैं। वे आज्ञा चक्र में सुषुम्ना में प्रवेश करती हैं।" जिससे भ्रम हो सकता है कि 'ब्रह्मरंध्र' का स्थान कहीं आज्ञा-चक्र में ही निश्चित किया जाता न हो। परंतु इस विषय के जानकारों तथा योग-साधना वालों के भी कथन से पता चलता है कि 'ब्रह्मरंध्र' वस्तुतः सहस्रार व सहस्र दल वाले चक्र में अवस्थित है और इसलिए उसे 'मस्तिष्क वा कपाल में वर्तमान किसी कोशवत् छिद्र' (वेंट्रिक्युलर केविटी इन दि ब्रेन'), (दे० वसंत जी० रेले रचित 'दि मिस्टीरियस कुंडलिनी' का एपेंडिक्स पृ० १) जैसे शब्दों द्वारा भी परिचित कराया जाता है और उक्त दोनों नाड़ियों का दोनों नयनों तक ही समाप्त हो जाना भी बतलाया जाता है। इसी प्रकार 'शून्य के विकास में कबीर का योग' शीर्षक अध्याय (पृ० ५१६) में लेखक ने 'सहजियों' शब्द का प्रयोग किया है। उसका यह प्रयोग, संभवतः 'सहजयानियों' के लिए किया गया जान पड़ता है जो ठीक नहीं कहला सकता। 'सहजिया' नामक पंथ बंगाल के वैष्णवों का था जो 'वैष्णव सहजिया' भी कहे जाते थे जहाँ बौद्धों का संप्रदाय 'सहजयान' कहलाता था। इसे केवल 'सहज संप्रदाय' कहना भी भ्रामक हो सकता है, किंतु इस शब्द का प्रयोग भी लेखक ने उसी पृष्ठ पर किया है।

कबीर की कृतियों के साहित्यिक मूल्यांकन से संबंध रखनेवाले अध्यायों के अंतर्गत लेखक ने उनकी रचनाओं पर लोककाव्य की दृष्टि से विचार किया है, उनमें 'प्रतीक परंपरा में कबीर का योग' प्रदर्शित करने की चेष्टा की है, उनकी भाषा एवं शैली के विषय में चर्चा करते हुए उनके 'कवित्व' पर भी प्रकाश डाला है तथा उनकी उलटवासियों का रहस्य बतलाया है। इनमें से सभी अध्याय एक समान अच्छे ढंग से लिखे गए नहीं जान पड़ते। उदाहरण के लिए कबीर की भाषा पर विचार करते समय, लेखक ने उनकी रचनाओं पर किसी वैज्ञानिक ढंग से विचार नहीं किया है, प्रत्युत अधिकतर उनकी शैली को ही विशेष महत्व दे दिया है। उनका ध्यान इन रचनाओं में उपलब्ध प्रतीकयोजना तथा उलटवाँसी-शैली के प्रयोग की ओर अधिक आकृष्ट जान पड़ता है और इन दो विषयों पर इस पुस्तक में कुछ विस्तार के साथ विवेचन किया गया भी दीख पड़ता है। 'प्रतीक परंपरा में कबीर का योग' वाले अध्याय के पृष्ठ २०७-८ पर लेखक ने एक पद्य,

> चुनरिया हमारी पिया ने सँवारी
> कोई पहिरै पिया की प्यारी, आदि

से आरंभ करते हुए उद्धृत किया है और उसके अंत में '१' का अंक देकर उसका पृ० २०८ के नीचे 'कबीर-ग्रंथावली' के नाम द्वारा स्थल निर्देश भी कर दिया है। किंतु उस ग्रंथ के किसी पृष्ठ का वहाँ पर पता नहीं चलता और न इसके अभाव में हमें उक्त पद्य को कबीर की रचनाओं के उस संग्रह में कहीं ढूँढ़ने में कोई सहायता ही मिलती है। इसी प्रकार लेखक ने 'परिशिष्ट-१' के 'क' वाले प्रकरण के पृष्ठ ५४६ पर जिस 'ल्यौ की लेज पवन का ढींकू'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि पद्यांश को उद्धृत किया है वहाँ पर उनने उसे 'साखी' का नाम दे दिया है जो वास्तव में अशुद्ध है क्योंकि इसकी ये दोनों पंक्तियां उक्त 'ग्रंथावली' के २१४ वें पद के अंतर्गत आती हैं।

इस पुस्तक के अंतर्गत लेखक ने कई ऐसे वाक्यों के भी प्रयोग कर दिए हैं जो विचित्र से लगते हैं और उनमें से कुछ में व्याकरण की अशुद्धियाँ भी आ गई जान पड़ती हैं जिनका सुधार कर लेना आवश्यक था। उदाहरण के लिए,

"उनकी वाणी में सांस्कृतिक परंपरा का एक ऐसा विकास दृष्टिगोचर होता है जिसमें अभारतीय संस्कृतिक (?) का इतना मधुर पुट है कि उसकी अभारतीयता प्रतीत नहीं होती" (प्राक्कथन, पृष्ठ ५), "साधना के (?) पथिक होने के नाते उनका संबंध पहले समाज से हुआ है फिर ईश्वर से" (पृष्ठ १५३ – ४),

"वह अनेक सिद्धांतो और मतों में जाकर मिला और (— ?) स्थान स्थान पर अपने अर्थ को बदला' (पृष्ठ ५०८),

"आत्मा तथा परमात्मा के मिलन का जो संघर्ष (?) कवि ने चित्रित किया है वह अद्वितीय है।" (प्राक्कथन, पृष्ठ १३),

"काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाओं (?) ने अपने उर को विशाल करके (?) कबीर के ग्रंथों की संख्या १३० तक पहुँचा दी है" (पृष्ठ २०), जहाँ पर बहुत कुछ अस्पष्टता भी आ गई प्रतीत होती है। इसी प्रकार लेखक ने इस पुस्तक के पृष्ठ १५९ पर जिस 'शिलालेख' शब्द का प्रयोग दो बार किया है उसका अर्थ भी वहाँ पर स्पष्ट नहीं होता। यदि उसका अभिप्राय वहाँ किसी 'निश्चत आदर्श' से है तो भी इस शब्द का प्रयोग कदाचित् अनुपयुक्त ही कहा जा सकता है। इसके सिवाय पुस्तक के पृष्ठ २६७ पर किया गया 'ध्वन्यात्मक अंश' शब्द व्यवहार तथा उसके पृष्ठ १३१ पर किया गया 'पश्चारंभक' शब्द का प्रयोग भी हमें कुछ विचित्र से ही लगते हैं और जान पड़ता है कि यहाँ पर भी पूरी सावधानी से काम नहीं लिया जा सका है।

आलोच्य पुस्तक के अंतर्गत कई वर्तनी संबंधी भूलें भी दीख पड़ती हैं। इनमें से बहुत सी मुद्रण की असावधानी के कारण आ गई होंगी और उनकी संख्या के अधिक हो जाने पर भी, हम इसके लेखक को उतना दोषी नहीं ठहरा सकते। परंतु इनमें कुछ ऐसी भी जान पड़ती हैं जिनके विषय में केवल 'छपाई की अशुद्धि' कहकर ही नहीं टाल दिया जा सकता। उदाहरण के लिए पृष्ठ ५५ एवं पृष्ठ ५६ पर भी जिस 'पैत्रिक' शब्द का व्यवहार किया गया है उसका रूप 'पैतृक' होना चाहता था, पृष्ठ ३९४ वाले 'मनोसाधना' शब्द को उसके 'मनः साधना' रूप में देना चाहता था तथा, इसी प्रकार पृष्ठ १९८ पर आए हुए 'पवित्रा' को उसका शुद्ध 'पवित्रता' रूप मिल जाना चाहता था। इसके सिवाय पुस्तक में यत्र तत्र कुछ ऐसे शब्दों के भी प्रयोग कर दिए गए हैं जिनका आशय समझ पाना अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। इनमें से एक 'पश्चारंभक' शब्द का उल्लेख अभी पहले कर आए हैं, वैसा ही एक अन्य शब्द 'मर्माहो' भी है जो पृष्ठ १७७ पर आया है। इसी प्रकार पृष्ठ ३१६ पर प्रयुक्त 'असिलता' शब्द एवं पृष्ठ ३९४ वाले 'सरसीत' शब्द के प्रयोगों का औचित्य भी सिद्ध करना सरल नहीं जान पड़ता। जहाँ तक अन्य पुस्तकों से उद्धृत किए गए अंशों वा वाक्यांशों के शब्दों का प्रश्न है, इस पुस्तक के लेखक ने इस विषय में भी कई को शुद्ध रूप में देने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी सतर्कता नहीं प्रदर्शित की है जिसके कारण संभवतः भ्रांति भी उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए लेखक ने पृष्ठ ११० पर कबीर की एक साखी को उद्धृत करते हुए उसमें आए हुए 'संपटि' शब्द (दे० 'कबीर ग्रंथावली' प्र० सं० पृ० ६१) को 'संपति' का रूप प्रदान कर दिया है जिससे संपुटों में रखे जानेवाले शालग्राम का आशय लुप्त हो जाता है जो यहाँ पर कबीर को भी इष्ट रहा होगा।

परंतु इस प्रकार की त्रुटियों के कारण आलोच्य पुस्तक के वास्तविक महत्व में वैसी कमी के आ जाने की आशंका नहीं की जा सकती। जैसा पहले ही कहा जा चुका है इसकी रचना कबीर-संबंधी अध्ययन के विकास-क्रम में, एक विशिष्ट मोड़ पर हुई है। कबीर साहित्य के विभिन्न अंगों पर पृथक् पृथक् रूपों में विचार करते करते तथा समय समय पर उपलब्ध होती जानेवाली सामग्रियों को अपने उपयोग में लाते लाते, हम इस विषय का अनुशीलन यथोचित गंभीरता के साथ करने के अभ्यासी होते जा रहे हैं और हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि हम अब अपने तत्संबंधी मंतव्यों का कभी कभी विवेचन भी करते चलें। लेखक ने अपनी इस पुस्तक में एक वैसा ही प्रयास किया है और ऐसा करते समय उसने यह आशा भी प्रकट की है कि उसके 'इन प्रयत्नों में' कोई न कोई "नया दृस्टिकोण प्रकट हो सकता है" (पृष्ठ २४) जिसकी ओर उसने कभी कभी हमारा ध्यान आकृष्ट भी किया है। उसके अनुसार कबीर एक मध्यकालीन 'क्रांति पुरुष' थे जिसने समाज की दुर्बलताओं पर 'सूक्ष्मता से दृष्टिपात' कर उसे तथा 'भावलोक' को एक साथ प्रेरणा दी तथा तदनुकूल आदर्श की प्रतिष्ठा कर इसके लिए एक 'विचारक' एवं 'प्रेमी' के रूप में प्रयत्न किए और वे 'जनता के कवि' भी सिद्ध हुए। लेखक का यह दृष्टिकोण कदाचित् सर्वथा 'नवीन' न भी कहला सके, किंतु इसके अनुसार किया गया उसका प्रयास अवश्य अभिनंदनीय है। यह पुस्तक कबीर-संबंधी खोज एवं अध्ययन की परंपरा में एक सुंदर कड़ी कहला सकती है और इसका समुचित स्वागत होना चाहिए।[1]

— परशुराम चतुर्वेदी

हिंदी काव्य में अन्योक्ति

'हिंदी काव्यमें अन्योक्ति' पुस्तक पर्याप्त विवेचनापूर्ण लगी। प्रस्तुत कृति में छह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सामान्य उक्ति से काव्यीय-उक्ति का भेद-निर्धारण-पूर्वक संस्कृत के मान्य आचार्यों द्वारा अपने-अपने लक्षण-ग्रंथों में प्रतिष्ठापित काव्यीय-उक्ति के अवांतर प्रभेदों (रसोक्ति, स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति) की विवेचनात्मक उपस्थापना की गई है और तब अपने विषय 'अन्योक्ति'का उपक्षेप किया गया है। साथ ही अन्योक्तिका संकुचित रूप(अलंकारात्मक), विस्तृत अथवा व्यापक रूप (अन्योक्ति पद्धति) तथा श्लाध्य काव्योचित (अन्योक्तिध्वनि) का भी हलका

१. कबीर: एक विवेचन – डा० सरनाम सिंह शर्मा; प्रकाशक हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली; पृष्ठ डिमाई ५८८, मूल्य १२.५० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्दर्शन कराया गया है। द्वितीय अध्याय में वाग्विकल्प की अनेक धाराओं में अन्योक्ति के आभास का बुद्धि - पूर्वक सूक्ष्म उपस्थापन है। ये दो अध्याय अन्योक्ति के स्वरूप की सैद्धांतिक विवेचना से संबद्ध हैं। शेष चार अध्यायों में अन्योक्ति का प्रायोगिक पक्ष दिखाया गया है। तीसरे अध्याय में अलंकार के रूप में अन्योक्ति के काव्योपकारी रूप की चर्चा करते हुए वेदों से लेकर प्रयोगवादी साहित्य तक उसका प्रायोगिक स्वरूप निरूपित किया गया है। चौथे एवं पाँचवें अध्यायों में क्रमशः 'अन्योक्ति-पद्धति' का संस्कृत एवं हिंदी वाङ्मय में जो मनोहर प्रयोग है – उसका ऐतिहासिक दृष्टि से सुरुचिपूर्ण उपस्थापन है। अंतिम अध्याय में अन्योक्ति संबंधी विभिन्न धारणाओं का उल्लेख करते हुए अन्योक्ति के ध्वनित रूप पर प्रकाश डाला गया है और साथ ही यह भी बताया गया है कि ध्वनि के त्रिविध रूपों—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि एवं रसध्वनि — से अन्योक्ति किस तरह संबद्ध है। अंत में एक परिशिष्ट भी जुड़ा हुआ है, जहाँ लेखक ने अपने अनुसंधान काल में अधीत कुछ सरस एवं बहुमूल्य अन्योक्तियों का संग्रह कर दिया है। संक्षेप में संपूर्ण ग्रंथ का यही विषय है। 'दो शब्द' में लेखक ने जो कहा है – "अन्योक्ति के विभिन्न रूप, उनका वैज्ञानिक विश्लेषण, वर्गीकरण, विकास तथा उसके संबंध में प्रचलित विभिन्न धारणाएँ – इत्यादि उपेक्षित बातें उसमें कुछ भी आलोचित नहीं हो पाईं। अतएव इस विषय के विस्तृत अध्ययन और शोध की आवश्यकता सुतरां बनी रही। उसीकी पूर्ति के लिए मेरा यह सर्वथा नवीन विनीत तथा लघु प्रयास है।" — वह उपर्युक्त कथन के आधार पर संगत ही है।

इस प्रकार के विषयों का उपजीव्य संस्कृत - साहित्य अधिक है। पर वह इतना विस्तीर्ण, सूक्ष्म - बुद्धि - ग्राह्य है कि यदि बहुत सावधानी एवं श्रम न किया जाय तो बहुत सी बातें जो वक्तव्य हैं वे छूट जाती हैं अथवा अन्यथा गृहीत हो जाती हैं। उदाहरण के लिए लेखक के 'साहित्य'' संबंधी विचार के प्रसंग को ही लीजिए, "संस्कृत में 'साहित्य' शब्द काव्य के पर्याय-रूप में प्रयुक्त हुआ मिलता है, किंतु आजकल 'साहित्य' एवं 'काव्य' में कुछ अंतर रखा जाने लगा है। साहित्य का अर्थ व्यापक रूप में लेकर किसी भी प्रकार के लिखित वाङ्मय को उसके अंतर्गत कर देते हैं, किंतु साहित्य संबंधी इतना व्यापक दृष्टिकोण हमें नहीं जँचता।"[२] लेखक को बिना समस्त संस्कृत साहित्य के प्रयोगों की छानबीन किए यह अधिकार पूर्वक नहीं कहना चाहिए कि संस्कृत में साहित्य शब्द काव्य के (ही) अर्थ में प्रयुक्त हुआ है – समस्त वाङ्मय के अर्थ में नहीं। 'साहित्यपाथोनिधि मंथनोत्थं काव्यामृतं' रक्षत हे कवींद्रा"[3] — साहित्य यदि एक सागर है – तो काव्य उसके मंथन से प्रसूत अमृत – जिसकी रक्षा का भार कवींद्रजन पर है। स्पष्ट है यहाँ साहित्य एवं काव्य को पर्याय रूप में लेना उतना ही संभव है जितना सागर और अमृत शब्द को परस्पर एक दूसरे का पर्याय मानना। निश्चय ही यहाँ साहित्य का व्यापक अर्थ में प्रयोग है और इसीलिए 'काव्य' से अंतर भी। एक दूसरा प्रयोग भी है – जहाँ काव्य और साहित्य का अंतर है – 'साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु' – यहाँ साहित्य विद्या के अंतर्गत काव्य और उसका शास्त्र पक्ष (लक्ष्य एवं लक्षण दोनों प्रकार के ग्रंथ) दोनों ही लिया गया है – केवल काव्य नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि ये प्रयोग विरल हैं – पर उपलब्ध ही नहीं होते – यह कहना ठीक नहीं।

२. पृष्ठ ५ हि० का० अ०।
३. विक्रमांक - देवचरित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे अध्याय में जहाँ अन्योक्ति के स्वरूप और महत्व पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ लेखक ने 'अन्योक्ति' शब्द को परंपरागत रूढ़ अर्थ में तो लिया ही है – प्रबंध में जो अपने गृहीत विषय के प्रति अधिक अभिनिवेश हो जाता है – कुछ उस प्रवृत्ति के कारण यौगिक अर्थ में भी लिया है। किंवा रूढ़ की अपेक्षा यौगिक - अर्थ को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार 'अन्योक्ति' में अन्य एवं उक्ति– दो शब्द हैं। उक्ति में वाचक, लाक्षणिक एवं व्यंजक सबका समावेश है। इसी प्रकार 'अन्य' से न केवल परंपरागत 'उपमान' ही प्रत्युत प्रतीक (भाव - साम्य : मूलक अप्रस्तुत मात्र) तथा संकेत सभी कुछ समाविष्ट है। इस व्यापक दृष्टिकोण के ही कारण वस्तु, गुण या क्रिया के पृथक - पृथक साम्य पर ही निर्भर रहनेवाली उपमा की चरम परिणति जिस अभेदातिशयोक्ति में होती है – उसको और व्यापार - समष्टि के साम्य को ध्यान में रखकर चलनेवाली सारूप्य - निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा – दोनों का अंतर्भाव अन्योक्ति ही में किया गया है। इस तरह दो धाराओं के बाद समासोक्ति की तीसरी धारा को भी अन्योक्ति के ही भीतर रखा है। इस प्रसंग में आपने जो पद्मावत के आरोप का अन्योक्ति और समासोक्ति वाला प्रसिद्ध विवाद है – जहां डा० नगेंद्र, डा० बड़थ्वाल, डा० आचार्य शुक्ल, डा० रामबहोरी शुक्ल, डा० भगीरथ मिश्र, श्री रामदहिन मिश्र, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य चंद्रबली पांडेय, डा० शंभूनाथसिंह आदि ने अपने - अपने स्वतंत्र विचार रखे हैं--उनका सालोचन उपस्थापन ही नहीं, सावधान स्वकीय विचार भी निर्णयात्मक रूप में रखा गया है। वह अंश काफी महत्वपूर्ण एवं हिंदी के अध्येताओं के लिए उपादेय है। प्रबंधलेखक ने अन्योक्ति के स्वरूप को फैलाया अवश्य है पर इतना ध्यान अवश्य रखा है कि कहीं असाम्यमूलक अलंकार भी इसमें समाविष्ट न हो जायँ – अतः असाम्यमूलक अलंकारों को अन्योक्ति में परिगणित करनेवाले भिखारीदास तथा लक्ष्मीनारायण सुधांशु से इन्होंने साहसपूर्वक अपना मतभेद रखकर विषय के प्रति आत्यंतिक - अभिनिवेश का अभाव भी सूचित किया है – जो श्लाघ्य है। अंततः रूपकातिशयोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, समासोक्ति, प्रस्तुतांकुर और श्लेष – ये पांच अलंकार ही अन्योक्ति वर्ग के भीतर रखे गए हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने प्रस्तुतांकुर को अप्रस्तुत प्रशंसा के भीतर रखा है, जिस पर लेखक को ध्यान देना चाहिए था और इन पाँचों में साम्यमूलक को ही अन्योक्ति में अंतर्भूत करते हुए सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा की ही परिगणना मात्र में उपयुक्त होती।

कहीं - कहीं हलकी भूलें खटकती हैं। उदाहरणार्थ – सारूप्य निबंधना प्रस्तुत प्रशंसा के श्लेषमूलक रूप की विवेचना करते हुए जहाँ श्लेष के उदाहरण रूप में —

करि अबलन को श्रीहरण वारिवाह के संग।
घर करती जहँ चंचला आयौ समय कुढंग॥

इस पद्य को उपस्थापित किया है — वह वस्तुतः शब्द - शक्ति मूलध्वनि का उदाहरण है। पंडितराज ने इसकी इसी रूप में चर्चा दी है। हाँ, कुछ लोगों ने शब्द - शक्ति मूलध्वनि का विरोध अवश्य किया है। पर वे लोग दूसरे अर्थ को वाच्य ही कहेंगे – व्यङ्ग्य नहीं और व्यंग्य न होने पर इसकी चर्चा समासोक्ति के रूप में व्यर्थ हो जायगी। लेखक ने यहाँ समासोक्ति मानी है। समासोक्ति में सबसे पहली बात तो यह ध्यान देने की होती है कि वहाँ विशेष्य श्लिष्ट नहीं होता जब कि यहाँ चंचला विशेष्य है और वह श्लिष्ट है। इसी प्रकार प्रायोगिक-पक्ष में जहां **'अन्योक्तिः अलंकारध्वनि'** (२८६ - २८७ पृ०) का उदाहरण दिया है, वहां अन्योक्ति अलंकार की नहीं, प्रत्युत साम्य की ध्वनि कही गई है। वस्तुतः जिस प्रकार रूपक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्प्रेक्षा आदि अलंकार वाच्य एवं व्यंग्य अनेक प्रकार के होते हैं – उसी प्रकार अन्योक्ति भी व्यंग्य - प्राधान्येन व्यंग्य होकर ध्वनित कही जा सकती है। उदाहरणार्थ ध्वन्यालोक टीकाकार ने एक अप्रस्तुत प्रशंसा या अन्योक्ति की ध्वनि का उदाहरण दिया है —

'अप्रस्तुत प्रशंसाध्वनिरपि:,— ठुंठुल्लन्तो. मरिहिसि कण्टअकलिआइं केअइवणाइं।
मालइकुसुमसरिच्छं भमर भमन्तो, ण पाविहिसि॥'
[ध्वन्यालोक - लोचन, द्वि० उ०, पृ० २७४]

प्रियतम के साथ उद्यान में विहरती हुई नायिका भ्रमर से ऐसा कह रही है — इस प्रकार भृंग-परक वाच्यार्थ प्रस्तुत ही है। यह आशंका कि हो न हो इस प्रकार के अप्रस्तुत कथन से नायिका प्रस्तुत रूप में आमंत्रण कर रही हो – अतः भृंग का अर्थ प्रस्तुत नहीं हो सकता – ठीक नहीं। असल में भ्रमर का आमंत्रण उसकी मुग्धता का विजृंभण है – ऐसा समझ लिया जाय तो अभिधेयार्थ अपने - आप में संपन्न हो जाता है। इस प्रकार अप्रस्तुत प्रशंसा की बात प्रथम कक्षा में खतम हो जाती है। इस प्रकार अभिधा जब निष्कंटक समाप्त हो लेती है – तब वाच्यार्थ साम्यबलात् अन्यापदेशता ध्वनित होती है। अर्थात् सौभाग्याभिमानपूर्ण कोई नायिका इस प्रियतम को उपालंभ देती है – जो सुकुमार एवं सुगंधित मालती कुसुम के समान निश्छल प्रेम करनेवाली कुलवधू को छोड़कर दूती रूप कांटों से विंधी हुई वेश्याकुल के पीछे चक्कर काटता फिरता रहता हैं। यहां लोचनकार ने साम्यध्वनन की बात नहीं कही है, अन्यपदेशता के ध्वनन की बात कही है। पर प्रबंधलेखक ने ग्रंथ में अन्योक्ति ध्वनि का जो उदाहरण रखा है वहां साम्य - व्यंजन की बात कही है। यह भी विचारणीय ही है। अस्तु।

इन सबके बावजूद लेखक का प्रस्तुत विषय का सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्ष काफी श्रम का फल हैं। उसके अध्ययन से अनेक नई सूचनाएँ एवं अन्योक्ति संबंधी विस्तीर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रबंध की भाषा - शैली अपने गुरु-गंभीर विषय के अनुरूप है। सब मिलाकर लेखक इस तरह के श्रम के लिए किसी भी समीक्षक के साधुवाद का पात्र हो सकता है।[४]

भारतीय साहित्यशास्त्र

लेखक ने भारतीय साहित्यशास्त्र को दो खंडों में निकालने का निश्चय किया है। आलोच्य पुस्तक उसी का पूर्वार्द्ध है। लेखक अपने विषय का पंडित है, यह उसके विवेचन की व्याप्ति और गहराई से स्पष्ट है। लेकिन पांडित्य और विवेचन की गहराई को उतना महत्व नहीं दिया जा सकता। इस दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध है। इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नए दृष्टिकोण में संनिहित है। उसने साहित्यशास्त्र के विभिन्न संप्रदायों को अलग - अलग इकाई में अथवा एक दूसरे के विरोधी के रूप में न देखकर, एक ऐतिहासिक विकास - क्रम में देखा है। इस दृष्टि से उसे पर्याप्त सफलता मिली है। यूरोप में काव्यशास्त्र का इतिहास जिस प्रकार एक विकास - क्रम में प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार भारतीय

४. हिंदी काव्य में अन्योक्ति, लेखक – डा० संसारचंद, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठसंख्या डिमाई ३५२, मूल्य ६.५० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य शास्त्र का विस्तृत इतिहास लिखने का कार्य यदि कोई हाथ में ले तो बहुत अच्छा हो। इस पुस्तक की दूसरी विशेषता है इसका लोकप्रिय ढंग से लिखा जाना। गूढ़ और उलझन-पूर्ण समस्याओं और सिद्धांतों को लेखक ने यथाशक्ति सरल और बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है।

'विषय प्रवेश' के आरंभ में 'अलंकार' शब्द की व्याप्ति का उल्लेख करते हुए लेखक ने बताया है कि किस प्रकार रुद्रट के बाद अलंकार के स्थान पर साहित्य शब्द रूढ़ हो गया। वहीं विदग्ध गोष्ठियों की चर्चा की गई है और अनुमान लगाया गया है कि काव्यशास्त्र के निर्माण, मोड़ तथा परिवर्तन में इनका महत्वपूर्ण योग रहा होगा। इस सिलसिले में उसने पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के अभ्यासियों को सावधान किया है कि पश्चिमी चश्मे से भारतीय काव्य-शास्त्र को देखने में बहुत सी भूलें हो सकती हैं। आजकल शास्त्रीय सिद्धांतों की इस ढंग से पुनर्व्यवस्था की जा रही है कि उससे समस्त शास्त्रीय परंपरा के विकृत हो जाने का खतरा है। उदाहरणार्थ 'रस-विमर्श' ग्रंथ में वीररस का स्थायी 'अमर्ष' प्रस्तावित किया गया है। आलोच्य ग्रंथ का लेखक पुनर्व्यवस्था का विरोधी नहीं है पर वह इस तरह की सतही पुन-र्व्यवस्था का समर्थक नहीं है। इसके लिए वह आवश्यक समझता है कि व्यवस्थापक समूची शास्त्रव्यवस्था पर पुनर्विचार करे और देखे कि एक स्थान पर परिवर्तन करने से संपूर्ण शास्त्र-व्यवस्था में क्या परिवर्तन अपेक्षित है। ऐसी स्थिति में संस्कृत ग्रंथों की मान्यताओं और विचारों को अविकृत रूप में प्रस्तुत करना पंडितों का पहला कर्तव्य है। इस ग्रंथ के लेखक श्री देशपांडे को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कई ग्रंथों के प्रामाणिक अनुवाद हिंदी में हो चुके हैं।

साहित्यशास्त्र के विकास क्रम को उपस्थापित करने के लिए लेखक ने नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के संबंधों पर जमकर विचार किया है। भामह, दंडी, वामन आदि के संबंध में रूढ़ मान्यताओं का पुनर्विचार करते हुए उन्हें व्यापक अर्थ देने की चेष्टा की है जो क्रमिक विकास को देखते हुए बहुत कुछ संग्रह प्रतीत होता है। इस तरह पंडितराज जगन्नाथ की चर्चा करते समय यह बताया गया है कि उन्होंने किस प्रकार भाषा-काव्य से प्रभावित होकर क्रमागत विचारों को नया रूप देने का प्रयास किया है।

विचारों की स्वच्छता, दृष्टिकोण की नवीनता और विवेचन की गंभीरता की दृष्टि से यह अपने ढंग की अकेली पुस्तक है। भारतीय साहित्यशास्त्र को एक अविच्छिन्न विकास-क्रम में देखने के प्रयास की प्रशंसा की जानी चाहिए। मेरा विश्वास है कि यदि इसका ठीक ढंग से प्रचार हुआ तो यह पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय होगी। यदि भाषा का कुछ और संस्कार कर दिया जाता तो यह हिंदी की प्रकृति के अधिक अनुकूल होकर और भी श्रेयस्कर सिद्ध होती। इस पुस्तक के उत्तरार्द्ध की उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा है।[५]

— बच्चनसिंह

५. भारतीय साहित्यशास्त्र, ले० गणेश त्र्यंबक देशपांडे, प्रकाशक – पाप्युलर बुकडिपो, लैमिंग्टन रोड, बंबई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सुमित्रानंदन पंत (स्मृति-चित्र)

पंत जी हिंदी के यशस्वी कृती कवि हैं। उनके काव्य की भाँति उनका व्यक्तित्व भी अतिशय स्निग्ध, कोमल, रहस्यपूर्ण आकर्षण से युक्त और मोहक है। उनकी एकसठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर उनके अभिवंदन के निमित्त इस ग्रंथ का आयोजन किया गया था। इस ग्रंथ में कवि पंत के 'कतिपय ऐसे स्मृतिचित्रों का संकलन है जिनमें भावरेखाओं द्वारा उनके अंतरंग व्यक्तित्व को हलका - सा रूप - आकार देने का प्रयास किया गया है।'

इस स्मृति - चित्र में पंत जी के व्यक्तित्व के अनेक रूप उभरे हैं – उनका बाल्यकाल, रूप, मुद्राएँ, विनोदप्रियता, सुरुचिसंपन्नता, संतत्व, प्रकृतिप्रियता, आचार - विचार, मनन - चिंतन आदि। सब मिलाकर उनकी सौम्यता, शालीनता और अंतर्मुखता को ही मुख्यरूप से लेखकों ने अभिव्यक्त किया है। वास्तव में पंत जी के व्यक्तित्व के यही निर्णायक तत्व भी हैं। इससे स्पष्ट है कि इस महान कवि का व्यक्तित्व अंदर - बाहर एक है, यहाँ कोई नकाब नहीं है — कौसानी की प्रकृति के समान सहज सौंदर्य और स्निग्धता है।

इस स्मृति - चित्र का दोहरा महत्व है। एक तो इससे पंतजी के व्यक्तित्व के कई महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है, दूसरे इसके आलोक में उनकी कविताओं के मूल्यांकन में सहायता मिल सकती है।[६]

—अजीत

मधुरिमा

'मधुरिमा' में डा० महेंद्र भटनागर के प्रगीत संगृहीत हैं। प्रगीतों में जीवन के वैयक्तिक पहलू मुख्य रूप से अभिव्यक्ति पाते हैं। पर कवि ने बराबर इस बात का ध्यान रखा है कि ये प्रगीत सामाजिक भावनाओं से कहीं टकरा न जायँ। फिर भी ये गीत वैयक्तिक ही हैं। वैयक्तिक प्रेम भी व्यक्ति को वृहत्तर कार्यों में सहारा देता है, थके हुए को विश्राम तथा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इन गीतों में ऐसा कुछ नहीं मिलेगा। वही पुराना उलाहना 'कल रात जरा भी तो नींद नहीं आई', वही पुरानी गिला 'मैंने, बताओ, तुम्हारा बुरा क्या किया था' वही पिटी वेदना 'अपनी छत पर खड़ी - खड़ी तुम भी देख रही होगी चाँद।' वास्तविकता यह है कि इन गीतों में अनुभूति की अपेक्षित गहराई नहीं है, जिंदगी का दर्द नहीं है। जो गीत जीवन से संपृक्त हैं वे प्रभावशाली बन पड़े हैं, जैसे,

गोद पाकर, कौन जो सोया नहीं ?
होश किसने प्यार में खोया नहीं ?
आदमी, पर है वही जो दर्द को
प्राण में रख, एक पल रोया नहीं।

किंतु ऐसे गीत बहुत कम हैं।[७]

—अजीत

६. श्री सुमित्रानंदन पंत, स्मृति चित्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य ६.५०।
७. मधुरिमा, डा० भटनागर, प्रकाशक, साहित्य प्रकाशन मंदिर, लश्कर, ग्वालियर, मूल्य तीन रुपए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्ययुगीन साहित्य में नारी - भावना

प्रस्तुत पुस्तक प्रयाग विश्वविद्यालय से डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के निर्देशन में लिखा गया शोध - प्रबंध है। इसलिए इसकी रूप रेखा एवं प्रतिपादन शैली बहुत कुछ परंपरागत है। कई वर्ष पूर्व डा० शैलकुमारी का शोध - प्रबंध 'आधुनिक काव्य में नारी - भावना' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इसे उसी शृंखला की एक कड़ी समझना चाहिए।

मानव जाति की जय - यात्रा का विवरण स्त्री - पुरुष के संबंध की कहानी है। इसी संबंध - सूत्र को लेकर सभ्यता एवं संस्कृति के ताने - बाने निर्मित होते हैं। मानव मात्र की समस्त कृतियाँ इसी की देन है। उक्त यात्रा के अनुभव कटु एवं कषाय दोनों ही प्रकार के हैं। परंतु इनमें किसी के कारण जीवन - यात्रा में विराम का अवसर नहीं उपस्थित हुआ है। इसके विपरीत गति ही मिली है।

प्रकृति-उपासना के बाद नारी के – लक्ष्मी, चंडी और सरस्वती–तीनों ही रूपों की पूजा होती आ रही है। अन्नपूर्णा का माहात्म्य सर्वविदित है। फिर भी मध्युग के चिरकाल पूर्व से स्त्री - पुरुष के संबंध को लेकर कहीं - कहीं एकांगी तथा एक देशीय विचार प्रतिक्रिया रूप में प्रकट किया गया मिलता है। यद्यपि वहाँ पर नारी का कामिनी अथवा रमणी रूप ही प्रधान है। अन्यान्य रूप स्नेह और सद्भाव के ही स्रोत हैं। वास्तव में नारी प्रेरणा और परिणति दोनों ही है। अतएव किसी एक पक्ष पर बल देकर दूसरे को विस्मृत कर देना सम्यक् एवं संतुलित दृष्टि का अभाव ही समझा जाएगा।

नाना कारणों से हमारे मन में यह भ्रांत धारणा रूढ़ हो गई कि नारी के प्रति पुरुष का व्यवहार सदा निर्मम तथा कठोर रहता आया है। परंतु तथ्य इसके विपरीत भी जाते दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं, जो बात पुरुष वर्ग के संबंध में कही जाती है वही स्त्री के संबंध में भी दुहराई जा सकती है। नारी उत्थान एवं पतन दोनों का ही कारण बनती आई है। इसलिए पतन की ओर सतर्क रहने की चेतावनी महापुरुषों द्वारा मिलती रही है। सच बात यह है कि पूर्ववर्ती युग को नारी किसी महापुरुष की ठोकर खाकर ही पाषाण से मानव योनि में अवतरित हुई है। इस संदर्भ में अहल्या - उद्धार की कथा पर्याप्त समझी जानी चाहिए।

मध्ययुगीन साहित्य में संत - काव्य का विशिष्ट स्थान है। इनके रचयिताओं को दीर्घ काल से निवृत्ति मार्गी समझने की भूल होती आ रही है। वस्तुतः ये निवृत्तिमार्गी से अधिक प्रवृत्तिमार्गीय ही हैं जो वस्तुस्थिति को यथातथ्य समझ बूझ कर ही प्रवृत्त होने में विश्वास रखते हैं, भावावेश की स्थिति में नहीं। ये प्रत्यावर्तन के पक्षपाती हैं; वैराग्य के समर्थक नहीं। इन्होंने पतिव्रता नारी को खुलकर सराहना की है। कबीर तो अपने को 'राम की बहुरिया' तक बतलाने में संकोच नहीं करते। परंतु वास्तव में इनके साहित्य में नारी का वर्णन अधिकतर प्रतीक रूप में ही हुआ है। इन संतों की रचनाओं में मर्यादित नारीजीवन के कई उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं —

मन मुख मैली कामणी, कुलषणी कुनारि।
पिरु छोडि घरि आपणा, पर पुरुषै नालि पियारु॥

— गुरु अमरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा,

सावणु आइआ हे सखी, जलहरु बरसनहारु।
नानक सुखि सवन सोहागणी, जिन्ह सहनालि पिआरु॥

— गुरु अंगद

इनमें पर पुरुष पर लुब्धा नारी की भर्त्सना और सुहागिन नारी का हृदयोद्‌गार व्यक्त है जिसका विरोध आधुनिकतम नारी भी कदाचित् ही कर सके। संत सिंगाजी का तो यहाँ तक कथन है कि —

नर - नारी में देखिले, सब घट में एकतार।
कहे सिंगा पहचान ले, एक ब्रह्म है सार॥

ये तीनों ही संत पूर्व मध्ययुग के हैं जिन पर आधुनिकता का 'आरोप' नहीं लगाया जा सकता। समय - समय पर रूप, गुण तथा शील को विशेष महत्व मिलता रहा है।

फिर भी जिस दृष्टिकोण से यह शोधप्रबंध लिखा गया है वह अपने आपमें महत्वपूर्ण है। लेखिका ने परिश्रम पूर्वक इस कार्य को संपन्न किया है जिसके लिए वह बधाई की पात्र हैं। आशा है इस विषय में रुचि रखनेवाले पाठकों को यह पुस्तक रोचक प्रतीत होगी।[८]

— नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

पुरंदरदास के भजन

कन्नड़ का भक्तिसाहित्य अत्यंत समृद्ध है। इसकी रचना दसवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के बीच हुई है। इसके निर्माण में भक्ति - परंपरा के वचनकारों एवं कीर्तनकारों दोनों का ही योग रहा है। वचनकारों का संबंध यदि वीर शैव मत से है तो कीर्तनकारों का वैष्णवमत से संबद्ध होना प्रसिद्ध है। इनमें से शिवशरण पूर्ववर्ती हैं और हरिशरण परवर्ती। हरिशरण मध्वाचार्य के अनुयायी हैं। मध्वाचार्य के अनुयायियों की दो श्रेणियाँ हैं – व्यास कूट तथा दास कूट। व्यास कूट सांप्रदायिक मठों के आचार्य होते हैं और दासकूट भजनानंदी। आचार्यों द्वारा सैद्धांतिक ग्रंथों का प्रणयन हुआ है तथा भजनीकों द्वारा भजन रचे गए हैं। दास – हरिदास परंपरा का श्री गणेश नरहरि तीर्थ द्वारा पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ जो पहले व्यासकूट के आचार्य थे। पुरंदर दास इसी परंपरा के भक्त थे। जिन्होंने उसे सुसंघटित किया। ये नारद के अवतार समझे जाते हैं। इनका जन्म नायक परिवार में हुआ था और ये गृहस्थ का जीवन यापन करते थे। इन्होंने दो - ढाई हजार भजनों की रचना की थी। प्रस्तुत संग्रह में १०८ भजन और १ मंगल संकलित हैं। अंत में ६० सुभाषित भी संगृहीत हैं। इनका भक्त जीवन साहित्य, संगीत और संस्कृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है।

पुरंदरदास की रचनाएँ धार्मिक प्रेरणा द्वारा निर्मित होकर भी साहित्यिक महत्व की है। इनके समसामयिक विद्वान आचार्यों द्वारा उसे 'पुरंदरोपनिषद' की संज्ञा प्राप्त है। उसका मूल स्वर नैतिक एवं सांस्कृतिक है।

८. मध्ययुगीन साहित्य में नारी - भावना—डा० उषा पांडेय; प्रकाशक हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली ६, डिमाई पृ० २४२+५, मूल्य १०.०० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत के क्षेत्र में पुरंदरदास की बहुत बड़ी देन है। कर्नाटक संगीत के ये जनक कहला कर प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि तेलगू भक्त एवं गायक कवि त्याग राय ने किसी न किसी रूप में इनसे प्रेरणा प्राप्त की थी। इन्होंने संगीत विद्या को कोठे पर से उतारकर धरती पर ला दिया था और एक बार नर को नारायण बनने का अवसर दिया था।

दक्षिण भारत में संगीत का विकास ईसा की प्रथम शताब्दी से ही होने लगा था। दक्षिणात्य रचनाओं में 'यति' – तमिल : यदुकई का प्रयोग होता था। इसका महत्वपूर्ण अलंकार 'मोनई' है। कर्नाटक संगीत में ये दोनों प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से पाई जाती हैं जिनका अनुसरण संस्कृत तक में पाया जाता है। सुर तथा ताल को हृदयंगम कराने के लिए पुरंदरदास जी की रचनाओं से सहायता ली जाती है। भारतीय संगीत में शब्द, और गायन मुख्य होते हैं किंतु 'तिल्लानां' एवं 'तातिस्वर' में शब्दों की अपेक्षा ताल का अधिक महत्व है जिसका संबंध विशेषतः नृत्य से है। कहा जाता है कि पुरंदरदास ने पाँच वा सात तालों की रचना की थी। सुलादि रागों की सृष्टि की। इसकी पद्धति कीर्तन जैसी है, किंतु इसमें 'पल्लवी' एवं 'अनुपल्लवी' नहीं पाई जाती। विभिन्न तालों में इसके कई भाग हैं। इन्होंने माया मालव गौल के माध्यम से सरल संगीत - विधि का आविष्कार किया। कर्नाटक संगीताचार्य आदियप्प अय्यर तुलजेंद्र महराज तक इनके ऋणी हैं। 'भजन सप्ताह' मनाने की परंपरा की नींव डालकर इन्होंने निःशुल्क संगीत - शिक्षा देने की व्यवस्था कर दी। संगीत को लोकप्रिय बनाने में इन्होंने अत्यधिक योगदान दिया है। यह सप्ताह रोचक रीति से मनाया जाता है जिसमें 'नंदादीप' जलाने की विधि है। इसकी प्रारंभिक अवस्था में 'ओकली' खेलने की प्रथा है जिसके अनंतर 'समराधना' संज्ञकभोज की भी व्यवस्था की जाती है। इस अवसर पर नाटक खेलने की परंपरा है।

वर्षा ऋतु में दो - तीन मास तक भजन गाए जाते हैं जिसे 'भजने एलुवदु' कहा जाता है। फिर किसी शुभ दिन में इसका 'मंगल' अथवा समापन किया जाता है। प्रसाद वितरण के बाद उत्सव समाप्त होता है। इस प्रकार पुरंदरदास की सांस्कृतिक देन भी हैं।

श्री कुमठेकर ने पुरंदरदास की रचनाओं की बानगी देकर हिंदी पाठकों को उपकृत तो किया ही है साथ ही अपने राष्ट्रप्रेम का भी परिचय दिया है। ऐसी कृतियाँ समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने में सहायक होंगी। फिर भी लेखक द्वारा हिंदी साहित्य का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन एवं हिंदी विद्वानों के प्रति सहृदयता अपेक्षित है।[१]

— नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

सूर - सारावली

'सूरसागर - सारावली' केवल 'सूरसागर' के पुराने संस्करणों – श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई तथा नवलकिशोर प्रेस लखनऊ - के साथ प्रकाशित हुई थी। 'सूर - सागर' के इन दोनों संस्करणों का पुनर्मुद्रण रुक जाने के कारण 'सारावली' दुर्लभ हो गई थी। इधर जब से सूरदास के अध्ययन की ओर विद्वानों और विद्यार्थियों की रुचि बढ़ी तथा 'सूरसागर - सारावली' की

१. **पुरंदरदास के भजन** — बाबुराव कुमठेकर, प्रकाशक : सस्ता साहित्य केंद्र, १७३ डी, कमला-नगर, दिल्ली ६; डिमाई पृ० १४३; मूल्य ३.५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रामाणिकता के संबंध में मतभेद प्रकट हुआ, इस ग्रंथ के अवलोकन की आवश्यकता का — विशेष रूप से सूरदास के विशेष अध्येताओं में — अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा। अतः सूर साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रभुदयाल मीतल ने 'सारावली' का संपादन और प्रकाशन करके एक भारी अभाव की पूर्ति की है।

श्री प्रभुदयाल मीतल उन विद्वानों में हैं जो 'सूर सागर - सारावली' को प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास की प्रामाणिक रचना मानते हैं। अपने 'सूर - निर्णय' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में उन्होंने इसकी प्रामाणिकता पर विचार करते हुए उन तर्कों के खंडन का प्रयत्न किया था, जिनके आधार पर इन पंक्तियों के लेखक ने अपने ग्रंथ 'सूरदास' में 'सारावली' को सूर की प्रामाणिक कृति न मानने का प्रस्ताव किया था। 'सूर - सारावली' की विस्तृत भूमिका में विद्वान् लेखक ने अपने उन्हीं विचारों को कुछ अधिक आग्रह और विस्तार के साथ दुहराया है तथा अनुरोध किया है कि इसे अष्टछापी सूरदास की ही प्रामाणिक रचना माना जाए।

'सूर - सारावली' का संपादन इस रचना की अलभ्य मुद्रित प्रतियों के आधार पर हुआ है, मीतल जी को प्रयत्न करने पर भी इसकी किसी हस्तलिखित पोथी का पता नहीं लगा। मुद्रित प्रतियों में उन्होंने जिस प्राचीनतम प्रति का परिचय दिया है वह गुजरात के एक भक्त कवि दयाराम भाई द्वारा सं० १८८० वि० में किए गए अनुवाद के रूप हैं। इससे विदित होता है कि 'सारावली' की परंपरा केवल १३७ वर्ष पूर्व तक जाती है। इससे पूर्व इस रचना का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

हिंदी में 'सारावली' का प्राचीनतम संस्करण मीतल जी को सं० १८९८ वि० में प्रकाशित 'राग कल्पद्रुम' में छपे 'सूरसागर' के साथ मिला है। नवलकिशोर प्रेस से 'सारावली' सहित 'सूर - सागर' का प्रथम संस्करण सं० १९२० में प्रकाशित हुआ था। यह संस्करण 'राग - कल्पद्रुम' के 'सूरसागर' का ही पुनर्मुद्रित रूप था। 'सारावली' का तीसरा मुद्रित रूप श्री वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से सं० १९५३ वि० में 'सूरसागर' के प्रथम संस्करण के साथ प्रकाशित हुआ। नवलकिशोर प्रेस तथा वेंकटेश्वर प्रेस से 'सूरसागर' के पुनर्मुद्रण विक्रम की बीसवीं शताब्दी तक होते रहे और इनमें प्रूफ संशोधकों द्वारा कदाचित उत्तरोत्तर तद्भव शब्दों को 'शुद्ध' किया जाता रहा। वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करणों में यह प्रवृत्ति कदाचित अधिक पाई जाती है।

मीतल जी ने उपर्युक्त तीन मुद्रित संस्करणों के आधार पर ही प्रस्तुत 'सारावली' का संपादन किया है। संपादन में वे 'सारावली' के परवर्ती पुनर्मुद्रणों के 'शुद्धीकरण' अथवा 'संस्कृतीकरण' के प्रति सावधान रहे हैं तथा उन्होंने 'प्राचीनतम पाठ' (!) देने का यत्न किया है।

परंतु, उपर्युक्त तीनों मुद्रित संस्करण स्वयं एक दूसरे से मूलतः भिन्न नहीं हैं। वेंकटेश्वरप्रेस वाले संस्करण पर विचार करते हुए मीतल जी ने स्वयं कहा है – "इसके पाठ का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि 'राग कल्पद्रुम' और लखनऊ के पाठों से कुछ भिन्न होते हुए भी इसमें उनमें कोई मौलिक अंतर नहीं है। बहुत संभव है भारतेंदु जी ने भी इसे रागकल्पद्रुम से ही नकल कराया हो।" ऐसी दशा में 'सारावली' का जो रूप हमारे संमुख आया है वह पाठालोचन की दिशा में हमें आगे नहीं ले जाता और श्री प्रभुदयाल मीतल द्वारा संपादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सूर-सारावली' 'सूरसागर-सारावली' के पूर्व प्रकाशित संस्करणों का पुनर्मुद्रण ही रह जाती है। हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में विद्वान् संपादक इससे अधिक कर भी क्या सकते थे ?

यद्यपि इस रचना का नाम प्रारंभ से बराबर 'सूरसागर-सारावली' प्रसिद्ध रहा है, मीतल जी ने इसे 'सूर-सारावली' नाम दिया है और इसका कारण यह है कि वे 'सूरसागर' से इसका वह संबंध स्वीकार नहीं करते जो बराबर माना जाता रहा है। परंतु ऐसा नहीं है कि 'सूरसारावली' नाम मीतल जी ने कल्पित कर लिया हो, अंतः साक्ष्य से यह नाम समर्थित है, यथा —

ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनंद।

(छंद ११०३)

तथा

धरि जिय नेम सूर-सारावलि उत्तर दच्छिण काल।

(छंद ११०५)

परंतु 'रागकल्द्रुम' के प्राचीन संस्करण से लेकर वेंकटेश्वर प्रेस के अंतिम संस्करण तक 'सारावली' को शीर्षक तथा ग्रंथांत में क्रमशः 'सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पदों के (का) सूचीपत्र तथा 'संवत्सर लीला तथा सवालाख पदों के (का) सूचीपत्र' कहा गया है। 'राग कल्पद्रुम' में अंतिम पुष्पिका के रूप में पुनः 'इति श्री रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम सूर-सागरस्य सारावली सभाप्तम्।' दिया गया है। छंद संख्या ६६६ के उपरांत 'इति दृष्टकूट सूचनिका संपूर्ण' कहकर भी इसका संबंध सूची के रूप में 'सूरसागर' से जोड़ा गया है।

मीतलजी ने उन पंक्तियों को भ्रमात्मक तथा भ्रमोत्पादक रचना बताया है और इसे 'सूरसागर' से स्वतंत्र रचना माना है। परंतु प्रश्न यह है कि जब 'सारावली' की सभी प्राप्त प्रतियों में इसे सूरसागर' का सार और उसके सूचीपत्र के नाम से अभिहित किया गया है, तो मीतल जी उसे अस्वीकार किस प्रकार कर सकते हैं, उनके पास इसकी साक्षी क्या है ?

फिर, 'सूरसागर-सारावली' नाम को अस्वीकृत करके जिस उद्देश्य से मीतल जी ने 'सूर-सारावली' नाम प्रसिद्ध करना चाहा है, वह पूर्ण होता नहीं जान पड़ता, क्योंकि इन दोनों नामों में वे जिस अंतर की कल्पना करते हैं वह वास्तव में है नहीं। सूर की सारावली उनके कृतित्व की हो तो सारावली होगी और सूर का कृतित्व 'सूरसागर' के अतिरिक्त और क्या है ? 'सारावली' स्वतः घोषणा करती है —

करम जोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ॥
ता दिन तैं हरि-लीला गाई, एक लक्ष पदबंद।
ताकौ सार सूर सारावलि, गावत अति आनंद॥

(छंद ११०२ – ११०६)

अर्थात् जिस दिन श्री वल्लभ गुरु ने तत्व सुनाया तथा लीला-भेद बताया, उसी दिन से (मैंने) हरि-लीला गाई......उसका सार 'सूर सारावली' है जिसे अति आनंद से गाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीतल जी ने 'एक लक्ष पदबंध' के संबंध में फैले हुए तथा कथित 'भ्रम' को दूर करने के लिए बड़ा प्रयास किया है। 'एक लक्ष' का अर्थ 'एक लाख' समझना मीतल जी के मत से भ्रम है। वे 'एक लक्ष' को 'एक लक्ष्य' के रूप में ग्रहण करके उसका अर्थ श्री कृष्ण मानते हैं। यदि एक क्षण के लिए मान लें कि 'एक लक्ष' का अर्थ श्री कृष्ण है, तो भी 'सारावली' घोषित तो यही करती है कि वह हरि लीला गान का सार है, भले ही वह लीला एक लाख पदों के बंद में गाई गई हो अथवा एक लक्ष (श्री कृष्ण) के पदों की वंदना करके उसका गायन हुआ हो। सूरदास ने हरि लीला का जो भी गायन किया है, वह उनके सूरसागर ही में तो संकलित है? अतः उनके द्वारा गाई गई हरि लीला का सार सूरसागर का ही सार होगा। चाहे उसे 'सूरसागर - सारावली' कहिए अथवा 'सूर - सारावली', मूल स्थिति में कोई अंतर नहीं आता।

'सारावली' के गुजराती अनुवाद में भी जो 'सारावली' का प्राचीनतम प्रमाण है, इस रचना के 'सूरसागर' के सूचीपत्र के रूप में होने का उल्लेख है, यथा —

सविता सम सोभीत छे, संवत्सर लीलाय।
कोइक **सूचीपत्र** कहे, सारावली कहेवाय॥

'सूर - सारावली' निश्चय ही सूरसागर की सारावली के रूप में रची गई है। वह उसी पर आधारित है और उसके अनेक शब्दों और पंक्तियों को उसमें ज्यों का त्यों प्रयुक्त किया गया है। परंतु ऐसा होते हुए भी 'सूरसागर' और उसकी इस 'सारावली' अथवा 'सूचनिका' में अनेक अंतर हैं। प्रस्तुत लेखक ने अपने 'सूरदास' नामक ग्रंथ में कुछ अंतरों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया था। मीतल जी ने उन अंतरों को स्वीकार करते हुए कहा है: "हम भी डा० व्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत होकर उन्हींके शब्दों में कहेंगे- 'सारावली' सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथा-वस्तु में 'सूरसागर' की कथावस्तु से घनिष्ठ साम्य होते हुए भी उसे सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते।" परंतु इस संबंध में मीतल जी ने 'सूरदास' में कही गई इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि ये अंतर केवल 'सारावली' में वर्णित कथा के आधार पर दिए गए हैं। 'सूरसागर' में वर्णित जिन विषयों को 'सारावली' के कवि ने छोड़ दिया उनकी गणना करना संभव नहीं है। इन अंतरों पर समष्टि रूप से विचार करने पर अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि 'सारावली' के दृष्टिकोण 'सूरसागर' के कवि से भिन्न हैं। क्या यह संभव है कि एक निश्चित विचारधारा और जीवनदर्शन रखने वाला भक्त कवि अपनी दो रचनाओं में ऐसे दो भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त करे जिनमें परस्पर साम्य की अपेक्षा विरोध अधिक हो और जो कवि के व्यक्तित्व का कोई संश्लिष्ट रूप ही न प्रकट कर सके?

सूरदास ने श्रीमद्भागवत से श्री कृष्ण की लीला के गायन का सूत्र लिया, परंतु सूर-सागर और श्रीमद्भागवत के दृष्टिकोण में महान् अंतर है। 'सूरसागर - सारावली' इस अंतर की उपेक्षा कर भागवत की ओर अपेक्षाकृत झुकती दिखाई देती है। इससे भी अधिक, वह श्रीकृष्ण के लीलावतार की अपेक्षा उनके मर्यादावतार को विशेष महत्व देती है। 'सूरसागर' में श्रीकृष्ण की संहार और उद्धार लीला को गौण स्थान मिला है तथा उसका उपयोग विस्मय की व्यंजना करते हुए मानवीय भावों के उदात्तीकरण के लिए हुआ है। परंतु 'सारावली' उसे प्रमुखता प्रदान करती है, तथा उनकी व्रज की लीला हेतुक आनंद लीला को गौण स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती है। धर्म के जिस विधि - निषेध और कर्मकांड संबंधी पक्ष का 'सूरसागर' में प्रत्याख्यान किया गया है, उसे सारावली उसी प्रकार देती है जिस प्रकार श्रीमद्भागवत, ऋषि - मुनि, वेद - ब्राह्मण आदि 'सूरसागर' की उपेक्षा और उपहास के विषय हैं, परंतु 'सारावली' में उन्हें इतनी मान्यता मिली है कि श्री कृष्ण की संपूर्ण लीला को उन्हींके अनुकूल ढालने का सतत यत्न किया गया है। ब्रजवासी बालकृष्ण के जीवन में कंस द्वारा प्रेरित आए दिन जो संकट आते रहते हैं उनसे व्याकुल और आशंकित होकर तथा 'सूरसागर' की यशोदा केवल कुलदेवता की मनौती मनाकर रह जाती हैं, परंतु 'सारावली' में उन्हें प्रायः विप्र बुलाकर 'स्वस्तिवाचन' कराते हुए दिखाया गया है। ब्राह्मण, शास्त्र और विधि - निषेध को महत्व देने के कारण ही 'सारावली' में 'सिद्धर (श्रीधर) बाँभन करम कराई', 'महराने तें पाँडे आयौ' तथा 'शालग्राम पूजा' वाले प्रसंग नहीं दिए गए हैं। ये तीनों प्रसंग 'सूरसागर' के उस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं जो 'भागवत' से स्वतंत्र तथा मध्ययुग की प्रारंभिक भक्ति भावना का सामान्य दृष्टिकोण है। 'सूरसागर' में धर्म के उस आंतरिक अनुभूतिपूर्ण भावपक्ष पर बल दिया गया है जो वेद - शास्त्र, ऋषि - मुनि तथा देवताओं के लिए दुर्लभ है। भक्ति युग के प्रथम उन्मेष में इसी पक्ष पर सभी संत भक्तों ने विशेष बल दिया था तथा वाह्याडंबर की निंदा करते हुए वेद - ब्राह्मण का प्रत्याख्यान किया था। 'सूरसागर' में ऐकांतिक प्रेम भक्ति का यही लोकव्यापी जनपक्ष सर्वत्र गूँजता सुनाई देता हैं। इसके विपरीत सारावली में गोपियों की ऐकांतिक भक्ति के प्रति क्षमायाचना जैसा दृष्टिकोण अपनाया गया है और प्रेम भक्ति के स्वच्छंद वातावरण के स्थान पर एक संकुचित धार्मिकता की प्रतिष्ठा की गई है जिसमें प्रत्येक गति विधि को शास्त्रसंमत सिद्ध करना अनिवार्य है।

प्रेम के आलंबन श्रीकृष्ण के परमानंद रूप की अपेक्षा 'सारावली' में उनके देवत्व और ऐश्वर्य को अधिक महत्व देने के कारण ही उनकी ब्रजलीला का केवल १३० छंदों में वर्णन हुआ है, वहाँ मथुरा और द्वारका - लीला के वर्णन के लिए क्रमशः १३० और २४७ – कुल २७७ छंद दिए गए हैं। पुनः, अन्य अवतारों के वर्णन का विस्तार ३२८ छंदों में है, जिनमें रामावतार की कथा के १७७ छंद हैं। राधा - कृष्ण के प्रेम - प्रसंगों की लीला इन सभी वर्णनों से पृथक २२० छंदों में दी गई है। इस प्रकार ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की लीला के लिए 'सारावली' में १३० और २२० — केवल ३५० छंद लिखे गए हैं, जब कि मर्यादावतारों की लीलाएँ जिनमें श्री कृष्ण की मथुरा और द्वारका लीलाएँ भी संमिलित हैं ३२८ और ३७७ कुल ७०५ छंदों में वर्णित हैं। ब्रजवल्लभ और श्रीकृष्ण की लीला की अपेक्षा उनकी अन्य लीलाओं तथा उनके अन्य अवतारों को अधिक महत्व देना सूरदास की भावना के विपरीत है, ये तो मुख्यतः ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की ही लीला के गायक हैं।

भावना के अंतर के कारण ही 'सारावली' का लेखक राधा - कृष्ण के प्रेम - प्रसंगों को जो 'सूरसागर' की कृष्ण - लीला के केंद्रीय, चरम और सर्वोत्तम अंश हैं, अपनी धार्मिक मर्यादा में सीमित कथा का अभिन्न अंग नहीं बना सका। परिणामतः इन प्रसंगों का वर्णन संपूर्ण भागवती कथा का वर्णन करने के उपरांत परिशिष्ट की भाँति करने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई उपाय नहीं था। इसके लिए उसने जो ढंग अपनाया है वह अत्यंत विलक्षण अस्वाभाविक और सूर - संमत भावना के सर्वथा विपरीत है। इस वर्णन का क्या आधार और औचित्य है, यह भी विचारणीय है। वर्णन इस प्रकार प्रारंभ होता है —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल मोहन फिर ब्रजहिं पधारे, ऊधौ कौं संग लीने।
दीनौं बास चरण - रज गोपिन, गुल्म - लता रसभीने॥
(छंद ८६८)

कैसे आश्चर्य की बात है कि द्वारका की संधि - विग्रह - संबंधी संपूर्ण लीला समाप्त कर लेने के उपरांत श्रीकृष्ण उद्धव को साथ लेकर इस लिए ब्रज लौट आते हैं कि उन्हें राधा और गोपियों के साथ विहार करना है। स्वाभाविक है कि यह विहार 'सूरसागर' में चित्रित किशोर अवस्था के मनोविज्ञान - संमत स्वच्छंद प्रेम की नवलता, सरसता और निर्मलता के स्थान पर प्रौढ़ावस्था के प्रगल्भ प्रेम के ऐश्वर्य और विलास के वातावरण की व्यंजना करे। सूर ने प्रेम का चित्रण प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में किया है, किंतु 'सारावली' का विलास - वर्णन शयन-कक्ष में सीमित है। यहाँ भी 'सारावली' पौराणिक परंपरा के अनुसरण का प्रयत्न करती हुई मध्ययुगीन प्रेम - भक्ति की भावना से दूर जा पड़ती है।

'सारावली' के दृष्टिकोण की भिन्नता का कारण यही है कि वह उस समय की कृति है जब भक्त कवियों की जीवंत वाणी से निःसृत भावमयी भक्ति का आयासहीन स्वच्छंद वेग मंद पड़ गया था और भक्ति के उन्मुक्त प्रवाह को संप्रदायों के जड़ घेरों में बांधने का प्रयास होने लगा था। 'सूरसागर - सारावली' भी 'सूरसागर' की उच्छल प्रेममयी स्रोतस्विनी को संप्रदाय के घेरे में बाँधने का ही एक प्रयास है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि स्वयं कृष्ण भक्ति के संप्रदाय भक्ति भावना के प्रारंभिक उन्मेष के बाद इस योग्य नहीं रहे थे कि वे कृष्ण की रागानुगा भक्ति – विशेषतः उसके माधुर्य पक्ष की आध्यात्मिक भावना के औचित्य की रक्षा कर सकते, अतः वे उत्तरोत्तर उसके प्रति क्षमायाचना जैसा दृष्टिकोण अपनाते जा रहे थे तथा मर्यादा मार्ग के साथ उसके सामंजस्य के उपाय खोजने में पांडित्य का सहारा लेने लगे थे। दुःख है कि सूरदास तथा कुछ अन्य भक्त कवियों से संबंधित अनुसंधान कार्यों में इस परिस्थिति का ध्यान नहीं रखा गया है और परवर्ती एवं वर्तमान सांप्रदायिक दृष्टिकोण को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है। श्री प्रभुदयाल मीतल का कार्य भी इसी दृष्टिकोण से परिसीमित है।

मीतलजी ने 'सारावली' और 'सूरसागर' की भाषा और शैली की समानता दिखाने के उद्देश्य से अनेक उद्धरण दिए हैं। उनका कथन सही है कि इस प्रकार की समानताओं के और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। परंतु भाषा और शैली का विचार मीतल जी ने शब्दों तक ही सीमित रखा है। उन्होंने ध्वनियों क्रियापदों और परसर्गों के प्रयोग की समानता का संकेत भी नहीं किया। क्या ऐसा किए बिना भाषा की समानता प्रमाणित की जा सकती है? कोई भी परवर्ती लेखक पूर्ववर्ती रचना के शब्द उधार ले सकता है, परंतु उपर्युक्त प्रयोगों का अनुकरण वही कर सकता है जो भाषा की प्रकृति के विषय में यथेष्ट ज्ञान रखता हो। 'सारावली' के लेखक से ऐसी आशा करना व्यर्थ है। 'सूरसागर' की भाषा का वास्तविक अनुकरण करने में वह कृतकार्य नहीं हो सका। परिणामतः 'सारावली' और 'सूरसागर' की भाषा में जो कई सौ वर्षों का अंतर है वह किसी भी भाषाविद् से छिप नहीं सकता, शब्द - साम्य के चाहे कितने ही उदाहरण क्यों न एकत्र कर लिए जाएँ।

वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'सारावली' के शब्दप्रयोगों में तत्समता के बाहुल्य का उल्लेख करते हुए मीतल जी ने कहा है कि यह तत्समता वेंकटेश्वर प्रेस के संस्कृतप्रेमी प्रूफ संशोधकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कृपा का परिणाम है। परंतु उन्होंने यह न सोचा कि उन्हीं प्रूफ संशोधकों ने 'सूरसागर' के शब्दप्रयोगों पर भी कृपा की है। फिर दोनों रचनाओं के शब्दप्रयोगों में तत्समता की प्रवृति में जो बहुत अधिक अंतर है उसका कारण क्या है ?

मीतल जी ने भाषा के साथ शैली शब्द भी जोड़ा है। परंतु शैली की बात न उठाना ही अच्छा है, क्योंकि शैली कवि के व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति होती है। मीतल जी ने इस पक्ष की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझी। ऊपर संकेत किया गया है कि 'सूरसागर' से सूरदास के जिस व्यक्तित्व – प्रकृति, स्वभाव, विचारधारा, भावना आदि का परिचय मिलता है उसके साथ 'सारावली' के रचयिता की विचारधारा किसी प्रकार मेल नहीं खाती। दोनों में जो अंतर है उसे विविधता मात्र नहीं कहा जा सकता।

मीतल जी ने कहा है कि उनकी भूमिका पढ़ने के उपरांत भी यदि सारावली को कोई अष्टछापी सूरदास की रचना न समझे तो उसे 'बतलाना होगा कि आखिर इसका रचयिता कौनसा सूरदास है ?' परंतु क्या प्रसिद्ध कवियों के नाम से रचना करनेवाले सभी आत्मत्यागी महापुरुषों के नाम कभी कोई बता सका है ? ऐसी कौनसी प्रसिद्ध रचना है जिसमें ऐसे अज्ञातनामा महापुरुषों ने क्षेपक न जोड़े हों ? ऐसा कौन - सा कवि है जिसके नाम पर उसके भक्तों (!) ने निष्काम भाव से अपनी कृतियाँ समर्पित न कीं हों ? हमारे देश में और विशेषतया हिंदी में यह परंपरा सदा से चली आई है। फिर 'सूरसागर - सारावली' तो एक संप्रदाय से संबंधित कृति है, वह संप्रदाय की 'संवत्सर लीला' का परिचय देती है !

ऊपर कहा जा चुका है कि 'सारावली' की परंपरा अधिक से अधिक १३७ वर्ष पूर्व के गुजराती अनुवाद तक जाती है। इससे पूर्व सांप्रदायिक क्षेत्रों में भी इसकी परंपरा का प्रमाण न मिलना इसकी प्राचीनता में संदेह पैदा करने के लिए पर्याप्त है। मीतल जी ने इस पक्ष पर विचार नहीं किया कि यदि सूरदास के सवा सौ वर्ष बाद भी 'सारावली' सूरदास के नाम से प्रचलित हो गई होती तो उसका उल्लेख पुष्टिमार्ग के प्रसिद्ध पंडित गुसाईं हरिराय अवश्य करते।

परंतु इधर सूरदास की कृतियों में 'सारावली' का उल्लेख प्रायः अनिवार्य रूप से होने लगा है, साथ ही उसकी प्रामाणिकता - अप्रामाणिकता पर भी यत्किंचित विचार किया ही जाता है। 'सारावली' की दुर्लभता इस विचार - विमर्श की वास्तविकता में सबसे बड़ा बाधा थी। अतः श्री प्रभुदयाल मीतल ने उसे सुलभ करके बहुत बड़ा उपकार किया है। वे हमारे धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं।[१०]

— व्रजेश्वर वर्मा

*

१०. **सूरसारावली**—श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, मूल्य १.५० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंदसखी की जीवनी और पदावली

चंदसखी की जीवनी और रचना के विषय में अब तक जो अन्वेषण - अनुसंधान हुआ है, श्री प्रभुदयाल मीतल की उपर्युक्त पुस्तक उसमें एक अन्यतम योगदान है। इस दिशा में श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री महावीर सिंह गहलोत, श्रीमती पद्मावती 'शबनम' तथा कुछ अन्य विद्वानों ने जो खोजें की थीं, श्री मीतल जी ने उनका उपयोग करते हुए चंदसखी की समस्या को अधिक निश्चित और स्पष्ट रूप में हमारे संमुख प्रस्तुत किया है। मीतलजी ने राधावल्लभ संप्रदाय की सामग्री के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि चंदसखी स्त्री नहीं, पुरुष भक्त थे, वे पहले मोठ के थानेदार थे, वे बालकृष्ण के भक्त नहीं, बल्कि बालकृष्ण स्वामी के शिष्य थे, उनकी भक्ति सखी भाव की थी तथा वे राधावल्लभ संप्रदाय के 'नाद' परिकर के एक प्रतिष्ठित भक्त थे, उनका एक बड़ा थोक था, उनका जन्म सं० १७०० के आसपास ओड़छा में हुआ था और वहीं सं० १७६० के आसपास उनका देहावसान हुआ।

परंतु जैसा कि मीतल जी ने स्वयं स्वीकार किया है, चंदसखी के विषय में उपर्युक्त निष्कर्ष पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में नहीं माने जा सकते। चंदसखी का विलक्षण व्यक्तित्व उनका अथवा उनके नाम से प्रचलित उनके भक्तों और भावकों का विविधरूप कृतित्व उस समय तक अनुसंधान और चिंतन - मनन का विषय बना रहेगा, जब तक तद्विषयक असंदिग्ध प्रमाण और विश्वसनीय सामग्री न प्राप्त हो जाए।

राधावल्लभ संप्रदाय के परवर्ती भक्त कवियों की साक्षी तथा संप्रदाय की परंपरा से इतना तो निश्चित अनुमान होता है कि चंदसखी नाम के एक राधाकृष्ण के प्रसिद्ध भक्त कवि अवश्य हुए थे और मीतल जी ने उनकी जीवनी का प्रस्तुत पुस्तक में जो परिचय दिया है वह उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक माना जा सकता है। ७० पृष्ठों की भूमिका के बाद मीतल जी ने चंदसखी के – मूल पुस्तक में १०८ तथा परिशिष्ट में ३६ – पद दिए हैं। मूल पुस्तक के पद राधावल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतों की अनुकूलता की दृष्टि से संकलित किए गए हैं। ये चंदसखी के भक्ति - संबंधी पद हैं जिन्हें विद्वान् संपादक ने विषयानुसार क्रमबद्ध किया है। परिशिष्ट के ३६ पद चंदसखी के लोकगीत हैं और उन्हें भी संकलित करने में मीतलजी ने यह दृष्टि रखी है कि वे उक्त संप्रदाय के सिद्धांतों के विरुद्ध न पड़ते हों। प्रस्तुत संग्रह के पूर्व मीतल जी चंदसखी के भजनों और लोकगीतों का एक वृहत संग्रह कर चुके हैं जो उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशित हुआ है। उपर्युक्त परिशिष्ट के ३६ भजन उस वृहत संग्रह के बाद प्राप्त हुए कुछ अप्रसिद्ध पद हैं।

मीतल जी ने चंदसखी के पदों तथा भजनों के संकलन में राधावल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतों को ही कसौटी माना है। अपने में यह कसौटी बहुत वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती। परंतु हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में कोई न कोई कसौटी तो बनानी ही पड़ेगी। मीतल जी ने उत्तर प्रदेश – विशेषतया ब्रज में प्रचलित चंदसखी के पदों और लोकगीतों को सांप्रदायिक दृष्टिकोण से छाँटकर लोकप्रिय भक्त कवि के जिस व्यक्तित्व को समझने का यत्न किया है, उसमें ऐक्य, संगति और विश्वसनीयता है। प्रश्न रह जाता है कि क्या राधावल्लभी बालकृष्ण स्वामी के शिष्य भक्त कवि चंदसखी के अतिरिक्त इस नाम के किसी अन्य कवि (या कवियित्री) का अस्तित्व भी था जिसके रचे हुए लोकगीत विशेषरूप में राजस्थान में प्रचलित हैं? मीतलजी ने अपनी भूमिका में इस पक्ष पर अधिक विचार नहीं किया कि चंदसखी द्वारा रचित लोक -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतों के राजस्थान में अधिक प्रचलित होने का क्या कारण है। उनके विचार से एक ही चंदसखी का अस्तित्व मानना समीचीन है; उनके बहुत से लोकगीत अन्य अज्ञातनामा लोक-कवियों द्वारा रचित हैं, केवल लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से उनमें 'चंदसखी भजु बालकृष्ण छवि' जैसी छापें लगा दी गई हैं। परंतु इस संबंध में अभी अनुसंधान की अपेक्षा है।

चंदसखी के अतिरिक्त मीतल जी द्वारा संकलित कुछ पदों में 'चंद' छाप भी मिलती है। इसे तथा इस परंपरा को देखते हुए कि राधावल्लभी भक्त सखी भाव से उपासना करने के कारण अपना मूल नाम बदल लेते थे? मीतल जी ने अनुमान किया है कि चंदसखी का मूल नाम चंद्रलाल अथवा चंद्रकिशोर रहा होगा।

कवित्व की दृष्टि से चंदसखी का कृतित्व साधारण ही है। भाव की तीव्र अनुभूति और व्यापकता तथा कला की अनुरंजकता और सुंदरता उनमें नहीं मिलेगी। परंतु उनके हृदय की सच्ची और निर्मल भावना दो-ढाई शतियों से जन-रंजन करती आई है, इसे देखते हुए ही उनके महत्व को आँका जा सकता है। उसकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता मीरां के समकक्ष है। मीरां ने जिस प्रकार गुजरात, राजस्थान तथा उत्तर भारत में ख्याति पाई है, उसी प्रकार चंदसखी के पद और भजन भी कम से कम राजस्थान और उत्तर भारत में विशेषतया स्त्रियों में गाए जाते हैं। आवश्यकता यह है कि उनके नाम से प्रचलित समस्त गीतों का संकलन किया जाए तथा उनका विभिन्न परंपराओं के आधार पर वर्गीकरण किया जाए। कदाचित् उस दशा में हम इस विषय में कोई निष्कर्ष निकाल सकें कि चंदसखी को एक माना जाए या दो। यह भी संभव है कि हम इस प्रकार का कोई निष्कर्ष निकालने में सफल न हों, क्योंकि चंदसखी का व्यक्तित्व लोकभावना में घुलमिल कर इतना सामान्य हो गया है कि उसमें एकता स्थापित करना कठिन हो सकता है। परंतु इस कवि के नाम से व्यक्त हुई या लोकभावना में भी कुछ न कुछ विशेषता अवश्य होगी और लोकगीतों के अध्ययन की दृष्टि से वह संग्रह निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगा। श्रीप्रभुदयाल मीतल का कार्य उक्त अध्ययन के लिए भी अत्यंत उपादेय है।

'चंदसखी की जीवनी और पदावली' के लिए विद्वान् लेखक धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं। अखिल भारतीय व्रज साहित्य मंडल ने इसका प्रकाशन कर भक्तिकाव्य तथा लोक-साहित्य के प्रेमियों का उपकार किया है।[११]

—व्रजेश्वर वर्मा

राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य

प्रस्तुत ग्रंथ श्री विजयेंद्र 'स्नातक' द्वारा दिल्ली-विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखित प्रबंध का प्रकाशित रूप है। ग्रंथ के आरंभ में 'प्राक्कथन' के अंतर्गत लेखक ने इस कृति के लिए अपने 'प्रयास' का संकेत किया है। इस विवरण से पता चलता है कि श्री 'स्नातक' जी ने अपने प्रबंध के लिए सच्ची शोधवृत्ति का आश्रय लेकर अथक परिश्रम किया। अनेक बार वृंदावन जाकर, वहाँ विद्वानों और संप्रदाय के अनुयायियों से घनिष्ठ संपर्क स्थापित करते हुए, प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का संकलन किया। जहाँ तक सामग्री मिल सकी—

११. **चंदसखी की जीवनी और पदावली**—श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक, अखिल भारतीय व्रज साहित्य मंडल, मथुरा, मूल्य १.५० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे वह अप्रकाशित हो या प्रकाशित, सिद्धांत - पक्ष से संबद्ध हो या साधनात्मक अनुभूति - पक्ष से, लेखक ने उनकी छानबीन करते हुए यथासंभव उनका संयोजन किया। इन सबकी सहायता लेकर पांडित्यपूर्ण ढंग से, पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो खंडों में, विशालयकाय (लगभग छः सौ पृष्ठों का) प्रबंध - ग्रंथ प्रस्तुत किया गया है। पूर्वार्ध में सिद्धांत पक्ष का विवेचन है और उत्तरार्ध में उक्त संप्रदाय के प्रमुख कवियों और उनके साहित्य का समीक्षात्मक परिचयन है।

यहाँ हमें पूर्वार्ध के विषय में ही मुख्यरूप से दो शब्द निवेदन करने हैं। क्योंकि उत्तरार्ध में तो 'हित हरिवंश जू', 'सेवक जी', हरिराम व्यास*, चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, नेही नागरी दास, अनन्य अली, वृंदावनदास (चाचाजी) आदि प्रमुख सांप्रदायिक कवियों की कृतियों का परिचय और उनकी साहित्यिक आलोचना की गई है। पर पूर्वार्ध में अनुशीलनात्मक एवं शोध - पूर्ण पद्धति से वैष्णव - मतों में राधावल्लभ 'संप्रदाय' के स्थान और महत्व का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। प्रथम अध्याय में वैष्णवधर्म और वैष्णवभक्ति के उदय और विस्तार की चर्चा करते हुए, वैदिक संहिताकाल से लेकर मध्ययुगीन प्रेमलक्षणा भक्ति तक के स्वरूप का सप्रमाण सिंहावलोकन किया गया है। द्वितीय अध्याय के (क) और (ख) भागों में 'चतुःसंप्रदाय' नाम से प्रसिद्ध चार मुख्य वैष्णव संप्रदायों [(१) रामानुज और रामानंदी संप्रदाय, (२) माध्व और गौड़ीय या चैतन्य संप्रदाय, (३) विष्णुस्वामी और वल्लभ संप्रदाय तथा (४) निंबार्क तथा हरिदासी संप्रदाय, टट्टी संप्रदाय, सखी संप्रदाय आदि] का संक्षिप्त परिचय देने के अनंतर उक्त संप्रदायों की तुलना में 'राधावल्लभ' संप्रदाय के भेदक वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है। धार्मिक - साहित्य के ग्रंथों में उपलब्ध राधावल्लभ संप्रदाय के उल्लेख की चर्चा भी की गई है। तृतीय अध्याय में श्री हितहरिवंश गोस्वामी के विषय में विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। जहाँ तक जीवनी - संबंधी तिथि - संवत् आदि का प्रश्न है वह विवादास्पद है, क्योंकि— यद्यपि लेखक ने यथाशक्ति उपलब्ध सामग्री के प्रकाश में निर्णयात्मक मत स्थापित करने की चेष्टा की है तथापि अंतिम रूप से वही सर्वमान्य मत नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना कह सकते हैं कि 'स्नातक' जी ने अव्यवस्थित तिथिक्रमों को तर्कानुमोदित आधार पर स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के सर्वप्रमुख अध्याय हैं 'चतुर्थ' से लेकर 'सप्तम' तक। चौथे अध्याय में राधावल्लभीय भक्ति - सिद्धांत का, सैद्धांतिक आलोचना की दृष्टि से, प्रौढ़ विवेचन किया गया है। राधावल्लभ संप्रदाय की भक्ति वस्तुतः प्रवर्तक आचार्य की अनुभूति का आधार लेकर चलती है। श्री हितहरिवंश ने अपने दोनों प्रमुख ग्रंथों, 'हित चौरासी' और 'राधासुधानिधि'

* हरिराम व्यास के संबंध में गौड़ीय एवं राधावल्लभीय मतानुयायियों में मतभेद है। व्यासजी के वंशज व्यासवंशीय गोस्वामी अपने को माध्वगौड़ीय ही मानते हैं। हरिराम व्यास के अनन्य शिष्य ओड़छा नरेश ने व्यासजी का जो चित्र बनवाया था उसमें व्यासजी माध्व - गौड़ीय तिलक ही धारण किए हैं। यह चित्र वृंदावनस्थ एक व्यासवंशीय गोस्वामी द्वारा संपादित – प्रकाशित व्यासवाणी में द्रष्टव्य है। उक्त ग्रंथ की भूमिका में भी उन्होंने अपने वंश को माध्वगौड़ीय ही कहा है। अतः जब तक और प्रमाण न हों, निःसंदिग्ध रूप से यह मत स्वीकार्य नहीं कि हरिराम व्यास हितानुयायी हो थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दार्शनिक दृष्टि से सिद्धांत का विवेचन नहीं किया है अपितु अपनी परमप्रेममयी भक्ति-मूलक मधुर अनुभूतियों के अनुसार मुख्यतः श्रीराधा और लाल जी की सुधानिष्यंदिनी लीलाओं का वर्णन किया है। 'राधासुधानिधि' संस्कृत में है और 'हित चौरासी' हिंदी में। इन कृतियों के पदों में प्रेम की उस सार्वभौम सत्ता का लीलाविलासमय वर्णन है जिसमें जड़ और चेतन, उपासक और उपास्य, सविशेष और निर्विशेष—आदि के समस्त द्वंद्वों का विलयन हो जाता है। श्री हितहरिवंश की भक्तिमयी उक्तियों में श्रीराधाकृष्ण की प्रेम-काममयी रसक्रीडा का गान ही मुख्यतः वर्ण्य-विषय है।

इस मत का सर्वप्रमुख तत्व है 'हित' अथवा प्रेम। यहाँ श्रीराधा, भगवान् कृष्ण की विभूति या आह्लादिनी शक्ति नहीं हैं। वे यहाँ स्वयं प्रेमस्वरूपा हैं। इस संप्रदाय के अनुसार भगवान्, भक्ति और भक्त—तीनों इसी हिततत्व के नाना रूप हैं। वही 'हित' या प्रेम परमाराध्य भगवत्तत्व भी है, वही परमज्ञान का प्रयोजक भी है और वही ज्ञान-घनस्वरूप भी है। श्रीराधा से, श्री हरिवंश जी को गुरुरूप में इस 'हिततत्व' की प्राप्ति हुई। अतः श्रीराधा ही उनकी गुरु हैं, इष्ट हैं, हित हैं। इनका इष्ट-प्रेम लौकिक प्रेम से सर्वथा भिन्न नहीं है। सबसे दूर वही प्रेमपरिपाटी, इनके यहाँ विश्व में भी भरपूर मानी गई है और वही संजीवनी बूटी है, वही अमृतत्व का मूल है—"जो रसरीति सबनि ते दूरि—सो सब विश्व रही भरपूरि। मूरि सजीवनि कहि दई।" प्रेमी, प्रेमसंबंध और प्रेमपात्र तीनों ही अद्वय प्रेमतत्व के रूप हैं, जिनके योग से 'हित' निष्पन्न होता है। इस संप्रदाय में, इन्हीं को भोक्ता, भोग्य और प्रेरक-प्रेम का नाम दिया गया है। अंतिम तत्व को ही 'हितसंधि' भी कहते हैं। यह परात्पर प्रेमतत्व अनंत नामरूपों में प्रकट होता है। यही 'हित', श्रीराधा, श्रीनंदनंदन, सहचरीगण और श्रीवृंदावन के रूप में नित्यप्रकट है। 'हित' की उज्वल-प्रेमरसमयी मधुरकेलिलीला को ही 'नित्यविहार' कहते हैं। इस संप्रदाय की उपासना पद्धति में श्रीराधा का स्थान सर्वोपरि है। श्रीनंदनंदन भी उनकी प्रेमधारा के नित्य अभिलाषी हैं। श्रीराधा के साथ नित्यविहार में शाश्वतविलास-निरत श्रीकृष्ण वृंदावन धाम में सदा कामकेलि करते रहते हैं। सहचरी गोपियाँ या हितानुगृहीत भक्त जीव 'उस नित्यक्रीड़ा' के दर्शनमात्र में परमसुख का भोग प्राप्त करते हैं। उसका केवल दर्शन ही सहचरियों का एकमात्र चरम काम्य है।

इस उपासना-पद्धति में विधिनिषेध की मर्यादा को महत्व नहीं दिया जाता। 'हित', इष्ट, गुरु में यहाँ अभेद मान्य है, गुरु-उपासना, हितोपासना, श्रीराधातत्वोपासना तथा युगलमूर्ति की प्रेमोपासना आदि में तत्वतः अंतर नहीं है। फलतः साध्य और साधन में भी अभेद है।

प्रस्तुत ग्रंथ के सैद्धांतिक विवेचन में इन पदों का विश्लेषणात्मक समीक्षण किया गया है। रसमूला भक्ति और प्रेमतत्व की मीमांसा के साथ-साथ, चतुर्थ अध्याय में 'मिलन' 'विरह' आदि की भी संप्रदायानुसारी विवेचना हुई है। इस मत के अनुसार 'निकुंजरस' प्रेमरस, नित्यमिलन, नित्यविहार और नित्यकेलिनिरत युगलमूर्ति की क्रीडाओं में 'विरह' विच्छेदमूलक न होकर संयोगकेलि के सुख को नितनूतन, नित्य अभिलषणीय, नित्यकाम्य और सदा-रसनीय कैसे बनाए रहता है — इन सबका भी परिचय दिया गया है। प्रेम में 'तत्सुखभाव' की अनन्यता का निरूपण करते हुए प्रेम-नेम और प्रेम-काम का भी मतानुसारी विश्लेषण स्पष्टता के साथ किया गया है। इसी प्रसंग में यह भी बताया गया है कि रसोपासना में विधि-निषेध की मर्यादा का क्या स्थान है। पंचम अध्याय में 'नित्यविहार'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चार तत्वों, अर्थात् श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्रीवृंदावन तथा सहचरी की विशद विवेचना की की गई है। युगलमूर्ति की नित्यलीला का नित्य आरंभ सदा प्रवर्त्तमान रहता है और नित्य - विहार में नित्य - नूतन प्रतीत होनेवाले चिर अभिनव 'हित' या प्रेम का आस्वादन नित्य रमणीय रस के रूप में होता रहता है। नित्य - विहार के पूर्वोक्त श्रीराधा आदि चारों तत्व वस्तुतः 'हित' के ही भिन्न - भिन्न नाम वाले रूपांतर यद्यपि हैं तथापि श्रीराधा का स्थान इस संप्रदाय में सर्वाधिक महत्वशाली है। अनंत प्रेम - रूप - गुणशालिनी श्रीराधा, श्रीकृष्ण की भी नित्य परमाराध्या हैं और गुरु - रूपा भी है। सहचरियों को तो गीत, नृत्य, प्रसाधन आदि की शिक्षा देती ही हैं, अपने प्रियतम की भी वे शिक्षा - गुरु हैं। वे संपूर्णतः भावस्वरूपा हैं। पर यह भाव नित्य प्रगट है। 'राधासुधानिधि' के एक पद्य (१३०) के अनुसार माना गया है कि "श्री राधा में प्रेमोल्लास की सीमा, परम रस - चमत्कार - वैचित्र्य की सीमा, सौंदर्य की सीमा, नूतन रूपलावण्य की सीमा, लीलामाधुर्य की सीमा, वात्सल्य की सीमा, सुख की सीमा और रतिकलाकेलि - माधुर्य की सीमा — सभी सीमाओं का अपूर्व संगम और पूर्णतः लय हो जाता है।"

प्रस्तुत शोधग्रंथ में बताया गया है कि इस संप्रदाय में श्रीराधा का जो रूप गृहीत है— वह है 'निखिल ब्रह्मांड में परितः व्याप्त होकर अपनी नित्यक्रीड़ा से आनंद की अभिव्यक्ति करनेवाली अनादि तत्व का नित्य रूप।' भक्तरूप जीव का श्रीराधा के अनुग्रह से अपने निज रूप में प्राप्त होना ही उसका 'सहचरी भाव' है। इस 'सहचरी भाव' को प्राप्त जीव ही, उस आनंदवर्षिणी और दिव्यलावण्य बिखेरती हुई, नंदनंदन के साथ प्रणयकेलि - निरत, माधुर्य - सिंधुस्वरूपा, श्रीराधा के रूप का दर्शन, वृंदावन धाम के निकुंजरंध्रों से पाकर, परम हितरस चिदा - नंद का सुखानुभव प्राप्त करता है। श्रीराधा स्वयं निरतिशय आनंदरूपा हैं। अतः केवल 'हित - भाव' ही श्रीराधा के स्वरूप - दर्शन का एकमात्र मार्ग है। जैसा कि कहा जा चुका है, श्रीराधा श्रीकृष्ण की उपासिका नहीं वरन् उपास्या हैं, आराध्या हैं। फिर भी दोनों रसकेलि के लिए, प्रणयक्रीड़ा के लिए प्रिया - प्रियतम रूप भी हैं। यहाँ साधक, साधना और साध्य का भेद मिट जाता है। दोनों ही अद्वय 'श्रीतत्व' के ही रूप हैं, दोनों तत्वतः एक हैं और एक होकर- भी रसकेलि के लिए दो बने हुए हैं। यहाँ तत्सुखीभाव का प्रामुख्य है—जिसके अनुसार प्रिय अपने सुख के लिए नहीं अपितु अपने प्रियतम या प्रियतमा के रसनिष्पादनार्थ प्रणयक्रीड़ा में निरत रहता है। युगल सरकार—इसी रूप में दिव्य केलिविहार करते हैं और नित्यविहार में लीन श्रीराधा ही इस संप्रदाय में सर्वोपरि विराजमान हैं। यहाँ श्रीराधा, स्वकीया - परकीया कांताभावपूर्ण नहीं हैं। दोनों ही भाव, नित्यसुख में अपूर्णता के सूचक हैं, एकदेशी तथा एकांगी हैं। अतः श्रीराधा में दोनों भावों का विलयन होने पर भी वे दोनों से परे हैं। नित्यसंगम और नित्यसंयोग - सुखभोग के रहने पर भी श्रीराधा और श्रीकृष्ण के विहार में वियुक्त के संयोगसुख - भोग की अनंत उत्कंठा सदा बनी रहती है। नित्य - प्रणयकेलिरत श्रीकृष्ण जिसके नित्य अविच्छेद्य प्रेमसंगी हैं--वह श्रीराधा सर्वतंत्रस्वतंत्र, सर्वशक्ति - ऐश्वर्य - सौंदर्यमयी और परात्पर तत्व हैं।

श्रीराधा के इन सब रूपों की महिमा और गरिमा का गान हितप्रभु और उनके अनुयायियों की वाणियों में हुआ है। युगल सरकार की प्रेममयी परम मधुर रसभक्ति की स्थापना का आधार हितप्रभु ने न तो दार्शनिक तत्वमीमांसात्मक ग्रंथ द्वारा प्रतिष्ठित किया है और न 'उज्ज्वलनीलमणि' जैसी शास्त्रीय साहित्य - समीक्षा द्वारा। महाप्रभु ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय - संवेद्य, अनुभूतिगम्य रसानंद को अपनी भक्ति - पद्धति का मूलाधार बनाया है। अतः यह मत तत्वतः 'रस - दर्शन' या 'रस - पद्धति' है जिसकी चरम परिणति 'नित्य - विहार' में होती है। यह 'नित्यविहार' शब्द भी विशिष्टयर्थ - बोधक है—जिसका विस्तृत परिचय इसी अध्याय में शोधकर्ता ने प्रस्तुत किया है। इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण नित्यकिशोर हैं और श्रीराधा के साथ लालित्यमयी प्रेमकेलिलीलाओं का नित्य अनुष्ठान करते रहते हैं। अतः रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण एकमात्र नित्यविहारी पुरुष हैं और उनकी केलिलीलाओं का रंध्रमार्ग से दर्शन ही सहचरी - जीव का नित्यकाम्य और चरम पुरुषार्थ है। श्रीराधारमण, राधावल्लभ होकर भी श्रीराधा के उपपति नहीं वरन् वृंदावनमात्र में ही गोचर, प्रेमरसमय, नित्य - वल्लभ हैं। नित्यकिशोर श्रीकृष्ण, नित्यप्रेयसी श्रीराधा के नित्यसंयोगी हैं और स्वकीया - परकीयाभाव से परे हैं। वे प्रेमसर्वस्व हैं और एकमात्र प्रेम करने के उचित अधिकारी हैं। वे सहचरियों के लिए केलि - सर्वस्व होकर भी श्रीराधा के अनुग्रह की कामना करते हैं। और सह - चरियाँ (इस संप्रदायके अनुसार जीव के निजरूप की पारमार्थिक स्थिति में, श्रीराधा की अनुकंपा से पहुँच कर, नित्यविहार के आनंद का दर्शनाधिकारी जीव), उनकी लीलाओं को देखने के लिए आकुल रहती हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण भी—सहचरियों, भक्तों के उपास्य तो हैं पर स्वतंत्र रूप से नहीं अपितु श्रीराधा के नित्यप्रियतम होने से। नित्यकेलि का अंग होने से राधाकेलिकला की साक्षिणी सहचरियाँ प्रभु कृष्ण के माधुर्य रस का आस्वादन करती रहती हैं। अतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण के साथ - साथ इस पद्धति में 'सहचरी' का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

इस संप्रदाय के वाणीग्रंथों में जिस वृंदावन का रूप वर्णन है, वह अगोचर गोलोक की या आध्यात्मिक पक्ष की वस्तु न होकर दृश्य, गोचर वृंदावन रूप है, जहाँ के लताकुंज युगलमूर्ति की मधुर लीलाओं का विहारस्थल है। ग्रंथलेखक ने पुराणों में, रसोपासना में और स्तोत्रों में वृंदावन के स्वरूप का परिचय देने के पश्चात संप्रदायानुसारी वृंदावन के स्वरूप और महिमा का सप्रमाण परिचय दिया है, और यह भी बताया है कि 'रासभूमि' वृंदावन के ललित और गोचर रूपमात्र की ग्राह्यता—इस मत की अपनी खास विशेषता है। इसी प्रकार 'नित्यविहार' की रसमार्गीय विभिन्न धाराओं का विवरण देते हुए उसका भी सांप्रदायिक स्वरूप स्पष्टता के साथ निर्दिष्ट किया गया है।

राधावल्लभीय मत में बाह्यविधानों का अपना वैशिष्ट्य हैं। 'गद्दी - सेवा', 'नामसेवा', 'समाज', 'अष्टयामसेवा' 'नैमित्तिक उत्सव' और 'कंठी - तिलक' आदि का भी परिचय लेखक के ग्रंथ में अपेक्षित विस्तार के साथ दिया गया है। सप्तम अध्याय में 'रासलीला' का स्वरूप और उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने श्रीहितप्रभु को 'रासलीला' का वृंदावन में महत्वपूर्ण ढंग से सर्वप्रथम संचालक सिद्ध करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार पूर्वार्ध में वैदुष्य के साथ विषयों का सैद्धांतिक निरूपण किया गया है। यहाँ याद रखने की बात है कि इस संप्रदाय का प्रवर्तन; हृदय - संवेद्य स्वानुभूतियों के आधार पर ही, न कि शास्त्रीय तत्वमीमांसा के द्वारा श्री हितप्रभु ने किया। अनुगामियों की वाणियों में अनुभूति - प्रकाशित, संप्रदाय - पक्षों का जहाँ एक ओर विस्तार हुआ वहीं दूसरी ओर अव्यवस्थित और बाद में कुछ व्यवस्थित ढंग से सिद्धांतपक्ष का भी निर्देश किया गया। पर इन बिखरे बीजों को तत्वमीमांसा का दार्शनिक मत के रूप में - ग्रंथन कठिन कार्य है। यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे चलकर व्यास जी (?), ध्रुवदास जी आदि संप्रदाय के अनुयायियों ने सिद्धांतपक्ष के मत का शास्त्रीय ढंग से विशदीकरण करने का प्रयास किया है, तथापि हितप्रभु के भक्तिदर्शन का सैद्धांतिक निरूपण शोधसाध्य ही कार्य है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ में ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि से मान्यताओं का अध्ययन भी किया गया है।

आशय यह कि यदि 'श्रीराधा' - तत्व अथवा 'श्रीकृष्णतत्व' या 'प्रेम' का राधावल्लभीय स्वरूप उपस्थित किया गया है तो साथ ही साथ साहित्यग्रंथों में भी उनके स्वरूपविकास की श्रृंखला का परिचय कराया गया है। इसके अतिरिक्त श्री स्नातक जी ने तत्कालीन मधुरोपासक संप्रदायों – वल्लभसंप्रदाय, निंबार्कसंप्रदाय, गौड़ीयसंप्रदाय आदि के साथ राधावल्लभ संप्रदाय की तत्वद्विषयक मान्यताओं का सुस्पष्ट अंतर भी दिखाने का प्रयास किया है।

उत्तरार्ध (साहित्य खंड) में 'श्रीहितप्रभु' से लेकर श्री वृंदावनदास (चाचा जी) तक, दस प्रमुख अनुयायियों के जीवन और साहित्य का विस्तृत परिचय दस अध्यायों या लगभग ३०० पृष्ठों में दिया गया है। एकादश अध्याय में विवेच्य संप्रदाय के योगदान का मूल्यांकन करते हुए उसकी साधनापद्धति की नवीनताएँ और अन्य मधुरोपासक संप्रदायों पर उसका प्रभाव भी प्रदर्शित किया गया है। उपसंहार में चार आवश्यक परिशिष्ट हैं।

ग्रंथ के आरंभ में 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' के लेखक डा० दीनदयालु गुप्त द्वारा लिखित आठ पृष्ठों की भूमिका है जिसमें वैष्णव भक्ति के सगुणोपासक और विशेषरूप से मधुरोपासक संप्रदायों का सिंहावलोकनात्मक संक्षिप्त उल्लेख करते हुए राधावल्लभ संप्रदाय की कुछ मूल मान्यताओं का सूत्रात्मक उल्लेख किया गया है। राधावल्लभीय मत पर यह प्रथम विशाल ग्रंथ है जिसमें स्नातकजी ने पक्ष - विपक्ष में कही जाने वाली सभी बातों को एक साथ संकलित कर दिया है। भावी शोधछात्रों को कार्य अग्रसर करने में इससे अवश्य सहायता मिलेगी। पर यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि इस संप्रदाय की बहुत सी सामग्री अभी अन - देखी पड़ी है, जैसा कि लेखक ने स्वयं भूमिका में स्वीकार किया है। यदि कभी वह सामग्री प्रकाश में आ सकी और उसका ठीक-ठीक अनुशीलन किया जा सका तो कदाचित् उससे शोधकार्य और अग्रसर होगा तथा नई मान्यताएँ भी संभवतः स्थापित हो सकेंगी।

एकाध बातें ऐसी हैं जिनके विषय में ग्रंथ के पांडित्यपूर्ण लेखक से निवेदन करना है। श्री हितप्रभु के प्रस्तुत संप्रदाय में 'हित' शब्द और 'हिततत्व' का बड़ा महत्व है। विभिन्न परिवेशों - परिप्रेक्ष्यों में विभिन्न दृष्टिबिंदुओं से उस तत्व का अर्थ संदर्भानुकूल व्याख्यात होता है। अतः उसकी विस्तृत व्याख्या और विवृति तथा उक्त शब्द की समग्र अर्थभूमिकाओं का आकलन कदाचित् अत्यंत आवश्यक है। इस पक्ष का निरूपण साक्षात् करना चाहता था। वैसे, अन्य संदर्भों में, अन्य विषयों के माध्यम से ज्ञातव्य विवरण आ गया है। पर अच्छा होता यदि उसका विशदीकरण साक्षात् किया जाता। दूसरी बात है अनेक प्रसंगों का आवश्यकता से अधिक पुनः - पुनः कथन, उदाहरणार्थ – 'गौड़ीय मत में परकीया भाव की उपासना और निंबार्कमत में स्वकीया भाव' – आदि बातें दर्जनों बार कही गई हैं। इसी प्रकार बहुत सी वाणियाँ और 'हितचौरासी' के पद तथा 'राधासुधानिधि' के अनेक श्लोकों को पूर्णतः और अंशतः अनेक बार उद्धृत किया गया है, जैसे – 'राधासुधानिधि' – श्लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८१ और ८२ – १६६, ३०५ पृष्ठों में तथा श्लोक ८१ पुनः २६६ पृष्ठ में; ८३ श्लोक १३५, ३०५ पृष्ठों में; श्लोक २६६ – २१६ - २०, २३२, ३०४ पृष्ठों में। इसी प्रकार अन्य पदों वा पद्यों का उद्धरण किया गया है – जिसे एक बार के बाद संख्यानिर्देश करके बचाया जा सकता था और ग्रंथकाया की अनपेक्षित वृद्धि न होती।

समग्ररूप से विचार करने पर यही कहा जायगा कि ग्रंथ अनुशीलनात्मक शोधवृत्ति से लिखा गया है और अनुसंधाता ने सामग्री - संकलन में जिस धैर्य, आस्था, और अभिनिवेश के साथ कार्य किया है – वह सर्वथा स्वागतार्ह है। विषयों का संगुंफन, मतों का तटस्थ गहराई के साथ वैज्ञानिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण तथा सिद्धांत का स्पष्टता के साथ निरूपण – इस शोधग्रंथको विशेषताएँ हैं। विषय से संबंध रखनेवाले उपलब्ध अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों का भी लेखक ने अध्ययन करके उनका समुचित उपयोग किया है। लेखक की इस कृति का हम अभिनंदन करते हैं।[१२]

— करुणापति त्रिपाठी

*

१२. राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य—लेखक डा० विजयेंद्र स्नातक, एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री ; हिंदी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय के निमित्त – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित। मूल्य १८.०० रु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

३९

१६४७ निग्लीव स्तंभलेख – प्राकृत, ब्राह्मी। रूम्मिनदेई स्तंभ से वायुकोण में १३ मील की दूरी पर निग्लीव गाँव के पास एक झील के पश्चिम तट पर यह स्तंभ है। अशोक के धर्मलेख ३८५ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १६५ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के १४ वर्ष बाद कनकमुनि बुद्ध के स्तूप की द्वितीय बार मरम्मत करवाई और २० वें वर्ष में स्वयं आकर पूजा की और स्तंभ स्थापित किया। १४५४

४०

१६५३ सप्त स्तंभलेख ४ – प्रथम लेख – विधि – प्राकृत, ब्राह्मी, अशोक के धर्मलेख ३०३ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – ११९ हुल्श। १४४८

४. शिलाओं के समान स्तंभों पर भी अशोक ने अभिलेख उत्कीर्ण करवाया। स्तंभलेखों के प्राप्ति स्थान हैं –

१ – टोपरास्तंभ (अंबाला जिले में सढौरा के पास यमुना नदी के तट पर) – यह स्तंभ पहले दिल्ली से ९० मील की दूरी पर था। फिरोजशाह तुगलक इसे दिल्ली ले आया और दिल्ली दरवाजे के बाहर स्थापित किया। अब इसे फिरोजशाह का कोटला कहते हैं।

२. मेरठस्तंभ – यह पहले मेरठ में था। फिरोजशाह तुगलक इसे भी दिल्ली ले आया आया और काश्मीरी दरवाजे के उत्तर - पश्चिम पहाड़ी पर स्थापित करवाया। बादशाह फर्रुखसियर (शाके १६३५ से १६५१ तक) के समय तोपखाने के फट जाने से इसके अनेक टुकड़े हो गए। पुनः शाके १७८९ से इसे यथापूर्व खड़ा किया गया।

३. प्रयागस्तंभ – यह वही स्तंभ है जिस पर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रशस्ति उत्कीर्ण है। यह त्रिवेणी के संगम पर अब किले में है। इस पर अशोक के दो अभिलेख हैं जो कौशांबी के अधिकारियों को आदेश के रूप में हैं।

४. लौरिया अरराज स्तंभ (जिला चंपारण, बिहार) – रधिया गाँव से ढाई मील अग्निकोण पर अरराज महादेव का मंदिर है। वहाँ से एक मील पर लौरिया नामक स्थान पर यह स्तंभ है।

५. लौरिया नंदनगढ़ (जिला चंपारण, बिहार) – लौरिया - अरराज से ईशानकोण पर नैपाल जाते हुए लौरिया - नंदनगढ़ का स्तंभ दिखता है। पिप्पलिवन का प्रसिद्ध स्तूप इसी स्थान पर है। मौर्यवंश की स्थापना इसी पिप्पलिवन के मोरिय - गण के एक प्रतापी कुमार ने की थी।

६. रामपुरवास्तंभ (जिला चंपारण, बिहार) – लौरिया - अरराज, लौरिया - नंदनगढ और रामपुरवास्तंभ, ये तीनों उस प्राचीन राजमार्ग को सूचित करते हैं जो गंगा के उत्तर में पाटलिपुत्र से नैपाल को जाता था। इस राजमार्ग पर आने - जानेवाले यात्रियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ही अशोक ने इन स्तंभों पर अपना धर्मसंदेश उत्कीर्ण करवाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – मैंने राज्याभिषेक के २६वें वर्ष में इस धर्म लिपि को लिखवाया। अत्यंत धर्मकामना, आत्मपरीक्षा, सुश्रुषा, भय और उत्साह के बिना ऐहिक और पारलौकिक सुख दुर्लभ है। मेरी शिक्षा से लोगों का धर्म के प्रति आदर और अनुराग प्रतिदिन बढ़ा है और बढ़ेगा। मेरे पुलिस ऊँच, मध्यम और निम्न श्रेणी के भी हैं किंतु मेरी शिक्षा के अनुसार काम करते हैं और यत्न करते हैं कि चपल मति भी धर्माचरण करे। सीमांत महामात्र भी ऐसा ही करते हैं। धर्मानुसार पालन, धर्मानुसार आचरण, धर्म से सुख और धर्म से रक्षा हो, यही विधि है।

४१

१६५३ द्वितीयलेख – धर्म – प्राकृत, ब्राह्मी, अशोक के धर्मलेख ३१२ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १२० हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – धर्म करना अच्छा है किंतु धर्म क्या है। पाप से विलग, बहुतों का कल्याण, दया, दान, सत्य, शौच। मैंने चक्षुर्दान भी अनेक प्रकार से किया है। द्विपद, चतुष्पद, पक्षी, जलचर प्राणियों पर भी मैंने अनेक प्रकार से कृपा की है। उन्हें प्राणदान किया है तथा अनेक कल्याणकार्य किए। मैंने यह लेख लिखवा दिया जिससे यह चिरस्थायी हो। जो इसके अनुसार काम करेगा उसे पुण्य होगा। १४४८

४२

१६५३ तृतीयलेख – आत्मपरीक्षा – प्राकृत, ब्राह्मी, अशोक के धर्मलेख ३१८ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १२१ हुल्श। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है – मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है और कहता है मैंने यह अच्छा काम किया। किंतु वह अपने पाप को नहीं देखता और कभी नहीं कहता है कि यह पाप मैंने किया है या यह मेरा दोष है। अतः आत्मपरीक्षा बहुत कठिन है। किंतु इन्हें देखना चाहिए। चंडता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या, पाप के कारण हैं। इन बातों के कारण मेरी निंदा न हो इस बात का विशेष ध्यान रक्खे। इस मार्ग से मेरा यह और परलोक बनेगा। १४४८

४३

१६५३ चतुर्थलेख – रज्जुक के कर्त्तव्य – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ३२५ जनार्दनभट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम्, इंडिकेरम् १ – १२२ हुल्श। रज्जुक लाखों १४४८

पूरे सातो लेख केवल दिल्ली - टोपरा स्तंभ पर हैं। प्रयाग - स्तंभ पर प्रथम ६ लेख हैं यद्यपि इनमें से केवल दो ही अविकल अवस्था में है। दिल्ली - मेरठ स्तंभ पर प्रथम पाँच लेख ही मिलते हैं; वे भी भग्न - अवस्था में। रामपुरवा की लाट पर प्रथम चार लेख ही मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दंड का अधिकार मैंने उन्हें सुपुर्द कर दिया है जिससे वे निश्चित और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य करें। लोगों के हित और सुख देखें, अनुग्रह करें, सुख और दुःख के कारण जानने का प्रयत्न करें। मेरी पुलिस भी मेरी आज्ञा का पालन करेगी जिसमें रज्जुक मुझे प्रसन्न करने का यत्न करें। जिस प्रकार निपुण धाय के हाथ में पुत्र को सौंप कर मनुष्य निश्चित हो जाता है उसी प्रकार लोगों के हित और सुख के लिये रज्जुक हैं। व्यवहार और दंड में पक्षपात न हो। जिन्हें मृत्यु दंड मिला है उन्हें तीन दिन का अवकाश मिले जिससे वे और उनके संबंधी उनके परलोक के लिये दानपुण्य करें। मेरी इच्छा है कि कारा में भी लोगों में धर्माचरण, संयम और दान की इच्छा बढ़े।

४४

२६५३ पंचम लेख – हिंसा और वध के नियम – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ३४१ जनार्दनभट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १–१५३ हुल्श। राज्याभिषेक के २६ वें वर्ष निम्न प्राणी अवध्य समझे जायेंगे-सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नांदीमुख, गेलाट, चमगादड़, अंबाक, पीलिका, दुडि, वेहड्डी की मछली, वेदनेयक, जलकुक्कुट, शकुली मछली, कछुआ, साहिल, पर्णशश, बारहसिंगा, सांड, ओकपिंड, मृग, श्वेत कबूतर, गांव के सब कबूतर, तथा चौपाए जो उपभोग में नहीं आते और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध देनेवाली बकरी - भेड़ तथा सूअर तथा इनके बच्चे भी जो ६ मास से कम हों न मारे जाँय। मुर्गा को वधिया न करें। जीव को भूसी में न जलावें। अनर्थ या हिंसा के लिये जंगल में आग न लगावें। एक जीव मार कर दूसरे जीव को न खिलावें। आषाढ़, कार्तिक, पौष और फाल्गुन मास की पूर्णमासी को चतुर्दशी, अमावस्या, प्रतिपदा तथा उपवास के दिन (एकादशी) को मछली न मारें और न बेचें। [वर्ष में कुल ८८ दिन (२४ एकादशी, २४ चतुर्दशी, २४ प्रतिपदा, १२ अमावस्या तथा ४ पूर्णमासी) मछली खाना निषेध था] इन दिनों नागवन या तालाबों में जीव न मारे जाँय। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्र में, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन पूर्णिमा को तथा व्रत के दिन गौं न दागे जाँय। बकरा, भेड़, सूअर तथा अन्य प्राणी भी न दागे जाँय। तिष्य, पुनर्वसु, चौमासे में, तथा शुक्ल पक्ष में अश्व और गौं न दागें। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्ष के अंदर मैंने २५ बार लोगों को कारा से मुक्त किया। १४४८

४५

२६५३ षष्ठ लेख – धर्मानुराग – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ३५६ जनार्दन भट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १–१५५ हुल्श। मैंने राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद धर्मलिपि लिखवाई जिससे किसी प्रकार धर्म की वृद्धि हो। मैं लोगों के हित सुख के लिये देखता हूँ कि दूर और पास के लोग किस प्रकार १४४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत् खीष्टपूर्व

सुखी रह सकते हैं। मैं सभी संप्रदायों की पूजा करता हूँ किंतु आत्मा से धर्मानुराग हो यही मुख्य है। २६वें वर्ष में यह धर्म लेख लिखा गया।

४६

१६५४ सप्तम लेख – समालोचना – प्राकृत, ब्राह्मी ; अशोक के धर्म लेख ३६२ जनार्दनभट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १ – १३० हुल्श। यह सप्तम लेख स्तंभ लेखों में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण है। इसके दश भाग हैं यथा-(क) पूर्ववर्ती राजाओं को धर्म की वृद्धि में आशानुरूप सफलता न मिली। (ख) इसलिये देवप्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि मैं धर्म वृद्धि के द्वारा कुछ लोगों को अवश्य धर्म में तत्पर कराने का यत्न करूँगा। (ग) इस हेतु राजा ने धर्मश्रवण और धर्मोपदेश का प्रबंध किया जिससे धर्म की वृद्धि हो। रज्जुक और पुलिस भी मेरे उपदेशों का खूब प्रचार करें। (घ) इस हेतु देवप्रिय ने धर्मस्तंभ, धर्ममहामात्र और धर्मविधि की रचना की। (ङ) यात्रियों और पशुओं के सुख के लिये वटवृक्ष, आम्रवृक्ष, आठकोश पर पनशाला, कूप और धर्मशाला (निषद्य) का निर्माण करवाया। जिससे लोग धर्माचरण करें। (च) धर्ममहामात्रों को मैंने सभी धर्मों के सन्यरत और गृहस्थों के बीच अनुग्रह के लिये नियुक्त किया है। ये धर्ममहामात्य संघ, ब्राह्मण, आजीवक, निर्ग्रंथ तथा अन्य संप्रदायों की भी देखरेख करेंगे। (छ) मेरे पुत्र राजकुमार, तथा रानियों के दान कर्म के लिये राजधानी में तथा अन्यत्र लोग नियुक्त हैं जिससे धर्म की उन्नति और धर्माचरण हो। दया, दान, सत्य, शौच, प्रसन्नता और साधुता से ही धर्म की वृद्धि होती है। (ज) माता पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, वयोवृद्ध का सत्कार, ब्राह्मण – श्रमण, दीन, अनाथ, तथा दास सेवकों के साथ समुचित व्यवहार से धर्म की वृद्धि होगी। (झ) धर्म के नियमों की अपेक्षा ध्यान का महत्व अधिक है। धर्म के नियम इसलिये हैं कि अमुक अमुक प्राणी न मारे जाँय। किंतु ध्यान के द्वारा मनुष्यों में धर्म की वृद्धि, प्राणियों की अहिंसा और अनालंभ बढ़ा है। यह लेख २७ वें वर्ष में लिखा गया जिससे मेरे पुत्र और प्रपौत्र जब तक सूर्य और चंद्र हैं धर्माचरण करें। (ञ) जहाँ दो पत्थर के स्तंभ या शिला हों वहाँ यह धर्मलेख लिखा जाय जिस में यह चिरस्थायी रहे। १४४७

४७

१६५६ सारनाथ का स्तंभलेख – संघ में फूट – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ३८७ जनार्दनभट्ट; कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम १–१६१ हुल्श। पाटलिपुत्र तथा अन्य नगरों के संघ में कोई फूट न डाले। जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेगा उसे श्वेत वस्त्र पहना कर भिक्षुसंघ से बहिष्कृत कर दिया जाएगा। यह आज्ञा भिक्षु और भिक्षुणीसंघ को बता दें। ऐसा ही लेख उपासक भी लिख दें कि प्रति उपवास के दिन वे इस आज्ञा के मर्म को समझें। प्रत्येक उपवास के दिन इस आज्ञा का मर्म समझाने तथा प्रचार के १४४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

लिये महामात्र जाएँगे। आप अपने अधिकार क्षेत्र में सर्वत्र इस आज्ञा का प्रचार करें। कोट और विषय में भी इस आज्ञा को भेजें।

४८

१६५६ भाबू शिलालेख (अब कलकत्ता संग्रहालय) सद्धर्म) – प्राकृत, ब्राह्मी; अशोक के धर्मलेख ९८ जनार्दनभट्ट; कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् १–१७३ हुल्श। मगध के प्रियदर्शी राजा संघ को अभिवादनपूर्वक संबोधन करके कहते हैं कि वे विघ्नहीन और सुख से रहें। हे भदंत! आप जानते हैं कि बुद्ध, धर्म और संघ में मुझे कितना गौरव और आनंद होता है। भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा है सब अच्छा ही कहा है। किंतु जहाँ तक मेरी समझ में आता है मैं बतलाता हूँ जिनसे सद्धर्म चिरस्थायी होगा। हे भदंत! ये धर्म के पर्याय हैं – विनय, समुत्कर्ष, अलिकवसन, अनागत भय, मुनिगाथा, मौनसूत्र, उपतिष्य प्रश्न, लघुवाद, मृषावाद। हे भदंत! मैं चाहता हूँ कि इन धर्मों का पालन भिक्षुक और भिक्षुकी तथा उपासक और उपासिका बार बार सुनें और पालन करें। हे भदंत! इसलिये मैं यह लिखवा देता हूँ कि लोग मेरा अभिप्राय जानें। १४४५

४९

१६५६ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १५० बुह्लर; ल्युडर्स सूची २१८। उज्जयिनी से सोन (श्रवण) का दान। १४४५

५०

१६६१ साँचीस्तूप ५ १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०६; संख्या ८५ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३३६। अच्छावड के सेठ कुररवासी नागप्रिय द्वारा स्तंभदान। १४४०.

५. मौर्यकाल में साँचीस्तूप महत्वपूर्ण है। यहाँ का मुख्य स्तूप मौर्यकाल का या उससे की कृतिमों भी पहले का है। इस विशाल स्तूप के आधार का व्यास १०० फुट है। पूर्णावस्था में इसकी ऊँचाई ७७ फुट के लगभग थी। अब स्तूप का उपरी भाग टूट गया है। यह लाल पत्थर का अंडाकार है। इसके चारों ओर प्रदक्षिणा के लिये ऊँची मेधि थी। स्तूप के चारो ओर भूमि के समतल में एक अन्य प्रदक्षिणा-पथ है जो पाषाणवेष्टनी से घिरा है। यह चतुष्कोण प्रकोष्ठों में विभक्त है। चारो द्वारों पर नानाविध मूर्तियाँ, उत्कीर्ण चित्र, तथा खचित पच्चीकारी से युक्त तोरण हैं। इनमें बौद्ध धर्म की अनेक गाथाओं को चित्रित किया गया है।

कुछ इतिहासकारों के मत में साँची का यह विशाल स्तूप अशोक के १०० - २०० वर्ष बाद बना। पहले यहाँ ईंटों का सादा स्तूप था जिसने वर्तमान रूप धारण किया। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत् खीष्टपूर्व

५१

१६६१ सांचीस्तूप २ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १११; संख्या ७ बुहलर; ल्युडर्स सूची ५८१। अच्छावड के सेठ नागप्रिय का दान। १४४०

५२

१६६१ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७८; संख्या २०१ बुहलर; ल्युडर्स सूची ३४८। अच्छावाड के सेठ कुररवासी नागप्रिय और उसके पुत्र संघ का दान। १४४०

५३

१६६१ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-३७८; संख्या २०२ बुहलर; ल्युडर्स सूची ३५८। अच्छावड से किराती की माता का दान। स्यात् इसकी दो प्रतियाँ है। १४४०

५४

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १५१ बुहलर; जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ७–५६४ संख्या ३७ प्रिंसेप; ल्युडर्स सूची २१९ तथा ५६०। उज्जयिनी से तापशिष्य कीपुत्रवधू नजा का दान। १४४०

५५

१६६१ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख - प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १५२ बुहलर। ल्युडर्स २२०। उज्जयिनी से तापशिष्य ऋषिमित्र का दान। १४४०

५६

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्रफिया इंडिका २ – ३७४; संख्या १६० बुहलर; ल्युडर्स सूची २२८। उज्जयिनी से तपःशिष्य की सिंहदत्ता का दान। १४४०

५७

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०५; संख्या ७३ बुहलर; ल्युडर्स सूची ३०७। उज्जयिनी से तपः शिष्य की पुत्रवधू मित्रा का दान। १४४०

के अवशेषों में स्तूप के दक्षिण द्वार पर एक प्रस्तरस्तंभ का अवशेष मिला है। पहले यह ४२ फुट ऊँचा था। इसके शिरोभाग पर भी सारनाथ स्तंभ के सदृश सिंहमूर्तियां थीं। ये मूर्तियाँ भग्नप्राय हैं तथापि अशोक - काल की उच्च कला का स्मरण दिलाती हैं। अशोक का भी एक लेख इस स्तंभ पर उत्कीर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत खीष्टपूर्व

५८

१६६१ सांचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-३८०; संख्या २२३ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४०६; भग्न। उज्जयिनी से तापशिष्य··· धर्मदत्ता का दान। १४४०

५९

१६६२ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७८; संख्या २०४ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३९०। अठकनगरवासी भिक्षु गंगदत्त का दान। १४३९

६०

१६६३ साँची स्तूप २ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-११२; संख्या १३ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ६००। अधपौरिक (= अर्द्धपुर के) अगिल का दान। १४३८

६१

१६६३ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-१०५; संख्या ७२ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३०६। अरापान से आषाढ़माता का दान। १४३८

६२

१६६३ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०७ संख्या ८९ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३५३। अरपान से देवक का दान। १४३८

६३

१६६३ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-३७९; संख्या २१० बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३९६; भग्न। अरपन से आषाढ़ का दान। १४३८

६४

१६६३ साँचीस्तूप १–अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७९; संख्या २११ बुह्लर, ल्युडर्स सूची ३९७; भग्न। अरपन से ··· दान। १४३८

६५

१६६३ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-३७९; संख्या २१२ बुह्लर, ल्युडर्स सूची ३९८। अरपनवासी सिंह का दान। १४३८

६६

१६६५ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख–प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्रफिया इंडिका २–९८; संख्या ११ बुह्लर; ल्युडर्स सूची १८४। अवेयक के सेठ श्रामणेर का दान। १४३६

६७

१६६५ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-१०३; संख्या ५७ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २८३। अवेयक सेठ सामनेर का दान। १४३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिसंवत् खीष्टपूर्व

६८

१६६६ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-१०७; संख्या ६१ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३५५। अश्ववती से वनिज ऋषिगुप्त का दान। १४३५

६९

१६६६ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७९; संख्या २१५ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४०१; मग्न। अश्ववती ग्राम का दान। १४३५

७०

१६६६ साँचीस्तूप २ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३९९; संख्या ४३ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ६१९। आजनाव से आवासिका का दान। १४३५

७१

१६७१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २४३; संख्या ५४ कनिंघम; ल्युडर्स सूची २१५। इसिमिता से वहिल का दान। १४३०

७२

१६७१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७३; संख्या १५३ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २२१। उज्जयिनी से मूलदत्ता का दान। १४३०

७३

१६७१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी। एपिग्राफिया इंडिका २–३७३; संख्या १५४ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २२२। उज्जयिनी से बलका का दान। १४३०

७४

१६७७ नागार्जुनीय पर्वत गुफाभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसायटी ६ – ६७३ प्रिंसेप; इंडियन एंटिक्वेरी २० – ३६४ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ९५४। देवानां प्रिय दशरथ ने आजीवक भदंतों को वाहियका कुभा दान की। १४२४

७५

१६७७ नागार्जुनीय पर्वत गुफाभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ६–६७६ प्रिंसेप; इंडियन ऐंटिक्वेरी २० – ३६५ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ९५५। देवानां प्रिय दशरथ ने आजीवक भदंतों को गोपिका कुभा दान की। १४२४

७६

१६७८ नागार्जुनीय पर्वत गुफाभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १६ – १ - ४१३; संख्या ३ किट्टोई; इंडियन एंटिक्वेरी २०–३६५ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ९५६। देवानां प्रिय दशरथ ने आजीवक भदंतों को वडथिका कुभा दी। जब तक सूर्य और चंद्र हैं वे इसमें निवास करें। १४२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

विगत ५० वर्षों के भीतर हिंदी साहित्य के इतिहास की प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई है। देश के स्वाधीन और हिंदी के राज्यभाषा हो जाने की घोषणा के बाद हिंदी भाषा और साहित्य का क्रमबद्ध तथा विस्तृत इतिहास प्रस्तुत कर देना एक दो व्यक्तियों के बूते के बाहर की बात थी। यही समझकर इस कार्य को सभा ने अपने हाथों लिया और हिंदी साहित्य के बृहत् इतहास को १७ भागों में प्रस्तुत करने की योजना बनाई। हिंदी के सभी चोटी के विद्वानों और हिंदी प्रदेश की सरकारों ने इस योजना को मान्यता दी, सभा को इन सबका सहयोग प्राप्त हुआ और राष्ट्रपति श्री डा० राजेंद्रप्रसाद जी ने आशीर्वाद देने की कृपा की। कार्य द्रुतगति से अग्रसर हो रहा है। निम्नलिखित भाग प्रकाशित हो चुके हैं—

प्रथम भाग

हिंदी साहित्य की पीठिका

संपादक – श्री डा० राजबली पांडेय

षष्ठ भाग

शृंगारकाल (रीतिबद्ध)

संपादक डा० नगेंद्र

रायल अठपेजी आकार — **आफसेट कागज**

मूल्य प्रत्येक भाग २५)

षोडश भाग

हिंदी का लोक साहित्य

संपादक

श्री राहुल सांकृत्यायन तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय

प्रकाशित हो गया।

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

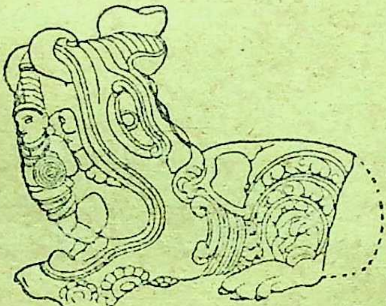

प्रकाशक — डा० राजबली पांडेय, प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक—शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ६५ संवत् २०१७ अंक ३

☆

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : श्री करुणापति त्रिपाठी

डा० बच्चनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

★

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

वार्षिक मूल्य १०) : : इस अंक का २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१ — नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२ — हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३ — भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४ — प्राचीन अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

१ — प्रतिवर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते है।

२ — पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

३ — पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास में भेजी जाती है।

४ — लेखों की पांडुलिपि कागज के एक ओर लिखी हुई, स्पष्ट एवं पूर्ण होनी चाहिए। लेख में जिन ग्रंथादि का उपयोग या उल्लेख किया गया हो उनका संस्करण और पृष्ठादि सहित स्पष्ट निर्देश होना चाहिए।

५ — पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है। परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५
संवत् २०१७
अंक ३

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

संपादकमंडल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
श्री करुणापति त्रिपाठी
डा० बच्चनसिंह (संयोजक)

सहायक संपादक

श्री राधाविनोद गोस्वामी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसूची

१. अवधी के ध्वनिग्राम — श्री दिनेशप्रसाद शुक्ल २०३

२. देव और लक्षणा — डा० राममूर्ति त्रिपाठी २१७

३. भारतीय भूगोलशास्त्र में जैनों का योग—श्री मायाप्रसाद त्रिपाठी ... २३५

४. महात्मा पहलवानदास कृत उपखानविवेक — श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' २४५

५. हिंदी - व्याकरण - संबंधी गवेषणा – ३ (वाक्य के सहायक अंगों की अभिव्यक्ति) — डा० स० म० दीमशित्स २६१

विमर्श

एक अलभ्य टीका के प्रकाश में मेघदूत की पाठ समस्या — श्री सुदर्शन सिंह ... २६७

चयन

लायोनेल डेविड बार्नेट – एक महान् भाषाविद् — डा० महादेव साहा ... २७२

समीक्षा

कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना — श्री करुणापति त्रिपाठी ... २८४

बचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी री महेसदासौत री खिड़िया जगा री कही — श्री वासुदेव सिंह ... २८५

श्री गुरु ग्रंथ दर्शन — डा० विनयमोहन शर्मा २९०

'साठ वर्ष : एक रेखांकन' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद' — डा० बच्चनसिंह ... २९३

साहब बीबी गुलाम — डा० बच्चन सिंह २९५

पराड़कर जी तथा पत्रकारिता — डा० बच्चन सिंह २९६

आधुनिक हिंदी - कवियों के काव्य सिद्धांत — श्री शैलेंद्र २९७

भारतीय अभिलेखसूची (अंत में) —डा० देवसहाय त्रिवेद ... ... पृ० २५-३२

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६५] कार्तिक, संवत् २०१७ [अंक ३

अवधी के ध्वनिग्राम*

दिनेशप्रसाद शुक्ल

१. १ अवधी पूर्वी - हिंदी की एक प्रमुख बोली है। यह एक विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है। यह मुख्यतः इलाहाबाद, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, लखीमपुर खीरी, सीतापुर, बाराबंकी, लखनऊ, रायबरेली, उन्नाव, फतेहपुर में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त मिर्जापुर, जौनपुर तथा बाँदा आदि के भी कुछ हिस्सों में इस बोली का विस्तार है। इस समस्त क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, १ – उत्तरी, २ – दक्षिणी। ऊपर के क्रम में इलाहाबाद से लेकर बहराइच तक दक्षिणी तथा उसके बाद के जिले उत्तरी अवधी क्षेत्र में आते हैं। यह वर्गीकरण भाषा - संबंधी समानता को दृष्टि में रखकर किया गया है।

१. २ प्रस्तुत निबंध में अवधी के ध्वनिग्रामों को प्रस्तुत किया गया है। अवधी क्षेत्र की अनेक उपबोलियों की ध्वनिग्रामीय प्रणाली (फोनेटिक सिस्टम) में यत्किंचित ही अंतर है। यहाँ मुख्य रूप से इलाहाबाद में उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही ध्वनिग्रामों को दिया जा रहा है। यह सामग्री मेजा तहसील में स्थित, इलाहाबाद से मिर्जापुर जानेवाली रेलवे लाइन के उत्तर, इलाहाबाद से लगभग तीस मील दूर 'परानीपुर' गाँव से एकत्र की गई है। इस सामग्री के लिए लेखक स्वयं सूचक है, किंतु जहाँ भी किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव हुआ है वहाँ इस क्षेत्र के अन्य लोगों के सहयोग से ठीक कर लिया गया है।

१. ३ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित ध्वनि - ग्रामीय प्रणाली मिलती है –

व्यंजन —	प्	त्	ट्	च्	क्
	फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्

* यह निबंध प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी०लिट० के तत्वावधान में लिखा गया है। इसके लिए लेखक डा० तिवारी का आभारी है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्	द्	ड्	ज्	ग्
भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्
	स्			ह्
म्	न्			ङ्
	र्			
		ड़्		
	ल्			
व्			य्	

स्वर — अ [ə], आ [a], इ [I], ई [i], उ [U], ऊ [u], ए [e], औ [æ]।

अनुनासिकता — [नेसलाइजेशन] — ँ

विवृति— [जंक्चर] — १. आंतरिक — +

काकु — [पिच] : — १, २, ३, (निम्न, मध्य, उच्च)।

१. ४ आगे समस्त स्वरों और व्यंजनों को उच्चारण तथा प्रयत्न के अनुसार वर्हिष्कृत किया गया है —

१. ४. १ **व्यंजन** — अ० = अघोष

स० = सघोष

				ओष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
अवरोधी	स्पर्श	अ०	अल्पप्राण	प्	त्	ट्	च्	क्	
		अ०	महाप्राण	फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्	
		स०	अल्पप्राण	ब्	द्	ड्	ज्	ग्	
		स०	महाप्राण	भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्	

		ओष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
	संघर्षी	स्					ह्
	नासिक्य	म्	न्			ङ्	
अवरोधी	लुंठित		र्				
	उत्क्षिप्त			ड़्			
	पार्श्विक		ल्				
	अर्धस्वर	व्			य्		

विशेष — आगे चित्र संख्या १ देखिए।

१. ५. १ प्रथम पंक्ति के व्यंजन अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हैं।

। प । द्वयोष्ठ्य स्पर्श है : पार् – कपार – पाप्

। त । वर्त्स्य स्पर्श है : तार् – पातर् – ताव

। ट । मूर्धन्य स्पर्श है : टेरी (आम की पत्तों सहित टहनी) – मटर् – घाट

। च । तालव्य स्पर्श संघर्षी है : चाल् – अँचार – नाँच्

। क । कंठ्य स्पर्श है : कार् (काम) – सिर् का – नाक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. ५. २ द्वितीय पंक्ति के व्यंजन अघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजन है। उच्चारणस्थान की दृष्टि से ये व्यंजन भी ऊपर के व्यंजनों के ही समान है।

। फ । फर् – सफर् – साफ् — इसका एक सहस्वन [फ़] है जो कि शब्द के अंत में आता है।

। थ ।	थन् – पथरी – माथ्
। ठ ।	ठाट् – ठठेरी – काठ्
। छ ।	छाल् – कछार् – कोंछ्
। ख ।	खार् – बोखार – पाख्

१. ५ ३ तृतीय पंक्ति के व्यंजन सघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन है। उच्चारणस्थान की दृष्टि से ये व्यंजन भी ऊपर के व्यंजनों के ही समान है।

। ब ।	बार् – कबार् – राब्
। द ।	दान् – खदान् – कद्, हद्
। ड ।	डार् – रेडियो – [अन्य स्पर्शों से इसका वितरण कम है]
। ज ।	जर् [ज्वर] – काजर् – लाज् [लज्जा]

१. ५. ४ चौथी पंक्ति के व्यंजन सघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजन है। उचारणस्थान की दृष्टि से पहले के स्पर्शों के ही समान हैं।

। भ् ।	भार् – भभूत – लाभ्
। ध् ।	धार् – उधार् – साध् [इच्छा]
। ढ् ।	ढेर् (अधिक) – बेढनी – [बेढ़नी] – ठन्ढ् – इसका एक सहस्वन है

[ढ़]। [ढ] आदि अथवा ध्यंजन संयोगों में आता है तथा [ढ़] अन्यत्र।

। झ् ।	झाग् – गीझन् – सोझ्
। घ् ।	घर् – उघार् (खुला) – सङ्घ्

१. ५. ५ पाचवीं पंक्ति के व्यंजन संघर्षी व्यंजन हैं।

। स । वर्त्स्य, अघोष व्यंजन है। सार् – ओसार् – नास् (नाश)

। ह । काकल्य, अघोष व्यंजन है। हार् – ओहार् – साह; इसका एक सहस्वन [ह] शब्द के अंत मे आता है। कभी कभी यह लुप्त भी हो जाता है।

१. ५. ६ छठीं पंक्ति के व्यंजन अनुनासिक व्यंजन है।

। म ।	द्वयोष्ठ्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। मार् – हमार् – हम्
। न् ।	वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। नार् – किनारा – कान्।

इसके तीन सहस्वन हैं जिनका वितरण निम्न प्रकार से है।

। न् । [ञ्] स्पर्श संघर्षी [चवर्ग] व्यंजनों के पूर्व। यथा, चञ्चल
[न्] मूर्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व। यथा, पन्डा, किंतु इन्हें चन्चल तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्डा करके ध्वनिग्रामीय रूप में ही लिखा गया है।

[न्] अन्यत्र यथा, कन्द — सन्की

।ङ्] कंठ्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। इसका वितरण अन्य अनुनासिक व्यंजनों की अपेक्षा सीमित है। यह सर्वदा कंठ्य ध्वनियों के पूर्व शब्द के मध्य अथवा अंत में आता है। इसको पृथक् ध्वनिग्राम इसलिये माना गया है क्योंकि कंठ्य ध्वनियों के पूर्व [न्] ध्वनिग्राम भी व्यंजन संयोगों में आता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित युग्मों में व्यतिरेक देखा जा सकता है —

कन्खी – पङ्खी

तिन्का – सङ्का

फुन्गी – चुङ्गी

१. ४. ७ सातवीं पंक्ति का व्यंजन लुंठित व्यंजन है।

।र्। वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है।

रार् – करम् – मार्

१. ४. ८ आठवीं पंक्ति का व्यंजन पार्श्विक व्यंजन है।

।ल्। वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है।

लार् – कलाई – ताल्

१. ४. ९ नवीं पंक्ति का व्यंजन उत्क्षिप्त व्यंजन है।

।ड्। मूर्धन्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। इसका वितरण ।ङ्। की भाँति सीमित है। वस्तुतः 'रेडियो' शब्द के प्रचलन के पूर्व [ड़्] तथा [ड्] एक ही ध्वनिग्राम के दो पृथक - पृथक सहस्वन थे जिनका वितरण निम्नप्रकार से था —

।ड्। [ड्] आदि अथवा व्यंजन संयोगों में।

[ड़्] अन्यत्र

किंतु 'रेडियो' शब्द के प्रचलन से अब ।ड्। तथा ।ड़्। पृथक पृथक ध्वनिग्राम है। ।ड्। तथा ।ड़्। का, शब्द के मध्य में, दो स्वरों के बीच में व्यतिरेक मिलता है। यथा — ।पेड़ा – रेडिओ। – आजकल भी कुछ व्यक्तियों के लिये जो कि रेडिओ शब्द से परिचित नहीं है। [ड्] तथा [ड़्] एक ध्वनिग्राम के दो सहस्वन ही हैं।

१. ४. १० दसवीं पंक्ति के व्यजन अर्धस्वर हैं।

।य्। तालव्य, सघोष अर्द्धस्वर व्यंजन है। इसका वितरण बहुत ही सीमित है। यथा, ।यार्। शब्द के मध्य में जहाँ संवृत ।ई अथवा इ। के बाद उससे कुछ विवृत स्वर आता है तो य् की श्रुति होती है। यथा –

।नरिअर अथवा नरियर।, ।किआरी अथवा कियारी।, ।खअर् अथवा खयर्।

।व्। द्वयोष्ठ्य, सघोष अर्धस्वर व्यंजन है। इसका भी वितरण ।य्। की भाँति सीमित है। वार्। शब्द के मध्य में जहाँ संवृत स्वर।ऊ अथवा उ। के बाद उससे कुछ विवृत स्वर आता है तो व् की श्रुति होती है। यथा –

।सुअर् अथवा सुवर्।, ।पाअदान् अथवा पावदान्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्धस्वरों का व्यंजन के ही समान प्रयोग किया गया है क्योंकि । य् । तथा । व् । के उच्चारण में स्वरों की अपेक्षा व्यंजन के ही लक्षण अधिक हैं।

१. ५ स्वरों में अ, आ को छोटा तथा बड़ा अथवा ह्रस्व - दीर्घ कहकर अभिहित किया जाता है। इस प्रकार से इन्हें एक ही ध्वनिग्राम के दो पृथक - पृथक सहस्वन होना चाहिए किंतु यह धारणा अवैज्ञानिक एवं भ्रमपूर्ण है। । अ । तथा । आ । दो पृथक - पृथक ध्वनिग्राम हैं क्योंकि इनमें केवल मात्रा भेद ही मात्र नहीं है इनके उच्चारणस्थान में भी अंतर है। अतः इन्हें पृथक - पृथक ध्वनिग्राम ही मानना वैज्ञानिक एवं उचित है। इसी प्रकार ह्रस्व - दीर्घ स्वरों – यथा – इ - ई; उ - ऊ; ए - ऐ; ओ - औ के विषय में भी समझना चाहिए।

१. ५. १

। अ । यह अर्ध - विवृत मध्यस्वर है।

यथा – अजगर्, अमर्, मार......[आज्ञा मारो] व्यंजनों के बाद यदि । अ । आता है तो उसे पृथक न लिखकर उसके हलंत (्) रूप को हटा दिया जाता है। यथा —

। अ + म् + अ + र् को अमर् । लिखा गया है। यह शब्द के अंत में प्रायः नहीं आता, किंतु कभी कभी आज्ञा अथवा कुछ अन्य स्थलों पर शब्द के अंत में । अ । का उच्चारण होता है।

। आ । यह विवृत पश्च स्वर है।

आम् – मसाला – नाला। व्यंजनों के बाद जब यह आता है तो इसे व्यंजन के बाद (ा) चिह्न से लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । न् + आ + ल् + आ = नाला।

। इ । यह संवृत अग्र स्वर है।

इम्ली – गइआ – भाइ (भाई) – इसे व्यंजन के पूर्व (ि) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं यद्यपि आता यह व्यंजन के बाद है। यथा — । क् + इ + स् + आ + न् । अथवा । किसान् ।

। ई । यह संवृत, । इ । की अपेक्षा उच्चस्थानीय अग्रस्वर है।

ईंटा – सीना – माली – यह जब व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ी) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । स् + ई + न् + आ = सीना।

। उ । यह संवृत पश्च स्वर है।

उठब् – गुर् – माँगु – गाउँ – जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ु) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । ग् + उ + र् = गुर ।

। ऊ । यह संवृत, । उ । की अपेक्षा उच्चस्थानीय पश्च स्वर है। ऊखि – मसूर् – नाऊ। जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ू) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । म् + अ + स् + ऊ + र् = मसूर् ।

। ए । यह अर्ध संवृत अग्रस्वर है। एक – अधेला – आगे। जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (े) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । अ + ध् + ए + ल् + आ = अधेला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

। ऐ । यह अर्ध विवृत अग्रस्वर है । ऐना – मैंना — जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ै) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । म् + ऐ + न् + आ = मैंना ।

। ओ । यह अर्ध संवृत पश्चस्वर है । ओला – कोस् – जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ो) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । क् + ओ + स् = कोस् ।

। औ । यह अर्ध विवृत पश्चस्वर है । यथा — औरत – नौकर् – इसे । यह यदि व्यंजन के बाद आता है तो (ौ) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा – । न् + औ + क् + अ + र् = नौकर् ।

१. ५. १ ऐ तथा औ का उच्चारण अधिकतर अ ए तथा अ ओ करके किया जाता है। किंतु बेल तथा बैल और खोल (त) तथा खौल (त) आदि युग्मों में व्यतिरेक मिलता है। इसीलिए ऐ तथा औ को भी पृथक ध्वनिग्राम माना गया है ।

१. ६. १ स्वरों का मात्राकाल, उनके स्थान तथा प्रयोग पर आधारित होता है। प्रायः आदि का स्वर, शब्द के अंत में आनेवाले उसी स्वर से दीर्घ होता है। इसके अतिरिक्त एकाक्षर शब्दों में प्रयुक्त स्वर, अनेकाक्षर शब्दों के उसी स्वर से, दीर्घ होता है। यथा — इनारा – गाइ , काम् – मोकाम् ।

१. ६. २ व्यंजनों के भिन्न - भिन्न प्रकारों (स्पर्श - स्पर्श संघर्षी, अघोष, सघोष) के उच्चारण में मात्राकाल पृथक होता है। प्रायः सघोष स्पर्श व्यंजनों की अपेक्षा अघोष स्पर्श व्यंजन मात्राकाल में दीर्घ होते हैं। सघोष स्पर्श व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में आता है तो उसका घोषत्व (वायसिंग) अधिक बली (स्ट्रौंग) होता है ।

१. ६. २ निरनुनासिक स्वरों की अपेक्षा अनुनासिक स्वरों का मात्राकाल अधिक होता है। यथा —

। पउसला – पउँसला ।

१. ७ महाप्राण व्यंजन जो कि अल्पप्राण + ह के बराबर हैं, ध्वनिग्राम की पृथक इकाई (यूनिट फोनेमी) माने गए हैं किंतु ल्ह, न्ह आदि जोकि ल् + ह्, न् + ह हैं व्यंजन संयोग के रूप में माने गए हैं क्योंकि महाप्राण व्यंजनों (ख, घ) आदि में जो स्फोट होता है वह अल्पप्राण व्यंजनों से पृथक नहीं किया जा सकता, अर्थात ह ध्वनि अल्पप्राण ध्वनि के साथ अत्यधिक मिली हुई रहती है किंतु ल्ह्, न्ह् में यह प्रवृत्ति नहीं है। ल् + ह् ल् या न् + ह् — न् के बाद एक अल्प विराम आ जाता है। इसके अतिरिक्त महाप्राण ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा एक ही स्थान पर टिकी रहती है किंतु ल्ह्, न्ह् आदि ध्वनियों में एक स्थान पर नहीं रह पाती । अतः ख, घ आदि व्यंजनों को ध्वनिग्राम की इकाई (यूनिट फोनेमी) तथा ल्ह्, न्ह् को व्यंजन संयोग (कान्सोनेंट क्लस्टर) मानना ही अधिक संगत है ।

१. ८ अनुनासिकता को ध्वनिग्रामिक (फोनेमिक) माना गया है क्योंकि इसके कारण अर्थ में व्यतिरेक हो जाता है। यथा — गोद् – गोंद्; साप् – साँप् ।

१. ९. १ अनुनासिक व्यंजन अपने पूर्व के स्वर को अनुनासिक कर देते हैं, कभी कभी बाद के स्वर भी अनुनासिक हो जाते हैं। यथा — गाना को गाँना । सरमा – सरमाँ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. १० व्यंजनसंयोग – एक से अधिक व्यंजनध्वनियों के संयुक्त रूप को संयुक्त व्यंजन अथवा व्यंजनसंयोग कहा जाता है। इसके दो प्रकार के उदाहरण मिलते हैं — (१) एकरूप व्यंजनों का संयोग (२) भिन्नरूप व्यंजनों का संयोग। पक्का, खट्टा, चुप्पा आदि प्रथम प्रकार के उदाहरण हैं तथा मट्ठा, गड्ढा, बर्धा आदि द्वितीय प्रकार के। आगे व्यंजन-संयोगों को विस्तार के साथ स्पष्ट किया जायगा।

१. १०. १ अवधी में आदि - व्यंजन - संयोग अधिकतर उत्तरी बोलियों में ही मिलते हैं। किंतु प्राप्त सामग्री के आधार पर कुछ आदि - व्यंजन - संयोग मिले हैं जो निम्नलिखित हैं — प् + र् = प्रेम् या प्राग् (प्रयाग), प्रात (प्रातः) रूप में; स् + व = स्वामी (इसे कुछ लोग सुआमी के रूप में बोलते हैं)

१. १०. २ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित मध्य - व्यंजन - संयोग मिले हैं जिन्हें एक कोष्टक के द्वारा भी स्पष्ट किया गया है (द्रष्टव्य : कोष्टक, चित्र – २)

स्पर्श + स्पर्श अथवा अन्य व्यंजन

प् + प् — छप्पर
प् + फ् — कप्फन्
प् + त — छप्ता
प् + न् — सप्ना
प् + ट् — चप्टा
प् + क् — चप्का
प् + च् — उप्चार
प् + स् — लप्सी
ब् + ब् — डब्बा
ब् + भ् — जिब्भा (जिह्वा)
ब् + क् — दुब्का (छिपा हुआ)
त + त — पत्ता
त + थ् — पत्थर्
त + क् — दुत्कार्
द् + द् — गद्दा
द् + ध् — श्रद्धा
ट् + ट् — खट्टा
ट् + ठ् — भट्ठा
ट् + क् — खट्किरवा (आ)
ड् + ड् — कबड्डी
ड् + ढ् — गड्ढा
च् + च् — कच्चा
च् + छ — मच्छर्
च् + क् — हिच्की
ज् + ज् — लज्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज् + झ् — खुज्झा
क् + क् — एक्का
क् + त — चुक्ता
न् + ट् — नक्टी
क् + ठ् — लक्ठा
क् + च् — सिक्चा
क् + ख — भुक्खड़
ग् + ग् — लग्गी
ग् + घ् — बग्घी
क् + स् — बक्सा (जानवरों के खिलाने का पौदा)

अनुनासिक + अनुनासिक तथा अन्य व्यंजन

म् + म् — लम्मा — (दूर)
म् + फ् — जम्फर्
म् + ब् — लम्बा (उच्चा - विस्तृत)
म् + भ् — अचम्भा, खम्भा (खम्हा)
म् + प् — धुम्पा
म् + द् — उम्दा
म् ,, क् — भुम्का
म् ,, ट् — चिम्टा
म् ,, छ् — गम्छा
म् ,, ह् — बरम्हा
म् ,, ल् — इम्ला
न् ,, न — झन्ना
न् ,, प् — कन्पटी
न् ,, ट् — कन्टोप
न् ,, ठ् — कन्ठी
न् ,, ढ् — ठन्ढी
न् ,, ड् — पन्डा
न् ,, च् — पन्चाइत (पञ्चाइत)
न् ,, ज् — पन्जा (पञ्जा)
न् ,, छ् — पन्छी (पञ्छी)
न् ,, क् — किन्की
न् ,, ख् — कन्खी
न् ,, ग् — फुन्गी
न् ,, घ् — घन्घोर
न् ,, त — सन्ती
न् ,, थ् — खुन्था (खीन्था)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न् + द् — रन्दा
न् ,, ध् — कन्धा (या गन्धाब)
न् ,, स् — फुन्सी
म् ,, ह् — आन्हर्
ङ् ,, क् — सङ्का (शंका)
ङ ,, ख् — पङ्खा
ङ् ,, ग् — गङ्गा
ङ् ,, घ् — सङ्घो

लुंठित + अन्य व्यंजन

र् + क् — खिर्की
र् ,, ख् — पर्खी (एक लोहे का बना अस्त्र जिसे दीवाल आदि खोदने में प्रयोग किया जाता है)
र् ,, ग् — मुर्गा
र् ,, घ् — कर्घा
र् ,, च् — मिर्चा
र् ,, छ् — बर्छी
र् ,, ज् — दर्जी
र् ,, झ् — खर्झाट्
र् ,, त — सर्त
र् ,, थ् — अर्थी
र् ,, द् — जर्दा
र् ,, ध् — बर्धा
र् ,, न् — चर्नामिर्त
र् ,, प् — खुर्पी
र् ,, फ् — बर्फी
र् ,, ब् — चर्बी या (सर्बत)
र् ,, म् — कुर्मी (एक जाति)
र् ,, र् — बेर्रा (जौ और चना मिला हुआ खाद्य पदार्थ)
र् ,, स् — गोर्सी

पार्श्विक + अन्य व्यंजन अथवा ऊष्म (स) + अन्य व्यंजन

ल् + क् सल्कले (अच्छी तरह)
ल् ,, ग् — अलगाब् (अलग होना)
ल् ,, च् — उल्चब
ल् ,, ज् — इल्जाम्
ल् ,, छ् — कल्छुल्
ल् ,, झ् — उल्झब्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल् + त् चलता
ल् ,, थ् — पल्थी
ल् ,, द् — हल्दी (शीघ्र)
ल् ,, न् — चलनी
ल् ,, ट् — उल्टा
ल् ,, ड् — डल्डा
ल् ,, ब् — मतल्बी
ल् ,, फ् — गल्फर्
ल् ,, म् — गुल्मा (ताश का एक पत्ता)
ल् ,, ह् — चूल्हा
स् ,, क् — चस्का, कस्कुट, (पीतल, ताँबा)
स् ,, ख — मस्खरा
स् ,, च् — निस्चर्
स् ,, छ् — निस्छल्
स् ,, त — पिस्ता, बस्ता
स् ,, थ् — अस्थान
स् ,, द् — तस्दीक
स् ,, ट् — मुस्टी
स् ,, प् — चस्पा
स् ,, म् — चस्मा
स् ,, व् — कस्विन् (तुर्किन)

१. १०. ३ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित अंत - व्यंजन - संयोग मिले हैं जिन्हें एक कोष्टक द्वारा भी दिखलाया गया है (द्रष्टव्य : कोष्ठक, चित्र – ३)।

न् + द् — कन्द्
न् ,, ध् — गन्ध्
न् ,, ज् — रन्ज्
न् ,, च् — पन्च्
न् ,, ट् — घन्ट्
न् ,, स् — कन्स
न् ,, त — सन्त
न् ,, ठ् — लन्ठ्
न् ,, ड् — डन्ड्
न् ,, ढ् — ठन्ढ
त् ,, थ् — पत्थ्
ङ् ,, क् — रङ्क्
ङ् ,, ख् — संङ्ख्
ङ् ,, ग् — सङ्ग्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ् + घ् — सङ्घ्
स् ,, म् — भस्म
स् ,, त — जुस्त

१. १० प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित स्वरसंयोग मिले हैं जिन्हें एक कोष्टक के द्वारा स्पष्ट किया गया है (द्रष्टव्य : कोष्टक, चित्र संख्या - ४)।

इ + ई — पिई (पिऊँ)
इ ,, ए — सिए (सिलेगा)
इ ,, आ — दिआ (दीपक)
इ ,, उ — घिउ (घी)
ए ,, इ — देइ (दे)
ए ,, ई — देई (दूं)
ए ,, ए — खेए —(खेएगा)
ए ,, उ — खेउ (खेओ)
अ ,, ई — नई (नवीन)
अ ,, इ — गइ (गई)
अ ,, ए — गएन् (गए)
अ ,, उ — जउ (यदि)
अ ,, ऊ — गऊ (गाय)
आ ,, ई — आई (आऊँ)
आ ,, इ — गाइ (गाय)
आ ,, ए — आए (आएगा)
आ ,, उ — आउ (आओ)
आ ,, ऊ — नाऊ (नाई)
ओ ,, इ — ओइ (वे ही)
ओ ,, ई — बोई (बोऊँ)
ओ ,, ए — धोएस् (धोया)
ओ ,, अ — बोअा (व्) न् (बोने का सामान) धोअ (ब्) न्
ओ ,, आ — कोआ (वा)
उ ,, ई — धुई (सपंत, ईख आदि में एक प्रकार का अँखुवा जो सफेद रंग का होता है)
उ ,, इ — दुइ (दो)
उ ,, ए — उए (उगेगा)
उ ,, अ — ऊअब (उगना)
उ ,, आ — दुआ (वा) र् (द्वार)
ऊ ,, ई — रूई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरसंयोग — चित्र ४

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
अ			×	×	×		×			
आ			×	×	×	×	×			
इ		×		×	×		×			
ई										
उ	×	×	×	×			×			
ऊ				×						
ए			×	×	×		×			
ऐ										
ओ	×	×	×	×			×			
औ										

इस कोष्ठक में स्वर - संयोग प्रदर्शित है। इनके उदाहरण ऊपर दिए गए हैं।

१. १०. १ प्रायः सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी स्वर - संयोग में आते हैं किंतु एक साथ एक से अधिक अनुनासिक स्वर नहीं आते।

१. १०. २ अवधी में प्रायः दो स्वरों का संयोग मिलता है किंतु कुछ तीन स्वरों के भी संयोग मिलते हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित तीन स्वरों के संयोग मुख्य हैं —

अ + इ + आ — गइया (गाय)
अ ,, उ ,, आ — कउआ (कौवा)
आ ,, इ ,, उ — खाइउ (खाया ?)
इ ,, अ ,, उ -- बसिअउटा (बासी)
इ ,, आ ,, ऊ — सिआऊ (सिलाया ?)
इ ,, आ ,, उ — सिआउ (सिलाओ)
उ ,, इ ,, आ — रुइआ (रूई)
ओ ,, इ ,, आ — डोइआ (महुवे के फल के अंदर एक ठोस पदार्थ जिसका तेल निकाला जाता है।)

१. ११ अक्षर (सिलेबल) -- अवधी में निम्नलिखित आक्षरिक प्रणाली (सिलेबिक पैटर्न) मिलती है। नीचे स्वर के लिए अ तथा व्यंजन के लिए क प्रतीक प्रयुक्त है।

१. अ — ए, ई (यह)
२. अ क — आम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. अ अ क — अइँठ (गर्व)
४. क अ — घी ऊ, जी (जिउ)
५. क अ क क -- सम्म (पूरा)
६. क अ अ -- सिउ (शिव).
७. अ क क -- अस्त, मस्त
८. अ क क अ क -- इस्कूल
९. अ क अ -- बार्
१०. क अ क क — मर्द्
११. अ क क क अ -- इस्त्री

यहाँ ऊपर के उदाहरण में अक्षर से तात्पर्य है --

'शब्द के अंतर्गत उन ध्वनि - समूहों की छोटी से छोटी इकाई जिनका उच्चारण एक साथ हो तथा उनका कोई अर्थ हो ?"

१. १२ विवृति 'अवधी' में ध्वनिग्रामिक है क्योंकि इसके कारण शब्दों में अर्थ का अंतर हो जाता है। यथा - सिरका और सिर् + का। इन दो युग्मों में प्रथम में बिना किसी विराम के उच्चारण किया जाता है जिसका अर्थ ईख के शर्बत से बना हुआ वह पदार्थ, जिसमें आम, कटहल आदि के फलों को टुकड़े के रूप में डालकर अँचार के समान खाया जाता है, होता है किंतु द्वितीय में सिर के बाद क्षण भर के लिये रुककर, का, उच्चारण होता है, जिसका कि अर्थ सिर का होता है।

१. १३ अवधी में यद्यपि सुर का कोई विशेष महत्व नहीं है, किंतु फिर भी यदाकदा इसके प्रयोग से अर्थ में भिन्नता आ जाती है अतः यह भी ध्वनिग्रामिक है। सुर की भिन्नता को अवधी में पूर्ण दक्ष व्यक्ति ही समझ सकता है अन्य भाषा - भाषियों को सुर के द्वारा अंतर नहीं प्रतीत होता। सुर के कारण उत्पन्न अंतर को एक वाक्य तथा शब्द के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

(१) २ तूँ २ + घरे + २ जाथय १ —> (सामान्य कथन)
(२) ३ तूँ + २ घरे + २ जाथय १ | (तुम घर जा रहे हो अन्य कोई नहीं)
(३) २ तूँ + ३ घरे + २ जाथय १ | (तुम क्या घरे जा रहे हो ?)
(४) २ तूँ + २ घरे + ३ जा + थय १ | (तुम घर जा रहे हो क्या ? नहीं)

इसी को हम निम्न ढंग से भी प्रदर्शित करते हैं -

(१) २ तूँ + २ घरे + २ जाथय १

(२) ३ तूँ + घरे + जाथय १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

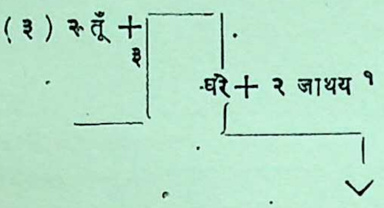

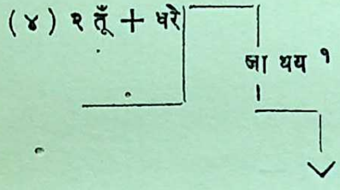

सुर के आरोह तथा अवरोह का व्यतिरेक प्रश्न एवं आज्ञा वाले वाक्यों में देखा जा सकता है। आरोह अवरोह को निम्नरूप से स्पष्ट करना अधिक सुविधा जनक होता है –

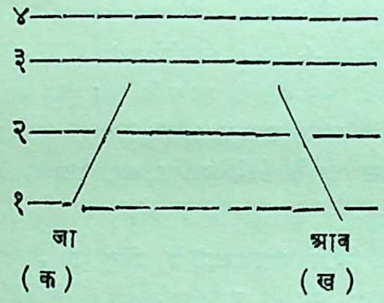

(क) में सुर १ (निम्न) से तीन (उच्च) स्तर तक गया है। यह आज्ञा का रूप है।

(ख) में सुर ३ (उच्च) से १ (निम्न) स्तर तक आया है। यह एक प्रकार से विनम्र आज्ञा है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी भाषा में देखे जा सकते हैं। यथा—

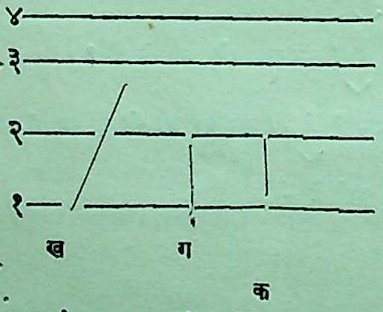

इस उपर्युक्त उदाहरण में क के द्वारा प्रश्न ज्ञात होता है किंतु ख तथा ग के द्वारा आज्ञा। ख में सुर का स्तर १ से ३ को जाता है किंतु इसी को ग के समान भी दिखा सकते है जिसमें कि सुर का स्तर १ से २ तक जाता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव और लक्षणा

राममूर्ति त्रिपाठी

रीतिकालीन उन कतिपय आचार्यों में जिन्होंने शब्द - शक्ति - संबद्ध चर्चा की है, 'देव' ही एकमात्र ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने लक्षणप्रभेद के संबंध में कुछ अयोनिच्छाय बातें कही हैं। शब्द रसायन के प्रथम एवं द्वितीय प्रकाश में शब्दशक्तियों पर विचार किया गया है। प्रथम प्रकाश में इन्होंने अभिधा, लक्षणा, तात्पर्य एवं व्यंजना के शुद्ध प्रभेदों पर प्रकाश डाला है एवं द्वितीय प्रकाश में इनके संकीर्ण रूपों पर सर्वथा मौलिक विचार किया है। यह दूसरी बात है कि वह कहाँ तक मान्य या अमान्य है। उनके मत से लक्षण का स्वरूप यों है –

रूढ़ि करैं कछु प्रयोजन, अर्थ सामुहे भूल।
तिहि तट प्रगटै लाक्षनिक, लक्ष्य लक्षना मूल ॥[1]

संमुख अभिधेय अर्थ भूलकर रूढ़ि एवं प्रयोजनवश जो वाच्यार्थ - संबद्ध अर्थ प्राप्त होता है, वह लाक्षणिक अर्थ कहा जाता है, अथवा ऐसे अर्थ के बोधक शब्द को लाक्षणिक कहा जाता है, उसके अर्थ को लक्ष्य कहा जाता है और इन दोनों का मूल लक्षणा होती है।

स्वरूपनिर्देश के पश्चात् उन्होंने प्रभेदों के संबंध में कहा है –

"रूढ़ि करै कछु व्यंग्य बिन, एक प्रकार बखानि।
द्विविध प्रयोजन लक्षणा, सुद्ध मिलित पहिचानि ॥
वाच्य अर्थ तें लौटि लक्ष्य ताही तट निबसै।
रूढ़ि प्रयोजन रूप लच्छना वृत्ति सुविकसै ॥
रूढ़ि एक बिन व्यंग्य प्रयोजन सुद्ध मिलित लहु।
अजहत जह सारोप साध्य अवसान सुद्ध कहु ॥
सारोपाध्यवसान कहु मिलत चारि द्वै होत षट्‌।
तिउ विंग्य अगूढ़ निगूढ़ गति, बारह भेद विचार पटु ॥
उपादान लच्छन दोऊ अजहत जहत सुभाउ।
सारोपाध्यवसान फिरि दोउ द्वै द्वै गाउ ॥[2]

अर्थात् व्यंग्य - रहित लक्षणा का एक प्रकार है – निरूढा। व्यंग्यभूत प्रयोजन सहित लक्षणा दो प्रकार की होती है – शुद्धा एवं मीलित। शुद्धा के भी चार भेद होते हैं — उपादान लक्षणा, लक्षण लक्षणा, सारोपा, साध्यवसाना। मिलित के भी दो भेद होते हैं – सारोपा

१. शब्द रसायन, पृ० ४।
२. वही, पृ० ४, ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं साध्यवसाना। इस प्रकार प्रयोजनवती के सब छह भेद होते हैं। इन छहों में से प्रत्येक के दो-दो प्रभेद अगूढ़ एवं गूढ़ करके बारह प्रभेद होते हैं।

उपादान एवं लक्षण लक्षणा का क्रमशः स्वभाव स्वार्थ के अपरित्याग और परित्याग का होता है। अंतिम उपर्युक्त पद से यह झलकता है जैसे कह रहे हों कि पहले प्रयोजनवती लक्षणा के दो प्रभेद होते हैं – उपादान एवं लक्षण। फिर उन दोनों में से भी प्रत्येक के दो-दो प्रभेद – सारोपा एवं साध्यवसाना होते हैं।" पर यदि इस प्रकार अर्थ की योजना की जाय, तो फिर प्रयोजनवती लक्षणा के छह के बदले आठ प्रभेद हो जाएँगे, जो उक्त गणना के विरुद्ध है। दर्पणकार ने अवश्य इस ढंग का विभाजन किया है, पर उनके मत के उल्लेख का यहाँ कोई समारंभ नहीं दिखाई देता है। आगे चलकर भी उन्होंने कहा है – "सुद्ध भेद चारिउ कह्यौ, मिलित कह्यौ दोउ भेद।"[3] इससे भी यही स्पष्ट होता है कि इन्हें छह ही संमत है। इन छहों के लक्षण भी प्रकाशकार के ही ढंग के हैं। इन सब पूर्वापर प्रसंगों को देखते हुए सुस्पष्ट होता है कि उक्त कारिका पूरी भ्रामक ही है।

आगे चलकर इन तेरहों प्रकार की लक्षणा का स्वरूप निदिष्ट किया है –

'आपु जनावै और कहि, और कहै कहि आपु।
उपादान लच्छन दोऊ, अजहत जहत् सु आपु॥
सारोपा विषयी विषय निकसत दुवो निदान।
विषयी के भीतर विषय जहां सुसाध्यवसान॥
सुद्ध भेद चारिउ कह्यौ, मिलित कह्यौ दोउ भेद।
व्यंग्य सुगूढ़ अगूढ़ षट, दुगुण होत आखेद॥
यहि विधि बारह व्यग्य युत, एकै रूढ़ि अव्यंग्य।
तेरह भेद सुलच्छना रूढ़ि प्रयोजन संग्य॥'[4]

ये लक्षण बिलकुल काव्यप्रकाश के ढंग पर हैं, उसमें कोई त्रुटि नहीं है। हाँ, केवल एक बात नई है और वह है गौणी के बदले 'मीलित' संज्ञा का प्रयोग। इस संज्ञा का प्रयोग चंद्रालोककार जयदेव ने किया है। पर दोनों व्यक्तियों के अर्थ में भेद है। चंद्रालोककार ने 'मीलता'[5] शब्द कहा है और इन्होंने 'मीलित'। इस संज्ञा-भेद के अतिरिक्त अर्थभेद यों है– चंद्रालोककार ने 'साध्यवसाना' के अर्थ में तथा 'देव' ने 'गौणी' के अर्थ में 'मीलित' शब्द का प्रयोग किया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उदाहरण इन रीतिकालीन आचार्यों का प्रधान अखाड़ा था, इसलिए उपर्युक्त तेरहों प्रभेदों के उदाहरण आचार्य ने प्रस्तुत किए हैं। निबंध के व्यर्थ कलेवर-वृद्धि के भय से यहाँ वे प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं।

३. शब्दरसायन, पृ० ५।
४. वही, पृ० ५।
५. चंद्रालोक, पृ० २६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव की विशिष्ट सूझ का दर्शन इसी ग्रंथ के द्वितीय प्रकाश में हुआ है, ध्यान देने योग्य अंश वही है। इसलिए उसीका उपस्थापन किया जा रहा है। कहा है –

"सुद्ध भेद तिहुँ वृत्ति के, शब्द अर्थ समुझाइ।
अब संकीरन भेद तिहुँ, बरनत वृत्ति बनाइ॥"[६]

वृत्तियों के शुद्ध भेदों का परिचय पिछले प्रथम प्रकाश में दिया गया है, संप्रति उनके संकीर्ण प्रभेदों की चर्चा की जानी चाहिए –

"सुद्ध अभिधा है अभिधा में अभिधा है,
अभिधा में लच्छना है अभिधा में व्यंजना कहौ।
सुद्ध लच्छना है लच्छना में लच्छना है,
लच्छना में व्यंजना, लच्छना में अभिधा कहौ॥
सुद्ध व्यंजना है व्यंजना में व्यंजना है,
व्यंजना में अभिधा है व्यजना में लच्छना कहौ।
तात्परजारथ मिलत भेद बारह,
पदारथ अनंत सबदारथ मते कहौ॥"[७]

अर्थात् उक्त तीन वृत्तियों में से प्रत्येक के चार - चार भेद हैं –

अभिधा — शुद्ध अभिधा, अभिधा में अभिधा, अभिधा में लक्षणा, अभिधा में व्यंजना।
लक्षणा — शुद्ध लक्षणा, लक्षणा में लक्षणा, लक्षणा में अभिधा, लक्षणा में व्यंजना।
व्यंजना— शुद्ध व्यंजना, व्यंजना में अभिधा, व्यंजना में लक्षणा, व्यंजना में व्यंजना।

विमर्श

इस संकीर्ण - विभाजन के संबंध में दो जबर्दस्त प्रश्न खड़े होते हैं — पहला तो यह कि इसका कहीं कुछ आधार भी है या बिना मूल जड़ की ही यह कल्पनालता आकाश-बेलि के समान काव्य - तरु पर फैली हुई है। दूसरा प्रश्न यह है कि इसका अर्थ क्या है और इसकी समन्वय - प्रक्रिया कैसी है।

जहां तक प्रथम प्रश्न की बात है एक वर्ग का कहना है कि जिस प्रकार "अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन" वाली देव की उक्ति की योजना नायिकाभेद से संबद्ध की जाती है उसी प्रकार संभव है इस उक्ति का भी उसी से कुछ संबंध हो। वस्तुतः यह मत अश्रद्धेय है। एक दूसरे विद्वान् का विचार है कि इस प्रकार विभाजन का संकेत कदाचित् देव को ध्वनि-संप्रदायानुयायियों के उस संकेत से मिला हो, जहाँ उन लोगों ने यह स्थिर किया है कि वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य – तीनों व्यंजक होते हैं। इस लेख में मैंने एक दूसरे ढंग से इसपर विचार किया है। उपकरण संभव है अधोलिखित पूर्व चर्चित तत्वों से मिला हो।

६. शब्दरसायन, पृ० १२।
७. वही, पृ० १२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला — वही उक्त आधार कि वाच्य से व्यंग्य, लक्ष्य से व्यंग्य एवं व्यंग्य से व्यंग्य।

दूसरा — गुणीभूत व्यंग्य का निरूपण करते हुए आचार्यों ने ऐसे स्थलों का उल्लेख किया है कि कभी - कभी कवि लोग जिस अर्थ को व्यंजना वृत्ति से इंगित करते चले आ रहे हैं आगे चलकर उसे वाच्य कर देते हैं। प्रायः ऐसे स्थलों में वाच्यसिद्धयंग गुणीभूत व्यंग्य होता है। इस दृष्टि से उक्त पहेली यों बिठाई जा सकती है —

१ - अभिधा में अभिधा — जहाँ अभिधेय अर्थ आद्योपांत अभिधेय ही रह गया हो, उसका तात्पर्य अन्यत्र सर्वथा संभव न हो।

२ - अभिधा में लक्षणा — अभिधा शक्ति से निवेदित हुए अर्थ को ही बाद में जहाँ वृत्ति से निवेदित किया गया हो। अर्थात् जहाँ अभिधेय के विषय में लक्षणा कार्यशील हो।

३ - अभिधा में व्यंजना — अभिधा शक्ति से निवेदित अर्थ को बाद में व्यंजना से कहना।

४ - लक्षणा में लक्षणा — लक्ष्यार्थ को आद्योपांत लक्ष्यार्थ ही बने रहने देना।

५ - लक्षणा में अभिधा — लक्ष्यार्थ को बाद में अभिधा से कहना।

६ - लक्षणा में व्यंजना — लक्ष्यार्थ को बाद में व्यंजना से कहना।

७ - व्यंजना में अभिधा — व्यंग्य को अभिधेय कह देना।

८ - व्यंजना में लक्षणा — व्यंग्य को बाद में लक्ष्य कर देना।

९ - व्यंजना में व्यंजना — व्यंग्य को बाद में भी व्यंग्य ही रखना।

इस व्याख्यान का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि इसी अर्थ में देव ने अपना मंतव्य संकीर्ण विभाजन द्वारा व्यक्त किया है, बल्कि इसका तात्पर्य केवल यह है कि कदाचित् इस तरह की चिंतना ने भी उक्त संकीर्ण विभाजन में कुछ योग दिया हो।

तीसरा आधार — एकावलीकार ने लक्षणा के शुद्ध सात भेद करने के पश्चात् उसके **संकीर्ण प्रभेदों** की चर्चा की है। संभव है इसकी संकीर्णता ने दूसरी ओर भी इंगित किया हो।

संभव है कि इन तीनों आधारों का कुछ हाथ देव की संकीर्ण - वृत्ति - कल्पना में हो।

आधारतत्व की विवेचना के पश्चात् दूसरा मूल प्रश्न यह था कि आखिर इन प्रभेदों का अर्थ क्या है? शुद्धा अभिधा से अभिधा में अभिधा का अंतर क्या है? अभिधा में लक्षणा, अभिधा में व्यंजना आदि जो प्रभेद किये गए हैं वहाँ उदाहरणार्थ यह सहज जिज्ञासा उदित होती है कि अभिधा और लक्षणा का विषय एक ही है या भिन्न? एक अन्य वितर्क यह उठता है कि 'अभिधा में अभिधा' जैसी उक्तियों में एक को दूसरे का अधिकरण कहने का क्या अभिप्राय है? इस तरह के अनेकानेक प्रश्न उठते हैं।

पहले पहल अंतिम प्रश्न के ही संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं कि एक को दूसरी शक्ति का अधिकरण किस अर्थ में कहा जा रहा है? 'में' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में प्रायः चलता है - आधार एवं उपजीव्य। पहले का उदाहरण है - 'गंगा में जल है' यहां जल का आधार है गंगा। दूसरे का उदाहरण है - 'आप ही में हम लोग हैं, आपसे बाहर नहीं।' यहाँ 'आप ही में हम लोग हैं' का अर्थ है 'आप ही के सहारे हम लोग हैं।' आधार या अधिकरण भी तीन प्रकार का होता है - वैषयिक, औपश्लेषिक और अभिव्यापक। 'वैषयिक' का उदाहरण है -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ईश्वर में निष्ठा है' अर्थात् ईश्वर के विषय में निष्ठा है। 'औपश्लेषिक' का उदाहरण है – "चटाई पर (में) बैठा है"। 'अभिव्यापक' का उदाहरण है – 'तिल में तैल है' [तिल में तैल व्याप्त रहता है]। देखना है कि इन चारों अर्थों में से कौनसा अर्थ प्रकृत में उपयोगी है।

जहाँ तक वैषयिक आधार की बात है, एक शक्ति का विषय दूसरी शक्ति हो — यह कभी संभव नहीं। शक्ति का विषय अर्थ होता है – शक्ति नहीं। औपश्लेषिक आधार की दृष्टि से भी देखें, तो सुस्पष्ट है कि शक्ति पद का पदार्थ से संबंध - विशेष है। सो यह संबंधात्मा शक्ति या तो पद में रह सकती है या पदार्थ में, शक्ति में रहने का कोई प्रश्न ही नहीं। जब एक शक्ति दूसरी शक्ति के एक भाग में भी नहीं रह सकती, तो तैल के समान अभिव्यापक होकर रहना तो कभी संभव हो नहीं है। इसी प्रकार जहाँ तक उपजीव्य होने की बात है, वह तभी संभव है जब एक शक्ति के बल पर दूसरी की सत्ता निर्भर हो। इस दृष्टि से लक्षणा की सत्ता अभिधा - सापेक्ष है, अतः 'अभिधा में लक्षणा' की बात तो बन सकती है, परंतु 'व्यंजना में अभिधा' का इस दृष्टि से क्या मतलब होगा? व्यंजना की सत्ता पर अभिधा की सत्ता निर्भर है – यह कौन मान सकता है? अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, स्वयं इस दृष्टि से अभिधा में अभिधा का ही क्या मतलब होगा? सारांश यह कि इस 'में' का अर्थ 'उपजीव्य'-परक भी नहीं किया जा सकता।

व्यवहार में 'में' का एक उलटा प्रयोग भी होता है – आजकल वे 'दिन रात चिंता में रहते हैं।' इस प्रयोग का अभिप्राय यह है कि वे बराबर चिंतित रहते हैं, अधिक चिंतित रहते हैं, अधिक चिंता करते हैं — उनमें अधिक चिंता रहती है। यहाँ जिसके बाद 'में' लगा है वह आधारवाचक नहीं, बल्कि आधेयवाचक हो जाता है। इस दृष्टि से भी प्रकृत 'में' की योजना करने पर कुछ नहीं निकल सकता।

इस दृष्टि से यह देखा गया कि 'अभिधा में अभिधा' जैसे प्रयोगों को लेकर मुख्यार्थ-मुख्यार्थ की दृष्टि से कोई संगति नहीं है, अतः अब इनमें लक्षणाशक्ति के सहारे कुछ संगत अर्थ निकालना चाहिए। अर्थात् लक्षणाशक्ति के बल से 'अभिधा में अभिधा' के पूर्ववर्ती अभिधा का लाक्षणिक अर्थ 'अभिधायक या अभिधेय' कर लिया जाय तो 'अभिधा में अभिधा' का अर्थ हुआ 'अभिधायक या अभिधेय में अभिधा'। पर इस अर्थ से क्या नई बात निकली। यह स्थिति तो सुस्पष्ट ही है कि अभिधायक एवं अभिधेय में अभिधा सदा रहेगी। दूसरे यह कि बात यहीं तक होती तो कुछ कहने की भी बात होती। 'व्यंजना में अभिधा' की लक्षणा का सहारा लेकर भी क्या अर्थ होगा? बहुत माथापच्ची करने पर भी कोई संभव अर्थ नहीं निकलता।

अच्छा, 'अभिधा में अभिधा' का यह अर्थ भी हो सकता है कि एक बार अभिधा होने पर फिर दुबारा अभिधा। जैसे प्रायः व्यवहार में हम यह कहते - सुनते देखे जाते हैं कि भगवान विपत्ति में विपत्ति डालता है। यहाँ विपत्ति में विपत्ति का अर्थ यही है न कि पुनः पुनः विपत्ति आती है? तो फिर इसी दृष्टि से यहाँ भी योजना हो। इस दृष्टि को अपनाने पर भी यह प्रश्न है कि एक अर्थ का पुनः पुनः अभिधा में उपस्थापन? प्रथम पक्ष को माननेसे पौनरुक्त्य है, दूसरे पक्ष को मानने से दोनों अभिधाएँ निरपेक्ष हो जाती हैं — फिर अभिधा में अभिधा कहने का विशेष अभिप्राय नहीं लक्षित होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक स्थल और है जहां 'में' का प्रयोग होता है, जैसे 'एक में एक निकलते चले आ रहे हैं', 'बात में बात निकलती जा रही है।' इसी प्रकार का प्रयोग यहाँ भी है – 'अभिधा में अभिधा'। लेकिन यहाँ भी दोनों प्रयोगों में वैषम्य है। यहाँ जिस प्रयोग को दृष्टांतरूप में उपस्थापित किया गया है, उसका प्रयोग ऐसे स्थलों में होता है जहां सजातीय वस्तु अनेक बार आए। यहां तो दो ही बार (अभिधा में अभिधा) का प्रश्न है। अच्छा, दो ही बार की स्थिति मानकर भी कुछ सोचें – देखें कुछ निकलता है। यह स्थिति वहां संभव है जहाँ अनेकार्थक शब्द हों और वे अनेक अर्थ प्राकरणिक या अप्राकरणिक हों। तब वहां धड़ाधड़ अभिधा पर अभिधा होगी! लेकिन समस्या यहीं तक हो, तब न? हमें तो 'व्यंजना में अभिधा' भी देखनी है, जहां कोई स्थिति संभव नहीं। जैसे श्लेषस्थल में एक ही शब्द से अभिधा में अभिधा निकलती रहती है, वह स्थिति और स्थलों में संभव नहीं है।

फिर यह अभिप्राव लगाया जाय कि 'अभिधा में अभिधा' का मतलब आद्योपांत अभिधा के ही निर्वाह से है, तो इस पर दो जिज्ञासाएँ और जग जाती हैं – पहली यह कि यदि अभिधा में अभिधा का अभिप्राय यह है कि आद्योपांत अभिधा ही है, तो शुद्ध अभिधा से 'अभिधा में अभिधा' का क्या अंतर? दूसरे यह कि लक्षणा में अभिधा जैसी ऊटपटांग पहले भी तो है।

अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अभिधा में लक्षणा अथवा अभिधा में व्यंजना का अर्थ रखा जाय, बहुत स्पष्ट लक्षणा एवं व्यंजना, परंतु व्यंजना में अभिधा का अर्थ क्या होगा?

निष्कर्ष यह कि शुद्ध विचार के बल से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना काफी जटिल है इसलिए जो उदाहरण 'देव' जी ने दिए हैं, उन्हीं पर विचार करते हुए उक्त प्रहेलिका का हल ढूँढ़ना चाहिए। शुद्ध अभिधा का उदाहरण —

देखिबे को दुरि-दौरि दिनौ भरि द्वारे के पौर लहौ फिरि आवति।
'देव' जु देखि परै चित चैन न, नैननि लाज घनी घिरि आवति॥
जो पिय रैनि मिले नियरे, तब भेंटत मे हियरे हरि आवत।
बूझत बात उठैं कँपि ओठ, गरो घहराय, गिरा गिरि आवति॥[८]

यहाँ आगमिष्यत्पतिका मुग्धा नायिका का वर्णन है। वह आनेवाले पति की राह देखने के लिए उत्कंठातिरेक में पुनः पुनः द्वार तक जाती है और लौट आती है। एक ओर मिलन को यह उत्कंठा और दूसरी ओर लज्जा का ऐसा अतिरेक कि दर्शन के अवसर पर लज्जा का भार आँखों की पलकों को उघड़ने ही नहीं देता। दर्शन का यह अवसर जब लज्जावश हाथ से निकल जाता है, तो केवल हाथ मलने ही भर को रह जाता है, पर अब, पछिताए होत क्या चिड़िया चुग गईं खेत। आगमन काल में दर्शन का अवसर खो देने पर फिर मन ही मन में सोचती है कि यदि प्रियतम रात में मिलेंगे तो अभिलाषा पूरी होगी। पर स्थिति यह है कि जब वे रात में मिलते हैं तो हृदय आनंद-विभोर हो जाता है, उस आनंद के प्रभाव में सारी इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और जब वे कोई बात पूछते हैं तो उत्तर के अवसर पर होठों में कंपन, गले में घहरान एवं वाणी बेकाम होने लगती है।

८. शब्दरसायन, पृ० १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देव' ने अपनी संकीर्ण विभाजन की पहेली बुझाने के लिए बड़ी कृपा यह की है प्रत्येक उदाहरण के नीचे उसके समन्वय की बात लिख दी हैं। इस पद्य की टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है —

पछितायो लच्छु कहूँ, व्यंजत है अभिलाषु।
बाचक सब्द समर्थता, बाच्य अर्थ ही भाषु ॥[९]

अर्थात् प्रस्तुत पद्य में कहीं (किसी अंश से) पश्चात्ताप ('यहाँ पश्चात्ताप' जैसी मानसी वृत्ति को लक्ष्य कहना साहित्यिक सरणि के विरुद्ध है। यद्यपि मुकुल एवं भोजराज ने भी भावों को लक्ष्य कहा है, फिर भी ध्वनिसिद्धांत के सामने उनका भी कोई महत्त्व नहीं है।) उचित होता है और वर्णित शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाओं से अभिलाषा व्यंग्य हो रही है। पर वाचक शब्द की सामर्थ्य (अभिधा) - वश वाच्य अर्थ ही (चमत्कारोत्पादनक्षम रूप में) भासित होता है। सारांश यह कि लज्जा एवं अभिलाष व्यवधायक बनकर जिस शृंगार की प्रतीति कराते हैं उसे अनुमानात्मक वाच्यार्थ सीधे निवेदित करता है, अतः यहाँ वक्ता का तात्पर्य वाच्य अर्थ से ही चमत्कार को निवेदित करने में है। अतः यहाँ का वाच्यार्थ ही सुंदर है। यों होने को लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ भी है, पर वाच्यार्थ अपनी आभा से पाठक को ऐसा आकृष्ट कर लेता है, उसके हृदय सिंहासन पर ऐसा अधिरूढ़ हो जाता है, कि पीछे चलकर प्रतीत होनेवाले लक्ष्य, व्यंग्य हतप्रभ हो जाते हैं और फिर पहले जिसने कब्जा जमा लिया, जमा लिया। भुक्त व्यक्ति को कोई भोजन का निषेध करे तो यह व्यर्थ ही है, उसी प्रकार जो सिंहासनारूढ़ हो चुका उसे कहे कि भाई! तुम सिंहासन पर न चढ़ना निरर्थक ही है। ठीक यही स्थिति यहाँ के वाच्यार्थ की समझिए। इस प्रकार इस लक्ष्य को देखकर ऐसा लगता है कि शुद्ध अभिधा का मतलब यह है कि वहाँ अभिधा निर्बाध रूप से चमत्कारी अर्थ देती है।

अभिधा में अभिधा

लाज निमित्त निमित्त गुनौ, नित निर्मल चित्त सुचित्त बिहारौ।
प्यारी न न्यारी उज्यारी ज्यों चंद ते 'देव' जु सोचन क्यों पचिहारौ ॥
अंत रहौ नहिं नेह निरंतर, अंतर बाहेर रूप तिहारो।
दर्पन दूसर देखिबे ही को, पै देखै दुहूँ दिसि देखनिहारौ ॥[१०]

अर्थ — सखी नायिका के संबंध में विमनस्क नायक को संबोधन करती हुई कहती है — 'नायक! हमारी सखी मान के कारण तुम्हारी ओर नहीं देख रही, सो नहीं; बल्कि लज्जा के अतिरेकवश तुम्हारी ओर आंखें नहीं उठा रही हैं। उसका चित्त तुम्हारी ओर से अत्यंत निर्मल है, सो स्थिर चित्त होकर खूब निहारो। प्यारी सखी तुमसे वैसे ही नहीं विलग है जैसे चंद्र से चाँदनी। तू क्यों तर्क - वितर्कों से परेशान है। स्नेह - सिक्त नायिका के भीतर और बाहर तुम्हीं व्याप्त हो, उसमें पहले से कोई अंतर नहीं। तुम्हारे ध्यान में वह इतनी मग्न है कि भीतर बाहर सब तरफ वह तुम्हें ही देखती है। दर्पण तो केवल दूसरी ओर (आत्म-

९. शब्दरसायन, पृ० १२, १३।
१०. शब्दरसायन, पृ० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपरीत) ही देखने के लिए होता है, यह नायिका तो बिना दर्पण के ही एक ओर कौन कहे दोनों ओर (बाहर - भीतर) तुम्हें देख रही है।

इस पद पर 'देव' की टिप्पणी है —

अभिधा बाक्य सर्बांग को, आच्छाद संकेत।
तहाँ न दरसन दूसरो, बाच्य दिखाई देत ॥[११]

उक्त पद्य - बद्ध वाक्य अभिधा - वाक्य है। अभिधा - वाक्य का अर्थ है निर्बाध और केवल अपने आप में प्रवण रहने वाला वाक्य। यहाँ शुद्ध अभिधा-स्थल की भांति दूसरा अर्थ बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता। यहाँ केवल वाच्य ही वाच्य रहता है। इस प्रकार 'अभिधा में अभिधा' का अर्थ हुआ, आद्योपांत साक्षात्संकेतित अर्थ समर्पित करनेवाली अभिधा का ही एकाधिकार। यहां के वाच्यार्थ से नायक को समझाया जा रहा है, उससे और कोई चीज लक्ष्य, व्यंग्य नहीं हो रही है।

अभिधा में लक्षणा

साँझ ते फूलन सेज बनाइ, दुकूलन फूलन फैलि खिलौंगी।
हेलि पठाइ अकेलिय हौं, सुख सेज के पालक पौढ़ि पिलौंगी ॥
सोवैंगी लाज के साज नवारिकै, साजन सँग सपनेहूँ हिलौंगी।
कानन मूँदि, मिहींचि के आंखिन, चित्तहु तें चुरि मित्त मिलौंगी ॥[१२]

यह वचन परकीया अथवा मुग्धा दोनों में से किसी एक का भी संभव है। नायिका अत्यंत गुप्त रीति से सुरत क्रिया संपादन करने के लिए मनमोदक खा रही है और कहती है कि संझा से ही फूलों की सेज बनाकर वस्त्र एवं पुष्पमयी शय्या पर फिर खूब उछल कूदकर प्रसन्न होऊँगी। और लोगों को तो जबर्दस्ती ठेलकर अन्यत्र भेज दिया है, अब घर खूब सुनसान है। सुखकर शय्या पर निर्बाध पौढ़ने का अवसर मिलेगा। लज्जा एवं तन्मूलक इतर सुरतोपयोगी स्वाच्छंद्य घातक मानसी वृत्तियों का विरोधकर साजन के साथ जागने ही में कौन कहे स्वप्न में भी एकम - एक हो रहूँगी। इस रहस्य को दूसरा कौन, अपनी इंद्रियों और यहाँ तक कि चित्त से भी चुराकर करूँगी – कानों को बंद कर लूँगी, यहाँ तक कि चित्त से भी छिपकर मिलने का प्रयास करूँगी।

देव की टिप्पणी —

अभिधा वाक्य सुगुप्त ही, प्रीतम को अभिलाष।
अति लज्जा तहँ लच्छना, तिय सलज्ज रति भाष ॥[१३]

यहाँ अभिधा शक्ति की सहायता से प्रियतम के अभिलाष की गोपनीयता प्रतिपादित की गई है और लक्षणा शक्ति के बल से नायिका के इस सलज्ज रति - निवेदन में लज्जा का आतिशय्य लक्षित है।

११. वही, पृ० १३।
१२. वही, पृ० १३।
१३. शब्दरसायन, पृ० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर 'देव' की पहेली सुलझाने के लिए भीषण प्रयास करना पड़ता है और दूसरी ओर जब ये 'लज्जा' आदि व्यभिचारी भावों को लक्ष्य कह देते हैं, तब ऐसा लगता है कि यह सारा श्रम कूट - कार्षापण खोदने के समान है। कूट - कार्षापण खोदने का मतलब यह है कि किसी ने झूठे ही किसी को बता दिया कि अमुक स्थल पर कार्षापण गड़ा हुआ है, सुननेवाला खोदने का निरर्थक अथक श्रम कर रहा है, वहाँ न कहीं आर्षापण न कार्षापण। सो, वैसे यहाँ भी है। जब ये भावों को भी लक्ष्य कहते हैं, (जो सर्वदा व्यंग्य ही होते हैं) तो पूरी अनास्था हो जाती है।

यहाँ अभिधा में लक्षणा कहने से ऐसा जान पड़ता है कि अभिधा के द्वारा सुरत की गोपनीयता विदित हो जाने पर तह में निहित लक्षणा का भी उन्मेष तब होता है, जब निशा से छिपकर प्रियतम से मिलने की असंभव उक्ति बाँधी जाती है और पाठक या सहृदय का ध्यान उस ओर जाता है। मतलब यह कि पहले वाच्यार्थ पर ध्यान जाता है और अभिधा कार्य करती है, फिर अभिधा में लक्षणा — अर्थात् अभिधा से ढँकी हुई लक्षणा उन्मीलित होती है।

अभिधा में व्यंजना

> जेठी बड़े ते अमींठी सी भौंह निरुच्छ महामन सुच्छम सीछे।
> देव जु बातन ही सौं हितौति सो सौति सखी सु चितौति तिरीछे॥
> लाज की आँचनि, पाचक राचनि, नाचन चाइहीं, नेह न छीछें।
> चाह भई फिरौं या चित मेरे की, छाँह भई फिरौं नाह के पीछे॥[१४]

अर्थ — यहाँ नायिका स्वगत भाषण कह रही है कि मेरे मन में प्रियतम - संबद्ध अभिलाषाओं का अपूर्व उद्रेक है और इसी कारण मैं छाया की भाँति नाथ के पीछे - पीछे घूमती रहती हूँ। पर मेरी यह क्रिया किसी को पसंद नहीं है। जेठी का हाल यह है कि वह मेरी इस क्रिया को देखकर सर्वदा भौंहें ऐंठे रहती है, मन उसका वैसे ही महारूखा है, क्रोध से और सीझता रहता है। सपत्नियों एवं सखियों अथवा सपत्नी - सखियों की हालत यह है वे सब मौखिक ही प्रेमाभाव दिखाती हैं, पर मेरी हरएक चेष्टाओं को ईर्ष्यापूर्ण आँख की कोरों से छिप - छिप कर देखती रहती हैं। और यहाँ मेरा हाल यह है कि लाज की आँच में अनुराग पक रहा है, स्नेह गाढ़ भाव को प्राप्त करता जा रहा है।

टिप्पणी—

> अभिधा आपुहि आप सों, कहत नाह को नेह।
> व्यंजत विरह प्रलाप - मुख, बिबस सँभार न देह॥[१५]

अर्थात् पहले यहाँ अभिधाशक्ति से निर्बाधरूप में रागप्रकाशन - परक अर्थ प्राप्त होता है, फिर व्यंजनावृत्ति से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ विप्रलंभ शृंगार की स्थिति है। उस विप्रलंभवृत्ति का प्रभाव यह है कि देह अपने आपे में नहीं है और परिस्थिति से विवश है। यहाँ वक्ता की दृष्टि से देखा जाय तो सुस्पष्ट है कि वह केवल अभिधा वृत्ति से अपने प्रिय के प्रति अपना

१४. शब्दरसायन, पृ० १४।
१५. वही, पृ० १४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग प्रकाश कर रही है, पर सहृदय लोग उन शब्दों में अर्थों से विप्रलंभ तक पहुँचते हैं। इस प्रकार यहाँ अभिधा से उपलब्ध अर्थ व्यंग्योपयोगी है। सारांश यह कि अभिधा में व्यंजना का अर्थ है अभिधेय से व्यंग्य - अर्थ प्राप्त होना।

शुद्ध लक्षणा

बरुनी[१६] बघंबर में गूदरी पलक दोउ,
कोये राते बसन भगौहें भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिनहूँ जागैं भौंहें,
धूम सिर छाजै बिरहानल बिलखियाँ।
आँसू ज्यों फटिक माल, लाल डोरें सेल्ही पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली सजि सखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संजोगिनि ये,
सुजोगिन ह्वै बैठी हैं वियोगिनि की अँखियाँ॥

अर्थ – 'देव' कवि किसी विरहिणी नायिका का वर्णन करते हुए उसकी दोनों आँखो को योगिनी का रूपक दे रहे हैं और स्वनिबद्ध वक्ता (नायिका) की प्रार्थना यह है कि प्रिय दर्शन देकर वियोगिनी की इन आँखों को संयोगिनी बना दें।

रूपक यों है – आँखों की बरौनियाँ (पक्ष्म) ही बाघंबर हैं, दोनों पलकें ही गुदरी है, आँखों के किनारे वाले लाल भाग ही लाल वस्त्र हैं, जिनसे ये आँखें अपना भगवा वेष सदा बनाए रखती हैं। निरंतर आँसुओं की धार में डूबा रहना ही जलवास है, आँखों का कभी भी न लगना ही सदा जागते रहना है, काली काली भौंहे ही मानों शिरोभाग पर छाया हुआ धूम है। विरह ही अनल है, जिससे संतप्त आँखें सदा बिलखती रहती हैं। स्वच्छ एवं बड़ी बड़ी आंसुओं की बूँदें ही स्फटिकमाल हैं। आँखों में उमड़ी हुई लाल नसें ही सेल्ही है। सभी बाह्य विषयों का परित्याग करना मानो अकेले रहना है।

टिप्पणी —

आँखिन के संयोग में, कहे जोग के साज।
सहज लच्छना सो लखै, दरसन बिना अकाज॥[१७]

यहाँ आँख की विभिन्न क्रियाओं और वेष - परिवेष को लेकर योग का रूपक बिठाया गया है। साहित्यिकों का यह सिद्धांत है कि रूपक में गौणी सारोपा लक्षणा हुआ करती है। यहाँ अभिधा का सर्वत्र बाध है, अतः अभिधा की कोई स्थिति नहीं। केवल लक्षणा शक्ति की सहायता से सारा वाक्यार्थ समन्वित किया जाता है। कवि का कहना है कि लक्षणा से यह प्रतीत होता है कि दर्शन बिना बड़ी हानि है।

सित आँसू अंजन बिना, चकटक कोये रत्त।
तात्परज प्रगटै तहाँ, दरसन बिना बिरत्त॥[१८]

१६. शब्दरसायन, पृ० १४।
१७. शब्दरसायन, पृ० १४।
१८. वही, पृ० १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसू स्वच्छ हैं, इससे यह सिद्ध होता है – व्यंग्य होता है – कि आँखों में अंजन नहीं लगा है। कोये रक्त हैं, इससे यह व्यंग्य है कि नायिका की पलकें कभी लगी नहीं हैं। यहाँ वक्ता का तात्पर्य यह है कि ये आँखें दर्शन न मिलने के कारण परम विरक्त हैं।

लक्षणा में लक्षणा

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि,
हारी पाँय परि परि तौ न कीन्हे तैं सँभार।
ललन विलोकि 'देव' पल न लगाए तब,
यों कल न दीन्हे तैं, छलनउ छलनहार।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई,
आपु बिधि बूड्यो ब्याधि बाधासिंधु निराधार।
ए रे मन मेरे तैं घनेरे दुःख दीन्हें अब,
एकै बार दैके तोहिं मूँदि मारौं एक बार॥[१९]

इस पद्य का अर्थ सुस्पष्ट है। यहाँ निरमोही से विवेकशून्य स्नेहसंबंध की ओर लपकने वाले मन को मारने की बात कही गई है।

टिप्पणी —

चक्षुरादि पट मूँदिकर नासा अग्रनि योग।
लच्छतु मन को मारिबो तातपर्ज दृढ़ जोग॥[२०]

यहाँ बहिरिंद्रियों को विषयों से विमुखकर नासाग्र पर दृष्टि स्थिर कर योग के द्वारा मन को मारने की बात कही जा रही है। आचार्य का कहना है कि यहाँ लक्षणा से 'मन का मारा जाना' ही ज्ञात होता है। यहां संपूर्ण पद से वक्ता का तात्पर्य उक्त लक्ष्यार्थ में ही प्रतीत होता है। यहां 'मन' पर जो व्यवहार बाँधा गया है, वह सब मन पर चेतन का आरोप करके निष्पन्न किया जा सकता है। अध्यारोप निरपेक्ष होकर वाच्यार्थ बाधित है। आरोपित अपराधी और उसका व्यवहार अप्रस्तुत है, जो प्रस्तुत पर आरोपित किया गया है। क्रम समासोक्ति का है। समासोक्ति को ध्वनि - संप्रदायानुयायी गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं, जहाँ लक्षणा का कोई प्रसंग ही नहीं है। पर शोभाकर मिश्र एवं अच्युतराय जैसे अन्यान्य आचार्यों ने ध्वनिकारों द्वारा स्थिर किए हुए गुणीभूत व्यंग्यस्थलों में भी लक्षणा की चर्चा की है। सरस्वती कंठाभरण के टीकाकार ने लक्षणा तथा दोहरी,[२१] तेहरी लक्षणा की चर्चा की है। इसके साथ एक बात और भी है। अप्रस्तुत चेतन अपराधी की दृष्टि से तो यहां के शब्दों में लक्षणा की आवश्यकता नहीं है, पर केवल प्रस्तुत पक्ष की दृष्टि से तो अनेकानेक लाक्षणिक पद हैं। उदाहरणार्थ 'मन का मूँदि मारना' वाच्यार्थ की दृष्टि से कब संभव है। अतः यहाँ 'मूँदि मारने' का लक्ष्यार्थ है — विरोधपूर्वक विषय - विमुख कर स्थिर कर देना। प्रस्तुत की दृष्टि से आद्योपांत व्यवहार लाक्षणिक ही है — अतः लक्षणा ही लक्षण का काम करती है।

१९. शब्दरसायन पृ० १५।
२०. शब्दरसायन, पृ० १६।
२१. एवं लक्षणाबोद्धव्या, १९० पृ० सरस्वती कंठाभरण टीका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षणा मध्य व्यंजना

कौन भाँति ? कब धौं ? अनेकन सों एक बार,
सरस्यौ परस्पर परस्यौ न बियौ तैं।
केतिक नवेली, बनवेली मिली केली करि,
संगम अकेली करि, काहू सों न कियौ तैं।
भरि भरि भांवरि निछावरि ह्वै भौंर भीर.
अधिक अधीर ह्वै अधर-अमी पियौ तैं,
'देव' सबही कौ सनमान अति नीको करि
ह्वै के पतिनी को पति नीको रस लियो तैं।[२२]

इस पद्य का भी अर्थ स्पष्ट है। इसमें दक्षिण नायक की भ्रामरी वृत्ति वर्णित है। वह चातुर्य एवं सहृदयतापूर्वक अनेकानेक कामिनियों की अभिलाषा पूरी करता है और कहीं भी अपने व्यवहार में स्खलित नहीं होता।

कवि इस आश्चर्यकर चातुर्य को अनेक विरोधाभासों से व्यक्त करता है, जैसे – 'अनेकन सों एक बार, सरस्यौ परस्पर परस्यौ न बियौतैं', अनेकों से एक बार मिलना, सबसे मिलकर भी दूसरी से न मिलना। आदि आदि वाच्य खंडों का यथाश्रुत वाक्यार्थ परस्पर विरुद्ध जान पड़ता है – अतः लक्षणा शक्ति से उनकी संगति मिलती जाती है। उदाहरणार्थ, 'अनेकन सों एक बार मिलने' का लक्ष्यार्थ है कि सभी से उनके मनोवांछित अवसर पर मिल लेना।

इस प्रकार प्रस्तुत दक्षिण नायक परक योजना करते समय लक्षणाशक्ति के बल से संगत अर्थ हो जायगा। 'संगम अनेक करि काहूँ सों न किये तैं' – स्पष्ट विरोधोक्ति है, जिसका पर्यवसित अर्थ यह है कि अनेक से संगम किया, पर कोई जान न पाया, इसलिए एक नायिका नायक के संबंध में यही धारणा रखती है कि इसने मुझे छोड़ और किसी को सुखी नहीं किया। अस्तु। इस प्रकार प्रस्तुत अर्थ, जो नायक परक है, सुयोजित हो जानेके पश्चात् व्यंजना-व्यापारों से भ्रमर परक व्यवहार व्यंग्य होता है। सारांश यह कि लक्षणा में व्यंजना होने का अर्थ यह हुआ कि लक्ष्यार्थ के बाद स्वतंत्र रूप से व्यंग्यार्थ की प्रतीति। यहाँ लक्षणा की, मूल व्यंजना से भिन्न स्थिति है। अतएव देव कवि का कहना है –

दच्छिन सो लच्छतु सखा, सदृश उक्ति कहि भौंर।
गुप्त-चातुरी व्यंजना, ताहि जनावत और ॥[२३]

अर्थात् भ्रमर के स्वभाव की उक्ति बाँधकर कवि यह लक्षित करना चाहता है कि नायक दक्षिण है। और व्यंजना व्यापार से सहृदय लोग उसकी गुप्त चातुरी समझते हैं।

कवि यद्यपि यहाँ दक्षिण नायक लक्ष्य कहता है, पर उपर्युक्त ढंग से उसका तात्पर्य दक्षिण नायक परक योजित अर्थ को लक्ष्य कहने में समझना चाहिए। विरोध या विरोधी उक्तियों से चातुर्य को व्यंग्य कहा जाय तो कहा जा सकता है। चातुर्य व्यापार की अनिर्वचनीयता

२२. शब्दरसायन, पृ० १६
२३. वही, पृ० १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्यकर रूप आदि ही है। पर इस दृष्टि से तो विरोधी उक्तियों में लक्षणा और उसका फल व्यापार में चातुर्य होने से लक्षणामूल व्यंजना की स्थिति हो जाती है। लक्षणा में व्यंजना के उक्त दोनों अभिप्राय हो सकते हैं – सहृदय लोग इसे समझें।

लक्षणा मध्य अभिधा

वारौं कोटि इंदु रस बिंदु अरविंद पर,
मानै ना मिलिंद बिंदु सम कै सुधासरौ।
मलै मल्ल, मालती, कदंब, कचनार चंपा,
चंपे हू न चाहे चित्त चरन टकासरौ।
पदुमिनि तोहीं पट्पदु को परम पदु,
देव अनुकूल्यौ और फूल्यौ तौ कहा सरौ।
रस - रिस रास - रोस आसरो सरस बसे,
बीसो बिसवास रोकि राख्यौ निसिबासरौ।[२४]

इस पद्य में भ्रमर के वृत्तांत द्वारा प्रस्तुत नायक का वृत्तांत भी कहा जा सकता है। तमाम पुष्पों के प्रस्फुटित रहने पर भी भ्रमर एक मात्र कमलिनी पर पड़ा रहता है, कमलिनी उसे लुभाए रहती है।

अच्युतराय, शोभाकर[२५] मिश्र आदि ने स्पष्ट कहा है कि अप्रस्तुत प्रशंसा में प्रस्तुत अर्थ लक्षणा से मिलता है। यहाँ यदि प्रस्तुत अर्थ अनुकूल नायक परक हो तब लक्षणा शक्ति के बल पर उसकी प्राप्ति हो सकती है। परंतु यदि वह अर्थ न भी अभिप्रेत हो तो अनिरुद्ध रूप से — निर्बाध रूप से — अभिधा भी भ्रमर परक अर्थ समर्पित कर देती है। **इस प्रकार में लक्षणा के स्थल में अभिधा भी अनिरुद्ध रूप से निर्वाह हो सकता है।** इन्हीं बातों को सोचकर देव ने प्रस्तुत पद पर अपनी टिप्पणी दी हैं –

अलि नायक अनुकूल तिय, कमलिनि स्वकिया सुद्ध।
सादृशस्यारथ लक्षणा, तहँ अभिधा अनिरुद्ध॥[२६]

अर्थात् यदि सादृश्य के आधार पर भ्रमर को अनुकूल नायक और कमलिनी को स्वकीया नायिका माना जाना अभिप्रेत हो, तो वह लक्षणा वृत्ति से अवगत हो सकता है, पर इसके बावजूद भ्रमरपरक अर्थ में भी जो अभिधा से अनिरुद्ध — निर्बाध रूप — रूप में प्राप्त हो जाता है कोई विसंगति नहीं।

लक्षणा में लक्षणा

उपर्युक्त लक्षणा मध्य लक्षणा का उदाहरण ठीक ढंग से हृदयंगम नहीं होता है, अतः आचार्य ने दूसरा उदाहरण दिया है –

२४. शब्दरसायन, पृ० १७।
२५. इयं अप्रस्तुतमर्थं प्रतिपादयंती लक्षणामूलैव युक्ता, नतु व्यंजनायिकः। अलंकार रत्नाकर, पृ० ६१।
२६. शब्दरसायन पृ० १७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखिन के सलिल, सिराती पै न छाती जो,
उसास लागि काम-आगि भसम होत ही ततो।
केसर सिरीस हू ते, कोरी जो न होती तौ
किसोरी को कुसुम सर कैसी भांति जीततो।
'देव' जू सराहिए हमारे है न न्याउ करि,
नाहित अहित चैत करतो जो ची ततौ।
कोकिला के टेरत, निकसि जातौ जीव जो
तिहारे गुन वनत उधेरत न बीततौ।[२७]

उच्छ्वासमय समीर से प्रज्वलित कामाग्नि जो नित्यप्रति प्रज्वलित होती रहती है, उसीका परिणाम है कि आंखों से कितना भी जल गिरता रहता है, पर छाती ठंढी नहीं होती यदि नायिका शिरीष के केसर से भी सुकुमार न होती, तो शिरीष पुष्प के बाणों से मार कर कामदेव विजय कैसे पा सकता था ? हे प्रिय ! मैं तेरी सराहना करती हूँ, तुम हमारे होकर अन्याय न करो अन्यथा जब चैत्र (बसंत) ने अपनी दृष्टि कड़ी कर ली थी और कोकिल ने अपनी काकली व्यक्त कर दी थी तो जीव ही निकल गया होता, पर भरोसा यही है कि यदि वैसा अवसर आया भी तो तुम्हारी गुणावली की उधेड़बुन में रहने से मेरे मन पर उस उद्दीपक वायुमंडल का कुछ प्रभाव नहीं हुआ और मैं बच गई।

टिप्पणी –

लखत मृदु तनताप अति, आँसू और उसास।
ताहूँ में लखत सुनो, रह्यो पीव गुन पास ॥[२८]

अर्थात् यहाँ आंसू और उछ्वास से मृदु शरीर - गत ताप का अतिरेक लक्षित हो रहा है। इससे भी यह लक्षित होता है कि इतने ताप पर भी जो प्राण नहीं निकलता उसका एक मात्र कारण है प्रियतम का गुणरूपी पाश। हृदय प्रिय के गुणों में ऐसा लिपटा पड़ा है कि वह उसमें से छूटे तो बाहर निकले।

यहाँ लक्षित अपनी उपपत्ति के लिए लक्ष्यांतर को लक्षित करता है।

शुद्ध व्यंजना

हित की हितू री, नहिं तूरी समुझावै आनि,
सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो।
लपने कहां लौं बालपने की बिकल बातैं
अपने जनहिं सपनेहुँ न बिसारनो।
'देव' जू दरस बिन तरसि मर्यो है, पग
परसि जियेगौ, मन बैरी अनमारनो।
पतिब्रत ब्रती ये उपासी, प्यासी अँखियन,
प्रात उठि प्रीतम पियासो रूप पारनो ॥[२९]

२७. शब्दरसायन, पृ० १७।
२८. वही पृ० १७।
२९. शब्द रसायन, पृ० १८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंडिता (पतिव्रता) धीरा स्वकीया नायिका की उक्ति है – सखी ! तू तो प्रेमियों का भला करनेवाली है, तू भला दूसरी तरह की बात कैसे समझ सकती है ? जिनके (पतिदेव के) संबंध में तुम इस तरह की बातें कह रही हो वे तो ऐसे हैं कि मैं सुखमयी एवं दुःखमयी हर परिस्थिति में उनका ही मुँह निहारती रहती हूँ। यदि उन्होंने कुछ बालपन की बातें कह भी दी हों, तो उसे (नासमझी की अवस्था में किए हुए कर्म को) मैं कहाँ तक कहती - सुनती रहूँ ? मेरी स्थिति तो यह है कि मैं उनके ही पैरों का स्पर्श करके जीती रहती हूँ। उलटा - सीधा सोचने वाला मन कैसे मारा जाय ? जो मन उनके संबंध में उलटा - सीधा सोचे, वह मारे जाने लायक है। इन आंखों ने पातिव्रत्य का व्रत धारण कर रखा है और इसीलिए रात भर (पति के अन्यत्र नायिका के पास चले जाने से) कही चली जाने से उपासी रही है। प्रातःकाल इन उपासी आंखों को पारण करना आवश्यक है और इनका पारणद्रव्य है प्रिय का रूप -जल।

टिप्पणी –

सादर धीरा वचन में, व्यंजत कोप प्रकास।
सुख के मिस दुख आपनो, सुनि सो कहत उदास ॥[30]

पति के प्रति धीरा के ये सादर - वचन प्रकरण आदि को देखते हुए वस्तुतः अंतर - कोप के प्रकाशक हैं। यहां उत्तम एवं विदग्ध नायिका सुख के बहाने विवशता - मूलक दुःख को ध्वनित कर रही है। यहां शुद्ध व्यंजना है। सारा का सारा वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ प्रतीति का उपाय मात्र है।

व्यंजना मध्य अभिधा

केतिकी के हेतु कीन्हें केतिकई कौतुक तुम,
पौढ़ि परिमल में गए हौ गढ़ि गात हीं।
मिले मल्लि बल्लिन लवंग संग हिले तुंद,
ताहि दाड़मीन पिले, पाडर की घातहीं।
कीनी रस केलि सांझ, चूमत चमेली बाँझ,
'देव' सेवतीन मांझ भूले भहरात ही।
गोद लै कुमोदनि बिनोद मान्यो चहूँ कोद,
छपत छिपै हो पदुमिन के प्रभात ही।[31]

प्रस्तुत उक्ति धीराधीरा नायिका की है – वह अपराधीनायक को ध्यान में रखकर भ्रमर के ब्याज से उपालंभ दे रही है 'केतकी के लिए तूने न जाने कितने कौतुक किए हैं, उसकी गंध में तैरते हुए पूर्णतः अपनी देह को उसी में निमग्न कर रखा है। बेला की लताओं से भी मिले, लवंग के साथ रमे, 'दाडिम पाडर बाँझिन चमेली' जैसी सपत्नियों के साथ रंगरेलियां करते रहे, कुमुदिनी को गोद में रखकर चारों ओर फूले फूले फिरते रहे और जब पद्मिनी (कमलिनी तथा पद्मिनी नायिका) का प्रभात हुआ तो गुप्त सुरतचिह्नों से चिह्नित हो अब इधर उधर क्यों घूमते फिर रहे हो ?

३०. वही पृ० १८।
३१. शब्दरसायन, पृ० १८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी —

सापराध पति पेखि के, धीराधीरा नारि।
व्यंग वचन सादृश्य धुनि, सूधी बातन गारि ॥[३२]

अर्थात् सापराध पति (परकीया से संभोग करनेवाले) को देखकर धीराधीरा नायिका भ्रमर के सादृश्य से नायक पर भी व्यंग्य कस रही है और नायकपरक प्रस्तुत अर्थ व्यंजना से ही प्रतीत हो रहा है। साथ ही उस व्यंग्य के बीच अभिधेय अर्थ का भी अपना महत्व है। महत्व इसलिए कि सीधी बातों से – अभिधेय अर्थ से - भी प्रकरणोचित गाली हो ही रही है। नायिका साफ कह रही है "छपत छिपै हो पदुमिन के प्रभात हीं"। यहाँ व्यंग्य-अर्थ के सामने प्रकरण में अभिधेय का भी महत्व है—ऐसा नहीं कि वह बिलकुल अनुपादेय है। कदाचित् इसी दृष्टि से व्यंजना मध्य अभिधा की बात कही गई हो।

व्यंजना मध्य लक्षणा

प्रान की संपति प्रानपती अति ह्वौं रहती बिनती करि चूक्यो।
जोबन जात सु आवे न फेरि, अरे बिट वादि मरै कत भूक्यो ॥
'देव' जू मानिनि मान तजै न, सुजानि विदूखक आनि के चूक्यो।
भीरु मिली भहराय गरो, घहराइ कहो पिय कूकरा कूक्यो ॥[३३]

इस पद्य की प्रथम दो पंक्तियों में पीठमर्द एवं नायिका की बातचीत है।

पीठमर्द —(रुष्ट नायिका को समझाते हुए कह रहा है) प्रिय, प्राणपति प्राणदायक हैं, अतः उनके प्रति क्रोध ठीक नहीं।

नायिका—साहब, वे बराबर उपद्रव किया करते हैं, अति हो गई, उनसे मैंने बहुत ही विनती की, पर सब व्यर्थ।

पीठमर्द — देखो, यह सब तो ठीक है, पर जो समय चला जाता है, वह फिर फिर वापस नहीं आता। उपभोग - योग्य यौवन का जो क्षण नष्ट हो गया, वह नष्ट हो गया, पुनः नहीं लौट सकता। इस बहुमूल्य यौवन के क्षणों को इस प्रकार रोष, क्रोध से नष्ट करना अच्छा नहीं है।

नायिका – अरे विट ! क्या बकवाद करते हो, व्यर्थ भूँकने से लाभ ?

इस प्रकार पीठमर्द ने बहुत समझाया, पर उससे कुछ न निकला। अंत में एक चाल चली गई। चाल यह थी कि विदूषक को भेजा गया कि वह मुर्गा की आवाज करे। विदूषक ने ऐसा ही किया। उसके कूकने से यह लक्षित हुआ कि अब प्रातः हुआ। नायिका को पहले यह निश्चय था कि अभी पर्याप्त रात है, शिफारिश पर शिफारिशें करा लो। पर जब प्रातःकाल का चिह्न ज्ञात हुआ, तब उसका साहस छूट गया और वह भीत होकर नायक से जा मिली, उस समय उसका गला रूँधा हुआ था इसलिए भर्राई हुई आवाज में उसने कहा – "प्रिय! कूकनहारे ने कूक दिया।"

३२. वही; पृ० १९।
३३. शब्दरसायन, पृ० १६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पहली दो पंक्तियों से पीठमर्द नायिका को उपदेश देता हुआ उसका कल्याण, इसी पद्य में व्यंजना वृत्ति से निवेदित कर रहा है कि वह नायक से जा मिले, अन्यथा रोष के आवेश में उसके अमूल्य यौवन का क्षण निरर्थक नष्ट हो जायगा। पर व्यंजना वृत्ति से जो कल्याण की भावना प्रतिपादित करता हुआ पीठमर्द न कर सका, इसी कार्य को विदूषक के स्वर ने सिद्ध कर दिया। विदूषक के स्वर से ताम्रचूड़ की आवाज लक्षित हो रही है, जो प्रातः काल का सूचक है और प्रातःकाल हो जाने पर फिर सुरत का अवसर एक लंबे अरसे के लिए हाथ से निकल जाने का भय है।

इस प्रकार तात्पर्यभेद से सब अर्थों की संगति देव ने बिठा रखी है।

आगे चलकर इसी द्वितीय प्रकाश में 'देव' जी ने 'अथ लक्षण मूलभेद' – शीर्षक देकर कहा है —

कारज, कारण, सदृशता, वैपरित्य, आछेप।
चारि लच्छना मूल ये भेदांतर संछेप।[३४]

इस प्रकार की कारिकाओं का पीछे उल्लेख हो चुका है कि अनेक आचार्यों ने विभिन्न संबंधों को लक्षणा का मूल कहा है। उदाहरणार्थ लोचनकार से ही एक उद्धृत खंड लें –

'अभिधेयेन संबंधात्सादृश्यात्समवायतः।
वैपरीत्यात्क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधामता॥'[३५]

अभिधेय संबंध, सादृश्य, समवाय, वैपरीत्य एवं क्रियायोग के भेद से लक्षणा पांच प्रकार की होती है। भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न संबंधों का उल्लेख है। उसी प्रकार देव ने भी कुछ संबंधों का उल्लेख कर यह बताया है कि ये संबंध लक्षणा के मूल हैं। संबंध है– कार्यकारण, सादृश्य, वैपरीत्य एवं आछेप या आक्षेप। चंद्रालोककार ने भी लक्षणा के मूलभूत संबंधों का उल्लेख करते हुए चार संबंधों का उल्लेख किया है –

'... ... ... किञ्चान्यस्माच्चतुष्टयात्।
सादृश्यात्समवायात्सा वैपरीत्यात्क्रियान्वयात्॥'[३६]

उदाहरण कवि देव के यों हैं –

कार्यकारण —

सुधाधर से मुखवानि सुधा, मुसुकानि सुधा बरसै रद पाँति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा, कह 'देव' लता तन कोमल काँति।
नदी त्रिबली कदली जुग जानु, सरोज से नैन रहे रसमाति॥
छिनो भरि ऐसी तिया बिछुरे, छतियाँ सियराइ कहो केहि भाँति॥[३७]

प्रसिद्ध उपमानों की योजना से वर्ण्य का उत्कर्ष निवेदित है। इस प्रकार प्रधानतः यहाँ सादृश्य संबंध की ही बात है। कार्यकारण की बात 'सुधाधर से मुखवानि सुधा' – वाले अंश

३४. शब्दरसायन, पृ० २३।
३५. लोचन, पृ० २८।
३६. चंद्रालोक, पृ० २८०, २८१।
३७. शब्दरसायन, पृ० २३ (हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग, २००० सं०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इस माने में है कि सुधाधर (चंद्र) - रूपी मुख से सुधारूपी वाणी निकल रही है। यहां कारण है – सुधाधर वदन एवं कार्य है सुधावाणि। परंतु यहां सांगरूपक की स्थिति है, जहां सारोपा गौणी की स्थिति संभव है। कार्यकारण भावमूलक लक्षणा शुद्ध है उसकी यहाँ किसी प्रकार की स्थिति नहीं दिखाई देती। आगे देव जाने।

सदृशता –

देव पुरैनि के पात निचानतें है जुग चक्र सचान गहे री।
चीते के चंगुल में परि के कर सायल घायल है निबहे री।
मीजि के मंजु दली कदली लरि केहरि कुंजरि कंज लहे री।
हेरी सिकार रहेरी कहूँ, ब्रजराज अहेरी ह्वै आजु अहेरी॥[३८]

यहाँ ब्रजराज अहेरी के साज में निकल पड़ा है और किसी शिकार की तलाश में है। यहाँ अलबत्त सादृश्य - संबंध पर आश्रित गौणी लक्षणा की स्थिति है। यहाँ ब्रजराज पर अहेरी का आरोप है, यहाँ सादृश्यमूलक गौणी सारोपा लक्षणा के बल से 'अहेरी' शब्द का लक्ष्यार्थ 'अहेरी के समान' है। इसी प्रकार 'सिकार' शब्द से 'उपभोग्य नायिका' लक्षित हो रही है। अथवा 'सुरत समान सिकार' के द्वारा 'सुरत' को ही लक्ष्य माना जाय। यह साध्यवसाना लक्षणा है। कारण यह है कि यहां विषयी से विषय निगीर्ण है।

वैपरीत्य –

भारे हो भूरि भराई भरे, अरु भाँतिन भाँतिन के मनु भाये।
भागु बड़ो वहि भावति को, जेहि भावते लै रंग भौन बसाये॥
भेषु भलोई भली विधि सो करि, भूलि परे किधौं काहु भुलाये।
लाल भले हौ, भले सुख दीन्हौं, भली भई आजु भले बनि आये॥[३९]

यह उदाहरण भी संगत एवं उपयुक्त है। अंतिम पंक्ति पर ध्यान दें, उसमें व्यंग्य से कहा जा रहा है — 'लाल भले हौ, भले सुख दीन्हौं……'। यहाँ 'भले' शब्द की लक्षणा वैपरीत्य - संबंध से 'बुरे' में है। यहाँ 'गुनमिस अवगुन कहत' है।

आक्षेप —

देव जु बाहिर ही बिहरै, तौ समीर अमी रस विंदु लैजैहै।
भीतर भौन बसे वसुधा ह्वै सुधा सुख सूँघि पराग लैजैहै॥
जैये कहूँ पर राखि गोविंद कै इंदुमुखी लखि इंदु लैजैहै।
राखहुँ जो अरबिंद हु मैं मकरंद मिले तो मलिंद लैजैहै॥[४०]

इसमें 'विरहिन करत पुकार' है। उसकी विरह दशा की यह उक्ति यह अर्थ आक्षिप्त करती है कि वह कहाँ जाय, कैसे करे?

*

३८. शब्दरसायन, पृ० २४।
३९. वही, पृ० २४।
४०. वही, पृ० २४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भूगोलशास्त्र में जैनों का योग

मायाप्रसाद त्रिपाठी

जैनों के साहित्य, भूगोल, ज्योतिष, सृष्टिउत्पत्ति, सृष्टिविद्या, धर्म, दर्शन तथा आख्यान आदि विषयों के ग्रंथों के सम्यक अनुशीलन और विश्लेषण से विदित होता है कि भारत में भूगोलशास्त्र के विकास में उनका योग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यहाँ भूगोलशास्त्र शब्द केवल औत्सर्गिक भूगोल का ही परिचायक नहीं है, अपितु उसके अंतर्गत उक्त शास्त्रविशेष की सभी शाखाप्रशाखाएँ संनिविष्ट हैं। यह यथार्थ है कि जैनों पर ब्राह्मण परंपराओं एवं भावनाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था, किंतु इस कारण भूगोलशास्त्र के क्षेत्र में जैनों के प्रयत्नों और कार्यों की महत्ता किसी प्रकार घटती नहीं।

१

जैनों के मतानुसार विश्व शाश्वत है — उसका कभी अंत नहीं होता। अतएव सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में उनके वाङ्मय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। रही सृष्टिवर्णन की बात। वह जैनेतर हिंदुओं की भावनाओं से सर्वथा भिन्न है। जैनों के अनुसार ब्रह्मांड के दो भाग हैं— लोकाकाश तथा अलोकाकाश। लोकाकाश धर्म (आकाशतरंगात्मक) तथा अधर्म (पुद्गल वा आत्मा और वस्तुओं) पदार्थों से व्याप्त है। पदार्थों की गत्यात्मक और स्थिरस्थिति का वह माध्यम है। अलोकाकाश - पदार्थों का किसी प्रकार का माध्यम नहीं। आत्मा और पदार्थ उसकी सीमारेखा में किसी प्रकार पहुँच नहीं सकते। वह सर्वथा शून्य है। लोकाकाश की इयत्ता के परे वह अनंत अंतराल है।

जैन समस्त लोक को एक टेकुए के आकार का मानते हैं जो एक दूसरे टेकुए के विन्यासार्थ पर स्थित है। उन्होंने उसको तीन चषकों जैसा बताया है, जिनमें सबसे निचला चषक औंधा रखा हुआ है और सबसे ऊपरवाले चषक की परिधि मध्यस्थ चषक को छूती है। उनका यह कहना है कि लोक की आकृति एक ऐसी महिला के अनुरूप है जो अपने हाथ अपने कटितट पर रखे हुए हैं। उनके अनुसार भूमंडल मध्यभाग में स्थित है, उसके नीचे नरकभूमियाँ हैं तथा ऊपर ऊर्ध्वलोक है। सारा लोक घनोदधि वात - वलय पर आधृत है तथा घनोदधि वातवलय घनवात-वलय के सहारे टिका हुआ है और अंततः घनवात-वलय तनु वातवलय पर आधृत और उससे परिवेष्टित है। इस संबंध में जैनों ने लंबाई - चौड़ाई के बहुत से आँकड़े भी दिए हैं।[1]

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, अकलंकदेव (८वीं शती ई०) की टिप्पणी सहित, अध्याय ३ तथा ५; एन्साइक्लोपीडिया आव रेलिजन एंड एथिक्स खंड ४ (कोस्मोगौनी एंड कौस्मोलौजी) १९११।
कौस्मोलौजी ओल्ड एंड न्यू : प्रो० जी० आर० जैन, १९४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन मनीषियों से अनुसार समस्त ब्रह्मांड का घनफल श्वेतांबर मत से २३९ घनरज्जु तथा दिगंबर मत से ३४७ घन रज्जु है। प्रो० जी० आर० जैन ने रज्जु की लंबाई मीलों में निर्धारित की है तथा गणना करके यह दिखाया है कि जैनों के दिए हुए उपर्युक्त आँकड़े प्रो० आइन्स्टाइन द्वारा निकाले हुए ब्रह्मांड के घनफल के आँकड़ों से बहुत कुछ मिलते हैं।[२]

आधुनिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्मांड सीमित है और उसका प्रसार हो रहा है, जैन भी ब्रह्मांड को सीमित मानते हैं।

सूर्य-प्रज्ञप्ति-कार को विदित था कि पृथ्वी और ब्रह्मांड दोनों गोलकाकार हैं। टीकाकार कहता है, "तन्मतेन हि भूरियं गोलाकारा, लोकोऽपि च गोलाकारतया व्यवस्थितः[3] – ग्रंथकार के अनुसार पृथ्वी और ब्रह्मांड दोनों गोलाकार है।" यह कथन सर जेम्स जीन्स के मत से पूर्णतया मिलता है, 'संक्षेप में, सरल और परिचित अभिधानों के प्रयोग द्वारा सापेक्षवाद-सिद्धांत द्वारा द्योतित नवीन ब्रह्मांड के स्वरूप का सर्वोत्कृष्ट वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि वह एक साबुन के बुलबुले के सदृश है जिसके तलपर उतार-चढ़ाव तथा वैषम्य है।'[४] बौद्धों ने भी बहुत कुछ इसी प्रकार की बात कही है।

सूर्य-प्रज्ञप्ति एक और अत्यंत वैज्ञानिक तथ्य के संबंध में सूचना देती है कि अंतरिक्ष में प्रतिक्षण बहुसंख्यक सूर्य, चंद्र और विभिन्न तारों का नाश और उद्भव हुआ करता है।[५]

२

ज्यौतिष भूगोल के क्षेत्र में जैनों की एक बड़ी विचित्र धारणा यह थी कि हमारे जगत में दो सूर्य और दो चंद्रमा हैं।[६] सूर्यप्रज्ञप्ति में[७] सबसे बड़े और सबसे छोटे दिन का मान भी दिया हुआ है। इन दिनों को उनके अनुसार क्रमशः ७२,००० और ४८,००० योजन भूभाग सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। तिलोय पण्णत्ती में दिन और रात के होने का कारण भी ठीक ठीक बताया गया है।[८]

सूर्यप्रज्ञप्ति (चतुर्थ शती खीष्टाब्द के आसपास) में ग्रहणों के कारण के संबंध में दो सिद्धांतों का विवेचन है।[९] इससे प्रकट होता है कि सूर्य-प्रज्ञप्तिकार ग्रहणों के संबंध में सूर्य और चंद्र के छाया से ढके जानेवाले मत से परिचित था और इससे भी कि इसको माननेवाला एक वर्ग था। किंतु उसने स्वयं इस मत को स्वीकार नहीं किया है और राहु के उपाख्यान और वैज्ञानिक कारण को मिलाकर दोनों को संमिलित रूप से ग्रहण का कारण बताया है।

२. दे० ऊपर।
३. प्राभृत २, प्राभृतप्राभृत १ (निर्णयसागर प्रेस, बंबई १९१९)।
४. मिस्टीरियस युनिवर्स, १९३८, पृ० १३९।
५. प्राभृत १७, च्यवनोपपत्तौ।
६. प्राभृत १, प्राभृतप्राभृत ३।
७. प्राभृत २, प्राभृतप्राभृत ३।
८. ७।२८२-९।
९. प्राभृत, २०, सूत्र १०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्वार्थाधिगम (दूसरी शती ई०) में एक स्थान पर निश्चित रूप से आकर्षण शक्ति का परिनिर्देश है। उसमें कहा गया है कि ब्रह्मांड अंततोगत्वा आकाश पर आधृत है और आकाश निराधार है।[१०] ऋग्वेद भी कहता है कि आकाश आश्रय - रहित है।[११]

३

जैनों ने स्थलमंडल, अधःस्थल-मंडल (पाइरोस्फियर) तथा भूगर्भमंडल (बैरिआस्फियर) के संबंध में भी कुछ जांच पड़ताल करने वा सोचने की चेष्टा की थी। तत्वार्थाधिगम[१२] तथा तिलोय - पण्णत्ती[१३] दोनों में इस संबंध में एक ही बात कही गई है। उसमें थोड़े बहुत वैज्ञानिक तथ्य के साथ - साथ काल्पनिक बातें भी बहुत सी मिली हुई हैं। उन्होंने पृथ्वी की समस्त मोटाई को सात भागों वा स्तरों में विभक्त किया है — १ – रत्नप्रभा, इसके तीन उपस्तर हैं — खरभाग, पंकभाग तथा अब्बहुल भाग, खरभाग में सोलह स्तर हैं; २ – शर्कराप्रभा (कंकड़ीला भाग); ३ -- बालुकाप्रभा (बालुकामय भाग) ; ४ -- पंकप्रभा (पंकिल वा तरल भाग), ५ -- धूमप्रभा (वायव्य भाग); ६ -- तमः प्रभा (अज्ञात); ७ – तमस्तमः प्रभा (महातमः प्रभा सर्वथा अज्ञात भाग)। इन दोनों ग्रंथों में इन विभिन्न स्तरों की काल्पनिक मोटाइ भी दी हुई है। सूत्र २ की टीका में[१४] कहा गया है कि पृथ्वीगर्भ में इतना उच्चताप है कि उसमें हिमालय के बराबर ताम्रपिंड भी पिघल जा सकता है।

आय समकृत प्रज्ञापना[१५] (लगभग २५० ई० पू०) में भूतल - विन्यास (टेरेन) और करंबोपलों (ओरिस) को चालीस श्रेणियों में विभक्त किया गया है — १ - कंकड़ीली मिट्टी (शर्करा ··· लघूपल - शकल रूपा), २ - बालुका (बलुई), ३ - उपल (कई प्रकार की शिलाएँ और करंबोपल); ४ - शिला; ५ - लवण; ६ - ऊषर; ७ से १३ लोहे तथा अन्यान्य करंबोपल; १४ - हीरक; १५, १६, १७ - अन्यशिलास्तर; १८ - अंजन; १९ - प्रवाल; २० - अभ्रपटल (अबरक); २१ - २२ अभ्र बालुका (अबरक - बालू - सीष्ट); २३ - गोमोक, २४ - रुचक २६ - स्फटिक; २७ - लोहिताक्ष (कोई लालस्तर); २८ - मरकत; २९ से ४० - रत्न, ग्रेनित तथा परिवर्तित शिलाएँ।

उसी ग्रंथ में इसके पूर्व के सूत्र में मिट्टी के सात भेद किए गए हैं — १ - कृष्ण (काली), २ - नील (नीली वा ग्रेनित शिलोत्पन्न); ३ - लोहित (लेटराइट वा लाल); ४ - हारिद्र (पीली); ५ - शुक्ल (श्वेत); ६ - पांडु (धूमिल भूरी); तथा ७ पनक मृत्तिका (नद्यूप, पंक किट्ट तथा चिकनी दोमट)। यहां ये भेद अत्यंत वैज्ञानिक हैं।

जैनों को समुद्र - गर्भस्थ पर्वतों का भी पता था।[१६]

१०. अध्याय, ३ सूत्र ७ - ८ टीका।
११, २।१५।२।
१२. १।२१. अध्याय ३, सूत्र १ तथा २ एवं टीका।
१३. द्वितीय महाधिकार।
१४. तत्वार्थाधिगम, अध्याय ३, सूत्र २ की टीका।
१५. अध्याय १, सूत्र १५, मलयगिरि (तेरहवीं शती) की टीका सहित, निर्णयसागर प्रेस, पूर्वार्द्ध, १९१८।
१६. तत्वार्थाधिगम अध्याय ३, सूत्र १० तथा उसकी टीका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

जलवायु - विज्ञान तथा ऋतुभौतिकी के क्षेत्र में जैनों ने वस्तुतः अत्यंत महत्वपूर्ण और श्लाघनीय कार्य किए थे।

प्रथम प्रकरण में जिन तीन वातवलयों की चर्चा की गई है, वे कदाचित आधुनिक (१) परिवर्तमंडल (ट्रोपोस्फियर); (२) परिवर्त सीमा (ट्रोपोपोज); (३) समताप - मंडल (स्ट्रैटोस्फियर) तथा अयनमंडल (आयोनोस्फियर) हैं। अयनमंडल में वायुमंडल बहुत पतला हो जाता है।

प्रज्ञापना तथा आवश्यक चूर्णियों (गुप्तकाल अथवा उसके कुछ पश्चात) में विविध प्रकार की हवाओं का बड़ा विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कदाचित् ये बातें लोगों को परंपरागत रूप से इन दोनों ग्रंथों के प्रणयन के बहुत पूर्व से ही विदित रही होंगी। हवाओं का यह अध्ययन और वर्गीकरण भारत में भूगोल - शास्त्र के इतिहास में जैनों का अप्रतिम कार्य है। प्रज्ञापना में[१७] हवाओं के अग्रलिखित १९ भेद किए गए हैं — १ - ४ दिशाओं की हवाएँ; ५ तथा ६ - ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी संवाहन हवाएँ (कन्वर्शन विंड्स); ७ - क्षैतिज हवा; ८ - विदिग्वात (चौवाई); ९ - वातोद्भ्रम (अनियमित हवाएँ); १० - वातोत्कलिका (समुद्री हवाएँ): ११ - वातमंडली (अनिर्धार्य हवाएँ); १२ - उत्कलिकावात (मिश्रित हवाएँ), १३ - मंडलीकावात (बवंडर); १४ - गुंजावात (गूँजनेवाली हवाएँ); १५ - झंझावात (आँधीपानी) १६ - संवर्तकवात (तृण उड़ानेवाला विशिष्ट पवन; १७ - घनवात (प्रबल पवन); १८ - तनुवात (विरलस्थायी हवाएँ); एवं १९ - शुद्धवात (मंदवायु)।

आवश्यक चूर्णियों में[१८] सोलह प्रकार की हवाएँ कही गई हैं। १ - प्राचीन वात (पुरवा); २ – उदीचीन (उतरहिया); ३ – दक्खिणी वात (दक्खिनी वात); ४ – उत्तर पौरस्त्य (सामने से आनेवाली उतरहिया); ५ – सवात्सुक (अज्ञात); ६ – दक्षिण पूर्व तुंगर (दक्षिण पूर्वी प्रबल वायु); ७ – उत्तरदक्षिण बीजाय (दक्षिण पश्चिम से चलनेवाली); ८ – अपर बीजाय (पछुआँ); ९ – अपरोत्तर गर्जन (उत्तर पश्चिमी प्रभंजन); १० – उत्तरसवात्सुक (अज्ञात); ११ – दक्षिण सवात्सुक, १२ – पूर्व तुंगर; १३ तथा १४- दक्षिण तथा पश्चिमी बीजाय; १५ – पश्चिम गर्जन (पश्चिमी अंधड़) तथा १६ – उत्तरी गर्जन (उत्तरी अंधड़)। आगे चलकर भयंकर टारनैडोज को कालिकावात की संज्ञा दी गई है। इस शब्दावली का आरब्य भूगोल - वेत्ताओं तथा समुद्र संचारियों पर गहरा प्रभाव पड़ा था और उन्होंने इनमें से कई पारिभाषिक शब्द अपनी भाषा में अपना लिए थे।

प्रज्ञापना में हिमपात तथा करकावृष्टि का उल्लेख आया है।[१९]

सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य - तापागम (इंसोलेशन), किरणप्रसार, विकिरण, प्रतिबिंबन तथा प्रतिबिंबनशक्ति (अल्बेडो) आदि का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया

१७. सूत्र १८, पूर्वार्द्ध, अध्याय १, १९१८, निर्णयसागर प्रेस, बंबई।
१८. डा० मोतीचंद्रकृत सार्थवाह, पृ० १७०।
१९. अध्याय १, सूत्र १६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[20] उसमें सूर्य प्रकाश के प्रतिबिंबन के सबसे महत्वपूर्ण बीस क्षेत्रों का नामोल्लेख किया गया है। तदनंतर सूर्यतापागम तथा शक्ति के वितरण का भी अच्छा विवरण प्रस्तुत किया गया है।[21]

प्राभृत ६ में भूमंडल तथा उसके विचित्र क्षेत्रों के संवाहन - उत्तापन का बड़ा सुस्पष्ट निदर्शन किया गया है।

जंबूद्वीप - प्रज्ञप्ति में[22] बादलों के दो वर्गीकरण दिए हुए हैं। पहले में सात प्रकार के बादल कहे गए हैं — १ - अरसमेघ, २ - विरसमेघ, ३ - क्षारमेघ, ४ - खात्रमेघ, ५ - अग्निमेघ, ६ - विद्युन्मेघ, तथा ७ - विषमेघ (बिजली गिराने वाले बादल)। दूसरे वर्गीकरण के अनुसार बादलों के ये भेद हैं — १ - क्षीर मेघ, २ - घृतमेघ, ३ - अमृतमेघ, ४ - अमृतमेघ, ५ - रसमेघ, ६ - पुष्करमेघ तथा ७ - संवर्तक मेघ। आधुनिक ऋतुभौतिकी के अनुसार बादलों के दस भेद और पैंतालीस प्रभेद हैं।[23]

५

वसुदेवहिंडि (५०० ई०) तथा समराइच्चकहा (८०० ई०) के अनुशीलन से परिलक्षित होता है कि जैनों को समुद्र - विज्ञान (ओक्कानोग्राफी) तथा समुद्र - संचरण का अच्छा ज्ञान था। किंतु उनका कोई साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक या धार्मिक ग्रंथ यह नहीं अभिव्यक्त करता कि उपर्युक्त दोनों शास्त्रों के क्षेत्र में उन्होंने कोई मौलिक महत्वपूर्ण कार्य किया था। इस क्षेत्र में बौद्धों की तुलना में उनका स्थान सर्वथा नगण्य है, क्योंकि बौद्धों ने इस दिशा में अप्रतिम कार्य किए थे।

समुद्र विज्ञान के संबंध में तत्त्वार्थाधिगम के[24] अग्रलिखित कतिपय शब्द ध्यान देने योग्य हैं — १ - उत्तःवेला (भीतरी तट), २ - बाह्यवेला (बाहरी तट) तथा अग्रोदक (ज्वारभाटीय तट भाग)।

कदाचित् जैन ज्वारभाटा के वास्तविक कारण से अवगत न थे[25], यद्यपि अन्य संप्रदायों के तत्कालीन भारतीय ज्वारभाटा के कारण से भलीभाँति परिचित थे।

मूलाचार नामक ग्रंथ से समुद्र, उसके जल तथा जीव - जंतुओं के संबंध में कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

६

जैनों का औत्सर्गिक भूगोलवर्णन (जनरल ज्याग्रफी) वाहनाखिक भूगोल वृत्तों से बहुत कुछ मिलता है। चूड़ी के आकार के महाद्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, नदियों प्रभृति के संबंध में

२०. प्राभृत ३, ५ और ६।
२१. प्राभृत ६, सूत्र २७।
२२. वक्षस्कार २, (बनारस जैन प्रभाकर प्रेस, १८९०)।
२३. जनरल मेटिओरोलाजी : आर बायर्स।
२४. अध्याय ३, सूत्र ३२, टीका।
२५. तिलोय पण्णत्ती ४।२४४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनों की प्रायः वे ही धारणाएँ थीं, जो प्राचीन हिंदुओं की। थोड़ा बहुत सामान्य अंतर केवल विवरणों में पाया जाता है।

सबसे प्राचीन ग्रंथ प्रज्ञापना में[२६] महाद्वीपों और महासागरों के नाम इस प्रकार दिए हुए हैं — १ – जंबूद्वीप, २ – धातकी खंड, ३ – पुष्करवर, ४ – वरुणवर ५ – चीरवर, ६ – घृतवर, ७ – इक्षुवर तथा ८ – नंदीश्वर। ये महाद्वीप क्रमशः अग्रलिखित समुद्रों से घिरे हुए हैं- १ – लवणोद, २ – कालोद, ३ – पुष्करोद, ४-वरुणोद, ५-क्षीरोद, ६-घृतोद, ७ -इक्षूद तथा ८ - नंदीश्वर समुद्र। तत्त्वार्थाधिगम[२७] तथा सूर्यप्रज्ञप्ति में[२८] भी यही नामावली दी हुई है। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में [२९] वर्षों के जो सात नाम दिए हुए हैं, वे पौराणिक भूगोल के नामों से पूर्णतया मिलते हैं। लगभग यही बात पर्वतों, नदियों प्रभृति भौगोलिक वस्तुओं के संबंध में भी चरितार्थ होती है।

इससे यह स्पष्ट है कि जैनों का औत्सर्गिक भूगोल - ज्ञान उतना ही था, जितना उनके समकालीन जैनेतर हिंदुओं का। प्रज्ञापना[३०] में एक स्थल पर गौतमद्वीप का नाम आया है। यह आधुनिक ग्वाटीमाला का नाम तो नहीं है! क्या हिंदू वा प्राचीन भारतीय ३०० ई० पू० के प्रथम मध्य अमेरिका में पहुँच चुके थे? तत्त्वार्थाधिगम में एक स्थान पर रुक्मपर्वत का[३१] पारनिर्देश है। पता नहीं यह आधुनिक राकी वा एंडीज पर्वत को द्योतित करता है वा किसी अन्य पर्वत को, क्योंकि आज भी राकी और एंडीज में प्रभूत परिमाण में सुवर्ण निकाला जाता है। ऐतिहासिक प्रमाण इस अनुमान को साधार से दिखाते प्रतीत होते हैं।

सूर्य प्रज्ञप्ति के[३२] अनुसार जंबूद्वीप चक्राकार है। श्रीमद्भागवत में[३३] भी यही बात कही गई है। जंबूद्वीप - प्रज्ञप्ति के मत से भारत की आकृति उत्तर में पर्यंकाकार है तथा दक्षिण में धनुवाकार। वह पूर्व - पश्चिम की ओर लंबी तथा उत्तर - दक्षिण में चौड़ी है। यह आकृति-वर्णन बहुत कुछ ठीक है।[३४] तिलोय पण्णत्ती[३५] कहती है कि भारत की चौड़ाई जंबूद्वीप की १।१९० है, अर्थात् १,००,००० , १९० = ५२६×६।१९ योजन वा २५०० मील है। इस आंकड़े में शुद्धता की मात्रा पर्याप्त दृष्टिगोचर होती है।

प्रज्ञापना के टीकाकार हरिभद्र सूरी ने[३६] (७०५ - ७७५) बारह प्रकार की वनस्पतियों का उल्लेख किया है — १ - वृक्ष, २ - गुच्छ, ३-गुल्म, ४-लता, ५-वल्ली (कूष्मांडादि), ६-पर्वग

२६. अध्याय १५, पन्ना ३०७।
२७. अध्याय ३, सूत्र ७, टीका।
२८. प्राभृत १९।
२९. वक्षस्कर ६।
३०. अध्याय ३, सूत्र ५५, पन्ना ११४।
३१. अध्याय ३, सूत्र ११।
३२. प्राभृत ३।
३३. ५।१६।५
३४. वक्षस्कर १।
३५. ४।२०५।
३६. अध्याय १, सूत्र १६, पन्ना ३०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

(शंख आदि), ७ - तृण (कुशादि), ८ - वलय (केला प्रभृति), ९ - हरित (धान्य आदि), १० - ओषधि (फल तथा पर्वतीय वनस्पतियाँ), ११ - जलरुह (जलज वनस्पतियां) तथा १२ - कुहणा (भूमि के नीचे उत्पन्न होनेवाली वस्तुएँ)।

समराइच्चकहा[३७] के एक शब्द से परिलक्षित होता है कि तत्कालीन भारत में कोयले का उत्पादन तथा व्यवसाय पर्याप्त उत्कर्ष पर था।

तिलोय पण्णत्ती में[३८] एक स्थान पर मोम के लिए 'मयण' शब्द का प्रयोग आया है। प्रश्न है क्या तत्कालीन भारतीय मोमबत्ती का मोम बनाने लगे थे। इस संबंध में इतना तो निःसंदिग्धरूप से सिद्ध है कि ३०० ई० के आसपास भारत में मध्यपूर्व से मिट्टी का तेल मँगाया जाने लगा था।[३९] दूसरी बात यह है कि मधुमक्खी के मोम को उस समय अधिकतर मधूल के नाम से पुकारा जाता था।

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में[४०] नन्द्यावर्त, वर्द्धमान, स्वस्तिक प्रभृति तथा तिलोय पण्णत्ती में[४१] खेट, कर्वट, पट्टन आदि पुरनिवेशों (टाउन प्लैन्स) का उल्लेख आया है जिससे विदित होता है कि जैनों का पौरभूगोल - ज्ञान (नौलेज आव अर्बन ज्यौग्रफी) अपने समकालीन जैनेतर हिंदुओं जैसा ही था। परंतु अंगविज्जा[४२] (लगभग ४०० ई०) में पौरभूगोल के कुछ विशेष उत्कर्ष के दर्शन होते हैं। इस ग्रंथरत्न के २६वें अध्याय में नगरों के ६४ भेद कहे गए हैं — राजधानी, शाखानगर, पर्वतनगर, आराम बहुलनगर, पविट्ठनगर (घनी बस्तीवाले) तथा विस्तीर्ण नगर (फैलकर बसे हुए) प्रभृति। इस प्रसंग में नगरों की स्थायी और अस्थायी बस्तियों, अधिक वा कम वर्षा, उनके आकार - प्रकार, दिक् - सांमुख्य (ओरिएंटेशन), वन्य, उपवन्य, पर्वतीय सीमाओं आदि बातों पर भी प्रकाश डाला गया है। उनकी जलवायु की परिस्थियों तथा उत्कर्षापकार्ष का परिनिर्देश है। इस ग्रंथ से तत्कालीन पोत - पत्तन - निर्माण की पद्धति के संबंध में भी किंचित सूचना प्राप्त होती है। उस समय इस विद्या को 'उदक - वार्धकि'[४३] कहा जाता था।

प्राचीन जैनों में जनपद - परीक्षा की[४४] भी एक परिपाटी प्रचलित थी। इसके अनुसार जैन लोग घूम - घूमकर विविध स्थानों के संबंध में भौगोलिक और आर्थिक बातों का पता लगाते थे। इससे आंचलिक भूगोल (रीजनल ज्यौग्रफी) और प्रायोगिक भूगोल (फील्ड वर्क) को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था।

३७. बिब्लिओथिका इंडिका, पृ० ५० (इंगालकम्म)।
३८. २।३२।
३९. गणपतिशास्त्रि - संपादित 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प', पटल विसर ५५, पृ० ६८६।
४०. वक्षस्कर ३।
४१. ४।१३६८ – १४००।
४२. मुनि पुण्य विजय - संपादित, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, १९५७।
४३. अध्याय २८, पृ० १३०।
४४. सार्थवाह, पृ० १६४।

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

नृतत्व (एन्थ्रोपोलोजी) तथा जाति - विज्ञान (एथनोलाजी) के संबंध में भी जैन वाङ्मय से बहुसंख्यक तथ्य संगृहीत किए जा सकते हैं। प्रज्ञापना में[४५] सर्वप्रथम पुरुषों, स्त्रियों तथा म्लेच्छों के विषय में नृतत्व संबंधी कुछ सूचनाएँ हैं। इस प्रसंग में म्लेच्छों के पांच भेद बताए गए हैं — १ – शक, २ – यवन, ३ – चिलात, ४ – शबर एवं ५ – बर्बर। तदनंतर कई प्रकार की जातियों एवं वृत्तियों का निदर्शन है। तत्वार्थाधिगम में[४६] भी कुछ ऐसा ही वर्णन है। जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति में[४७] भी यत्रतत्र नृतत्व के तथ्य प्रकीर्ण मिलते हैं। तिलोयपण्णती में[४८] में भी कुछ परिनिर्देश है। अंगविज्जा में[४९] मनुष्यों के दो विभाग किए गए हैं — आर्य और म्लेच्छ। ब्राह्मणों को श्वेत, क्षत्रियों को रक्त, वैश्यों को पीत तथा शूद्रों को काले वर्ण का बताया गया है। अगले अध्याय में जाति - विज्ञान की कुछ बातों का उल्लेख है। इसमें बहुसंख्यक गोत्रों के नाम गिनाए गए हैं।

८

अन्य सभी तत्कालीन वाङ्मयों की भाँति जैन वाङ्मय भी इस बात को निर्विवाद सिद्ध करता है कि १२०० ई० के पूर्व भारत में सर्वेक्षण तथा परिलेखन विज्ञान (कार्टोग्राफी) का पर्याप्त प्रशंसनीय विकास हुआ था। अकलंकदेव के समय (८०० ई० के लगभग) भारत में मानचित्र भली भाँति बनाए जाते थे तथा भारतीयों को मापक की भी अच्छी धारणा हो चुकी थी।[५०] तत्वार्थाधिगम की टीका में अकलंकदेव कहते हैं, "संख्येय प्रमाणावगमार्थं जंबूद्वीपतुल्यायामविष्कम्भा योजनहस्तावगाह - दुद्ध्या कुशूलाश्चत्वार कर्तव्या शालाकाप्रतिशालाका महाशलाकाख्यस्त्रयोऽवस्थिताः चतुर्थोऽनवस्थितः।[५१]—"संख्येय प्रमाणज्ञान के लिए जंबूद्वीप के समान एक लाख लंबे-चौड़े और एक योजन गहरे शलाका प्रतिशलाका, महाशलाका और अनवस्थित नाम के चारकुंड कल्पित करने चाहिए।" मापक के[५२] ज्ञान के बिना जबूद्वीप के विशाल क्षेत्रफल और आकृति को थोड़े स्थान में कदापि दिखाया या खींचा नहीं जा सकता।

वृहत्कल्पसूत्र (४०० ई० पू० के लगभग) परिलक्षित करता है कि जैन अत्यंत प्राचीन काल में ही नाना प्रकार के मानचित्र बनाने लगे थे। अधोलिखित गाथा और उसकी व्याख्या द्रष्टव्य है —

४५. अध्याय १, सूत्र ३६ – ३७।
४६. अध्याय ३, सूत्र ३६।
४७. वक्षस्कार २।
४८. ६।३४ – ५०।
४९. अध्याय २४।
५०. दे० मेरा निबंध 'प्राचीन भारतीय सर्वेक्षण (सर्वे) और परिलेखन (कार्टोग्राफी) का स्वर्ण युग', 'हिंदुस्तानी' प्रयाग, भाग २१, अंक २, अप्रैल - जून १९६०; तथा मेरा अनुसंधान - प्रबंध 'डेवेलपमेंट आव जिओग्राफिकल नालेज इन इंडिया' अध्याय ६।
५१. अध्याय ३, सूत्र ३८ की टीका।
५२. मा जर्नल प्रथम भाग १६, अंक ३ - ४, मेरा निबंध 'सर्वे एण्ड कार्टोग्राफी...'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरु - गिरि - नदी - समुद्दो, भवरग वल्ली लया वियाणाय।
निद्दोस - चित - कम्मं, पुत्र कलस - सोत्थियाई य ॥[५३]

व्याख्या – तरुप: सहकारादय: गिरय: हिमवदादय:, नद्या गंगा - सिन्धुप्रभृतय: समुद्र: लवणोदादिक: भवनानि ··· ··· स्वस्तिकादयश्च ये माङ्गलिका पदार्था एतेषां रूपाणि यत्र लिखितानि तच्चित्रकर्म निर्दोष ज्ञातव्यम् ।

तिलोय पएणत्ती में[५४] एक पद आता है 'तस्स ठवणा', और तदनंतर एक प्रकार का मानचित्र वा निदर्शन - क्षेत्र दिया हुआ है। यह निसंदिग्ध रूप से दिखाता हैं कि इस ग्रंथ के प्रणयन के समय (५०० ई०) भारत में मानचित्रों का पूर्ण प्रचार था तथा आकाश और पृथ्वी दोनों के मानचित्र तैयार किए जाते थे ।

जंबूद्वीप - प्रज्ञप्ति[५५] भी इसी बात की पुष्टि करती है कि उसके प्रणयन के समय (गुप्त-काल के लगभग) देश में सर्वेक्षण और परिलेखन - विज्ञान अत्यंत उन्नतावस्था में थे।

तिलोयपएणत्ती कहती है[५६], "द्वीप समुद्र कुलाचल, वेदी, नदी, कुंड वा सरोवर जगती और भारतादि क्षेत्र इन सबका प्रमाण (मापन और सर्वेक्षण) प्रमाणांगुल से हुआ करता है।" इससे यह स्पष्ट है कि सर्वेक्षण की अत्यंत विकसित पद्धति प्रचलित न थी।

तत्वार्थाधिगम [५७] भी सूचित करता है, "इसी (चक्रवर्ती के आत्मांगुल) से गाँव नगर आदि की माप की जाती है।······प्रमाणांगुल से द्वीप, समुद्र, वेदिका, पर्वत, विमान, नरक, प्रस्तार आदि की माप की जाती है।" खीष्टाब्द के आरंभ (लगभग १३५ ई०) का यह कथन द्योतित करता है कि भारत में खीष्टाब्द के पूर्व ही बहुत बड़े बड़े सर्वेक्षण किए जाते थे। अन्यच्च, भूगर्भ के भीतर भी सर्वेक्षण कार्य संपादित किया जाता था (जैसा ऊपर नरक शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है), कदाचित् इसकी आवश्यकता खनिज कार्यों के लिए पड़ती थी।

परंतु भारतीय भूगोलशास्त्र के क्षेत्र में जैनों ने जो सबसे महत्वपूर्ण और उपादेय कार्य किया है वह यह है कि उन्होंने वास्तविक भूगोल विषयक लगभग २५ स्वतंत्र और पृथक् ग्रंथों का प्रणयन किया। यह ग्रंथ - संख्या अब तक की पुरातत्व की खोजों पर आधृत हैं। उनका यह कार्य देश में भूगोल शास्त्र के इतिहास में सचमुच अद्वितीय हैं क्योंकि ऐसी प्रथा देश में पहले बहुत कम वा प्रायः नहीं के बराबर थी। १२०० ई० तक के इन ग्रंथों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं —

५३. वृहत्कालयसूत्र, भाग ३, प्रथम उद्देश गाथा २४२६। तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए मेरा निबंध 'बौद्ध वाङ्मय में भूगोलशास्त्र के तथ्य' 'हिंदुस्तानी' प्रयाग, भाग २०, अंक ४।

५४. १।२८३।

५५. वक्षस्कर ३ 'छेद्येवेध्ये च दान कर्मणि (मूल),' ।'छेद्ये छेदनार्थं काष्ठादि वेध्यं वेधताहं तदेव च समुच्चये दानकर्म अङ्कनार्थं गैरिक - रक्तसूत्रेण रेखादानम्' टीका।

५६. १।१११।

५७. अध्याय ३, सूत्र ३८ की टीका।

६ (६५–३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ - सूर्य - प्रज्ञप्ति, २ - जंबूद्वीप - प्रज्ञप्ति, ३ - चंद्रप्रज्ञप्ति, ४ - तिलोयसार, ५ - लोक-विभाग, ६ - त्रैलोक्य - दीपिका, ७ - तिलोय - पराणत्ती, ८ - लोगइणी, ९ - संगाइणी, १० - धवला, ११ - मूलाचार, १२ - लोकविनिश्चय, १३ - लोकायनी, १४ - लोकायिनी, १५ - संग्रहणी, १६ - संगोयणी, १७ - वृहत्क्षेत्र समास, १८ - वृहत्संग्रहणी, १९ - प्रवचनसारोद्धार, २० - मग्गायणी, २१ - दीव सागर - पराणत्ती, २२ - जीवाभिगम, २३ - तित्थकप्प आदि।[५८]

❀

५८. यहाँ समस्त निबंध में १२०० ई० तक ही काल की इयत्ता रखी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा पहलवानदास कृत उपखानविवेक

अमरबहादुरसिंह 'अमरेश'

सतनामी संप्रदाय की जो आधारशिला जगजीवन साहेब (कोटवा) ने छोड़ी थी वह विशुद्ध निर्गुण - भक्ति की थी। उस नींव पर जो भवन निर्मित हुआ उसके निर्माण का श्रेय उनके चार शिष्यों को है। ये चार शिष्य क्रमशः दूलनदास, गोसाईंदास, देवीदास तथा ख्यामदास थे, जो सतनामी संप्रदाय के 'चार पावा' कहे जाते हैं। इन्हीं चार शिष्यों से यह संप्रदाय अलग - अलग चार 'गद्दियों' में विभाजित हो गया और सभी की अपनी - अपनी शिष्य - परंपराएँ चल पड़ीं। इस 'चार पावे' में महात्मा दूलनदास 'भेख-सिरताज' कहे जाते हैं। इनकी गद्दी 'धरमें' में है। महात्मा दूलनदास महात्मा के साथ - साथ अच्छे कवि भी थे। आपने शब्दावली, दोहावली, गंगाष्टक तथा झूलना आदि पुस्तकों का प्रणयन किया था। आपकी रचनाएँ सूफी संत - फकीरों के प्रति श्रद्धा का भाव ही प्रकट नहीं करतीं प्रत्युत उनसे प्रभावित भी हैं। इन्होंने नब्बे वर्ष की आयु में पुनर्विवाह किया था। इस विवाह से इन्हें एक संतान हुई। पुत्र का नाम इन्होंने रामबख्शदास रखा जो आगे चलकर सतनामी संप्रदाय के उन्नायक ही नहीं, अच्छे कवि एवं जायसी - साहित्य के संकलनकर्ता निकले।[1]

जन्म एवं परंपरा

महात्मा पहलवानदास जी इन्हीं दूलनदास के शिष्य सिद्धदास (हरिगाँव, जिला सुलतानपुर) के शिष्य थे। महात्मा पहलवानदास का जन्म सं० १७७६ के लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम दुजई पांडे था। वे सुल्तानपुर जिले के 'बल्दू पांडे का पुरवा' नामक ग्राम के रहनेवाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। महात्मा पहलवान दास का बचपन बहुत ही अंधकारपूर्ण है। युवा होने पर ये पल्टन में भर्ती हो गए थे। इनका शरीर स्वस्थ, फुर्तीला एवं बलिष्ठ था। वे पहलवान से प्रतीत होते थे। हो सकता है इनका वास्तविक नाम कुछ और ही हो, भीमकाय होने के कारण 'पहलवान' की उपाधि मिल गई हो जो कालांतर में नाम ही बन गई हो। कुछ भी हो, यदि 'पहलवान' इनका वास्तविक नाम है तो ये — 'यथा नाम्नि तथा गुणे' थे। यदि वह नाम नहीं, उपनाम ही है तब भी वह उनके 'मल्ल युद्ध में कुशल होने का परिचायक है। सतनामी संप्रदाय के जिस पावे से महात्मा पहलवानदास का संबंध है उसकी शिष्यप्रणाली यों है —

१. मुझे जायसी के ग्रंथों एवं मसलननामा की जो पांडुलिपि प्राप्त हुई है वह इन्हीं रामबख्श साहेब के आदेश से उनके शिष्य 'मनदास' ने रामगुलाम की पांडुलिपि से प्रतिलिपि की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संवथ विशेश्वरपुरी जी महाराज—गुरसरी)
|
श्री जगजीवन साहेब
|
श्री गोसाईंदास | श्रीदूलनदास | श्री देवीदास | श्री श्यामदास
श्रीदूलनदास
|
श्री सिद्धादास (हरिगांव)
|
श्री पहलवानदास (भीखीपुर)

कुछ दंतकथाएँ

श्री पहलवानदास जी एक सिद्ध महात्मा थे। इनके विषय में अनेकों लोककथाएँ इस जनपद में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि युवावस्था में जब ये पल्टन में नौकर थे तब इनकी पल्टन कहीं चढ़ाई पर गई। उस युद्ध में पहलवानदास को गोला दागने का काम दिया गया था। प्रातःकाल जब ये अपने शिविर में बैठे पूजा कर रहे थे तभी युद्ध प्रारंभ हो गया। इन्हें पता ही न चला। उधर युद्ध होता रहा, इधर ये तन्मयता से पूजा करते रहे। युद्ध समाप्त हुआ। शाही सेना की विजय रही। महात्मा पहलवानदास जब पूजा से उठे तो भागते हुए सेनानायक के पास पहुँचे। वे घबड़ाए हुए थे। उन्हें भय था कि सेनानायक बहुत ही रुष्ट होगा और नौकरी से निकाल देगा। वे क्षमा मांगने गए थे। सेनानायक उन्हें देखते ही बहुत प्रसन्न हुआ। छाती से लगाकर बोला — "पहलवान, आज तुमने कमाल का काम किया। बड़े अच्छे ढंग से गोले दागे। यह तुम्हारी ही मेहनत का फल है कि शाही सेना जीत गई। बोलो, कौनसा पुरस्कार चाहते हो ?" सेनानायक की यह बात सुनकर पहलवानदास हक्के-बक्के-से उसका मुँह ताकने लगे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि 'यह क्या कह रहे हैं।' क्योंकि वे तो पूजा कर रहे थे। युद्धस्थल में थे ही नहीं। अन्य लोगों ने भी उन्हें बधाई दी। अब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बाद में पता लगा कि जब वे पूजा कर रहे थे तो उनके स्थान की पूर्ति कोई दैवी शक्ति कर रही थी। किसी को यह आभास ही नहीं हो सका कि पहलवानदास अनुपस्थित हैं। इस घटना के पश्चात ही पहलवानदास को 'आत्मज्ञान' हुआ। उन्होंने नौकरी छोड़ दी। कहा — 'जिसकी सहायता में इस प्रकार पारब्रह्म परमेश्वर हो उसे नौकरी की क्या आवश्यकता ! मैं उसी की नौकरी करूँगा' और वे त्यागपत्र देकर चले आए।

इसी प्रकार एक दूसरी दंतकथा यों है — वैराग्य हो जाने के पश्चात महात्मा पहलवानदास भीखीपुर (रायबरेली) में रहने लगे। उनकी चर्चा चारों ओर हुआ करती। वे अत्यधिक प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके पास भक्तों का अच्छा जमघट लगा रहता। कहा जाता है कि रस्तामऊ ग्राम के दो किसानों में भूमि के विषय में झगड़ा हुआ। दोनों उक्त भूमि पर अपना - अपना स्वामित्व प्रदर्शित कर रहे थे। अंत में दोनों अपना फैसला कराने के लिए महात्मा पहलवानदास के पास भीखीपुर आए। महात्मा जी उस समय चारपाई पर लेटे हुए थे। वे दोनों वहा पहुँचे। उनमें से एक व्यक्ति दंभी था। वह महात्मा जी की चारपाई पर बैठ गया। दूसरा सरल था। वह भूमि पर बैठ गया। महात्मा पहलवानदास ने दोनों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगमन का कारण पूछा । दोनों ने अपनी - अपनी गाथा कह सुनाई । सब कुछ गंभीरता से सुनने के पश्चात् महात्मा पहलवानदास जी बोले — "फैसला तो तुम्हारे यहाँ आते ही हो गया । जो व्यक्ति जमीन पर बैठा है वह जमीन ले ले । जो चारपाई पर बैठा है वह चारपाई ले ले ।" चारपाई लेना एक लोकोक्ति है जिसका अर्थ है मृत्यु हो जाना या मरणासन्न हो जाना, अथवा ऐसी स्थिति में हो जाना कि फिर चारपाई न छूट सके । इसी बात को गांव की बोली में 'खटिया लगना' भी कहा जाता है । बाद में महात्मा पहलवानदास की बात सत्य सिद्ध हुई । जो चारपाई पर बैठा था, वह दूसरे दिन मर गया । जो भूमि पर बैठा था उसे जमीन मिल गई ।

महात्मा पहलवानदास के विषय में इसी प्रकार की अन्य बहुत सी चामत्कारिक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं । कहा नहीं जा सकता कि इनमें कहां तक सत्यता है फिर भी यह निर्विवाद है कि वे एक सिद्ध, परोपकारी महात्मा, कुशल कवि एवं समाजसुधारक संत थे ।

विलक्षण मृत्यु

महात्मा पहलवानदास ने अपनी तपस्या के बल से अखंड तेज एवं दीर्घ जीवन अर्जित किया था । सं० १६०० के लगभग १२५ वर्षोपरांत उन्होंने अपना भौतिक शरीर छोड़ा था । कहा जाता है कि मृत्यु के एक दिन पूर्व ही अपने शरीर छोड़ने की सूचना दे दी थी । यह खबर जब उनके भक्तों को मिली तब वे रोते - बिलखते उनके दर्शनार्थ पहुँचे । पहलवानदास ने सबको सान्त्वना दी । भजन करने को कहा । दूसरे दिन प्रातःकाल दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर वे समाधि लगा कर बैठ गए । भक्तगण एवं जनसमूह भजन गाता रहा । बैठे ही बैठे वे स्वर्गगामी हो गए । किसी को पता ही नहीं लग पाया । इस प्रकार अपने जीवन की दीर्घायु बिताकर उन्होंने शरीरांत किया ।[२] वे निःसंतान थे ।[३]

रचनाएँ

श्री परशुराम जी चतुर्वेदी तथा अन्य लेखकों ने महात्मा पहलवानदास के विषय में लिखा है — "ये पढ़े लिखे नहीं थे किंतु कविता करने का इन्हें अभ्यास हो गया था ।"[४] किंतु मुझे पता लगा है कि महात्मा पहलवानदास पढ़े - लिखे थे । भले ही वे कम पढ़े रहे हों किंतु अपढ़ नहीं थे । उनकी पलकें नीचे की ओर लटकी थीं । उन्हें पढ़ने लिखने में कष्ट होता था । अतः उनकी रचनाएँ श्री बचईलाल नामक उनके शिष्य लिखा करते थे । महात्मा पहलवानदास के ग्रंथों की जो पांडुलिपियाँ मुझे देखने को मिली हैं उनमें बचईलाल के ही हस्ताक्षर हैं ।

महात्मा पहलवानदास के रचित ग्रंथों में — उपखानविवेक, विरहसार, मुक्तायन, अरिल्ल, गुरु - माहात्म्य तथा स्फुट भजन एवं पद हैं । उपखानविवेक उनकी सर्वप्रसिद्ध एवं वंदनीय रचना है ।

२. सत्य संप्रदावली, पृ० ६७ ।
३. भीखीपुर, रायबरेली में अब भी इनकी समाधि बनी हुई है । इनका विवाह जायस के निकट हुआ था ।
४. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ५४६, तथा रायबरेली के कवि, पृष्ठ ४३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपखानविवेक

'उपखान' शब्द उपाख्यान का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है — पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत, किसी कथा के अंतर्गत कोई और कथा। विवेक शब्द का अर्थ है — भली - बुरी वस्तु का ज्ञान, सत् - असत् का ज्ञान, मन की वह शक्ति जिससे भले - बुरे का ज्ञान होता है; समझ, विचार, बुद्धि, सत्यज्ञान।

इस प्रकार उपखान - विवेक शीर्षक का जब हम मूल पाठ से समन्वय करते हैं तब यह शीर्षक उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि इसमें कोई कथा नहीं, उपाख्यान नहीं केवल लोकोक्तियों का संग्रह मात्र है, जिसे कवि ने सत्तनामी संप्रदाय के दर्शन के अनुसार शिक्षाप्रद एवं लोकोपयोगी बनाकर प्रयुक्त किया है। इस नामकरण का यदि हम आध्यात्मिक अर्थ लेते हैं तो वह प्रकृति - पुरुष की विभिन्नता का ज्ञान दिखानेवाली—सत्य + ज्ञान की, जो सतनामी संप्रदाय का मूलाधार है — परिचायिका प्रतीत होती है। इस प्रकार 'सत्य - ज्ञान' अर्थात् 'विवेक' की लोकोक्तियों द्वारा 'वृत्तांत = उपाख्यान' का रूप देकर उन्होंने 'उपखानविवेक' की रचना की है। जिसमें लोकोक्तियों के रूप में कवि का अपना जीवनदर्शन समाहित है।

जायसी का प्रभाव

उपखानविवेक पढ़ने से पता लगता है कि सत्तनामी संप्रदाय पर सूफी संतों का उस समय तक पूर्ण प्रभाव ही नहीं पड़ चुका था प्रत्युत सतनामी महात्माओं ने कविता के क्षेत्र में सूफियों की परंपरा भी अपना ली थी। लोकोक्तियों का प्रथम संकलन मलिक मुहम्मद जायसी ने 'मसलनामा' के रूप में किया था। उपखान - विवेक, मसलनामा के ही आधार पर, दोहों चौपाइयों में लिखी गई, जो जायसी द्वारा चलाई गई परंपरा में एक नई कड़ी है। उपखान - विवेक का कवि मसलनामा के कवि से उसी प्रकार प्रभावित प्रतीत होता है जैसे छंद - योजना एवं भाषा के विषय में रामचरितमानस का कवि पद्मावत के कवि से। लोकोक्तियों द्वारा उपदेश देने के लिए, जायसी ने जिस सरल एवं सुबोध मार्ग को अपनाया था, पहलवानदास को भी वही मार्ग प्रिय लगा। फलस्वरूप जायसी की ही भांति, मसलनामा के आधार पर उन्होंने 'उपखानविवेक' का प्रणयन किया।

भाषा - शैली

उपखानविवेक की भाषा अवधी है। कहीं - कहीं पूर्वी अवधी का भी प्रयोग हुआ है। बैसवारी बोली के शब्द भी यत्र - तत्र आए हैं। फिर भी इस ग्रंथ की भाषा पूर्ण रूपेण अवधी ही कही जायगी। उर्दू शब्दों में खसम, हाकिम, रोजी, मजबूत, कबर आदि आए हैं जो प्रसंगवश अपनी सरलता के कारण खटकते नहीं। प्रवाह अच्छा है, किंतु कहीं - कहीं गति-रोध भी प्रतीत होता है, फिर भी इसकी समता जायसी के मसलनामा से नहीं की जा सकती। कुछ चौपाइयों में मात्रा - दोष भी है। यही दशा दोहों की भी है। हो सकता है यह कवि की नहीं, पांडुलिपि-कर्ता की गलतियाँ हों किंतु किसी अपढ़ अथवा कम पढ़े लिखे कवि से भाषा, प्रवाह, शैली एवं शब्दचयन की जो आशा की जा सकती है — उपखान विवेक उस कसौटी में खरा उतरता है। लोक - जीवन की वस्तु होने के कारण लोक - भाषा में, लोक-कल्याण के लिए यह एक अमूल्य निधि है। जन - जीवन तक पहुँचने के लिए किसी महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जिस भाषा - शैली को अपनाना पड़ता है — उपखान विवेक की भाषा - शैली उसके लिये पूर्णतया उपयुक्त है।

उपखानविवेक की लोकोक्तियाँ

महात्मा पहलवानदास की इस कृति में मंगलाचरण के पाँच दोहों को छोड़कर शेष पुस्तक में १७६ चौपाइयाँ तथा २६ दोहे हैं। प्रत्येक अर्द्धाली के अंत में एक लोकोक्ति है। इसी प्रकार दोहों में भी लोकोक्तियों का प्रयोग है। दोहे के अंत में लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है। ये प्रयोग कवि ने उपदेशात्मक दृष्टिकोण से सतनामी संप्रदाय के दर्शन के अनुसार किए हैं।

मंगलाचरण के दोहों को पढ़ने से पता लगता है कि श्री जगजीवन साहब की विशुद्ध निर्गुण उपासना की भक्ति भूमि में महात्मा पहलवानदास तक आते 'सगुणोपासना' के बीज उग आए थे। कवि उस सगुणोपासना की लहर से अछूता नहीं रह सका। जगजीवन साहब के 'साधौ अंतर सुमिरत रहिये'[५] के स्थान पर —

> महादेव, गणपति, गिरा, गिरजा, सरन समेत।
> बंदौ सुरपति, फनपती, राम - भक्ति के हेत॥

का प्रवेश उक्त कथन की पुष्टि करता है। महात्मा पहलवानदास ने अवतारवाद की खुल कर वंदना की है। इतना होते हुए भी वे 'सतनाम' को नहीं भूले —

> 'सत्तनाम कर सुमिरन सही,
> और बात सब कहनी कही।

अथवा —

> धन सतनाम रहित जस धनी
> बूझ बरात बिनहिं 'वर' बनी
> × × ×
> बिनु सतगुरु केहू नहिं जानी,
> आंवा मध्ये नाँद हेरानी।'

उपखानविवेक से जहाँ एक ओर 'सतनामियों' द्वारा सगुणोपासना की पुष्टि होती है वहीं मूर्तिपूजा का खंडन भी। महात्मा पहलवानदास का यह विचित्र दर्शन है। एक ओर तो वे गणेश और 'फनपती' की वंदना करते हैं और दूसरी ओर —

> मूरति साजेसि पाथर काटी,
> का भूसा पर छावसि माटी।

लिखकर मूर्ति पूजा का उपहास करते हैं। ठीक इसी बात को जायसी ने मसलनामा में — 'पाथर काटि के देवत साजा, अंधरेन्ह माँ जस कनवै राजा' कहकर लिखा था। इससे पता लगता है महात्मा पहलवानदास निर्गुण एवं सगुण उपासना का समन्वय भी करते चलते थे, और विरोध भी।

५. जगजीवन साहब की बानी पृ० १०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपखानविवेक की अधिकांश लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत ही सुंदर है। जैसे सत्संग का माहात्म्य बताते हुए कवि कहता है —

सत - संगत मां वैठु तें, होइ जाई मन झोझ।
सात - पांच की लाठी, एक जने कै बोझ!

अथवा

कस माया के फंदे परा, घोड़ गँवाइ जीन सिर धरा!

× × ×

पहलवान हरि भगति बिनु, भये सिंह ते भेड़।
हीसाँ लेत बराबर, गटई कोरमत टेढ़॥

× × ×

हरिदाता जे सुख यह चीरा, जेहि कै प्रान, वही कै पीरा।

आदि प्रयोग ऐसे हैं जिनमें कवि का जीवन दर्शन निखर उठा है। महात्मा पहलवानदास उपखान विवेक में केवल एक उपदेशक के रूप में सामने आते हैं। वे सगुण और निर्गुण दोनों पंथियों से ईश्वर में ध्यान लगाने को कहते हैं। माया, मोह की स्थान - स्थान पर बुराई करते हुए संसार की असारता का दर्शन कबीर, जायसी और तुलसी की भाँति कराते चलते हैं। बीच - बीच में 'सतनाम' का भी स्मरण अपने संप्रदाय के अनुसार कर लेते हैं। इससे यह पता लगता है कि महात्मा पहलवानदास का मुख्य ध्येय सतनामी मत के माध्यम से बिना सगुण निर्गुण का विचार किए उपदेश देना था। और वे अपने इस प्रयास में पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

उपसंहार

हिंदी साहित्य में यों तो लोकोक्तियों का प्रयोग प्रायः सभी कवियों ने किया है किंतु इसका व्यापक प्रयोग पद्मावत के प्रणेता ने ही किया था। पद्मावत, अखरावट में तो लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग है ही, इस पर भी जायसी को जब संतोष न हुआ तो उन्होंने 'मसलानामा' ही लिख डाला। बाद में तुलसी, सूर से लेकर आज के प्रयोगवादियों तक लोकोक्तियों के प्रयोग की प्रथा बराबर चली आ रही है।

जायसी के 'मसलानामा' के आधार पर ही 'उपखानविवेक' एवं 'लोकोक्ति रसकौमुदी'[६] का प्रणयन हुआ है। लोक - साहित्य के संकलन का प्रयास हिंदी - साहित्य के जिन संत कवियों ने किया है — महात्मा पहलवानदास का नाम उनकी पंक्ति में अवश्य रहेगा। 'उपखानविवेक' लोकसाहित्य की एक ऐसी अनूठी कृति है जो सदियों तक लोक - जीवन में रस बरसाती रहेगी।

६. राय शिवदास कवि की कृति जिसमें ३०० लोकोक्तियाँ संगृहीत हैं। इन लोकोक्तियों का संकलन श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने किया था तथा भारतजीवन के संपादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने १८९० में भारतजीवन प्रेस से प्रकाशित किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपखानविवेक

['उपखानविवेक' की मूल पांडुलिपि से यह प्रतिलिपि की गई है। प्रतिलिपि करने में शुद्धता का पूर्ण ध्यान रखा गया है, परंतु मूल में कुछ पंक्तियाँ और शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इन्हें ज्यों - का - त्यों रहने दिया गया है।]

(मंगलाचरण)

महादेव, गणपति, गिरा, गिरजा, सुरन समेत।
वंदौं सुरपति, फनपती, राम भक्ति के हेत॥
सुरसरि, भू - सुर, सर्व - मुनि, जगतपिता रविचंद।
पवन - तनय तुम ते विनय, पहलवान मति मंद॥
करहु कृपा जन जानि कै, देहु सुमति, सद्ग्यान।
राम रटन लागी रहै, अजया सुमिरन ध्यान॥
कच्छ - मच्छ बाराह औ सतयुग बंदौ चारि।
त्रेता, वामन, परसु धरि, रामचंद्र असुरारि॥
कृष्ण, बौद्ध द्वापर भये, कल्की सो अवतार।
दुष्ट - दलन पावन करन, पाप - हरन महि - भार॥

(चौपाई)

हरि कै हेत देइ जो बढै, फूल वही जो महेसहिं चढै।
का तजि राम और ते जाना, हिज भौरी[1], कूकुर सनमाना॥
भीति[2] पूँज यह दुनियाँ मरै, छूँछ कुआँ पतकोहर[3] परै।
राम छाँडि कहु केहिका सुमिरी, चली केतिक[4] दिन जल कै चुपरी॥
जो आवा सो वेगहिं चला, भजन बिना श्रुति कहत न भला।
नर-तनु पाइ ज्ञान नहिं पाये, पाथर परा जो मूड़ मुड़ाये॥
पाँच-पचीस[5] रात दिन खटका, सरग ते गिरा, खजूरी अँटका।
चेतु-चेतु का गाफिल अरै, मैं - मैं कहत देखु जनि मरै॥
अस जन जानि झूठ कछु आहा, संत बचन सतगुरु कर काहा।
जन्म पदारथ बादिहिं खोये, बहता पानी हाथ न धोये॥

१. भौरी = बाटी।
२. भीति = दीवाल।
३. पतकोहर = पाती, सखी पत्तियाँ।
४. केतिक = कितने।
५. पाँच - पचीस = माया - मोह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत - संगत माँ बैठु तैं, होइ जाई मन सोझ[1]।
सात - पाँच के लाठी, एक जने कै बोझ ॥

आपन जनम सुफल नहिं कीन्हा, पारस छाँड़ि, काँच कर लीन्हा।
अजहूँ जानु - मानु मत भला, नैन देखु दुनियाँ नट - कला[2] ॥
वह बाजीगर सबहिं नचावै, घोड कै पूँछ कलोर[3] हिलावै।
वहि कर अंत केहू नहि जाना, बिनु सतगुरु के कहाँ ठिकाना ॥
दुइ अच्छर सुमिरौ सत - मूरी, दसौ महीना, दुइ दिन धूरी।
घटहीं राम, अंत का खोजा, पानी बिना उतारसि मोजा ॥
चारा देइ, दया भल करई, चलत बैल कहँ देसी अरई[4]।
पोखे मरै बिसंभर ओही, तेहि करता का भजे न तोही ॥
कस माया के फंदे परा, घोड गँवाइ जीन सिर धरा।

पाँच - पचीसो नहिं थके, मन चंचल नहिं मंद।
लादी गई किसान की, धोबी बेटा चंद ॥
अब साहेब सों प्रीति कर, आपन प्रान उबार।
जगत दुकान लोहार की, निस दिन मारुहिं मार ॥

बाँधा जीव करै मन अंती, तेली - क - बैल, कुम्हारन संती।
राम नाम नहिं मन माँ जापा, भीति सँवारि कै देविहिं थापा[5] ॥
देव देवहरा[6] ते मन लाये, सिरजनहारहिं कस बिसराये।
ताहि न जाने, जेइ सब कीन्हा, साँपन कै बिल, बीछिन्ह लीन्हा ॥
बूसी[7] थुरे न निकसै चाउर, हन्ना खेदै, कूकुर बाउर।
जो बोलइ सो आपुइ अहा, मानु मंद, श्रुति संतन्ह कहा ॥
बिनु जाने ते चहरि किनारा, चींटी - क - मूत न नादे भारा।
वेद - पुरान संत कहि थाके, बड़ी नसीहत आँखिनि आगे ॥
सत्त नाम कर सुमिरन सही, और बात सब कहनी कही।

१. सोझ = सीधा, शुद्ध।
२. दुनियाँ नटकला = संसार नट का खेल ।
३. कलोर = बिना ब्याई गाय।
४. अरई = एक प्रकार का लोहे का सूजा जो बैलों को भगाने के काम आता है।
५. थापा = स्थापित किया।
६. देवहरा = देवस्थान ।
७. बूसी = भूसी, धान का छिलका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप - पुन्य कर कौन गुमाना, गगरी दाना, सूद उताना ॥
यहि बातन से सुफल न लेखु, दिना चारि चैतहु के देखु।

दोस नहीं करतार को, माना तोहि सो कीन्ह।
बचे बेगारी बोझ ते, चोरन्ह बचुका[1] लीन्ह ॥

सठ तोहि आव न यह परतीती, मुख हेरत झूठेहिं कर बीती।
सतगुर देइ, सिस्य सिर जौते, हिल्ले रोजी, बहाने मौते ॥
राम छाँडि, जो औरेहि जापै, खाय उधार, पयारहि[2] तापै।
बिनु सतगुरु अस को बरदानी, भेडि[3] के पूँछ भादों कर पानी ॥
बिनु चीन्हे कोऊ पार न तरई, रासि लागि, घुर बिनियाँ[4] करई।
राम - नाम भजु सब सिधि पले, नाव परोहन बैठे चलै ॥
तजि रामहिं भजु और न आछे, खात मीठ, तिलगुर[5] करु पाछे।

सुमिरु राम सुखदायकहिं, तजु औरन्ह की चाह।
बाँध निचोई कहाँ लगि, चुई अरगनी[6] काह ॥

का तजि भजन बात बहु झलै, ऊँट चुरावै, निहुरे चलै।
कहाँ सतनाम, कहाँ निधि भारी, दसा पानि औ दसा सुखारी ॥
उपर सुवेस, साँचु नहिं हिये, निर्जल ब्रत, गोपै जल पिये ॥
जो पै राम, रमे जल - थलै, साथी से नहिं चोरी चलै ॥
धन सतनाम रहित जस धनी, बूझ बरात, बिनहिं 'बर' बनी।
भजन करत हिय सुख सरसाई, पूसे रींधे[7] – माघे खाई ॥
नाम सनेह, सु दसा जनावै, एक मास रितु आगे धावै।

नाहिं नाम, नहिं दीनता, ऊपर चौगुन ऐंठ।
पहलवान यह भक्ति नहिं कल बनियाँ अब सेठ ॥

भजनं करत भूलि भा चोरा, राम भगति बिनु पूँजी बोरा।
बहु आचार नाम बिनु करै, आधा तेल सुवाँगे[8] जरै ॥

१. बचुका = गठरी, बचका।
२. पयार = पैरा, धान का सूखा पौधा, पयाल।
३. भेड़ि = भेड़ी।
४. घुरविनियाँ = गोबर में अनाज के दाने ढूँढ़ना।
५. तिलगुर = तिल + गुर, तिल और गुड़ को मिला कर बने लड्डू।
६. अरगनी = जिसपर कपड़े सुखाये जाते हैं।
७. रीधें = पकाएँ।
८. सुवांग = स्वांग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाढ़े - बैठे चलतहु नामा, तहँ सिद्धि, सब पूरन कामा।
सब सोचत पर नाम न सोची, अंत रहे मोची के मोची॥
जंत्र - मंत्र साधन बहुतेरे, ईश्वर दूर भा दारिद नेरे।
नाम नेह बिनु बातै चुपरा, ऊख बिया ज्यों उपरहिं उपरा[१]॥
एक तजे, दुख दुइ दिसि होवै, सरा पान दुइ पानहिं खोवै।

तजु इत - उत की भरमना[२], राम नाम चित देहु।
चली - चला की बात में, भलो - भला करि लेहु॥

नर तन पाइ न भै जल तारा, सन की गाँठी पानी पारा।
दुरलभ खसम न चीन्हे बौरी[३], छूटि न ऐंठन, जरिगै जौरी॥
भगति बिना पोथी बक बाँधी, ऊपर सुंदर, भीतर खांधी[४]।
नाम न जानहिं हठ मन मांही, कहा न करहिं, गोहारहिं[५] जाहीं॥
यहि बातन ते कोहू न तरा, नाम अछत जग धंधे परा।
जल – पखान की पूजा पागे, राज छाडि, घुर बिनियाँ लागे॥

रहट घरी, होली असन, सती सिंगार समान।
पहलवान यह जिंदगी, नहिं बूझत अग्यान॥

घटहीं सतगुरु मूरि[६] बतावै, दै देखौ जिमि रोग नसावै।
गुरु के बचन सांच नहिं गहई, तेली के बैल, हडाउर[७] चहई॥
सतुगुरु कहा न चीन्हे सांई, गिरगिट दौरि पखाहे[८] लाई।
वे अस भूले, कहौं मैं काहा, लाठी मिलै, समुंदर थाहा?
तीरथ करत लंग भे पाऊँ, बिनु हरि भजन रहा पछिताऊ।
मन के कारन करै सो होई, अपने बौरे आवै रोई॥
नामहि छाँडि वृथा तन जारै, गज भर देत न सौ गज हारै।
तप ते राज, बहुत सुख भया, गया पूत जो गयहिं न गया॥
बहु दिन कीन्ह श्रौरु तन त्यागी, मुइ बिलाय जो माठहिं लागी।

१. उपरहि उपरा = ऊपर ही ऊपर।
२. भरमना = भ्रम।
३. बौरी = पगली।
४. खांधी = खोखली, खराब।
५. गोहार = शरण (पुकार)।
६. मूरि = जड़।
७. हडाउर = हड्डी ही हड्डी।
८. पखाहे = पखाह, दो दीवालों का संधिस्थान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्तनाम सुमिरे बिना, चले जुआ अस हारि।
देखा तेरी कालपी, वा बनपुरा उजारि॥
नाम सुमिरु ते पार तरु, कर्म काल को जाल।
औसर चूकी डोमिनी, गावै ताल-बे-ताल॥

सुमिरु-सुमिरु का मारसि[१] गाला, नकटै[२] जिये सो बुरी हवाला।
आवा लिखि, भरि भा लखगुना, देत कोल्हु बाँटत चुरखुना॥
जो जहाँ रहा, तहाँ सो चाला, तन माटी, सो माटी गाला।
पवन-प्रान, पुनि पवन समाना, ये तन ब्रह्म, ब्रह्म माँ साना॥
बिसरा एक चलत नौ पैंडे, भकुवा[३] भीज गाँव के गँवैंड़े।
जोगी जन जाने यह भेऊ, रोगिहै बैद और नहि केऊ॥
विधि फल देत कर्म अनुहारी, विंधनहि वार कुलीन निहारी।
को बड़-छोट विधाता आगे, त्रिभुवन तीन परग भुँइ माँगे॥

लेहु बराबर नाप भुँइ, गाँव चढी जो डोरि।
विधि हाकिम बलवान है, जस राजा तस कोरि॥[४]

अरे मनुज का मारसि गाला, बडेन कै बात केहू नहिं चाला।
करता नाम दिहे बिसराई, चलै कहा गोबर की ताई॥
नर तन पाइ कछुक नहिं सारा, सरै पराई डोंगवै[५] धारा।
प्रेत-पिशाच, भूत बैताला, का सेवसि तजि राम दयाला॥
अरे अचेत अंत मँह हने, पाप सिरात तोर नहि गने।
सेव सो भूत, राम तजि कैसे, बहुत सयान काग तन जैसे॥
जे सिरजा सुख संपति दै कै, सुमिरु सुमिरु बाउर[६] सुधि कै कै।

पहलवान हरि भगति बिनु, भये सिंह ते भेड़।
हीसा लेत बराबर, गटई कोरमत टेढ़[७]॥
सील, सुमति, संतोष जहँ, नेह नाम मजबूत।
पहलवान तहँ परखिये, पेटहिं पूत सपूत॥

१. मारसि गाला = गाल मारते हो, डींग हाँकते हो।
२. नकटै = नककटा।
३. भकुआ = बेवकूफ।
४. जस...कोरि = यथा राजा, तथा प्रजा।
५. डोंगवै = छोटी नाव, डोंगी।
६. बाउरि = बेवकूफ, मूर्ख, पागल।
७. गटई...टेढ़ = गर्दन टेढ़ी करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा नेह बिनु बातें किये, भुगते कर्म - मोच्छ रिन दिये।
चहा नाम चित अनतइ[१] लावा, भूला भाँड देवारी[२] गावा॥
तस भरमे जस उपजे प्रीती, सोहै चित्र, बने जस भीती[३]॥
बहुत बोल कोऊ सकत न मली, अडुकि[४] गिरै रावन अस बली।
गुरु मंत्र मनही मन रांता, घर घर जाइ कही नहिं बाता॥
सब सुख मिलै नाम के ओटा, बँधुआ छूटै डारै कोटा।
सब कहँ देन जनहि बिसराहीं, बड़े चोर का हींसा[५] नाहीं॥

भजन काल सो बिसरिगा, चेत चेत रे मंद।
पहलवान धन आन कर, जोगवहि मूरुखचंद॥

जिनही कहा सो तिनही छीजा, जो न अधीन राम रस भीजा।
मूड उठावत कोऊ नहिं बचई, पचै कबर, बड़ बोल न पचई॥
काम - क्रोध - मद - लोभहिं लूटा, तीन भुँजाव[७] माँ जरिगा भूटा।
सुमति भली एक नाके[६] बहै, घट फूटे कछु लागि न रहै॥
एक बार भोजन व्रत जाना, एक नारी दृढ़ व्रती समाना।
बार बार चरनन सिर नाई, जेहि बरधा[८] तेहिं सदा डेराई॥
गुरु चीन्हे बिन कतहुँ न ठाऊँ, जहाँ जाइ, तेही कर नाऊँ।

बधिर सुनत नहिं गुरु बिन, अंध तकत नहि आँखि।
पहलवान दुइ झूठि के, बीच देव हैं साखि॥

बहु जोनी भुगते नर देहीं, भाव न पू के सुरके लेहीं।
आदि अंत जाने दुख थोड़ा, राते मनई, साते घोड़ा॥
जो न होत अस ठाकुर बली, बावन चला व सिर पर गली॥
घट बिन खोज सबै मत छिया, घर अँधियारा, महजिद दिया।
सब गुन गुनी नाम सो खाँगा[९], तुलसी, भीतर बाहेर माँगा॥

१. अनतइ = अन्यत्र।
२. देवारी = दीवाली।
३. भीती = दीवाल।
४. अडुकि = ठोकर खाकर।
५. हींसा = हिस्सा।
६. तीन भुँजावे = तीन बार भुजाने से।
७. नाके = रास्ते।
८. बरधा = बैल।
९. खांगा = कमी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भ भरेही रहत न जानहिं, रिसि आपन, बुधि खोवत आनहिं।
राम भजन बिनु कहु गति कैसे, जैसी नियत, बरक्कत[1] तैसे॥
एक चेतन, घर तीस फिरारी, आठै कुम्हरा, नौ नेगहारी।
बरबस लूटै असबा हारा, जबरा भावै माल परारा[2]॥

चेत - चेत नहिं नाम ते, नितहिं अबरदा[3] थोर।
का सोवत घर जागु रे, निस दिन मूसहिं[4] चोर॥

है घटही माँ करु बिस्वासा, भांडे[5] भरा न चहीं उपासा।
आदि बात निरगुन को ध्याये, दिना चारि की हाट न लाये॥
मूरति साजेसि पाथर काटी, का भूसा पर लावसि[6] माटी।
जहँ हरि हेत काज सब सरै, घर गोहूँ, पाहुन का करै॥
नाम गनत बहुतेन्ह का देखा, बोखरि डारि पहरुआ के लेखा।
निस - दिन सुमिरै सोई सचेता, सदावरत सब दिन जो देता॥
जो सतगुरु से लेहिं न पूछी, सो मन लादे, बरदव[7] छूछी।
केतनौ करै अंत पछिताई, गुर कै बाँटी, चिउँटा खाई॥
बिनु सतगुरु केहू नहि जानी, आँवा मद्धे नाँद हेरानी।

सुख संपति संतोष मत, भगति सुखद सुविवेक।
पहलवान संसार महँ, दाता, सतगुरु एक॥

साईं निकट सुरति नहिं रसै, खाइ अलोना सांभर बसै।
नाम हृदय धरु, तकु दै आँखी, घर गुर बाहेर, मिलै मेमाखी[8]॥
कहा मानु नहिं समऊ तोरा, जहाँ भात, तहँ कौआ - रोरा।
भल सुखु मिली प्रीत करु गाठी, तकु मुख नाहिं परोसहि टाठी॥
कति सुनि आइसि किहेसि न तौन, घोड बिके का साथी कौन।
जे सुमिरै ते साईं का बंदा, न तु परिहे माया के फंदा॥
'हरिदाता' जे मुख यह चीरा, जेहि कै प्रान वही का पीरा।

१. बरक्कत = उन्नति।
२. परारा = पराया।
३. अबरदा = आयु।
४. मूसहिं = लूटते हैं।
५. भाँडे = बर्तन।
६. लावसि = लगाते हो।
७. बरदव = बैल।
८. मेमाखी = शहद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोर कीन पुनि कछु नहिं होई, पै सब मिटा; मिटी नहिं खोई ॥
नाम न लिहे सोच जिय धरसी, का बनियाँ कर दूसा - करसी[१] ।
निपट पाँच बसि भइसि अनारी, कोरी - क गाँव, रजपूत बेगारी ॥

नरतन दुरलभ पाइकै, राम न जानै साँच ।
पहलवान अब कौखसि[२], नहिं कहरा तैं नाच ॥

ये जीवहिं परपंची तीस, बहुत सपूत न गा घर बीस ।
पांडव - पाँच एक मत भये, सौ मत करत कौरवा गये ॥
दीनँ बंधु साहेब सब कहत, जहाँ दीनता, तहवाँ रहत ।
बिदुर का साग अलोना नीक, दुरजोधन घर विंजन फीक ॥
दासी दीन रही जो सेवरी, परम प्रीति, जूठे फल धरी ।
तेहिमा स्वाद मिला फिर नहहीं, तिहुँ पुर नाथ कहत अस अहहीं ॥
कौने दीनन पर अब दया, जहाँ नाम कर सुमिरन भया ।

अहंकार अभिमान ते, रहत गोसाई दूर ।
राम नाम अरु दीनता, पहलवान तहाँ पूर ॥
राम नाम को जानि ले, याही माँ भल तोर ।
दोस नहीं करतार को, का मुरगा बिन भोर ॥

सुमिरु - सुमिरु अब औसर यही, नाचे गाँव, न सिरकी रही ।
जेहि व्यापै तेहि सुमिरै नाऊँ, मारा चोर बेरावै[३] गाऊँ ॥
करै ओभाई[४] माला गले, राम न सुमिरै, यक उन भले ।
अस अग्यान ताहि को कहै, बोवै कोदै, गोहूँ चहै ॥
अल्प अवरदा[५] चेतन हेरे, नीमर घोडी चलै सबेरे ।
तीन सुन्य के ऊपर सुन्न, तहँ निरगुन, कहँ पाप न पुन्न ॥
तासो तीन एक सो कहा, शब्द विवेकी सब्दै रहा ।
बार - बार का पूछत बाता, का बरनै गुरु गूँगा खाता ।
भली संपदा सुमिरनु करै, नहिं कुबेर घर लंघन[६] परै ॥

१. करसी = कंडी, गोबर के सूखे टुकड़े ।
२. कौखसि = कांखता है ।
३. बेरावै = दूर रहे ।
४. ओझाई = पंडिताई ।
५. अवरदा = आयु ।
६. लंघन = उपवास ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचों की बसिगा सब खोय, तेहि घर दुरमति सुखी न कोय।
दैव निबाहै, निबहै राहा, नहीं खेत खनिहैं बनबाहा[1] ॥

जे बोलै ते सब करै, नहिं बंदे की लागु।
आपुइ गाँव-क-ठाकुर, आपुइ खेलै फागु ॥

आपुइ नाचै, आपु नचावै, कौन बडेन का दूखन[2] लावै।
आपुइ - आपु करै सब खेला, आपु पियारा, आपुइ तेला ॥
आपुइ पंथी, पथ पर चढ़ा, मा बटमार आपु दुइ गढ़ा।
मन उपजाइ जगत रस पागा, मे पाँचौ तेहि के पछलागा[3] ॥
पाँच पाँच पाँचौ ते किहिसि, तन - मन बीच राज तेहि दिहिसि।
यह सब किहिसि, दिहिसि जिवजामा, बिनु जाने सब धरम का धामा ॥
सब कोऊ लखै, जो यह मन मारै, अपने मुये ते सरग सिधारै।
कोऊ काहू के साथ न जाई, आपुहि आपु का लंका छाई ॥
सुमिरु सकारे, भज ले यार, बबुर न जामै आये धार।

अबहिं सबेरे सुमिरु ले, कहु आगू कस होय।
तीरथ पाइ मुड़ाइये, भला कहै सब कोय ॥
माटिहिं ते पैदा भये, माटिहि मिलिगा तौन।
पौन जाइ पवनहिं मिला, मिटा धुवाँ करि मौन ॥

मोर - मोर कहतै सब थके, धुवाँ - क - धाम रहत कहुँ तके।
राम कहहिं ते कबहुँ न हारहिं, परे खेखारहिं[4] सौ जन मारहिं ॥
सुमिरु – सुमिरु साईं का नामा, अस्त्र हाथ, गाँठी कर दामा।
मन मानै तौ पुरवै आसा, सब के गुरु गोबरधन दासा ॥
तन कर ठाकुर, यह मन अहा, मानहुँ साँच कबीरहँ कहा।
भजन दीनता, री कत धनी, सरग कै राह बेरहरे बनी ॥
कहा संत श्रुति मनहिं न आवा, आल्हा, बड़े हरवाहन गावा।
अब न बनी, फिरि बनिबे कान, चले मूसि पट वाकर मान ॥
सेवत भूत जगत सब पामर, पीरन कर धन खात मुजावर।
अपनी करनी तौ आसार, जहाँ खड़े तहँ दंम - मदार ॥

१. बनबाहा = जंगली पशु।
२. दूखन = दोष।
३. पछलागा = पीछे चलने वाला।
४. खेखारहिं = खेखारते हैं, खाँसते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमारथ पर लोक ते, संत सो राखत हेत।
जगत उतायेल साहना, लेकै बाँटे लेत ॥

इहाँ-क-रहना मोरहि साऊ, का नापत दुनियाँ कर भाऊ।
जहाँ सुख बहुत बहुत दुख तहाँ, आपुइ व्याप रहा दोऊ महाँ॥
जो पैदा भा सो निरबीजा[1], दुइज के आगे होइहै तीजा।
यहि नर तनहिं भजन ते चूका, बादर मारे डार-क-हूका॥
इहाँ किं आसा डोरि न टूटै, चीलर की भय कथरी छूटै?
जो परतीत परै हरि मिलते, रही कोहाय लोखरी[2] बिलते।
रामहि दोस देति का अरे, आपनु पापु आन के मरे॥
मोह बजार आइ सब बिके, घर कुम्हार के जोगी टिके।

भगति हेत नर जन्म यह, सुमिरु सुमिरु नादान।
अंबा भोजन यही है, यही गंग असनान॥

नहिं चेतत यह दुनियाँ बाऊर, जाड गये पुनि कहाँ जडाउर[3]।
दम-पाहुन कर कौन भरोसा, को जानै कब आव न सोसा[4]॥
स्वारथ रत, परमारथ जाता, भूखा बंगाली, भातहिं भाता।
मरि-मरि गये, कोऊ नहिं जिये, नहिं निहचै करि मानत हिये॥
आखिर कोऊ साथ नहिं लागा, आपन डफली, आपन रागा।
सुख ते सुखी, दुखित दुख मरई, कोऊ काहू के चिता न जरई॥
मैं मैं कहत चले सब जाहीं, अँधरी पोवै, कुकुरी खाहीं।
अपनी करनी, सुख-दुख अपना, आदि-अंत सब विलग विरपना॥
बृथा जानु, सब कोऊ नहिं साथा, बगुला मारे पखना हाथा।
आगू काल, न बचिहौ लुके, तुरुक मुये नहिं रोजा चुकै॥

सच नाम सुमिरे बिना, कतहुँ न लागै तीर।
बदे रहे मकरा[5] के गोभा, कौन खवावै खीर॥
नामहि तजे विपति यह घनी।
सिकहर टूट बिलारि कै बनी॥

समाप्तम्

१. निरबीजा = निर्बीज।
२. लोखरी = लोमड़ी।
३. जडाउर = जाड़े के वस्त्र।
४. सोसा = स्वांस।
५. मकरा = एक प्रकार का अन्न।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी - व्याकरण - संबंधी गवेषणा – ३

वाक्य के सहायक अंगों की अभिव्यक्ति

स० म० दीमशित्स

वाक्य के सहायक अंग वाक्य के मुख्य अंगों (कर्त्ता और विधेय) का स्पष्टीकरण करते हैं। प्रत्येक भाषा में तीन प्रकार के सहायक अंग होते हैं : पहला कर्म, दूसरा विशेषण और तीसरा विशेषताबोधक।

कर्म

कर्म वाक्य के वह सहायक अंग हैं जो उस वस्तु को निर्दिष्ट करते हैं जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़ता है अथवा क्रिया, विशेषण और संज्ञा का संज्ञा के प्रति संबंध दिखाते हैं। हिंदी भाषा में कर्म क्रिया (और उसके पुरुषवाचकेतर सामान्य रूप, कृदंत, पूर्वकालिक कृदंत), संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण के साथ प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार हिंदी भाषा में कर्म क्रिया - संबंधी और नामिक - संबंधी और क्रिया-विशेषण - संबंधी होते हैं। क्रिया संबंधी कर्म प्रधान कर्म और अप्रधान कर्म दोनों प्रकार के हो सकते हैं। नामिक संबंधी कर्म और क्रिया विशेषण संबंधी कर्म सदा अप्रधान कर्म होते हैं। प्रधान कर्म उस वस्तु को निर्दिष्ट करते हैं जिसपर सकर्मक क्रिया का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है और वह सदा सकर्मक क्रिया के साथ प्रयुक्त होते हैं।

अप्रधान कर्म — अप्रधान कर्म क्रिया का वस्तुओं के साथ विभिन्न प्रकार का संबंध अभिव्यक्त करता है। विभक्ति-चिह्नों सहित अप्रत्यक्षकारक के रूपों से या सर्वनाम के कर्म कारक से इस अप्रधान कर्म की अभिव्यक्ति होती है। जैसे – (१) वह मुझको (मुझे) यह किताब दे चुका है। उक्त वाक्य में 'मुझको' (मुझे) अप्रधान कर्म है, और यह किताब प्रधान कर्म है। (२) मैं तुमसे किसी बात की शिकायत न कर सकी। इस दूसरे वाक्य में 'शिकायत' पद क्रिया से संबंधित प्रधाम कर्म है, 'तुमसे' पद क्रिया से संबंधित अप्रधान कर्म है और संज्ञा से संबंधित अप्रधान कर्म है 'किसी बात की' पद। (३) वह अपने वायदे की पूरी होती है। इस वाक्य में नामिक (विशेषण) से संबंधित अप्रधान कर्म 'अपने वायदे की' पद है। (४) हम उससे दूर रहते हैं। इस वाक्य में क्रिया विशेषण से संबंधित 'उससे' पद अप्रधान कर्म है।

प्रधान कर्म — हिंदी भाषा में अप्रधान कर्म की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हो सकती है। (क) प्रत्यक्ष कारक के रूप में संज्ञा या सर्वनाम से। जैसे – (१) उसने सारे गहने संदूक में बंद कर रखे हैं। (२) यह उससे सहा नहीं जाएगा। (ख) 'को' सहित अप्रत्यक्ष काल के रूप में संज्ञा और सर्वनाम से या कर्म कारक के सर्वनाम से। जैसे – (१) दोनों ने मिलकर घायल आदमी को टैक्सी में लिटा दिया। (२) यहाँ बेचारा माली डेढ़ दो घंटे से तुम्हें खोज रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रधान कर्म — प्रत्येक प्रकार के अप्रधान कर्मों की अभिव्यक्ति विभक्ति के चिह्न सहित अप्रत्यक्ष कारक से होती है या कर्म कारक के रूप में सर्वनाम से होती है। जैसे – (१) रफी ने बच्चे की तरफ देखा। (२) हमने उसे परसों एक तार भी दे दिया था। (३) क्या कश्मीर आने का रास्ता हुआ है? (४) मुझे तुम पर विश्वास है।

विशेषण

विशेषण वाक्य का वह सहायक अंग है जो किसी वस्तु के गुणों और विशिष्टताओं को दिखाता है। हिंदी भाषा में विशेषण (एट्रिब्यूटिव) की अभिव्यक्ति प्रत्येक नामिक (संज्ञा, विशेषण (एडजैक्टिव), संख्या), संख्या) सर्वनाम, कृदंत, क्रिया के सामान्य रूप (इनफिनिटिव), क्रिया विशेषण और शब्द समुदाय से हो सकती है। हिंदी भाषा में विशेषण (एट्रिब्यूटिव) निम्न प्रकार के होते है —

(१) सान्वय विशेषण, (२) असान्वय विशेषण और (३) समानाधिकरण (एपोजीशन) विशेषण।

सान्वय विशेषण — सान्वय विशेषण का विशेष्य से संबंध उसके मेल से होता है। पूर्ण मेल लिंग, वचन और कारक में हो सकता है। अथवा अपूर्ण मेल लिंग और कारक में या वचन और कारक में हो सकता है। जैसे – (१) पूर्ण मेल — मेरे भाई के लिए। (२) लिग में मेल – हमारी किताबों में। (३) लिग और कारक में मेल – मेरे भाइयों के लिए। (४) वचन और कारक में मेल – इन औरतों को।

सान्वय विशेषण की अभिव्यक्ति निम्न से होती है: (१) विकासी विशेषण (एडजैक्टिव) और सर्वनाम से। जैसे – धीमी आवाज, वे मजदूर, कितने आदमी।

(२) क्रमवाचक संख्या से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – दसवीं तारीख।

(३) कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – पढ़ी किताब।

(४) 'का' सहित संज्ञा, क्रिया विशेषण, क्रिया के सामान्य रूप (इनफिनिटिव) और शब्दसमुदाय से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – घर का काम। (२) यहाँ का आदमी। (३) लिखने की मेज। (४) शब्द समुदाय – फूट डालो और राज करो की नीति।

(५) 'वाला' प्रत्यय सहित संज्ञा, क्रिया विशेषण और शब्दसमुदाय से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) संज्ञा – बच्चों वाला आदमी, (२) क्रियाविशेषण – यहाँ वाले लोग। (३) शब्द समुदाय – सुनहरे बालों वाली लड़की।

(६) 'सा' सहित संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) संज्ञा – खेल-सा व्यायाम। (२) विशेषण – मजबूत-सी लड़की। (३) सर्वनाम – तुम्हारा बच्चा।

यदि एक अन्वय सहित विशेषण दो या दो से अधिक ऐसे विशेष्यों से संबंधित है जिन (विशेष्यों) की अभिव्यक्ति विभिन्न लिंग वाली संज्ञाओं से हुई है उसका मेल निकटवर्ती विशेष्य से होता है। जैसे – यहाँ के मनुष्य और स्त्रियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वय रहित विशेषण का विशेष्य से कोई मेल नहीं होता। इस प्रकार के विशेषण की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार की होती है —

(१) प्रत्यक्ष कारक में संज्ञा से। जैसे – पत्थर - कोयला।

(२) अविकारी विशेषण (एडजैक्टिव) और अविकारी सर्वनाम से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) अविकारी विशेषण – पहाड़ी रास्ता। (२) अविकारी सर्वनाम – सब विद्यार्थी।

(३) गणनावाचक संख्या और अविकारी सर्वनाम से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) गणनावाचक संख्या – पाँच लड़के। (२) अविकारी सर्वनाम – कई मेजें।

समानाधिकरण (एपोजीशन) विशेषण – यह ऐसा विशेषण होता है जो सदा संज्ञा से अभिव्यक्त होता है और प्रायः संज्ञा से ही संबंधित होता है। उसका संबंध पुरुषवाचक सर्वनाम से भी हो सकता है। जैसे – (१) संज्ञा – बेटा वाहिद उठो, महमूद आ गये। (२) पुरुषवाचक सर्वनाम – हम मजदूर यह काम करने को तैयार हैं। समानाधिकरण विशेषण के रूप में जातिवाचक संज्ञाएँ और व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ दोनों प्रयुक्त होती हैं। जैसे – (१) जातिवाचक संज्ञा – वह रात उसने स्टेशन सियालदह पर काटी। (२) व्यक्तिवाचक संज्ञा – नीला बेगम फतहदीन चपरासी की बेटी थी।

समानाधिकरण विशेषण, जिसकी अभिव्यक्ति जातिवाचक संज्ञा से होती है, का मेल संबंधित शब्द से कारक में होता है। जैसे – (१) रफी बेटे, जाओ सैर कर आओ। (२) वह नदी के किनारे जाकर गड़रिए बच्चों के साथ नाचें, पेंगें बढ़ाईं, बाँसुरियों के गीत सुने।

विशेषताबोधक

विशेषताबोधक, वाक्य का एक ऐसा सहायक अंग है जो वह स्थिति दिखाता है जिसमें क्रियाएँ व्यापार कर रही हैं या क्रियाव्यापार का और विशेषणों का निरूपण कर रही हैं।

यह देखते हुए कि विशेषताबोधक स्थान, समय, कारण, उद्देश्य, क्रियाव्यापार का प्रकार, क्रियाव्यापार की अभिव्यंना की मात्रा या वह तत्व निर्दिष्ट करता है जिसके बावजूद वह क्रियाव्यापार संपन्न होता है। हिंदी भाषा में निम्न विशेषताबोधक प्रयुक्त होते हैं —

स्थान विशेषताबोधक, समय विशेषताबोधक, कारण विशेषताबोधक, उद्देश्य विशेषताबोधक, प्रकार विशेषताबोधक, मात्रा विशेषताबोधक, 'सत्यर्थक' (कंसैशनल) विशेषताबोधक।

विशेषताबोधक की अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है—

(१) क्रिया - विशेषण से। जैसे – हम यहाँ पैदल आये।

(२) पूर्वकालिक कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – वह इसे सुनकर चिढ़ जाता था।

(३) सामान्य और संयुक्त कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे (क) वह आहिस्ता - आहिस्ता रास्ता टटोलते गुजर जाता। (ख) आहिस्ता - आहिस्ता लाठी टेकते हुए काश्मीरी मोहल्ले से बाहर निकल रहा था।

(४) विभक्ति चिह्न सहित या विभक्ति चिह्न रहित संज्ञा से अभिव्यक्ति हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे – (क) विभक्ति सहित – एक दिन वह बाजार से गुजर रहा था। (ख) विभक्ति रहित – मैं कल वापस मेरठ चला जाऊँगा।

(५) क्रिया के सामान्य रूप से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – चलो, माँ जा तुम्हें खाने को बुलाती हैं।

(६) नियत शब्दसमुदाय से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – इस तरह एक महीना गुजर गया।

स्थान विशेषताबोधक – स्थान विशेषताबोधक क्रियाव्यापार और स्थिति का संबंध वातावरण से प्रकट करता है और क्रिया से संबंधित होता है। स्थान विशेषताबोधक की अभिव्यक्ति प्रायः निम्न से होती है—

(१) स्थानवाचक क्रियाविशेषण – यहाँ, वहाँ, कहाँ, पास, बायें, दायें, आदि से। जैसे – वह यहाँ काम करता है।

(२) उस विभक्ति चिह्न सहित अप्रत्यक्ष कारक में संज्ञा या उसके स्थानापन्न शब्द जो स्थान, क्रियाव्यापार का स्थान और रूप आदि दिखाता है, इसकी अभिव्यक्ति होती है। जैसे – पर, में, के पास, के सामने, के आगे, के नीचे, के बीच, के ऊपर से, तक, इत्यादि। उदाहरण – (क) इस गाँव में जमुना रहती थी। (ख) बेचारा लारी के ऊपर नहीं चढ़ सकता था।

प्रत्यक्ष कारक में संज्ञा से अभिव्यंक्ति हो सकती है। जैसे – वह घर गये।

समय विशेषताबोधक – समय विशेषताबोधक क्रियाव्यापार की पूर्ति का समय निर्देश करता है और क्रिया से संबंधित होता है। समय विशेषताबोधक की अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है—

(१) समयवाचक क्रियाविशेषण आज, कल, अब, परसों, कभी, हमेशा, पहले आदि से। जैसे – हम आज पहुँचेंगे।

(२) पूर्वकालिक कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – बच्चा रफी को देखकर किलकारियाँ मारने लगा।

(३) अप्रत्यक्ष कारक में विभक्ति चिह्नों सहित संज्ञा (जो समय निर्देश करती है) से अभिव्यक्ति हो सकती है। यथा – से, तक, में, के दौरान, इत्यादि। उदाहरण — (क) शाम तक यह काम पूरा किया जाए। (ख) हमने सोच-विचार के बाद एक और तार दे दिया था।

(४) विभक्ति चिह्न रहित अप्रत्यक्ष कारक में वर्तमानकालिक सामान्य कृदंत से 'समय' या 'वक्त' शब्द के साथ अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – खाते समय वह चुप रहते हैं।

(५) विभक्ति चिह्न रहित अप्रत्यक्ष कारक में वर्तमानकालिक सामान्य कृदंत से 'ही' के साथ अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – अंदर आते ही वह बैठ गया।

(६) 'में' विभक्ति चिह्न सहित अप्रत्यक्षकारक में वर्तमानकालिक सामान्य कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – सोते में भी वह भूखे रहते हैं, और जागते में भी भूखे रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) सामान्य स्वतंत्र[1] (एबसोल्यूट) कृदंत से या संयुक्त स्वतंत्र कृदंत से हो सकती है। जैसे – (क) तुमको दूकान पर बैठते शर्म नहीं आती? (ख) घर की तरफ जाते हुए उसकी सिसकियाँ तेज होती गईं।

(८) में, पर, के बाद, और तक सम-सूचक विभक्ति चिह्नों के साथ अप्रत्यक्ष कारक में क्रिया के सामान्य रूप (इनफिनिटिव) से अभिव्यक्ति हो जाती है। जैसे – (क) घर पहुँचने पर उसने अपने दोस्तों को एक खत भेज दिया। (ख) कर्ज दे देने के बाद उसके पास केवल दस रुपये रहे हैं। (ग) पाठ शुरू होने में पाँच मिनट बाकी हैं।

(६) नियत शब्द समुदाय से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (क) उस वक्त रफी घर में नहीं था। (ख) इस कहानी का असर मुझ पर कई दिन रहा।

कारण विशेषताबोधक – कारण विशेषताबोधक क्रिया का कारण या आधार दिखाते हैं और क्रिया से संबंधित होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है—(अ) कारण सूचक क्रियाविशेषण 'मजबूरन', 'भूलकर' आदि क्रियाविशेषणों से। जैसे – वह यहाँ भूलकर आया।

(ब) 'से', 'के लिये' 'के बदौलत', की वजह से', 'के कारण' आदि कारणवाचक विभक्ति चिह्नों सहित अप्रत्यक्ष कारक में संज्ञा या क्रिया के सामान्य रूप से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) बारिश की वजह से सड़कें कच्ची हालत में हैं। (२) तीसरे सोवियत कास्मिक राकेट के छोड़े जाने से अंतरिक्ष के बारे में नई जानकारी मिलेगी।

उद्देश्य विशेषताबोधक – उद्देश्य विशेषताबोधक क्रिया का उद्देश्य दिखाता है और क्रिया से संबंधित होता है। उनकी अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है। – (अ) 'जानबूझकर' उद्देश्यवाचक क्रियाविशेषण से। जैसे – उसने यह **जानबूझ कर** किया।

(ब) 'के लिए', 'के वास्ते', 'के निमित्त', 'के अर्थ' 'के हेतु' विभक्ति चिह्नों सहित अप्रत्यक्ष कारक में संज्ञा या संज्ञातुल्य शब्दों से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – (१) मैं यहाँ इस किताब के लिए आया। (२) वह धान के लिए दो बीघा जमीन और खरीदना चाहता था।

प्रकार विशेषताबोधक—प्रकार विशेषताबोधक क्रिया के प्रकार और शैली को दिखाते हैं। उनकी अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है —

(क) 'जल्दी', 'शीघ्र', 'आहिस्ता', 'अचानक', 'अनायास' 'यूँ' आदि प्रकारवाचक क्रियाविशेषणों से। जैसे – अचानक मेरी आँख खुल गई।

(ख) पूर्वकालिक कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – क्या बात है, मैने घबराकर पूछा।

१. लेखक के मत में स्वतंत्र कृदंत वे हैं जो वाक्य के कर्ता से संबंधित नहीं होते हैं और सदा अप्रत्यक्ष कारक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे – 'दौड़ते हुए मुझे चोट लगी।' इस वाक्य में चोट कर्ता है, किंतु इस वाक्य में 'दौड़ते हुए' इस कृदंत पद का संबंध कर्ता से नहीं है, अपितु 'मुझे' कर्म पद से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) पूर्वकालिक कृदंत की द्विरुक्ति से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे - नन्हा रफी नीला के साथ भाग - भाग कर तितलियाँ पकड़ रहा था।

(घ) अप्रत्यक्ष कारक में सामान्य या संयुक्त कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे- (१) वह टाँगे फैलाए चटाई पर बैठा हुक्का पी रहा था। (२) कुत्ता दुम दबाए हुए लारी के पास पहुँचा।

(ङ) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारक में सामान्य कृदंत की द्विरुक्ति से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे - (१) रफी दौड़ता - दौड़ता घर गया और तितलियों वाला डिब्बा ले आया। (२) अम्मां रोते-- रोते सो गई थी।

(च) '(के) बगैर', '(के) बिना', इन दो विभक्ति चिह्नों या 'बे' उपसर्ग सहित अप्रत्यक्ष कारक में भूतकालिक कुदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे - बगैर उसकी ओर ध्यान दिए वह अपने काम में लग गया। (२) मैं इस बात को बिना सर्टीफिकेट देखे मान लेता हूँ। (३) बेकुछ कहे वह घर से चला गया।

(छ) 'से' विभक्ति चिह्न सहित अप्रत्यक्ष कारक में संज्ञा से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे — दीवार धड़ाम से गिर पड़ी।

मात्रा विशेषताबोधक – मात्रा विशेषताबोधक क्रियाओं और विशेषणों की अभिव्यंजना की मात्रा दिखाते हैं। इसलिए वे न केवल क्रियाओं से बल्कि विशेषणों और क्रियाविशेषणों से भी संबंधित होते है। उनकी अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है —

(क) 'दोबारा', 'बहुत', 'बिलकुल', 'काफी', 'पर्याप्त' आदि मात्रासूचक क्रिया विशेषणों से। जैसे – वह बहुत पढ़ता है।

(ख) संख्यावाचक शब्दसमुदाय से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – नीला रफी के घर कई बार आई।

'सति' - अर्थक (कन्सैशनल) विशेषताबोधक – 'सति' - अर्थक विशेषताबोधक वही शर्त दिखाते हैं जिससे क्रिया की पूर्ति में बाधा आती है और साथ ही यह निर्देश करते है कि यह शर्त फिर भी क्रिया की पूर्ति में सदा बाधक नहीं बन पाती। उनकी अभिव्यक्ति निम्न से हो सकती है —

(क) 'के बावजूद' विभक्ति चिह्न सहित अप्रत्यक्ष कारक में संज्ञा या संज्ञातुल्य शब्द से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – बुरे मौसम के बावजूद हम सैर करने गये।

(ख) 'भी' सहित पूर्वकालिक कृदंत से अभिव्यक्त हो सकती है। जैसे – वक्त पर आकर भी मैं उससे न मिला।

(ग) 'भी' सहित अप्रत्यक्ष कारक में संयुक्त वर्तमानकालिक कृदंत से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – ड्राइवर होते हुए भी वह लारी चला नहीं सकता।

(घ) 'पर' और 'भी' सहित अप्रत्यक्ष कारक में क्रिया के सामान्य रूप से अभिव्यक्ति हो सकती है। जैसे – बारिश होने पर भी फसल सूख गई है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श

एक अलभ्य टीका के प्रकाश में मेघदूत की पाठसमस्या

'मानस संघ' के केंद्रीय कार्यालय, रामभवन (सतना) के 'तुलसी संग्रहालय' में जो महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ वस्तुएँ हैं (पुस्तकें, मूर्तियाँ, सिक्के, डाक टिकट, हस्तलेखादि) उनमें एक छोटी सी हस्तलिखित पुस्तक भी है। यह पुस्तक है महाकवि कालिदास कृत 'मेघदूत' काव्य की 'पंजरिका' टीका।

'रामभवन' में 'तुलसी संग्रहालय' के मुख्य कक्ष में जो प्रदर्शन पेटिकाएँ (शो केस) रखी गई हैं, उनमें से एक प्रदर्शन पेटिका का नाम कालिदास करंडिका है। इस प्रदर्शन पेटिका में महाकवि कालिदास के सभी ग्रंथ रखे गए हैं। ग्रंथों के विभिन्न संस्करण, टीकाएँ तथा कालिदास पर लिखे गए परिचय एवं आलोचना ग्रंथ भी हैं। इन्हीं में एक हस्तलिखित मैली, पुराने कागज पर लिखी छोटी सी पुस्तक है। यही पुस्तक है मेघदूत की पंजरिका टीका।

कालिदास के सभी ग्रंथों की टीका मल्लिनाथ ने की है और अन्य टीकाओं में मल्लिनाथ की टीका अधिक प्रामाणिक भी मानी जाती है। मल्लिनाथ की टीका का नाम 'संजीवनी' टीका है। मैं जिस टीका की यहाँ चर्चा कर रहा हूँ वह मल्लिनाथ-सुत कृत है और उसका नाम 'पंजरिका' है।

इस पुस्तक की प्राप्ति से पूर्व यह जानने का कोई उपाय नहीं था कि मल्लिनाथ के कोई पुत्र थे भी या नहीं। इस पुस्तक से भी यही पता लगता है कि कम से कम एक पुत्र उनके था और विद्वान था। उनके द्वारा क्या और कितना साहित्य निर्माण हुआ, यह कुछ पता नहीं। केवल मेघदूत की उनकी यह टीका मिली है। यह अभी तक कहीं से प्रकाशित नहीं हुई और इसकी दूसरी प्रति मिलने का भी कोई समाचार नहीं है।

प्राप्ति का विवरण

एक सज्जन रीवा जिले में कुछ हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों का संग्रह कर रहे थे। अपने उद्योग में उन्हें जो ऐसे पृष्ठ मिले, जो उनकी समझ से व्यर्थ थे उन्हें वे बोरों में डालते गए। अंत में रद्दी के भाव बेचने के लिए वे ऐसे दो बोरे कागज लेकर बाजार गए किंतु सौभाग्यवश कोई ग्राहक नहीं मिला। ये प्राचीन ग्रंथों के पृष्ठ दूकानदारों के लिए व्यर्थ थे। वे इनमें सामान बाँधकर ग्राहकों को दें, इस योग्य ये कागज थे नहीं। अतः उन सज्जन को निराश अपने बोरे लौटा लाने पड़े।

तुलसी संग्रहालय के तथा मानससंघ के संस्थापक श्री शारदाप्रसाद जी से जब उन सज्जन का परिचय हुआ तो ग्रंथ संग्रह की चर्चा के बीच उन्होंने अपने रद्दी के उन बोरों की चर्चा की। वे उन्हें फेंक देना चाहते थे क्योंकि वे व्यर्थ स्थान घेरे थे। माँगने पर सहर्ष उन्होंने दोनों बोरे 'तुलसी संग्रहालय' को प्रदान कर दिए। उस रद्दी को छाँटते समय जो कई ग्रंथ मिले, उसी में यह एक मेघदूत की 'पंजरिका' टीका भी है। अतः यह कहना कठिन है कि यह पुस्तक उन सज्जन को किस ग्राम के किस घर से प्राप्त हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का स्वरूप

८॥ इंच लंबे ३ इंच चौड़े कागज पर लिखी हुई यह कुल ६२ खुले पन्नों की पुस्तक है। प्राचीन पुस्तकों की हीं भांति प्रत्येक पन्ने पर केवल एक पृष्ठ पर हाशिए के कहीं एक ओर और कहीं दोनों ओर पन्नों के नंबर पड़े हैं। नंबरों के ऊपर 'श्री' लिखा गया है। इस पुस्तक में ६, १०, ११ और १२ नंबर के पन्ने नहीं है। इससे दसवें श्लोक की टीका आठवें पन्ने पर अधूरी रह गई हैं और तेरहवें पन्ने पर सत्रहवें श्लोक की टीका का कुछ पूर्वांश छूटता है। पुष्पिका यों है—

इति श्री मल्लिनाथ सुत विरचिता मेघदूताख्य मंजरिका समाप्त ॥ श्री ६ ॥ श्री ६ ॥ १ ॥ श्री ॥ ६ ॥

इस पुस्तक के अंत में जहाँ पन्ने की संख्या छ २ पड़ी है, वह टीकाकार का नाम है? मल्लिनाथ के पुत्र ने अपना नाम देना आवश्यक नहीं माना, इसलिए उनके नाम का कोई पता नहीं लगता। अंत में प्रतिलिपिकार ने प्रतिलिपि का समय तथा अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

श्री शके १५३० ॥ किलक नाम संवत्सरे दक्षिणायन श्रावण मासे शुक्ल पक्षे सप्तम्यां तिथौ दूनादी (न) सुतुना गोविंदेन लिखितमिदं पुस्तक मेघदूत टीकाख्यां स्वार्थं परार्थं चेति ॥ श्री ॥

पुस्तक के कुछ पन्नों में दोनों ओर दुहरी लाइनों से हाशिया बनाया गया है किंतु बीच बीच में बिना हाशिये की दुहरी लाइनों के पन्ने भी हैं। जिन पन्नों में हाशिये की दुहरी लाइनें नहीं हैं उनमें प्रत्येक पंक्ति के प्रारंभ में दुहरी पाई (॥) लगी है, किंतु पंक्ति के अंत में दुहरी पाई नहीं है। हाशिये पर पन्नों के नंबर कहीं केवल बाईं ओर हैं, कहीं बाईं और दाहिनी दोनों ओर। नंबरों के ऊपर या नीचे 'श्री' लिखा है। कहीं कहीं नंबर के ऊपर-नीचे दोनों ओर 'श्री' लिखा हुआ है। कहीं कहीं नंबर भी दो बार ऊपर नीचे लिखे गए हैं।

पुस्तक पर पानी और मैल के धब्बे हैं। पन्नों के किनारे कटे फटे हैं। कहीं कहीं कीड़ों ने छिद्र किए हैं किंतु ऐसी हानि अत्यल्प है। कुछ पन्ने अब भी कुछ चिपके हैं और उन्हें छुड़ाने के यत्न में कहीं कहीं कुछ अक्षर नष्ट हो गए हैं।

सैंतीसवें पन्ने पर जिस ओर नंबर हैं उधर पुरे पन्ने पर एक कागज चिपका कर उसपर लिखा गया है लेकिन पूरी पुस्तक एक हाथ की लिखी जान पड़ती है।

पूरी पुस्तक में केवल टीकाकार के मंगलाचरण के श्लोक हैं। मूल ग्रंथ में श्लोकों की संख्या देकर टीका दी गई है। मूल ग्रंथ के श्लोक इसमें नहीं हैं।

मंगलाचरण

श्री गणेशाय नमः ॥ सरस्वत्यै नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री सूर्यमूर्तिर्जयति ॥

नमोस्तु विघ्ननाशाय भक्त विघ्न विनाशिने।
गौरी गौरीश दम्पत्योरात्मजानंद हेतवे ॥ १ ॥

यत्कृपादृष्टिमात्रेण जडः सर्वज्ञता व्रजेत्।
स्फुरतासा घनश्यामा शम्भुजाया मनोरमा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूताख्ये काव्यस्य पदवाक्य विवेचनं।
क्रियते शरदांतन्वावल व्युत्पत्तिकारणं॥

आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वा काव्यमुखमित्यभिप्रेत्यवस्तु निर्देशलक्षणं मंगलाचरणं प्रथमतो वस्तुनिर्देशं दर्शयति॥ कश्चित्कांतेति॥

मूलपाठ-संबंधी विशेषता

मेघदूत की प्रचलित प्रतियों में कुछ ऐसे प्रक्षिप्त श्लोक माने जाते हैं, जिन पर मल्लिनाथ ने टीका की है। इन श्लोकों पर क्रमांक भिन्न रखा जाता है। ऐसे प्रक्षिप्त श्लोक ६ हैं और पुस्तक के अंत में इनके अतिरिक्त ५ श्लोक ऐसे प्रक्षिप्त श्लोक है जिनपर मल्लिनाथ ने टीका नहीं की है।

मेघदूत के २१वें श्लोक 'नीपं दृष्ट्वा ···' के पश्चात् एक प्रक्षिप्त श्लोक है ··· 'अम्भोविन्दु-ग्रहण चतुरां ···' इसके पश्चात् इस प्रक्षिप्त श्लोक को क्रमांक में न लेने पर ३१वें श्लोक 'दीर्घ कुर्वन् पटुमदकलं ···' के आगे तीन प्रक्षिप्त श्लोक हैं' हारांस्तारांस्तरल ···' 'प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं ···' तथा 'पत्रश्यामा दिनकरहयः ···' इन तीनों प्रक्षिप्त श्लोकों का पद्यानुवाद लक्ष्मणसिंह और पूर्ण के पद्यानुवादों में नहीं हैं, जब कि पूर्वोलिखित 'अम्भोविन्दुग्रहण-चतुरां ···' इस प्रक्षिप्त श्लोक का पद्यानुवाद दोनों महानुभावों ने किया है। कुछ प्रतियों में यहाँ केवल दो प्रक्षिप्त श्लोक दिए गए हैं। तीसरा श्लोक 'पत्रश्यामा दिनकरहयः ···' नहीं है।

उत्तरमेघ के द्वितीय श्लोक 'हस्ते लीलाकमलमलके ···' के पश्चात् दो प्रक्षिप्त श्लोक हैं, 'यत्रोन्मत्ता भ्रमरमुखरा ···' तथा 'आनन्दोत्थं नयन सलिलं ···' इन दोनों श्लोकों का पद्यानुवाद लक्ष्मणसिंह ने नहीं किया है। किंतु पूर्ण ने किया है।

मल्लिनाथ की टीका इन सभी श्लोकों पर है और प्रचलित प्रतियों में सभी श्लोक मिलते हैं। अतः पूरे श्लोक देने की आवश्यकता नहीं थी।

मल्लिनाथसुत की जो 'पंजरिका' टीका संग्रहालय में है, उसमें इन प्रक्षिप्त श्लोकों को प्रक्षिप्त नहीं माना गया है। टीकाकार ने इनको ग्रंथ के श्लोक न मानकर ही क्रमांक दिये हैं। लेकिन इनमें से 'पत्रश्यामा दिनकरहयः' प्रक्षिप्त श्लोक की टीका इसमें 'शिष्यश्यामा दिनकरस्यः ···', यह पाठ भेद स्वीकार करके उत्तरमेघ के प्रथम श्लोक 'विद्युत्वन्तं ललित वनिता ···' के पश्चात् दी गई है।

इसी प्रकार उत्तरमेघ के दोनों प्रक्षिप्त श्लोक 'यत्रोन्मत्ता भ्रमर मुखराः' तथा 'आनन्दोत्थं नयन सलिलं ···' भी उत्तरमेघ के द्वितीय श्लोक 'हस्तेलीला कमलमलके ···' के पश्चात नहीं है, जैसा कि प्रचलित प्रतियों में इनका स्थान है। पंडित रामस्वरूप (मुरादाबाद) कृत 'पदपाठा-न्वयार्थं भावार्थं टिप्पणी समेतम्' मेघदूत की प्रति गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास के लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से छपी है। इस प्रति में 'पूर्वमेघ' की श्लोक संख्या उपलब्ध 'पंजरिका टीका' के समान ही है। इस प्रति में प्रक्षिप्त श्लोकों को मूल श्लोक ही माना गया है और 'पत्रश्यामा दिनकरहयः' प्रक्षिप्त श्लोक पूर्वमेघ के बदले उत्तरमेघ में दिया गया है। लेकिन इस प्रति में प्रक्षिप्त श्लोक 'प्रद्योतस्य प्रिय दुहितरं ···' का पाठ 'चंद्रस्यात्र प्रिय दुहितरं ···' है और 'पत्रश्यामा दिनकर हयः ···' यह प्रक्षिप्त श्लोक उत्तरमेघ के प्रथम श्लोक के पश्चात ही आ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्राचीन पंजरिका टीका में पूर्वमेघ और उत्तरमेघ — ये दो भाग नहीं किए गए हैं। श्लोकों का क्रमांक एक सा चलता है। अतः 'पत्रश्यामा दिनकरहय...' श्लोक का क्रमांक उसमें ६८ है।

विशेष पाठक्रम

इस पंजरिका टीका ने मेघदूत के श्लोकों के क्रम के संबंध में एक समस्या उपस्थित की है। 'उत्तरमेघ' के श्लोकों के प्रथम १५ श्लोकों का पाठक्रम इसमें सर्वथा भिन्न है। अतः इस नवीन क्रम की तालिका दे रहा हूँ —

उत्तरमेघ

प्रचलित प्रतियों का पाठक्रम	श्लोक सं०	पंजरिका टीका का क्रम	श्लोक सं०
विद्युत्वन्तं ललित...	१	विद्युतमिति...	६७
हस्ते लीला कमलमलके...	२	शिष्यश्यामा...	६८
यत्रोन्मत्तो भ्रमरमुखराः...	२क	हस्ते लीलेति...	६९
आनन्दोत्थं नयन...	२ख	यस्यामिति...	७०
यस्यां यक्षाः...	३	गत्युत्कंपाइति...	७१
मन्दाकिन्यां सलिल...	४	नीवीबन्धेति...	७२
नीवीबन्धोच्छ्वसित...	५	आनन्दोलेति...	७३
नेत्रा नीताः...	६	यत्रोन्मत्तेति...	७४
यत्र स्त्रीणां...	७	नेत्रेति...	७५
अक्षय्यान्तर्भवन...	८	अक्षीणेति...	७६
गत्युत्कम्पा...	९	मन्दाकिन्या इति...	७७
मत्वा देवं...	१०	वासः इति...	७८
वासश्चित्रं...	११	यत्रेति...	७९
तत्रागारं...	१२	मत्वेति...	८०
		तत्रागारेति...	८१

विशेष श्लोक

प्रचलित पाठों में 'उत्तरमेघ' में 'श्यामास्वंगं...' यह श्लोक ४१वाँ है और ४२वां श्लोक है 'त्वामालिख्य...'। पंजरिका टीका में इन दोनों श्लोकों के मध्य में उसके क्रमानुसार १११ नंबर पर एक श्लोक और है क्योंकि टीका में कोई श्लोक नहीं है। मूल श्लोक का तो पता नहीं, उसकी टीका यह है —

'धारासिक्तेति। भो बाले! मां पंचबाण कुसुमेषुः क्षिणोति हिनस्ति। विविधं प्रतनुमपि कृशमपि पुनः कथंभूतं त्वन्मुखस्य दूरीभूतं भविष्यं। किंचिद्यस्य धरासिक्तच्छल सुरभिणः धाराभिः सिक्तं यत् स्थलं तद्वत् सुरभिः सुगन्धिः तस्य यस्मिन् घर्मान्ते ग्रीष्मावसाने वासरापि दिनानि कथं ब्रजेयुः इति विगणय्य आगच्छवान् किंव दिवस वासरे किं विधानि दिवससंसिक्तः अविरल घन व्यक्त सूपतितानि दिक्षु संसिक्ताः सम्बन्धाः अविरलाः घनाः पवने घना मेघास्तैः व्यक्तसूर्यातपो रविप्रकाशो येषु तानि।'

स्पष्ट है कि लिपिकार की लिपि सर्वत्र ठीक ठीक पढ़ी नहीं जाती है अतः संदिग्ध स्थल भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित प्रतियों में ग्रंथ के अंत में ५ श्लोक प्रक्षिप्त पाए जाते हैं। इनमें किसी की टीका मल्लिनाथ ने नहीं की है।

ये श्लोक क्रमशः ये हैं —

१. इत्याख्याते सुरपतिसखः ···
२. तस्मादद्रेर्निगदितमथो ···
३. तं संदेशं जलधर वरो ···
४. श्रुत्वा वार्तां जलद कथितां ···
५. इत्थंभूतं सुरचित पदं ···

इनमें से केवल तीसरे और चौथे श्लोक का पद्यानुवाद लक्ष्मणसिंह ने किया है और 'पूर्ण' ने तो सिर्फ चौथे श्लोक का ही अनुवाद किया है। पंजरिका टीका में यह तीसरा और चौथा श्लोक मूल का ही मानकर उसकी टीका की गई है। इस प्रकार इस टीका ने मेघदूत की श्लोक संख्या १२४ मानी है।

इस टीका के अनुसार श्लोकों में पाठभेद भी बहुत हैं। लेकिन यहाँ शब्दों के पाठ भेद का विवेचन अति विस्तृत होगा। उसे फिर कभी के लिए छोड़ता हूँ। कालिदास के ग्रंथों का प्रामाणिक निर्णय विद्वान मल्लिनाथ की टीका के आधार पर ही करते हैं। अतः मल्लिनाथसुत की यह पंजरिका टीका विशेष विचारणीय है।

— सुदर्शनसिंह

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

लायोनेल डेविड बार्नेट — एक महान् भाषाविद्

महादेव साहा

[डा० एल० डी० बार्नेट के नाम से कदाचित ही कोई प्राच्य विद्यानुरागी अपरिचित होगा। प्रस्तुत सामग्री में डा० महादेव साहा ने उनका प्रामाणिक परिचय उपस्थित करने के साथ ही उनकी रचनावली की पूर्ण अनुक्रमणिका भी प्रस्तुत की है। शोधकार्य में रुचि रखनेवालों के लिये यह अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सूचक सिद्ध होगी अतः **संमेलन पत्रिका, वर्ष ४६, संख्या ३, आषाढ़-भाद्रपद, १८८२ शक** से यह निबंध अविकल रूप में दिया जा रहा है।— संपादक]

कभी - कभी जीवन के किसी क्षेत्र में व्यक्ति विशेष की मृत्यु युगावसान का प्रतीक बन जाती है। लायोनेल डेविड बार्नेट की परिणत आयु में मृत्यु उनके यूरोप, अफरीका और एशिया के भिन्न- भिन्न देशों में फैले विद्यावंश के लिए इसी तरह की घटना है। पांडित्य की दुनिया में आज संकीर्ण विशेषज्ञों की बहुतायत है। बार्नेट बहुत व्यापक अर्थ में पंडित थे। इंदो - यूरोपीय परिवार की भाषाएँ ही नहीं, द्रविड़ भाषाएँ, मध्य और दक्खिन एशिया की शायद ही ऐसी कोई भाषा थी जिसका उन्होंने गंभीर अध्ययन न किया हो, जिसके विषय में कोई निबंध न लिखा हो या जिसमें छपी पुस्तकों की सूची न बनाई हो। उनकी भिन्न - भिन्न प्रकार की रचनाओं की संख्या काफी बड़ी है।

बार्नेट का जन्म २१ अक्टूबर सन् १८७१ ई० में लिवरपूल के एक गरीब यहूदी परिवार में हुआ था। लिवरपूल इंस्टीट्यूट और लिवरपूल विश्वविद्यालय कालिज में शिक्षा समाप्त कर वे ७ अक्टूबर सन् १८९२ ई० में ट्रिनिटी कालिज, कैंब्रिज में भर्ती हुए और अगले साल 'स्कालर' बनाए गए। ग्रीक भाषा की श्लेषात्मक कविताओं पर निबंध के लिए उन्होंने सन् १८९३-९४ ई० और सन् १८९६ ई० में विलियम ब्राऊन तमगा प्राप्त किया। सन् १८९३ ई० में ग्रीक गीति - काव्यों पर निबंध के लिए भी उन्हें यह पदक दिया गया था। क्लासिकल ट्राइपोज (= आनर्स) प्रथम खंड सन् १८९४ ई० और द्वितीय खंड सन् १८९६ ई० में प्रथम श्रेणी में पास करके चांसलर का तमगा प्राप्त किया। ये सन् १८९४ ई० में क्रैवेन स्कालर और सन् १८९७ ई० में क्रैवेन स्टूडेंट बने और सन् १८९९ ई० में एम० ए० पास किया।

कालिज और विश्वविद्यालय के विद्यार्थी - जीवन में बार्नेट ने ग्रीक भाषा और साहित्य का ही विशेष अध्ययन किया था। सन् १९०० ई० तक वे जर्मन और फ्रांसीसी भाषा में पारंगत हो गए थे।

कैंब्रीज में बार्नेट शायद संस्कृत कालेज (कलकत्ता) के भूतपूर्व प्रिंसिपल कायेल के शिष्य थे क्योंकि सन् १९०५ ई० में उन्होंने इन्हें शिक्षक और मित्र, जीवन में 'कल्याण - मित्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर याद किया है। शायद कावेल के प्रभाव से ही वे प्राच्य - विद्याओं की ओर आकर्षित हुए। सन् १८९९ ई० में बार्नेट ब्रिटिश म्यूजियम में प्राच्य भाषाओं की मुद्रित पुस्तकें और पांडुलिपियों के सह - संरक्षक और सन् १९०८ ई० में संरक्षक बनाये गए। सन् १९०० ई० में वे विक्टोरिया विश्वविद्यालय से लिट्० डी० बने। सन् १९०६ - १७ ई० तक बार्नेट लंदन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर, सन् १९१७ - ४५ ई० तक स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज (अब ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज) में संस्कृत के लेक्चरर के अलावा सन् १९२२-४८ ई० तक प्राचीन भारतीय इतिहास और प्राचीन लिपि के लेक्चरर रहे। सन् १९४०-४७ ई० तक वे इस संस्था के पुस्तकालय के अध्यक्ष और बुलेटिन के संपादक रहे। सन् १९३४ से लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के उपसभापति और सन् १९३९ ई० से अवैतनिक लाइब्रेरियन भी रहे। सन् १९३६ ई० में वे ब्रिटिश एकेडेमी के फेलो बनाए गए, सन् १९४७ ई० में, स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज से अवसर लेने के बाद वे ब्रिटिश म्यूजियम के अपने पुराने विभाग में फिर लाए गए और अंतिम समय तक यहाँ काम करते रहे। पिछली जनवरी में कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी ने, जो अपने किस्म की प्राचीनतम संस्था है, उन्हें 'विलियम जोन्स पदक' देकर संमानित किया। जिस समय सोसाइटी की १७६ वीं वार्षिक सभा में बार्नेट को पदक देने की घोषणा की जा रही थी तब हमें यह नहीं मालूम था कि यह मनीषी उसी दिन चल बसा है।

ब्रिटिश म्यूजियम में प्राच्य भाषाओं की पुस्तकों और पांडुलिपियों की सूची बनाने के लिए बार्नेट को हिंदुस्तान की बहुतेरी भाषाएँ और लिपियाँ सीखनी पड़ी थीं। संस्कृत, पाली, प्राकृत, तमिल, कन्नड़, बंगला, कुर्ग, तेलगू, हिंदी, बिहारी, पहाड़ी, बर्मी की पुस्तकों की जो सूचियाँ बनाई हैं, उनके बगैर इन साहित्यों का गंभीर अध्ययन और गवेषणा असंभव है।

बार्नेट ने आरेल स्टीन द्वारा संग्रहीत तिब्बती पांडुलिपियों पर रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में एक लेख लिखने के अलावा खोतान से आई प्राचीन तिब्बती पांडुलिपियों के एक खंड का फ्रांके के साथ संपादन भी किया था। दक्खिन भारत के कुछ प्राचीन लेखों का उन्होंने पाठोद्धार किया था।

हिंदू, जैन और बौद्ध कितने ही ग्रंथों का उन्होंने अंगरेजी में सटीक अनुवाद प्रकाशित कराया था। उनमें से यहाँ भगवद्गीता, शांतिदेवकृत बोधिचर्यावतार, सोमदेवकृत कथासरित्सागर, भासकृत मत्त-विलास, अंतगड - दसाओ और अणुत्तरो, ववाइय - दसाओ, अभिनवगुप्तकृत परमार्थ - सार, लाल देवकृत लल्ला - वाक्यानी का उल्लेख किया जा सकता है।

एशिया और यूरोप की भिन्न - भिन्न भाषाओं में प्राचीन विषयों पर लिखी पुस्तकों के आलोचक के तौर पर भी बार्नेट का एक प्रकार से अद्वितीय स्थान था। अपने जीवन में उन्होंने चार सौ से ऊपर पुस्तकों की आलोचना लिखी थी जिनमें एक दर्जन के करीब हिंदी में लिखी पुस्तकें भी हैं।

बार्नेट की सागरोपम विद्वत्ता को देखते हुए यह भी याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश म्यूजियम में घोर परिश्रम और रोजमर्रा के व्यवस्था संबंधी कामों को करते हुए वे इतना कुछ कर गए।

बार्नेट 'शुष्कं काष्ठं' पंडित नहीं थे। उनकी सहृदयता और छात्रवत्सलता महादेशों के विद्वत् समुदाय में फैली हुई थी। विनयी वह एक ही थे। डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय श्री सुशील कुमार दे, श्री बेनीमाधव बड़ुआ, श्री हेमचंद्र राय, श्री नलिनाक्ष दत्त आदि उनके छात्रों में हैं। पत्र - व्यवहार में वे बड़े तत्पर थे। लिखाई - पढ़ाई संबंधी किसी विषय में उन्हें याद करते ही वाजिब समय के अंदर माकूल जवाब मिलता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैक्समूलर की भाँति बार्नेट कभी हिंदुस्तान नहीं आए थे। भारत की विद्याओं के अध्ययन - अध्यापन, पठन - पाठन में कितने ही विद्वानों ने जिंदगी बिताई है। इनमें से कितने ही इस देश के अन्न - जल से पले हैं। फिर भी इनमें कितने ही भारत - विरोधी बने रह गए, यहाँ की जनता की जिंदगी से उन्होंने कभी कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। :बार्नेट इस देश की विद्याओं के प्रेमी नहीं; बल्कि उनकी आकांक्षाओं से भी सहानुभूति रखते थे। उनका काम सदियों तक श्रद्धा के साथ याद किया जायगा।

यहाँ हम लायोनेल डेविड बार्नेट द्वारा लिखित संपादित संग्रहीत या अनूदित समस्त रचनाओं की सूची दे रहे हैं, जिससे शोध, अनुसंधान करनेवाले छात्रों तथा भाषाविदों को समय - समय पर आवश्यक सहायता प्राप्त होगी। इसके संकलन में एडिथ ह्वाइट की सूची [बी. एम्. ओ. ए. एम.] से पूरी सहायता ली गई है।

पुस्तकें और निबंधादि

सन् १८९० ई०

दि हण्टेड हाउस ('मौस्टेलेरिया') आव प्लाउटस (ऐज प्लेड बाइ दि स्टूडेंट्स आव युनिवर्सिटी कालेज, लिवरपूल, मार्च, १८९०) मूल पाठ तथा एल० पी० एँडर्सन, एल० डी० बार्नेट, ए० ई० स्मिथ के अनुवाद ...... सहित। पृष्ठ १२, [१] ८६। लिवरपूल, टी० डौब एंड कं०, १८९०।

*Marie Antoinette. [Carmen Graecum numismate annuo dignatum et in Curia Cantabrigiensi Comtiis Maximis A. D, M. DCCCXCIII.] [Prolusiones Academical Praemiis annuis dignatae ... 1893, pp. .17-22]

सन् १८९३

*Naugilie Plouton dizem Enou 'Andopotiones (मूल ग्रीक में) ... [Epigramma Graecum numismate annuo dignatum···] [prolusiones Acadmicae...1893, pp. 29 - 30]

सन् १८९४

*Mors Tennysonis. [Carmen Graecum numismate annuo dignatum ... [Prolusiones Academicae Praemiis annuis digenate...1894

सन् १८९६

*Mykhnai. (Catmen Graecum numismate annuo dignatum...) [Prolusiones Aeademicae praemiis annui dignate...1398, pp. 16-20.]

सन् १८९८

*Der goldene Hund des zeus die Hochzeit des Laertes auf griechischen Vasen. [Hermes, zeischrift fur classische Philologie, XXXIII, pp. 638 - 643.]

* जर्मन में लिखे अंशों को मूल रूप में ही रखा गया है। अपरिचित उच्चारणों को देवनागरी में देने से भ्रम होने की आशंका थी। —संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १६००

दि ग्रीक ड्रामा [दि टेंपुल प्राइमर्स] पृ० ग्यारह, ११४, लंदन, १६०० ।

ग्रीक हिस्टरी, हेनरिश स्वोबोदाकृत [जर्मन से एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित । पृ० [२], आठ, १६८, लंदन, १६०० ।

रोमन हिस्टरी, जूलियस कोच कृत [जर्मन से एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित] पृ० आठ, १६०, लंदन, १६०० ।

सन् १६०१

दि उपासक ज्ञानालंकार [ज० रा० ए० सो०, १६०१, पृ० ८७ – ६०]

लेटर आन द न्युमरिकल सिस्टम इन पाली एम - एस - एस, ज० रा० ए० सो०, १६०१ पृ० २१ – २२ ।

दि युमेनाइदेस आफ एस्क्युलस, स्कूलों के लिए एल० डी० बार्नेट द्वारा संपादित पृ० बारह [२] १५१, फलक ३, लंदन १६०१ ।

ग्रीक एंड रोमन माइथोलाजी एंड हीरोइक लीजेंड एच० स्टेंडिंग कृत (जर्मन से एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित तथा संपादित) पृ० [२], सात, १३४, लंदन, १६०१ ।

हिस्टारिकल रीडर आव अर्ली फ्रेंच, कंटेनिंग पैसेजेज इलस्ट्रेटिव आव द ग्रोथ आव फ्रेंच लैंग्वेज फ्राम दि अलिएस्ट टाइम्स टु दि एंड आव दि फिफ्टीन्थ सेंचुरी । हर्बर्ट ए० स्ट्रांग... तथा एल० डी० बार्नेट कृत । पृ० दस, २००, एडिनबरा एंड लंदन, १६०१ ।

सन् १६०२

बुद्धिस्ट नोट्स । [ज० ए० ए० सो०, १६०२, पृ० ४२६ – ३० ।]

प्रेलिमिनरी नोटिस आव टिबेटन मैनस्क्रिप्ट्स इन द स्टाइन कलेक्शन [ज० रा० ए० सो०, १६०३, पृ० १०६ – ११४] ।

तिबेतन मैनस्क्रप्ट्स इन द स्टीन कलेक्शन [लेटर, ज० रा० ए० सो, १६०३, पृ० ८२१ – २३] ।

संस्कृत इंपरेटिव्ज [लेटर, ज० रा० ए० सो० १६०३, पृ० ८२५२] ।

ए पर्शियन पैरेलल टु सोफ० ऐन्ट० ६०४ [दि क्लासिकल रिव्यू, सत्रह पृ० २०६-२१०] ए मैनुअल आव ग्रीक एँटीक्विटीज, रिचर्ड मेरा कृत (अनूदित : एल० डी० बार्नेट) पृ० ग्यारह, १८४, लंदन १६०३ ।

सन् १६०४

रोमन लिटरेचर, हर्मन जोएशिम कृत [रोमन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित] पृ० आठ, १५१, लंदन, १६०४ ।

सन् १६०५

भगवद्गीता आर लौर्ड्स सौंग, एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित । पृ० छह, २११, लंदन १६०५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम सेइंग्स फ्रॉम दि उपनिषद्स, अंग्रेजी में टिप्पणियों से युक्त। पृ० ५६, लंदन १९०५। दि मनखुलु - संदेराय, मूल तथा अनुवाद [ज० रा० ए० सो०, १९०५, पृ० २६५ – २८१] द डेट ऑव् भामह एंड दंडी [ज० रा० ए० सो०, १९०५, पृ० २४१ – ४२]

सन् १९०६

हिंदुइज्म [रेलिजन्स एंशिएंट एंड माडर्न] पृ० छह, ६६, लंदन, १९०६।

दि नेगेटिवं अ विद फाइनाइट वर्ब इन संस्कृत [ज० रा० ए० सो०, १९०६, पृ० ७२२-१३]

टिबेट एंड दि टिबेटन्स, ग्राहम सैंडबर्ग कृत [पृ० २८१ – ३३३, एल० डी० बार्नेट द्वारा प्रूफ - आवृति, प्राक्कथन टिप्पणी एव विषयसूची का परिवर्द्धन। पृ० नौ, ३३३, लंदन, १९०६।

सन् १९०७

ब्रह्म - नौलेज, ऐन आउटलाइन आव दि फिलासफी आव द वेदांत ऐज सेटफोर्थ बाइ दि उपनिषद् एंड बाइ शंकर (विज्डम आव दि ईस्ट) पृ० ११३, लंदन, १९०७।

द अंतगद – दसाओ एंड अनुत्तरोववाइय - दसाओ, एल० डी० बार्नेट द्वारा प्राकृत से अनूदित। [अनुत्तरोवाई के मूल पाठ से युक्त], पृ० ग्यारह, १५८, लंदन, १९०७।

एंशिएंट खोतान, डिटेल्ड रिपोर्ट ... बाई एम० औरेल स्टीन, खंड एक [पृ० ५४८ – ५६६ टिबेटन मैनस्क्रप्ट एंड स्ग्राफ़िटी डिस्कवर्ड ... ऐट एंडिएर। एल० डी० बार्नेट ... तथा एल० एच० फ्रांके द्वारा संपादित] आक्सफोर्ड, १९०७।

सन् १९०८

दि हार्ट आव इंडिया, स्केचेज आव द हिस्टरी आव हिंदू - रेलीजन एंड मौरल्स (विज्डम आव द ईस्ट) पृ० १२२, लंदन, १९०८।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग आव संस्कृत, पाली एंड प्राकृत बुक्स इन द ब्रिटिश म्युजियम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द इयर्स १८९२ – १९०६, एल० डी० बार्नेट द्वारा संकलित, पृ० [७] काल० १०६६, लंदन, १९०८।

दि विरूपाक्ष - पंचाशिका [ले म्यूजिओं, नूवेले सेरी, नौ, पृ० २६६ – ३०१]।

सम नोट्स आन द हिस्टरी आव द रेलीजन आव लव इन इंडिया ... (सारांश)। [ट्रांजैक्शंस आव द थर्ड इंटरनैशनल कांग्रेस फार द हिस्टरी आव रेलिजंस, खंड दो, पृ० ४८ – ४९]।

सन् १९०९

दि गोल्डेन टाउन, एंड अदर टेल्स फ्राम सोमदेवज, 'ओशन आव रोमांस रिवर्स' (कथासरित्सागर), एल० डी० बार्नेट कृत, [रोमांस आव ईस्ट सीरीज] पृ० दस, [२] १०८ लंदन, १९०९।

दि पाथ आव लाइट, रेंडर्ड फार द फर्स्ट टाइम इनटु इंगलिश फ्राम द बोधिचार्यावतार आव शांतिदेव। ए मैनुअल आव महायान बुद्धिज्म – एल० डी० बार्नेट कृत। (विज्डम आव द ईस्ट) पृ० १०७ लंदन, १९०९। द्वितीय संस्करण १९४७ में प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए कैटलग आव द तमिल बुक्स इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्युजिअम, एल० डी० बार्नेट ... एंड ... जी० यू० पोप द्वारा संकलित, पृ० आठ, कॉल० ५९०, लंदन, १९०९।

नोट्स आन द शैव सिद्धान्तम् [ले म्यूजिओ, नूवेले सेरी, पाँच, पृ० २७१-७।

प्रो० पिशेल (मरणोत्तर टिप्पणी) [ज० रा० ए० सो० १९०९, पृ० ५५३ - ७]

दि बेसनगर इंस्क्रिप्शन बी० [ज० रा० ए० सो०, १९०९ पृ० १०९३ – ४] [एम० ए० स्टीन के निबंध 'एक्सप्लोरेशन इन सेंट्रल एशिया, १९०६ – ८' पर विवेचन, ज्याग्राफिकल जर्नल, छत्तीस, पृ० २६५ – ९]।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग आव हिंदुस्तानी बुक्स इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्युजिअम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द इयर्स १८८९-१९०८, जे० एफ० ब्लूमहार्ट (एल० डी० बार्नेट की भूमिका) पृ० सात, काल० ६७८, लंदन।

सन् १९१०

ए कैटलग आव कन्नड, बडग, एंड कुर्ग बुक्स इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्युजिअम, एल० डी० बार्नेट द्वारा संकलित, पृ० ४, काल, २७८, लंदन, १९१०।

दि केलदि राजाज आव इक्केरी एंड बेदनूर [ज० रा० ए० सो०, पृ० १४९-५०, ४८९]

नोट्स आन द डाइनेस्टीज आव बंगाल एंड नेपाल, [ज० रा० ए० सो०, १९१०, पृ० १५० – १५१]।

दि परमार्थ [मूल एवं अनुवाद], [ज० रा० ए० सो०, पृ० ७०७ – ७४७]।

एक्सेजेटिकल नोट्स आन द परमार्थशास्त्र [ज० रा० ए० सो० १९१०, पृ० १३३८-९]

दि शैव सिद्धांत, [दि लाइट आव ट्रुथ आर द सिद्धांतदीपिका, ग्यारह, पृ० ९२ - ४, १०१ – ३]।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग आव बंगाली बुक्स इन इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्यूजिअम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द इयर्स १८८९ - १९१०, जे० एफ० ब्लूमहार्ट [एल० डी० बार्नेट की भूमिका], पृ० [५], काल० ४७०, लंदन, १९१०]।

दि फर्स्ट प्रिंसिपुल्स इन द जैन फिलासफी, हीराचंद लीलाधर झवेरी, [एल० डी० बार्नेट के प्राक्कथन सहित] पृ० ९१, फलक १, लंदन, १९१०।

सन् १९११

सम नोट्स आन द बौड्लीन संस्कृत मैनस्क्रुप्ट कैटलग, खंड २ [द इंडियन एंटीक्वेरी, नौ, पृ० ३१० – ३१२]।

सन् १९१२

ए कैटलग आव द तेलगु बुक्स इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्यूजिअम, एल० डी० बार्नेट द्वारा संकलित, पृ० सात, काल० ४४४, लंदन, १९१२।

दि परमार्थसार [ज० रा० ए० सो०, १९१२, पृ० ४७४ – ५]।

ए डेस्क्रिप्टिव लिस्ट आव द अरेबिक मैनस्क्रप्ट्स एक्वायर्ड बाइ द ट्रस्टीज आव द ब्रिटिश म्यूजिअम, ए० जी० एलिस ... एंड एडवर्ड एडवर्ड्स [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त], पृ० सात, तीन, लंदन, १९१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
सन्दर्भ ग्रन्थ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९१३.

एंटीक्विटीज श्राव इंडिया, ऐन एकाउंट श्राव द हिस्टरी एंड कलचर श्राव एंश्यंट हिंदुस्तान पृ० चौदह, ३०६, फलक २५, नकशा, सारिणी, लंदन, १९१३।

ए कैटलग श्राव द बर्मीज बुक्स इन द ब्रिटिश म्युजिश्रम, एल० डी० बार्नेट कृत, पृ० सात काल० ३४६, लंदन, १९१३।

दि डेट श्राव कनिष्क, डा० टामस के निबंध पर पर्यालोचन, ज० रा० ए० सो०, १९१३, पृ० ९४२ – ५७।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग श्राव हिंदी बुक्स ईन द लाइब्रेरी श्राव द ब्रिटिश म्युजिश्रम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द इयर्स १८९३–१९१२, जे० एफ० ब्लूमहार्ट कृत [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त] पृ० [५], काल० ४७०, लंदन १९१३।

ए कैटलग श्राव द श्रार्मीनियन मैनस्क्रप्टस इन द ब्रिटिश म्यूजिश्रम, फ्रेडरिक कार्नवालिस कौनीबेयर ... जिसमें जे० औलिवर वार्ड्रोप कृत ब्रिटिश म्यूजिश्रम की ज्यौजियन् मैनस्क्रप्ट्स का कैटलग समाहित है, [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त], पृ० श्राठ, [४], ४१०, लंदन, १९१३।

सन् १९१४

ए सील श्राव श्रीभद्र [ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ४०१ – २]।

सन् १९१५

इंस्क्रिप्शंस इन द विक्टोरिया एंड श्रलबर्ट म्यूजिश्रम [ज० रा० ए० सो० १९१५, पृ०, ३१७ – ९]।

ऐन श्रारमेइक इंस्क्रप्शन फ्राम टैक्सिला (ज० रा० ए० सो०, १९१५, पृ० ५०५–६]

ए संस्कृत इंस्क्रिप्शन श्राव रायल एशियाटिक सोसायटी [ज० रा० ए० सो०, १९१५, पृ० ५०५–६]।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग श्राव मराठी एंड गुजराती बुक्स इन द ब्रिटिश म्यूजिश्रम, जे० एफ० ब्लूमहार्ट कृत [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त] पृ० [५], काल० २५६ – ३३६, लंदन १९१५।

कैटलग श्राव हिब्रू एंड समरिटन मैनस्क्रप्ट्स इन द ब्रिटिश म्यूजिश्रम, ए० श्रार० मार्गोलियूथ ... भाग तीन [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त] पृ० चार, ६१२, पृ० १०, लंदन १९१५।

सन् १९१६

अल्फाबेटिकल गाइड टु सिंहलीज फोक लोर फ्राम बैलड सोर्सेज (द इंडियन एंटीक्वेरी खंड ४५ – ४६, पूरक)।

सन् १९१७

अल्फाबेटिकल गाइड टु सिंहलीध फोक लोर फ्राम बैलड सोर्सेज ... द इंडियन एंटीक्वेरी से पुनर्मुद्रित, पृ० [१] १२०, बंबई १९१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहे, [ज० रा० ए० सो०, १९१७, पृ० १३२ – ३]।

जौन फेथफुल फ्लीट [मरणोत्तर टिप्पणी, द इंडियन ऐंटीक्वेरी, खंड ४६, पृ० १२८-९]

ऐन इंस्क्रिप्शन आव द रेन आव उदयादित्य [बी एस ओ एस, प्रथम, १, पृ० ८५-८६]

कमर्शल एंड पोलिटिकल कनेक्शंस आव एश्यट इंडिया विद द वेस्ट ... १४ फरवरी, १९१७ को दिए भाषण का सार [बी एस ओ एस, प्रथम, १, ७, पृ० १०१ – ५]।

सन् १९१८

दि नौमिनेटिवल जेनेटिव इन ओल्ड कैनरीज [ज० रा० ए० सो०, पृ० १०५ – ६]।

ए हिंदू पैराडाक्सो : शबर - शंकर विलास, प्रथम, ५४ - ८५ अनु० एल० डी० बार्नेट कृत [बी एस ओ एस, प्रथम, २, पृ० ४ – १५]।

सन् १९१९

इंस्क्रिप्शंस ऐट पालमपेट एंड उपरपल्लि (हैदराबाद आर्क्योलाजिकल सीरीज नं० ३), पृ० छह, १९, फलक २, मानचित्र [हैदराबाद], कलकत्ता (मुद्रित), १९१९।

परवाल इंस्क्रिप्शन आव द रेन आव काकतीय गणपतिदेव, [हैदराबाद आर्क्योलाजिकल सीरीज नं० ४], पृ० छह, १३, फलक २ (हैदराबाद), कलकत्ता (मुद्रित), १९९९।

दि प्लेज एस्क्राइब्ड टु भास एंड मत्तविलास, [ज० रा० ए० सो०, १९१९, पृ० २३३-४]

सन् १९२०

लल्ला - वाक्यानी, आर द वाइज सेइंग्स आव लाल देद, मिस्टिक पोएटेस आव एश्यंट, कश्मीर, जार्ज ग्रिअर्सन ... तथा एल० डी० बार्नेट द्वारा अनुवाद, टिप्पणी तथा शब्दावली सहित संपादित, पृ० आठ, २२५, लंदन, १९२०।

दि मत्तविलास एंड 'भास' [बी एस ओ एस, प्रथम, ३, पृ० ३५ – ३८]।

सन् १९९१

'भास' [ज० रा० ए० सो०, पृ० ५८७ – ९]।

सन् १९१२

हिंदू गौड्स एंड हीरोज, स्टडीज इन द हिस्टरी आव रेलिजन आव इंडिया, पृ० १२०, लंदन १९२२।

दि कैंब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, खंड प्रथम, [पृ० ५९३ - ६०३, अध्याय चौदह] [दि अर्ली हिस्टरी आव सदर्न इंडिया : पृ० ६०४ - ६११, अध्याय पचीस, द अर्ली हिस्टरी आव सिलोन, दोनों एल० डी० बार्नेट कृत] कैंब्रिज, १९२२।

कौरलक [बी एस ओ एस, द्वि० पृ० ५६९ – ५७०]।

ए कैटलग आव पर्शियन प्रिंटेड बुक्स इन द ब्रिटिश म्यूजिअम, एडवर्ड एडवर्डस० द्वारा संकलित (एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त), पृ० आठ, काल० ९९८, लंदन, १९२२।

सन् १९२३

दि कल्याण सौगंधिकम् आव नीलकंठ, एल० डी० बार्नेट संपादित [बी एस ओ एस, तृ०, पृ० ३३ - ५०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगज् - झंपा [बी एस ओ एस, तृ०, पृ० ११७ – ८]।

सन् १९२४

संस्कृत मैस्क्यूलिन्स प्लूरल इन – अणि ? [ज० रा० ए० सो, १९२४, पृ० ६५५ – ६]।
सम नोट्स आन द मत्तविलास [बी एस ओ एस, तृ० २८१ – ५]।
ए नोट आन द टेक्स्ट आव कल्याण सौगंधिकम्, [बी एस ओ एस, तृ०, पृ० २८५-७]।
अपभ्रंश - भाषा [बी एस ओ एस, तृ०, पृ० ५१९ – ५२२]।

टू डाक्यूमेंट्स आव द इंक्विजिशन, एल० डी० बार्नेट ......, दि केस आव फ्रे डायगो दा असुंपसाओ, द्वि० द केस आव डौन लोप दे वेरे अलार्कने [ज्यूइश क्वार्टर्ली रिव्यू, न्यू सीरीज, पंद्रह, पृ० २१३ – २३९]।

दि ओशन आव स्टोरी : सी० एच० टौनीज ट्रांस० आव सोमदेवज कथा सरित्सागर। [अनुवाद एल० डी० बार्नेट द्वारा परिवर्द्धित], अब एन० एम० पेंजर द्वारा संपादित, १० खंड लंदन, निजी रूप से (प्राइवेटली) मुद्रित, १९२४ – ८।

सन् १९२५

हू इज द आथर आव स्वप्नवासवदत्ता ? [ज० रा० ए० सो०, १९२५, पृ० ९९]।
दि इंस्क्रिप्शन आव स्थिरतत्त्व ऐट खजूरी [बी० एस० ओ० एस०, तृ०, पृ० ६६९–६७४]

सन् १९२६

राबर्ट सेवेल (मरणोत्तर टिप्पणी) [ज० रा० ए० सो०, १९२६, पृ० १६६-७]

जानकीहरण, १६ [संपादित] एल० डी० बार्नेट द्वारा, [बी० एस० ओ० एस०, चतु०, पृ० २८५–९३]

सप्लीमेंटरी कैटलाग आव अरेबिक प्रिंटेड बुक्स इन द ब्रिटिश म्यूजियम, अलक्जेंडर एस० फुल्टन ......एंड० ए० आर० एलिस द्वारा संकलित [एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त] पृ० [४] काल० ११८८, लंदन, १९२६।

सन् १९२७

ए प्लूरल फार्म इन द प्राकृत आव खोतान [ज० रा० ए० सो० १९२७, पृ० ८४८–९]
बी० एल० राइस [मरणोत्तर टिप्पणी, ज० रा० ए० सो, १९२७, पृ० ९३४ – ६]

सन् १९२८

हितोपदेश, द बुक आव होल्सम काउंसेल, फ्रांसिस जांसन द्वारा मूल संस्कृत से अनूदित, एल० डी० बार्नेट द्वारा संशोधित, अंशतः पुनर्लिखित तथा प्राक्कथित, पृ० उन्नीस, २०२, लंदन, १९२८।

ए० सप्लीमेंटरी कैटलग आव संस्कृत, पाली, एंड प्राकृत बुक्स इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्यूजिअम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द इयर्स १९०६ – ११२८, एल० डी० बार्नेट द्वारा संकलित पृ० सात, काल० १९९४, लंदन, १९२८।

सन् १९२९

दि जीनियस : ए स्टडी इन इंडो - यूरोपियन साइकोलौजी, [ज० रा० ए० सो, १९२९, पृ० ४२० – ४२१ (सारांश), ७११ – ७४८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३०

मत्तविलास : ए फार्स बाइ महेन्द्र विक्रम वर्मन, एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित, बी०] एस० ओ० एस०, पंचम, पृ० ६९७ – ७१७]

सन् १९३१

एल लिब्रो दे लास एक्यू ए दास : बीइंग द रेकर्ड्स एंड एकाउन्ट्स आव द स्पेनिश एंड पोर्चुगीज सिनेगौग आव लंदन फ्राम १६६३ टु १६८१, मूल स्पेनी तथा पोर्चुगीज से एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित, पृ० बाइस, १४३, फलक ३, आक्सफोर्ड, १९३१।

ए सप्लीमेंटरी कैटलग आव तमिल बुक्स इन द लाइब्रेरी आव ब्रिटिश म्यूजियम, एल० डी० बार्नेट द्वारा संकलित, पृ० आठ, काल० ६९६, लंदन, १९३१।

* Index der Abteilung mDo des handschriftlischen Kanjur in Britishchen Museum (Or. 6724). [Asia Major, VII pp. 157-178]

प्रमनई [बी एस ओ एस, छह, पृ० २८५ – २९०]

सन् १९३३

ए नोट आन द हाथीगुंफा इंस्क्रिप्शन आव खारवेल, एल० डी० बार्नेट कृत, [इंडियन लिंग्विस्टिक्स : बुलेटिन आव द लिंग्विस्टिक सोसायटी आव इंडिया, खंड दो, १९३२, भाग १ – ४, ग्रिअर्सन कमेमोरेशन वाल्यूम, भाग १, पृ० ४३ – ४४, लाहौर, १९३३]

सन् १९३४

दि हिंदू कंसेप्शन आव द डीटी ऐज़ कल्मिनेटिंग इन रामानुज, भरतन कुमारप्पा··· एल० डी० बार्नेट की भूमिका से युक्त, पृ० पंद्रह, ३५६, लंदन।

सन् १९३७

ओं मणि पद्मे हुं [बी एस ओ एस, आठ, ११९५ – ६]

सन् १९३८

हिंदू स्क्रिप्चर्स. हिम्स फ्राम द ऋग्वेद, फाइव उपनिषद्ज़, द भगवद्गीता [एल० डी० बार्नेट के अनुवाद का मूल पाठ, टिप्पणियों तथा प्राक्कथन से रहित] निकल मैकनिकल द्वारा संपादित पृ० चौबीस, २९३, लंदन, न्यूयार्क १९३८।

सातवाहन एंड शातकर्णी [बी एस ओ एस, नौ, पृ० ३२७ – ९]

ऐन ऐडेंडम, [बी एस ओ एस] दस, पृ० २८४ – २८५, (१९४०)।

एडवर्ड जेम्स रैप्सन, १८६१ – १९३७, फ्राम द प्रोसीडिंग्स आव द ब्रिटिश एकेडमी, खंड तेईस, पृ० १४, लंदन, १९३८।

सन् १९४०

बेविस मार्क्स रेकर्ड्स : बीइंग कंट्रीब्यूशन टु द हिस्टरी आव स्पेनिश एंड पोर्चुगीज कंग्रीगेशन आव लंदन, लेखों की प्रतिकृतियों से सज्जित, एल० डी० बार्नेट द्वारा संपादित। भाग १, द अर्ली हिस्टरी आव द कंग्रीगेशन फ्राम द बिगिनिंग अन्टिल १८००, पृ० [९] ९२, फलक १७, अक्सिफोर्ड, १९४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैटलग आव टाड्स कलेक्शन आव इंडियन मैनस्क्रप्ट्स, इन द पजेशन आव द रायल एशियाटिक सोसायटी [ज० रॉ० ए० सो०, १९४०, पृ० १२६ – १७८]

ऐनंदर एंश्यंट ट्राइब आव द पंजाब [बी एस ओ ए एस, दस, पृ० १०६७ – ८]

सन् १९४२

कमांडेंट जोसफ गैरपर्ड हैकिन (मरणोत्तर टिप्पणी) [बी एस ओ ए एस, दस, पृ० १०६७ – ८]

सन् १९४३

ए नोट आन ऐन अर्ली इंडियन कौयन [बी एस ओ ए एस, ग्यारह, पृ० १४० – १४३]

सन् १९४४

प्रो० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री (मरणोत्तर टिप्पणी) [ज० रा० ए० सो०, १९४४, पृ० २११]

सन् १९४७

दि रेव० गौर्डन मैथ्यूज, एम० ए०, बी० लिट् (मरणोत्तर टिप्पणी) [बी एस ओ एस, बारह, पृ० २७४]

ए पाथ आव लाइट, रेंडर्ड फार द फार्स्ट टाइम इंटु इंग्लिश फ्राम द बोधिचर्यावतार आव शांतिदेव, ए मैनुअल आव महायान बुद्धिजम, एल० डी० बार्नेट कृत [द्वितीय संस्करण] पृ० १११, लंदन, १९४७, प्रथम १९०९ में मुद्रित।

सन् १९५७

ए सेकेंड सप्लीमेंटरी कैटलग आव प्रिंटेड बुक्स इन हिंदी, बिहारी (इनक्लूडिंग भोजपुरिया, कौरमली एंड मैथिली) एंड पहाड़ी (इनक्लूडिंग नेपाली आर खसकुरा, जौनसारी, मंदेली आदि) इन द लाइब्रेरी आव द ब्रिटिश म्यूजिअम, एल० डी० बार्नेट, जे० एफ० ब्लूमहार्ट एंड जे० बी० एस० विल्किंसन द्वारा संकलित, पृ० आठ, काल १६७८ लंदन, १९५७।

आलोचित हिंदी पुस्तकें

अहमद शाह एंड प्रोमेरोद (ई० डब्लू) हिंदी रेलिजस पोएट्री, कानपुर, १९२५ [ज० रा० ए० सो०, १९२६, पृ० ७७९ – ७८०]

अशोक, अशोक के धर्म लेख, जनार्दन भट्ट संपादित, बनारस, १९२३, [ज० रा० ए० सो०, पृ० १८४]

भगवद्दत्त, ऋग्वेद पर व्याख्यान ···· लाहौर, १९२०, ज० रा० ए० सो०, १९२३, पृ० ४४४ – ४२]

वृन्दावन भट्टाचार्य, सारनाथ का इतिहास, बनारस, १९२२, ज० रा० ए० सो०, १९२३, पृ० ४४१ – ४२]

द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, ए डिक्शनरी आव इंडियन क्लासिकल कैरेक्टर्स, लखनऊ, १९१९, [ज० रा० ए० सो०, १९२८, पृ० ४३४ – ३५]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगाप्रसाद, अंगरेज जाति का इतिहास, बनारस, १९२३, [ज० रा० ए० सो०, १९१६ [ज० रा० ए० सो० १९१६, पृ० ४७६ – ४८४]

गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर का इतिहास, खंड १, अजमेर १९८५ (१९२८) [ज० रा० ए० सो०, १९३०, पृ० ९३९ – ९४०]

हीरालाल, सागर - सरोज या सागर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, नरसिंहपुर, १९२२ [ज० रा० ए० सो०, १९२४, पृ० ४७७, ४८७ – ८]

हीरालाल, ए ग्रामर आव द छत्तीस गढ़ी डायलेक्ट आव ईस्टर्न हिंदी, जार्ज ए० ग्रिअर्सन द्वारा अनूदित : हीरालाल के निर्देशन में लोचनप्रसाद काव्यविनोद द्वारा संशोधित तथा प्रवर्द्धित, कलकत्ता, १९३१, [ज० रा० ए० सो०, १९२३, पृ० ४४४]

भारत का इतिहास, बनारस १९२३ [ज० रा० ए० सो०, १९२४, पृ० ६२७ – २८]

जौन (ई), द सेल्फ हिंदी टीचर, इलाहाबाद, १९३९ [ज० रा० ए० सो०, १९४०, पृ० ३७४]

कामता प्रसाद जैन, भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध, [ज० रा० ए० सो०, १९२४, पृ० ६७४]

प्राणनाथ विद्यालंकार, ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास, बनारस १९२२, [ज० रा० ए० सो० १९२३, पृ० ४७६ – ४८४]

रमेशचंद्र दत्त, ब्रिटिश भारत आर्थिक इतिहास, बनारस १९२१ [ज० रा० ए० सो०, १९२३, पृ० ४४२ – ४३ ।

सदूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट राजस्थान भारती खंड १, संख्या १, बीकानेर, १९४६ [बी एस ओ एस, बारह, २४९, २५२ – ५३]

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना

प्रस्तुत ग्रंथ 'कामायनी' की मुख्यतः व्याख्यात्मक टीका है। मूल ग्रंथ के प्रत्येक सर्ग के छंदों में छंद-संख्या लगाकर व्याख्या की गई है तथा उन्हीं के अंतर्गत स्थल-स्थल पर आवश्यकतानुसार छोटी या बड़ी टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। आरंभ में ३९-४० पृष्ठों का आमुख है। इसमें सबसे पहले 'कामायनी' की कथा में ऐतिहासिक आधार का प्रतिपादन करते हुए लेखक ने वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों आदि में बिखरे कथाबीजों का साधार उल्लेख किया है। लेखक के अनुसार — "'कामायनी' वर्तमान मन्वंतर के प्रवर्तक मनु की कथा है जिसमें उनके शिवत्व प्राप्त करने के मनोरंजक इतिवृत्त के साथ साथ मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश अंकित है।" उक्त सिद्धांत में कवि प्रसाद के इस कथन का ही समर्थन है, जहाँ उन्होंने 'वैवस्वत मनु' को ऐतिहासिक पुरुष ही मानने का प्रतिपादन किया है। इस संबंध में प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक का मत प्रसाद के पक्ष का ही विस्तृत और सप्रमाण प्रतिपादन है।

इसके पश्चात् लेखक ने ग्रंथ के महाकाव्यत्व और उसकी रसमत्ता को अपने ढंग से सिद्ध करने की चेष्टा की है। इस संदर्भ में 'काव्यादर्श' और 'साहित्यदर्पण' के महाकाव्य-लक्षणों का आधार लेकर लगभग बीस पृष्ठों में (२९वें पृष्ठ तक) कामायनी को महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में काफी खींचातानी तथा बुद्धिव्यायाम प्रदर्शित है। पर इसके साथ ही साथ, अपनी दृष्टि से लेखक ने 'कामायनी' की अनेक विशिष्टताओं का सशक्त उल्लेख किया है। यदि इस मान्यता में लेखक का आग्रह – संस्कृत आलंकारिकों के उपलक्षणात्मक लक्षण को 'कामायनी' में घटाने के लिए न हुआ होता तो प्रतिपादित विषय और भी अधिक बुद्धिरोचक होता। अपनी स्वयं की महत्ता के कारण 'कामायनी' का महाकाव्यत्व निर्विवाद है। काव्य, नाटक, आख्यायिका, कथा आदि के लक्षणों को युग के लक्ष्यग्रंथों के अनुसार थोड़ा बहुत बदलते रहने में हानि नहीं अपितु गतिमत्ता ही लक्षित होती है। 'छायावाद-रहस्यवाद'-युग के स्वच्छंदतावादी कवियों में प्रसाद का शीर्षस्थान है। उनकी आलोच्य कृति में रोमांटिक या स्वछंदतावादी भावनाचित्रों, कल्पनाचित्रों और मान्यताओं के अर्थ-प्रतिमानों का नूतन शिल्प के माध्यम से अभिव्यंजन हुआ है। रस, भाव, अलंकार आदि की प्रतिष्ठा काव्य में होते हुए भी अपने रोमांटिक अभिव्यक्ति-कौशल और लाक्षणिक व्यञ्जनात्मक ध्वननशीलता तथा अभिव्यंजनवक्रता के कारण अभिनव सौंदर्य से आमंडित है। अतः प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति की प्रचुरता के कारण हम इस काव्य को सर्गबंध प्रबंधात्मक महाकाव्य न कहकर प्रगीत महाकाव्य कहें तो कदाचित् अनुपयुक्त न होगा। यदि कथा-बंध का आग्रह ही हो तो प्रगीत-बंध-महाकाव्य भी कहने में कोई हानि नहीं है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि कवि ने 'कामायनी' के अंशों को 'सर्ग' नाम न देकर 'चिंता' 'आशा' आदि प्रगीत-परक खंडों में विभाजित किया है। पर किसी भी अवस्था में ग्रंथ का 'महाकाव्यत्व' अक्षुण्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अनंतर आमुख में 'कामायनी' के संदेश का सप्रमाण प्रतिपादन है। इसीके साथ साथ प्रतिपाद्य का भी उल्लेख है। विश्वसाहित्य में 'कामायनी' के स्थान पर भी लेखक ने अपना मत व्यक्त किया है। काव्य की समरसता, समन्वय - सामंजस्य - दृष्टि, उसका युग - काव्यत्व, वैशिष्ट्य दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा काव्यप्रेरणाओं आदि का स्पष्टता के साथ, इस आमुख में परिचय मिलता है। इन विवरणों को ध्यान में रखकर ग्रंथ की 'आलोचनात्मक' व्याख्या पढ़ने में बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

लगभग चार सौ पृष्ठों में ग्रंथकार ने 'कामायनी' के पदों की प्रौढ़ व्याख्या की है। यह व्याख्या एक प्रकार का शोधपूर्ण भाष्य है। टिप्पणियों द्वारा प्रसंगगत विषयों, काव्यवैशिष्ट्यों तथा अंतर्गर्भित ज्ञातव्य चर्चाओं द्वारा लेखक ने ग्रंथ को प्रौढ़ता प्रदान की है। व्यापक एवं मननपूर्ण अध्ययन का सहारा लेते हुए तथा प्राच्य एवं पाश्चात्य ग्रंथों की शोधात्मक सहायता ले कवि के भावों का उद्घाटन करने में लेखक ने बड़ा श्रम किया है। टिप्पणियों द्वारा ग्रंथकार का व्यापक अध्ययन स्पष्टतः देखा जा सकता है। यद्यपि यहाँ भी भारतीय अलंकार-शास्त्र (मुख्यतः हिंदी साहित्यशास्त्रीय विषयों का प्रकाश, आवश्यकता से और कुछ अनपेक्षित रूप में अधिक दीप्त हो उठा है, तथापि उससे अर्थ समझने में बाधा नहीं, कुछ सहायता ही मिलती है। व्याख्या के संदर्भ में प्रसंगसंबद्ध मतों और ज्ञातव्य तथ्यों का विस्तृत निरूपण ग्रंथ की विशिष्टता है। यथास्थान 'चिंता' आदि शीर्षक - संबद्ध विषयों और कामायनी के प्रतिपाद्य सिद्धांतों और मान्यताओं का आकलन भी, स्पष्टता के साथ आदि से अंत तक करने का सफल प्रयास ग्रंथ में किया गया है। व्याख्येय ग्रंथ की अभिव्यक्ति-शैली में लाक्षणिक ध्वन्यात्मकता के कारण यत्रतत्र की व्याख्या में थोड़ा बहुत मतभेद हो सकता है, पर सब मिलाकर व्याख्या प्रौढ़ तथा अर्थबोधन में सर्वथा समर्थ है। युगकाव्य की ऐसी व्याख्यात्मक टीका के लिए ग्रंथकार का हम स्वागत करते हैं। पूर्व निर्मित अनेक टीकाओं के रहने पर भी यह पठनीय है तथा कुछ अपना वैशिष्ट्य रखती है। आशा है पाठकों को इससे अधिक लाभ होगा।[1]

—करुणापति त्रिपाठी

वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी री महेसदासौत री खिड़िया जगा री कही

राजस्थान का डिंगल साहित्य वहाँ के इतिहास - प्रसिद्ध वीरों के अद्भुत शौर्य और पराक्रम की गाथाओं का अक्षय भांडार है। यदि एक ओर वहाँ के गायकों के चरित्र पद्य में रासो, प्रकास, विलास, रूपक और वचनिका आदि काव्य - रूपों में लिखे गए तो दूसरी ओर गद्य में ख्यात, बात, विगत, पीढ़ी और वंशावली के रूप में उनके उज्ज्वल चरित्र लिपिबद्ध हुए। वचनिका का काव्य - रूप चंपू के अधिक निकट होता है, जिसमें पद्य के बीच - बीच आलंकारिक और तुकांत गद्य की छटा रहती है। ऐसे वचनिका काव्यों में 'अचलदास खीची री वचनिका' वृंद कवि की 'वचनिका - स्थान किशनगढ़' और प्रस्तुत वचनिका काफी प्रसिद्ध हैं।

१. **कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना**, श्री विश्वनाथ लाल 'शैदा', प्रकाशक – हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी। मूल्य आठ रुपए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वचनिका में चारण कवि खिड़िया जगा ने जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह और मुगल सम्राट शाहजहाँ के विद्रोही पुत्रों (औरंगजेब और मुराद) के बीच मालवा में उज्जैन से लगभग १४ मील दक्षिण पश्चिम में धरमत नामक स्थान में १६ अप्रैल १६५८ ई० को हुए ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन किया है। इस प्रकार यह एक ऐतिहासिक काव्य है और धरमत के युद्ध का विस्तृत और प्रामाणिक चित्र उपस्थित करता है। इस घटना को लेकर अभी तक जो इतिहास - ग्रंथ लिखे गए हैं, उनके आधार फारसी - लेख ही रहे हैं। डा० यदुनाथ सरकार ने 'औरंगजेब' का विस्तृत इतिहास लिखने में फारसी के आलमगीरनामा, फतुहात - इ - आलमगीरी, तारीख - इ - शाहशुजाई, जफरनामा - इ - आलमगीरी, और आमल - इ - सालिह आदि ग्रंथों को ही आधार बनाया था। लेकिन ये ग्रंथ केवल एक पक्ष को ही ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। उनमें विजयी औरंगजेब के शौर्य और अहं का ही विस्तार से उल्लेख है। धरमत के युद्ध में दूसरे पक्ष में किस रूप में तैयारी हुई? धरमत के युद्ध में दूसरे पक्ष की किस रूप में तयारी हुई? कितने प्रमुख सेनानायक एवं योद्धा थे। उनमें क्या मंत्रणा हुई और युद्ध में उस पक्ष के कितने वीर रणभूमि में मृत्यु को प्राप्त हुए ?, आदि आदि प्रश्नों के उत्तर फारसी ग्रंथों में नहीं मिलते हैं। इनका प्रामाणिक और आँखों देखा वर्णन जगा ने 'वचनिका' में ही किया है। इसके अतिरिक्त एक दूसरे कवि कुंभकर्ण ने 'रतनरासौ' में लगभग १७ वर्षों बाद उसी घटना को काव्य - बद्ध किया है। अतएव ये फारसी - लेखों के पूरक ग्रंथ का कार्य करते हैं और इनका ऐतिहासिक महत्व है। इस बचनिका से इतिहास के निम्नलिखित पक्षों पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है —

१ – धरमत के युद्ध की ठीक तारीख का ज्ञान।

२ – धरमत के युद्ध के पूर्व जसवंतसिंह के शिविर की चर्चा का परिचय।

३ – जसवंतसिंह के युद्ध - भूमि छोड़ने पर सेनापतित्व सँभालने का विस्तृत परिचय और बाद में होने वाले युद्ध का वर्णन।

४ – धरमत के युद्ध में वीरगति प्राप्त सेनानायकों और प्रमुख सैनिकों की सूची।

बचनिका से अनुसार धरमत का युद्ध सं० १७१५ वि० में वैशाख कृष्ण पक्ष की तिथि नवमी, दिन शुक्रवार को हुआ (पृ० १०६)। इस तिथि को १६ अप्रैल, सन् १६५८ ई० पड़ता है। लेकिन डा० यदुनाथ सरकार ने फारसी ग्रंथों के आधार पर युद्ध का दिनांक १५ अप्रैल सन् १६५८ निकाला है। इस प्रकार एक दिवस का अंतर पड़ता है। वैसे फारसी ग्रंथों में भी दिन शुक्रवार ही दिया हुआ है। मारवाड़ की ख्यातों में भी युद्ध का दिन शुक्रवार ही मिलता है। अतएव दिनांक में यह अंतर कैसे आया? इस प्रश्न को डा० रघुवीर सिंह ने वचनिका की भूमिका में उठाया है और बड़े ही प्रामाणिक ढंग से यह सिद्ध कर दिया है कि वचनिका की दी हुई तारीख ही सही है। शुक्रवार १६ अप्रैल को ही पड़ता है। मुसलमानों में दिवस और मास गणना चंद्र दर्शन से होती है। इसलिए गणना में उक्त अंतर आया।

युद्ध के विषय में इतिहासकारों ने प्रायः यही लिखा है कि सूर्योदय के दो घंटे बाद युद्ध प्रारंभ हुआ। राजपूत सेना मुकुंदसिंह हाड़ा, दयालदास झाला, अर्जुनसिंह गौड़, सुजानसिंह सीसौदिया और रतनसिंह राठौड़ आदि राजपूत सेनानायकों के नेतृत्व में आगे बढ़ी। घमासान युद्ध प्रारंभ हुआ। औरंगजेब के तोपखाने से राजपूत भस्म होने लगे। लगभग सभी वीर सेनानायक मारे गए। कुछ भाग गए। जसवंतसिंह भी युद्ध भूमि में प्राण त्याग करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता था, किंतु मंत्रियों तथा शेष वीरों की मंत्रणा पर वह भाग पड़ा। उसके भागते ही सेना में अशांति और भगदड़ मच गई। कुछ समय तक युद्ध हुआ अवश्य, किंतु वह मरने वालों का अंतिम जोश था। औरंगजेब की विजय हुई।

किंतु वचनिका से यह ज्ञात होता है कि रतनसिंह राठौड़ प्रथम आक्रमण में नहीं मारा गया, अपितु जसवंतसिंह ने रण-भूमि छोड़ने के पूर्व शेष रही सेना का भार उसीको सौंपा और बाद में उसने बड़ा भयानक युद्ध किया। अंत में ८० घाव लगने पर उसको वीर गति प्राप्त हुई। डा० यदुनाथ सरकार ने भी स्वीकार किया है कि "फारसी भाषा में प्राप्य आधार-ग्रंथों में दिए गए वर्णनों के आधार पर ही धरमत के युद्ध का वृत्तांत मैंने लिखा था। इस युद्ध का विवरण हमें दो समकालीन हिंदी तथा राजस्थानी काव्य ग्रंथों में भी मिलता है। वे हैं — खिड़िया जगा कृत वचनिका (१६५८) तथा कुंभकर्ण कृत रतनरासो (१६७५ ई०)। जसवंतसिंह का चचेरा भाई, रतलाम का शासक रतनसिंह राठौड़ भी इस युद्ध के समय शाही सेना के साथ था एवं इस युद्ध में काम आया। रतनसिंह राठौड़ ने इस युद्ध में क्या किया, उसने किस प्रकार युद्ध किया तथा वह किस प्रकार अंत में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया, इन्हीं बातों का समकालीन विवरण हमें इन दोनों काव्य ग्रंथों में मिलता है। आलमगीरनामे के आधार पर अब तक यह विश्वास किया जाता था कि रतनसिंह राठौड़ भी प्रारंभिक आक्रमण में मुकुंदसिंह हाड़ा के साथ था और तभी जूझ मरा, किंतु इन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि रतनसिंह, मुकुंदसिंह हाड़ा के साथ तब नहीं मारा गया था। दूसरे, युद्ध क्षेत्र से रवाना होते समय बाकी रही शाही सेना के संचालन का भार जसवंतसिंह ने रतनसिंह को सौंपा था" (औरंगजेब, फुटनोट पृ० ७८ – ७९)।

राजपूतों के लिए युद्ध भूमि से भागना सर्वाधिक लज्जा की बात समझी जाती थी। इसीलिए जोधपुर की ख्यातों में इस युद्ध का विस्तार से वर्णन नहीं मिलता और औरंगजेब के शाही लेखकों को धरमत के युद्ध में मारे गये राजपूतों की सूची तैयार करने की आवश्यकता ही क्या थी? अतएव ऐसी नामावली 'वचनिका' और 'रतनरासो' में ही मिलती है। वचनिका में वीरगति-प्राप्त लगभग ६० सेनानायकों और विशिष्ट सैनिकों के नाम आए हैं, जिनमें सुजानसिंह सीसौदिया, मोहन, झुझारमल, काना, मुकुंदसिंह और किशोर हाड़ा, झालावाड़ का दयालदास, अर्जुनसिंह गौड़, करण जैतावत, बल्लू क्षत्रिय, बीठल, माधौसिंह, गिरधारी राठौड़, रूघा भाटी, भगवानदास और अमरदास चौहान, चारण जसराज, राठौड़ द्वारकानाथ, भाटी कुंभकर्ण, राठौड़ मंडला के पुत्र – साँगा, रतनसी और रूपसी, दूरावत वेणीदास मेँवार और कछवाहा मानसिंह आदि के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इस दृष्टि से वचनिका का ऐतिहासिक महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

ऐतिहासिकता के अतिरिक्त वचनिका का काव्य-ग्रंथ के रूप में भी विशेष महत्व है। यह वीर-रस का सुंदर सरस काव्य है। हाँ! अन्य चारण-काव्यों के समान इसमें केवल 'भट्ट भणंत' और चारणों का झूठा वाग्जाल ही नहीं है, अपितु इसका आधार भी एक सत्य घटना है। कवि ने शाही सेना और औरंगजेब की सेना का बड़ा ही ओजस्वी चित्र उपस्थित किया है। वीररस के वातावरण-चित्रण के पश्चात् कवि अपने राजनीति-ज्ञान और विवेक का परिचय औरंगजेब और मुराद के चातुर्य-पूर्ण पात्र द्वारा देते हैं। दोनों शाहजादे अत्यंत संक्षेप में महाराजा जसवंतसिंह को लिखते हैं —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'औरंग साह मुराद इम मिलि लिक्खै फ़ुरमाण।
राजा राह म रोकि तूँ साह जगै दे जाण ॥ ४० ॥

राढ़ि म थीर इथ तरफ रहि आगैं पीछै आव।
जोइ दिल्ली फिरि जाइस्याँ परसि असप्पति पाव ॥ ४१ ॥

जसवंतसिंह इस पत्र को प्राप्त करके अपने साथियों से मंत्रणा करते हैं। किंतु सभी वीर यह कहते हैं कि इस विषय में रतनसिंह राठौर का मत ही श्रेष्ठ होगा, क्योंकि वह वीरों में कर्ण के समान और युद्ध-व्यूह का विशेष जानकार है। अततः युद्ध करना ही निश्चित होता है। कवि ने युद्ध का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। गजों, अश्वों और राजपूत वीरों के साथ ही भीमकाय मुगलों का वर्णन बड़ा ही रोचक बन पड़ा है। युद्ध की भाषा में कितना ओज है—

भड़ाँ धड़ भंजि हुवै वि वि भग्ग।
खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग ॥ १५ ॥

थड़क्कड़ वाजि धड़ा किरमाल।
बड़ब्बड़ भाजि पड़ंत बँगाल ॥ १६ ॥

दड़ब्बड़ मुंड रड़ब्बड़ दीस।
अड़ब्बड़ लेत चड़च्चड़ ईस ॥ १७ ॥ (१० ८८)

युद्ध-वर्णन करते समय कवि ने षट्ऋतु और नव-रस वर्णन तथा देवी-देवताओं का नामोल्लेख भी किया है, किंतु इसमें कोई नूतनता नहीं है। यह केवल चारण-काव्य-परंपरा का अनिवार्य अंग मात्र है।

कवि ने नायक रतनसिंह के चरित्र का उत्कर्ष बड़ी सावधानी से दिखाया है। ऐसे व्यक्ति को, जिसे पराजय मिली हो, काव्य का नायक मानना और फिर उसका सफल निर्वाह. बड़ी चतुराई और दूरदर्शिता की अपेक्षा रखता है। कवि ने प्रारंभ में ही उसके शौर्य और विवेक का परिचय दे दिया है। जसवंतसिंह और रतनसिंह मंत्रणा कर रहे हैं, जैसे राम और लक्ष्मण अथवा दुर्योधन और कर्ण—'राम लक्खमण राठवड़ थिर दुज्जोण करन्न।' अर्थात् धरमत के युद्ध में रतनसिंह का वही स्थान है, जो लंका-युद्ध में लक्ष्मण का अथवा महाभारत में कर्ण का। युद्ध में उसे मृत्यु अवश्य प्राप्त होती है, किंतु कवि ने उसकी पराजय को विजय में बदल दिया है। वह मरकर भी अमर हो गया। देवांगनाएँ उसका वरण करने के लिए आती हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसका स्वागत करने आते हैं और सभी देवी-देवता उसकी सेवा में नियुक्त होते हैं। उसके आदेश से एक नए लोक की सृष्टि होती है और बारह दिवस तक उत्सव मनाया जाता है।

रतनसिंह की मृत्यु की सूचना उसकी पत्नियों को मिलती है। फलतः चार रानियाँ और तीन उपपत्नियाँ सती होने की तैयारी करती हैं। कवि ने यहाँ पर इन स्त्रियों का नख-शिख वर्णन किया है। यद्यपि राजपूत स्त्री अपने पति से युद्ध में वीरगति प्राप्त करने के समाचार से शोक विह्वल न होकर तत्काल दूसरे लोक में उससे मिलने की तैयारी करती थी। राजस्थानी-साहित्य में ऐसी अनेक उक्तियाँ मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि पति का युद्ध भूमि से भागना, पति के लिए घोर लज्जा और अपमान की बात होती थी। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ घर भग्गा एंतु॥
× × ×
मणिहारी जारी अरी अब न हवेली आव।
कंत मुआ घर आविया विधवाँ किसा बणाव॥

यही नहीं माँ और पत्नी अपने मुमूर्ष पुत्र, पति की चिंता न करके अधिक घायल वीर को पहले जल पिलाना अपना कर्तव्य समझती थी —

किण विध पाऊँ आणियौ, बोलता जल लाव।
बाँटै सास बलोबली, भालाँ हँदा घाव॥

किंतु यह सब होते हुए भी करुणा के वातावरण में शृंगार का वर्णन पाठक को रुचिकर नहीं प्रतीत होता और रस-भंग जैसा लगने लगता है। अतएव वचनिका का यह अंश बहुत अच्छा नहीं बन पड़ा है।

काव्य की भाषा डिंगल है। लेकिन जिस अर्थ में 'पृथ्वीराजरासो' की भाषा को डिंगल कहा जाता है, वचनिका की भाषा वही डिंगल नहीं है। इसकी भाषा को समझने के लिए आर्य-भाषाओं के विकास को संक्षेप में देखना होगा। वैदिक और लौकिक संस्कृत के बाद पालि उत्तर-भारत की जन सामान्य की विचार अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। पालि के बाद प्राकृत का युग आया। तीन प्राकृतें प्रधान थीं—शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। शौरसेनी प्राकृत से दो प्रकार की अपभ्रंशों का विकास हुआ। एक का क्षेत्र पश्चिमी उत्तरप्रदेश था, जिससे ब्रज और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ विकसित हुईं और दूसरी का क्षेत्र गुजरात-राजस्थान के प्रदेश थे, जिससे राजस्थानी उपभाषा का विकास हुआ। प्रथम को शौरसेनी अपभ्रंश कहा गया और दूसरी को नागर अपभ्रंश, सौराष्ट्री अपभ्रंश और गुर्जरी अपभ्रंश आदि नामों से पुकारा गया। राजस्थानी उपभाषा के अंतर्गत भी अनेक बोलियाँ आती हैं, जिनमें मारवाड़ी, ढुंढाड़ी, मालवी, मेवाती और बागड़ी प्रमुख हैं। मारवाड़ी जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, अजमेर, मेवाड़, और किशनगढ़ आदि स्थानों में बोली जाती है। इसीके साहित्यिक रूप को 'डिंगल' कहते हैं। यह शब्द लगभग १६वीं शताब्दी से पश्चिमी राजस्थानी के लिए प्रयुक्त होने लगा है और इसी प्रकार पूर्वी राजस्थानी के ब्रज मिश्रित रूप के लिए 'पिंगल' नाम चल पड़ा है। इस दृष्टि से वचनिका की भाषा पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् 'डिंगल' है और 'पृथ्वीराजरासो' की भाषा ब्रज मिश्रित पूर्वी राजस्थानी अर्थात् 'पिंगल' है।

दो शब्द कवि के संबंध में भी कह देना आवश्यक है। वचनिका में एक स्थान पर आया है कि रिणमालों के साथ ही हदमल का पुत्र खिड़िया जगा यवन-दल-रूपी समुद्र में बहकर डूब गया और वहीं रह गया —

दल डोहे दरियाव हैवै वही हदमाल रौ।
जोड़े रिणमालाँ जगौ रहियौ खिड़ियाँ राव॥ १२१॥

इससे कुछ लोगों को भ्रम हो गया है कि वचनिका का रचनाकार भी युद्ध में संमिलित था। किंतु वास्तविकता यह है कि खिड़िया वंश के 'जगा' नामक दो चारण थे। एक महाराज जसवंतसिंह का दरबारी था और दूसरा रतनसिंह राठौड़ की सभा का राजकवि। जोधपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सभा का कवि जगा धरमत के युद्ध में मारा गया और वचनिका का कवि जगा युद्ध के बाद भी रतनसिंह के पुत्र रामसिंह के दरबार में रहा। उसके पिता का नाम रतना भी था और उसके वंशज अब भी सीतामऊ राज्य के अंतर्गत सामलखेड़ा नामक गाँव में रहते हैं।

इस प्रकार वचनिका का महत्व स्पष्ट हो जाता है। आज ऐसे ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथों के सुसंपादन की नितांत आवश्यकता है। यद्यपि सन् १९१७ में ही श्री टेसिटरी ने 'वचनिका' का संपादन करके बंगाल की 'एशियाटिक सोसाइटी' से प्रथम बार प्रकाशित किया था और उसमें भूमिका, प्रामाणिक पाठ और अन्य पाठांतरों के साथ ही व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों को देकर संपादन को पूर्ण उपयोगी बनाने की चेष्टा की थी तथापि राजस्थानी प्रयोगों से पूर्ण परिचित न होने के कारण उनसे अनेक त्रुटियाँ हो गई हैं। इसके अतिरिक्त वचनिका के एक ऐसे संस्करण की आवश्यकता थी, जिसमें मूल पाठ के साथ ही सरल अर्थ भी दिया हो, जिससे काव्य का अध्ययन सभी के लिए सुलभ बन सके। इस दृष्टि से प्रस्तुत संस्करण का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त विद्वान संपादकों – श्री काशीराम शर्मा और डा० रघुवीर सिंह ने ग्रंथ की विस्तृत भूमिका लिखकर काव्य को अधिक उपयोगी बना दिया है। डा० टेसिटरी को प्राप्त १३ हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त, प्रस्तुत संपादन में सात अन्य हस्तलिखित प्रतियों को आधार बनाया गया है। इससे पाठ अधिक प्रामाणिक हो गया है। इस श्रम के लिए संपादक-द्वय बधाई के पात्र हैं। आशा है उनके द्वारा शीघ्र ही कुंभकर्ण कृत 'रतनरासो' भी सुसंपादित होकर प्रकाश में आ जाएगा।[२]

—वासुदेव सिंह

श्री गुरु ग्रंथ दर्शन

'गुरु ग्रंथ साहिब' सिक्खों का धर्म-ग्रंथ है, जिसमें गुरु नानक के अतिरिक्त उनके अनुयायियों तथा अन्य समान धर्मी संतों की वाणियों का संग्रह है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' के व्यवस्थित अध्ययन की परंपरा विदेशियों द्वारा प्रारंभ हुई और अब तो अनेक सिक्ख तथा असिक्ख विद्वान् उसका विधिवत् अध्ययन करने लगे हैं। आलोच्य ग्रंथ इसी दिशा में एक प्रयत्न है, जिसपर विश्वविद्यालय द्वारा शोध-उपाधि (पी० एच-डी०) प्रदान की गई है।

लेखक (श्री जयराम मिश्र) ने प्रस्तुत प्रबंध में केवल 'सिक्ख' गुरुओं की वाणियाँ ली हैं। क्योंकि अन्य संतों की वाणियाँ, जैसा कि लेखक का मत है और ठीक मत है, उनकी पुष्टि के लिए 'ग्रंथ साहिब' में रख ली गई हैं। गुरु नानक के संबंध में सामान्य धारणा है कि उन्होंने ऐसे उद्देश्य को लेकर ही कार्य किया है जिससे विशिष्ट 'पंथ' की स्थापना हो। और वे अपने उद्देश्य में सफल भी हुए। भूमिका लेखक श्री परशुराम जी चतुर्वेदी इससे भिन्न मत रखते हैं। वे लिखते हैं —

२. वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी री महेसदासौत री खिड़िया जगा री कही, संपादक — श्री काशीराम शर्मा और डा० रघुवीर सिंह। प्रकाशक — राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली। पृष्ठ संख्या — भूमिका और अर्थ सहित – २३०। मूल्य — दस रुपए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गुरु नानक देव ने जहाँ तक पता है कभी किसी धर्म या संप्रदायविशेष का आश्रय ग्रहण करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया, न उन्होंने किसी ऐसे स्पष्ट उद्देश्य को लेकर कार्य किया जिससे किसी पंथ की स्थापना हो।" परंतु प्रबंध लेखक श्री मिश्र भूमिकाकार से सहमत नहीं हैं। वे लिखते हैं, "गुरु नानकदेव क्रांतिदर्शी, महान् देशभक्त, प्रचंड रूढ़िविरोधी एवं अद्भुत युगपुरुष थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि वर्तमान परिस्थितियों में कौनसा धर्म भारत के लिए और वह भी विशेषकर पंजाब के लिए श्रेयस्कर होगा। इसी विचार से उन्होंने सिक्ख धर्म की संस्थापना की।" (पृष्ठ ५३) इसी बात पर पुनः बल देकर उन्होंने लिखा है, "उन्होंने खूब सोच समझकर सिक्ख - धर्म की संस्थापना की।" (पृष्ठ ५३)। मुझे भी लेखक का मत ठीक जान पड़ता है। गुरु नानक ने केवल विरक्तिवश ही निरगुनिया विचार - धारा नहीं अपनाई होगी, अपने युग की नाड़ी पहचानकर अपने क्षेत्र की आवश्यकतानुसार नए 'पंथ' की स्थापना का संकल्प भी अवश्य लिया होगा।

लेखक की श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अध्ययन की उल्लिखित निम्न विशेषताएँ हैं —

१ – श्री गुरु ग्रंथ साहिब के संकलन के संबंध में ट्रंप, मेकालिफ और साहबसिंह के मतों के बीच समन्वय की चेष्टा।

२ – ग्रंथ की आंतरिक एवं बाह्य रूपरेखा का विस्तार पूर्वक विवेचन।

३ – विषम राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के बीच सिक्ख धर्म का का जन्म; अन्य भारतीय धर्मों में इसका स्थान और इसकी लोकप्रियता का कारण।

४ – सिक्ख धर्म की व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक विशेषताओं का निदर्शन।

५ – सृष्टि - उत्पत्ति, अहंकार, माया, जीव, मनुष्य, आत्मा, मन आदि का 'ग्रंथ साहिब' के आधार पर विवेचन।

६ – गुरुओं के योग की मौलिकता।

७ – गुरु ग्रंथ साहिब में अद्वैतवाद।

'श्री गुरुग्रंथ साहिब जी' के संकलन के संबंध में विद्वानों का मतैक्य नहीं है। बहुमान्य मत यह है कि गुरु अर्जुनदेव ने अनेक स्थानों से गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं आदि की वाणियों का संग्रह किया जिसे भाई गुरुदास जी ने गुरुमुखी लिपि में लिखा। गुरुओं की वाणियों में भिन्नता लाने के लिए उन्होंने पहले गुरु के लिए 'महला पहला' दूसरे गुरु के लिए 'महला दूजा' तीसरे गुरु के लिए 'महला तीजा', चौथे गुरु के लिए 'महला चौथा' और अपने लिए 'महला पंजवाँ' का प्रयोग किया। 'भक्तों की वाणी को पृथक करने के लिए उनके नाम लिख दिए।'

मेकालिफ का मत है कि गुरु अर्जुनदेव वाणियों को बोलते जाते थे और भाई गुरुदासजी लिखते जाते थे। इस प्रकार ग्रंथ का संग्रह विक्रम संवत १६६१ (सन् १६०४ ई०) में समाप्त हुआ। साहिबसिंह जी का कथन है कि गुरुवाणी - संग्रह पहले से ही होता चला आ रहा था। गुरु नानक स्वयं इस कार्य के प्रति जागरूक थे। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कई प्रमाण दिए हैं। प्रबंध - लेखक साहिबसिंह से सहमत हैं, "इसका प्रमुख कारण यही है कि गुरु नानक की धर्म - संस्थापना सोद्देश्य थी। उसके पीछे सुधार की भावना थी। प्रत्येक धर्म - सुधारक अपनी वाणियों को सुरक्षित रखने की चेष्टा करता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब के वाणीकारों, विशेषकर असिक्खों का अत्यंत संक्षिप्त परिचय दिया है। बहुतों के संबंध में जन्मतिथि या जन्मस्थान दोनों अज्ञात लिखकर मुक्ति पा ली है। शोध ग्रंथ में इस प्रकार के 'उड़ते हुए कथन' खटकते हैं। जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन परमानंद, सेन आदि की जन्मतिथि, जन्मस्थान आदि पर शोधसामग्री प्रस्तुत की जा चुकी हैं। उससे लाभ उठाया जा सकता था। पृष्ठ ६० से प्रबंध की मूल सामग्री प्रारंभ होती है जो ग्रंथ के अंत तक चली जाती है। इसके अंतर्गत 'ग्रंथ साहिब' में वर्णित परमात्मा, सृष्टिक्रम, हउमै, माया, जीव, मनुष्य, आत्मा, मन और हरिप्राप्ति - पथ की विवेचना की गई है, जिसमें 'ग्रंथ साहिब' में निरूपित 'दर्शन' का परिचय प्राप्त हो जाता है। लेखक ने इन अध्यायों को लिखने में काफी श्रम उठाया है और 'ग्रंथ साहिब' के यथास्थान उद्धरण देकर अपने कथन को प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया है। इसमें सदेह नहीं इस प्रबंध के द्वारा 'सिक्खमत' को समझने में पाठकों को सुविधा होगी। शोध ग्रंथ में यत्र - तत्र भाषा के शिथिल प्रयोग चिंतनीय है —

१ – हिंदू मस्तिष्क मुसलमानों की संस्कृति की इतनी दासता स्वीकार कर लिए हैं कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमानों को आत्मसमर्पण कर दिए हैं (पृष्ठ ४६)।

२ – सच्चा यज्ञोपवीत की गाँठ है और सत्य ही उसकी पूरन है। (पृष्ठ ५७) प्रतीत होता है, सत्य के स्थान पर सच्चा छप गया है।

३ – कहीं कहीं सृष्टि और परमात्मा के बीच अभिन्नता दिखलाया है (पृष्ठ ५६)।

४ – पृष्ठ १८६ पर उद्धृत कठोपनिषद की पंक्तियों के हिंदी तात्पर्य में उचित शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। '··· शरीर को तो एक समझा ··· और शरीररूपी के रथ में बँधे हुए अश्वरूप इंद्रियगण से खींचा जाता है। 'आदि' शब्दों से तात्पर्य नहीं निकलता।

५ – यह भी असंगत प्रतीत होता है कि गुरु नानक ··· संगीतमय शिक्षा दिए हों (पृष्ठ १५)।

प्रूफ की कुछ भूलें भी चिंतनीय हैं। हिंदी में सर्वथा शुद्ध पुस्तकों आदि का छपना तो भविष्य का स्वप्न ही हो सकता है।

१ – 'भक्तों की वाणियाँ को स्थान दिया में 'वाणियों' के स्थान पर 'वाणियाँ' छपा है (पृष्ठ ४)।

२ – 'अद्वैतवाद भी स्थिति ही ज्ञान है।' में संभवतः 'की' के स्थान पर भी छप गया है। (पृष्ठ ५६)।

३ – 'अंध विश्वास का प्रबंध कभी कभी ··· अधिक हो जाता है' में प्रबंध के स्थान पर संभवतः प्राबल्य चाहिए। (पृष्ठ ५५)। आदि

आशा है दूसरे संस्करण में भाषा और प्रूफ की भूलें सुधार दी जायेंगी जिन भूलों की ओर संकेत किया गया है वे उदाहरण स्वरूप मात्र हैं।[3]

— विनयमोहन शर्मा

३. श्री गुरुग्रंथ दर्शन —लेखक, डा० जयराम मिश्र, एम० ए०, एम० एड०, पी० एच - डी०, प्रकाशक — साहित्य - भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साठ वर्ष : एक रेखांकन' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद'

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी के कृती कवि पं सुमित्रानंदन पंत की चार वार्ताएँ संगृहीत हैं। इनमें उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के क्रम - विकास की रूपरेखा भर प्रस्तुत की है, पर इनसे उनके विकासमान कवि के पदचिह्नों को देखा ही नहीं जा सकता बल्कि उनके आधार पर कवि पंत का नया मूल्यांकन भी किया जा सकता है। इस समीक्षा में मैं यथास्थान उन सूत्रों का उल्लेख करना चाहूँगा जो पंत जी के संबंध में अनेक भ्रांत धारणाओं का निरसन करते हुए समीक्षकों को नए निर्देश भी देते हैं।

पंतजी ने अपनी प्रत्येक वार्ता में अपने विकास का एक काल स्थिर किया है। पहली वार्ता का नाम है—प्रकृति का अंचल (१९०७ – १९१८)। इस अंचल में ही पंत जी का जन्म हुआ था – उनका गाँव कौसानी तो कूर्मांचल की एक विशिष्ट सौंदर्यस्थली है। ऊँचे पर्वत-शिखर, घनी हरीतिमा, हलकी ललछौंहीं कलियों से लदी हुई आडू की डालों, गेरुई मिट्टी की पहाड़ी की केंचुली पगडंडियों, चीड़ के हरे - भरे जंगलों, नीली - रुपहली ऊँचाइयों के बीच पंत जी का कैशोर फूला - फला। उन्होंने स्वयं लिखा है —

मोहित अंतर में भर देते आदिम विस्मय गहरा,
अंतरिक्ष विस्फारित नयनों को अपलक रख तद्वत् !

"मेरे प्रबुद्ध होने से पहले ही प्राकृतिक सौंदर्य को मौन रहस्यभरी अनेकानेक मोहक तहें अनजाने ही, एक के ऊपर एक, अपने अनंत वैचित्र्य में, मेरे मन के भीतर जैसे जमा होती गईं।" पंतजी के पाठकों को ज्ञात है कि उनकी आज की कविताओं में प्रकृति के इस सौंदर्य-वैभव का अनेक रूपों में अत्यंत ऐंद्रिय चित्र उरेहा गया है। 'आदिम विस्मय' के प्रादुर्भाव के कारण कवि के बिंबों में मानवमन की मूल वासनाओं, रहस्यों, भावनाओं आदि को जो रूप दिया गया है वह बहुत ही मोहक बन पड़ा है।

वे 'छुटपन में अत्यंत आत्मस्थ, विनम्र तथा सुकुमार' थे। मात्रा भेद के साथ ये विशेषताएँ आज भी उनके व्यक्तित्व का अनिवार्य अंग बनी हुई हैं। उनके व्यक्तित्व का संपूर्ण सौंदर्य उनकी कविता में अभिव्यक्त हुआ है। 'सुमित्रानंदन' नाम के साथ भी उनके सौ-कुमार्य की कहानी जुड़ी हुई है।

दूसरी वार्ता में विकाससूत्र और अंतःसंघर्ष (१९१९ - ३०) की कहानी है। इस समय पंत जी पर श्रीमती नायडू की शब्द - योजना, रवींद्र की कल्पना, सौंदर्य - बोध, भावगरिमा, पद - मैत्री आदि का प्रभाव पड़ा। उन्नसवीं शती के अंग्रेज कवियों — वर्डस्वर्थ, शेली, कीट्स, टेनीसन – का प्रभाव भी उन्होंने कम नहीं ग्रहण किया। हिंदी के रीतिकालीन कविताओं के रस - बोधक तथा द्विवेदीयुगीन काव्य की युग - चेतना द्वारा भी अनजाने ही उनकी काव्य - गति निर्मित हो रही थी। इन प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी वे समग्रतः मौलिक हैं। पल्लव की भूमिका का महत्व रत्नाकर जी के उस भाषण की तुलना में रखने पर ज्ञात होता है जो उन्होंने हिंदी साहित्य संमेलन के वार्षिकोत्सव के अवसर पर सभापति के पद से दिया था, क्योंकि पल्लव की भूमिका का पूर्वार्द्ध उस भाषण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप लिखा गया था। उसी प्रकार 'वीणा' की अप्रकाशित भूमिका जो 'गद्यपथ' में संगृहीत है, महावीरप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी के सुकवि किंकर नाम से छायावाद पर किए गए आरोप के प्रत्युत्तर में लिखी गई थी। तीसरी वार्ता में उन्होंने बाह्य संघर्षों की पृष्ठभूमि में अपने तत्कालीन काव्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है। अंत में पंत जी ने कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाए हैं, जैसे वैयक्तिकता बनाम सामूहिकता। उनका स्पष्ट मत है कि आज व्यक्तिगत कुंठा और अहं के स्थान पर नवीन सामूहिकता को विगत सांस्कृतिक संचय से मुक्त कर प्रतिष्ठित करना होगा।

अपनी चौथी वार्ता के अंत में उन्होंने लिखा है-" 'मेरी' सन् ५८ की रचनाओं का संग्रह 'कला और बूढ़ा चाँद' हाल में ही प्रकाशित हुआ है। ये रचनाएँ रूप-विधान की दृष्टि से मेरी पिछली रचनाओं से कुछ भिन्न हैं।" इस संग्रह में उनकी अंतश्चेतना की विविध छवियाँ अपने नवीन रूप-रंग में दिखाई पड़ती हैं। वह नए विश्वास, नई आस्था की उर्वर भूमि में संलग्न है —

ओ तरुण कवि
कल के सूर्य,
कुहासों के आरोहों से
बाहर निकल
नए विश्वास का
कनक मंडल क्षितिज
प्रस्तुत करो
नई आस्था की
उर्वर भूमि,

उसका बोध नया है, दायित्व नया है। 'नया प्रेम' शीर्षक कविता ही देखिए —

तुम पिछली फूलों की बीथियों
आँसू की गलियों से होकर
मत आना, —
क्या कोई भी घर,
कोई भी आँगन
कोई भी पथ
तुम्हारा नहीं ?
जहाँ दीप ही
छाँह हो,
या धूल भरी थकान हो।
मैं सर्वत्र जाऊँगा !

यह नया प्रेम पुराने प्रेम से भिन्न है, उसे फूलों की बीथियों और आँसू की गलियों से नहीं आना है। वह अनेकानेक मार्गों से जा सकता है, उसकी व्याप्ति काफी बड़ी हो गई है। इसी प्रकार 'धर्मदान' शीर्षक उनकी कविता नए भाव-बोध की व्यंजना से पुष्ट है —

यह अग्नि
अंतर अनुभूति है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सत्य के स्रोत को
देख पाओगे कि नहीं ?
यह अभीप्सा
यह प्रेरणा
तुम्हें सौंपता हूँ !'

जड़ता के संबंध में व्यंजना का एक नया रूप देखिए —

हमारी, रूढ़ि प्रिय
जड़ते,
तेरी रशुओं की सी
सशंक, त्रस्त चितवन देख
दया आती है।

नए युग में समस्त रूढ़ियां, जो नए ज्ञान - बोध से हिल चुकी हैं, एक विचित्र प्रकार की स्थिति का अनुभव कर रही हैं। नई बिंब - योजनाओं, प्रतीकों आदि के कारण पूरा संग्रह नए रूप, रस, गंध से अनुप्राणित होकर एक तरह की ताजगी वितरित करता है। इन कविताओं में नई कविता की अनेक अच्छाइयाँ तथा पंतजी की अपनी पूर्ववर्ती कविता की कतिपय अतृप्तियाँ भी दिखाई पड़ेंगी। यह संग्रह पंत जी के विकासक्रमका अगला सोपान है। इसमें कोई संदेह नहीं है।[४]

— बच्चनसिंह

साहब बीबी गुलाम

यह विमल मित्र के इसी नाम के बंगला उपन्यास का हिंदी अनुवाद है। वस्तु तथा शिल्प दोनों दृष्टियों से इसकी विशिष्टता निर्विवाद है। इसमें बनमाली सरकार के ढहते हुए सामंतीय परिवार की कहानी है। सारी कहानी साहब, बीबी और गुलाम के संबंधों को उद्घाटित करती हुई मानवीय मन के उपचेतन को भी खोलती चलती है। इसके साथ - साथ कलकत्ता शहर के बसने की कथा भी उभरती जाती है। बदलता हुआ जमाना आँखों के आगे तेजी से गुजर जाता है — नवाबों का समय जाब चारनक, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानंद, वंग भंग आदि इतिहास के पृष्ठों को इस कहानी में अत्यंत कुशलता से गूँथ दिया गया है। सारी की सारी कहानियाँ भूतनाथ के व्यक्तित्व से बँधी अपने प्रभावों का अलग वृत्त बनाती हुई अंत में एक सामूहिक प्रभान्विति में परिणत हो जाती हैं।

साहबों को उच्छृंखलता विरासत में मिली है लेकिन उनकी बीबियों का दूसरों से मिलना - जुलना भी भारी गुनाह है। साहबों की शराबखोरी, नाच - रंग, साज - सज्जा, गुंडागिरी आदि के जीवंत चित्रों से उपन्यास भरा पड़ा है। दूसरी ओर उनकी बीबियों की दमघोंट जिंदगी का चित्र भी कम सजीव नहीं है। जमाने के साथ - साथ साहबों की लतों में भी परिवर्तन होता चलता है। सुविनय बाबू एक ओर ब्रह्मसमाज के दर्शन को आत्मसात् कर

४. श्री सुमित्रानंदन पंत : साठ वर्ष एक रेखांकन, मूल्य ३·००; कला और बूढ़ा चाँद मूल्य ६·०० । प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं तो दूसरी ओर 'मोहिनी सिंदूर' के भ्रमोत्पादक व्यापार द्वारा अंधविश्वासियों को ठगने में भी कोर-कसर नहीं करते। छोटी बहू और जवा के बीच भूतनाथ के जिस व्यक्तित्व का निर्माण होता है वह अत्यंत प्रभावशाली, सात्विक तथा हृदय को कचोट लेने वाला है। 'छोटी बहू' के 'कंकाल' का दृश्य पाठकों के मन में करुणा और दर्द की जो अनुगूँज छोड़ जाता है, वह भूतनाथ के साथ उन्हें भी दार्शनिक बना देता है।

किसी चरित्र को भूलना कठिन है। किसको भूला जा सकता है — छोटी बहू या जवा को? चुन्नी, जो रखैल थी, उसकी नारीजनोचित करुणा को कैसे भुलाया जा सकता है? वंशी को जो साहबों की सेवा में, अंतिम समय में, बिना वेतन के लगा रहा? उसका दर्द भी कम नहीं है। बद्री बाबू की भविष्यवाणियों में इस सामंतीय महल के जमींदोज होने की कहानी है। ननीगोपाल के तार ने सिद्ध कर दिया कि पत्थर भी पिघल सकता है। सुविनय बाबू की सरल दार्शनिक उक्तियों और निस्पृह जीवन की कहानी भी अजीब करुणा की सृष्टि करती है। सुपवित्र बाबू अपने भोलेपन में अत्यंत निरीह, कोमल और करुण हैं। भूतनाथ की कहानी – अतुल की कहानी के विरोध में अत्यधिक आर्द्र हो उठी है। साइकिल से उस अँधेरी गली को पार करते हुए भूतनाथ को लगा कि 'उसका सारा अतीत इस कुत्ते ही की तरह मानों उसे पीछे खींचना चाह रहा है। उसका अतीत इस कुत्ते जैसा ही काला, रोगी, मरणासन्न और धुँधला है।' अंत में छोटी बहू के कंकाल को देखकर उसे इतिहास के पट-परिवर्तन की सुध आती है और फिर जीवन का एक दार्शनिक महा अर्थ खुल जाता है।

टेकनिक की दृष्टि से इसमें कई नवीनताएँ मिलेंगी। पूर्वाभास और उपकथा के बीच मुख्य कहानी फैली हुई है पर उन दोनों के बिना वह अधूरी है। इसमें फ्लैशबैक, चेतनाप्रवाह और आँचलिकता की टेकनीक को इस तरह ग्रहण किया गया कि कहीं पर थकान का अनुभव नहीं होता। घड़ी, कुत्ते आदि के प्रतीकों ने इसके अर्थ-गौरव को और भी अभिवृद्ध किया है। विमलमित्र के साथ ही हंसकुमार तिवारी भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने इस महत्वपूर्ण मूल-उपन्यास की आत्मा को सतर्कता पूर्वक हिंदी में ढाला है।[५]

— बच्चनसिंह

पराड़कर जी और पत्रकारिता

हिंदी पत्रकारिता की ऊँचाई, उसकी प्रभावोत्पादकता और तेजस्विता का खयाल आते ही पराड़कर जी का समूचा व्यक्तित्व सामने उभर आता है। उनके समय के 'आज' के संपादकीय लेखों एवं टिप्पणियों में जनता के अंतःस्पंदन की जो पकड़, राजनीतिक गतिविधियों का जो सूक्ष्म विवेचन, जनमत के लिए नई दिशा का जो बोध दिखाई पड़ता था वह अभूतपूर्व था। कूटस्थ पत्रकारों में जो निर्भीकता, तलस्पर्शी विवेक और ईमानदारी होनी चाहिए वह पराड़कर जी में थी। इसीलिए तो उस समय के 'आज' के संपादकीय उच्चस्तरीय अंग्रेजी पत्रों के संपादकीयों के समकक्ष समझे जाते थे। पराड़कर जी की पत्रकारिता के साथ-साथ उनके जीवन के अन्यान्य क्रांतिकारी पहलुओं का चित्रण करते हुए लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को और भी उपादेयता-क्षम बना दिया है।

५. साहब बीबी गुलाम, विमलमित्र, अनु० हंसकुमार तिवारी, प्र० राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य १०.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक पराड़कर जी के योग्य शिष्य श्री लक्ष्मीशंकर व्यास द्वारा लिखी गई है जिनको उनके साथ काम करने का, उनसे बहुत कुछ सीखने का काफी अरसे तक मौका मिला है। पुस्तक देखने से पता चलता है कि लेखक को सामग्री जुटाने में पर्याप्त श्रम करना पड़ा है, इसीलिए पराड़कर जी जैसे आत्मस्थ व्यक्ति के संबंध में इतना कुछ प्रामाणिक ढंग से एकत्र किया जा सका है।

पुस्तक के तीन खंड हैं – जीवनखंड, साहित्यखंड और पत्रकारिता खंड। प्रथम खंड के अध्ययन से ही स्पष्ट हो जाता है कि असमावृत्त वेदपाठी व्यक्तित्व की चिनगारियाँ एक दिन राष्ट्र के लिए मशाल का काम देंगी? कलकत्ते में पत्रकारिता की ओट में वे किस प्रकार क्रांतिकारीदल में काम करते रहे, इसकी जानकारी बहुत ही रोचक तथा लोमहर्षक है। क्रांतिकारिता के जिस बीज का वपन उनमें हुआ वह बराबर उगता, बढ़ता, फूलता, फलता गया। चाहे दैनिक 'आज' का संपादन हो चाहे 'रणभेरी' का लेखन - प्रकाशन अथवा जीवन के नवीन संकल्प — सर्वत्र उनके व्यक्तित्व का वही पहलू रूप बदलकर दिखाई देता है। द्वितीय खंड में उनकी साहित्यिक देन और प्रेरणाओं का आकलन किया गया है।

तृतीय खंड में लेखक ने उनकी पत्रकारिता से संबद्ध विस्तृत और सारगर्भ विचार प्रस्तुत किए हैं। इस खंड में पराड़कर जी के महत्वपूर्ण संपादकीय, टिप्पणियां, भाषण आदि संगृहीत करके लेखक ने उनकी कहानी उनकी जबानी कहलाने की कोशिश की है। इसमें जिन प्रसंगों का चयन किया गया है उनसे दुहरा लाभ है — एक तो पराड़कर जी के विचार और भाषा - शैली का चित्र स्पष्ट हो जाता है, दूसरे तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि का विहगावलोकन भी हो जाता है। ऐसी उपयोगी, ज्ञानवर्धक तथा प्रमाणित पुस्तक तैयार करने के लिए व्यास जी बधाई के पात्र हैं। इस पुस्तक के लेखक यदि पराड़कर जी के समस्त संपादकीय लेखों एवं टिप्पणियों के संकलन का भी श्रमसाध्य संकल्प ले सकें तो यह राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा होगी।[६]

— बच्चनसिंह

आधुनिक हिंदी - कवियों के काव्यसिद्धांत

यह दिल्ली विश्वविद्यालय की पी - एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध - प्रबंध है। आधुनिक हिंदी - कवियों के काव्यों - निबंधों के आधार पर इसमें उनके काव्य-सिद्धांतों का लेखा - जोखा प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी कवियों के काव्य - सिद्धांतों को काव्य का स्वरूप, काव्य की आत्मा, काव्य का प्रयोजन, काव्य के वर्ण्य विषय, काव्य-शिल्प, स्फुटकाव्य-सिद्धांत, सिद्धांत प्रयोग और विवेचन शीर्षकों के अंतर्गत परखा गया है। अधिक से अधिक कवियों को संमिलित करने के लोभ के कारण शोध - प्रबंध में एक प्रकार की व्याप्ति तो आई है पर गहराई की कमी हो गई है।

६. पराड़कर जी और पत्रकारिता; श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत में लेखक ने काव्य - सिद्धांतों की विकसनशीलता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। ऐसा करने में यदि वह विकास को प्रभावित करनेवाले ऐतिहासिक तत्वों को भी ध्यान में रखता तो इस प्रकरण का अधिक मूल्य होता। इस शोधप्रबंध का महत्व सामग्री के संकलन और चयन में जितना है उतना विश्लेषण में नहीं! पर लेखक ने खूब परिश्रम से सामग्री एकत्र की है, इससे एक लाभ यह हुआ है कि आधुनिक कवियों के काव्य - संबंधी प्रायः समस्त विचार एक स्थान पर मिल जाते हैं।[७]

— शैलेंद्र

*

७. आधुनिक हिंदी कवियों के काव्यसिद्धांत—ठाकुर सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाशक – हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली ६, मूल्य २५.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७७

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३, संख्या १५५ बुहलर; ल्युडर्स सूची २२३; एपिग्राफिया इण्डिका २ – ३८० संख्या २२१ बुहलर; ल्युडर्ससूची ४०७। उज्जयिनी से उपेंद्रदत्तभार्या वायुदत्ता का दान। १४१०

७८

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३, संख्या १५६ बुहलर; ल्युडर्स सूची २२४। उज्जयिनी से उपेंद्रदत्तस्वसा हिमदत्ता का दान। १४१०

७९

१६६१ साँचीस्तूप १ – अभिलेख प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १५७ बुहलर; ल्युडर्स सूची २२५। उज्जयिनी से उपेंद्रदत्तस्वसा बुधा का दान। १४१०

८०

१६६१ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७२ संख्या १४४ बुहलर; ल्युडर्स सूची २१०। मग्न। उज्जयिनी से। १४१०

८१

१६६१ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २३७, संख्या ११ कनिंघम; ल्युडर्स सूची १७२ तथा २३७; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०० संख्या २७ बुहलर। उज्जयिनी के वाकिलियों का दान। १४१०

८२

१६६१ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७०; संख्या १२७ बुहलर; ल्युडर्स सूची १६६। अहिमित्र माता वाकला या वाकिला देवी का दान। १४१०

८३

१६६२ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७२; संख्या १४६ बुहलर; ल्युडर्स सूची २१२। उज्जयिनी से उपासिका का दान। १४०६

८४

१६६२ साँची बौद्ध स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १४८ बुहलर; ल्युडर्स सूची २१६। उज्जयिनी से रोहिणी का दान। १४०६

८५

१६६२ साँची बौद्धस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७३; संख्या १४९ बुहलर; ल्युडर्स सूची २१७। उज्जयिनी से धर्मगिरि का दान। १४०६

४ (६५–३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८६

१६६२ साँची बौद्ध स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २३७; संख्या १२ कनिंघम; ल्युडर्स सूची १७३। उज्जयिनी के विसकाम गोपाल का दान। १४०६

८७

१६६३ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७४; संख्या १६१ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २२६। उज्जयिनी से साफिनेयक ऋषिक का दान। १४०८

८८

१६६३ साँचीस्तूप २ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–४०१; संख्या ६६ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ६४४। संघा की माता साफिनेयिका का दान। १४०८

८६

१६६३ साँची बौद्ध स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७१; संख्या १३७ बुह्लर; ल्युडर्स सूची १६८। साफिनेयक आर्य रहिल माता का दान। १४०८

६०

१६६३ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७४; संख्या १५८ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २२६। उज्जयिनी से भिक्षुणी कांडी का दान। १४०८

६१

१६६३ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७४; संख्या १५६ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २२७। उज्जयिनी से चेत्रमाता का दान। १४०८

६२

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७४; संख्या १६३ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २३१। उज्जयिनी से बासुला या विपुला का दान। १४०७

६३

१६६४ सांची स्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३८१ संख्या २२७ बुह्लर, लुडर्स सूची ४१३। उज्जयिनी से वसुला का दान। १४०७

६४

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३७५; संख्या १६८ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २४१; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३६१; संख्या ३२७ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ५१०। वसुला का दान। १४०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९५

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २४६; संख्या ७७ कनिंघम; ल्युडर्स सूची २३८। उज्जयिनी से गोभिल और विश्व का दान। १४०७

९६

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिया २ – १०२; संख्या ४६ बुह्लर; ल्युडर्स सूची २६८। उज्जयिनीद्वार से नवग्रामक स्वामिक का दान। १४०७

९७

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–१०४; संख्या ६६ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३०२। उज्जयिनी के अग्नि शर्मा का दान। १४०७

९८

१६६४ साँची स्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–१०७; संख्या ९५ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३५९। उज्जयिनी से विश्वदेवभार्या मूला का दान। १४०७

९९

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ११०; संख्या १२१ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ३८५। उज्जयिनीवासी उपासिका देवा का दान। १४०७

१००

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३७९; संख्या २१४ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४००। उज्जयिनीवासी भिक्षुणी ऋषभा का दान। १४०७

१०१

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३८०; संख्या २१९ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४०५। उज्जयिनी से अश्वरक्षिता का दान। १४०७

१०२

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३८०; संख्या २२० बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४०६। उज्जयिनी से उपासिका श्री का दान। १४०७

१०३

१६६४ साँचीस्तूप १ – अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३८०; संख्या २२४ बुह्लर; ल्युडर्स सूची ४०८। उज्जयिनी से कुलर पुत्र बुभ का दान। १४०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०४

१६६४ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २–३८० १४०७
संख्या २२४; बुह्लर, लुडर्स सूची ४१०। भग्न। उज्जयिनी से भिक्षुणी धर्मयशाः की माता का दान।

१०५

१६६४ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३८१ १४०७
संख्या २२५ बुह्लर; लुडर्स सूची ४११। उज्जयिनी से बालिका की माता का दान।

१०६

१६६५ साँचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३८१ १४०६
संख्या २२५ बुह्लर, लुडर्स सूची ४१२। भग्न। उज्जयिनी से भिक्षुणी मित्रा का दान।

१०७

१६६५ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३८१ १४०६
संख्या २२८ बुह्लर, लुडर्स सूची ४१४। उज्जयिनी से संघदत्त का दान।

१०८

१६६५ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३८१ १४०६
संख्या २२६ बुह्लर, लुडर्स सूची ४१५। उज्जयिनी से सुलास का दान।

१०९

१६६५ सांची स्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी, एपिग्राफिया इंडिका २ ३८५ १४०६
संख्या २६६ बुह्लर; लुडर्स सूची ४५१। उज्जयिनी के भिक्षुक थेर आर्यनाग का दान।

११०

१४६५ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३९१ १४०६
संख्या ३२६ बुह्लर, लुडर्स सूची ५०९। उज्जयिनीवासी भिक्षुणी वसुमित्रा का दान।

१११

१६६६ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०० १४०५
संख्या ३१ बुह्लर; लुडर्स सूची २४२। उगिरेयक स्वातिगुप्ता का दान।

११२

१६६७ सांची बौद्ध स्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २-९८ १४०४
संख्या १३ बुह्लर; लुडर्स सूची १८६। उदुम्बरगृह के सिंहरक्षित का दान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३

१६६७ सांची स्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – १०७ १४०४
संख्या ६६ बुहलर; लुडर्स सूची ३६० । उदुम्बर गृहवासी सत्यमित्र का दान ।

११४

१६६७ सांचीस्तूप २ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ४०१ १४०४
संख्या ६६ बुहलर, लुडर्स सूची ६०६ । उदुम्बर गृहवासी रोहणिक का दान ।

११५

१६६७ सांचीस्तूप २ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २८४ संख्या ४२ १४०४
कनिंघम, लुडर्स सूची ६१० । भग्न । उदुंबर गृहवासी···का दान ।

११६

१६६७ सांचीस्तूप २ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी एपिग्राफिया इंडका २ – ४०० १४०४
संख्या ५८ बुहलर, लुडर्स सूची ६३४ । उदुंबरगृह के बुद्धगुप्त का दान ।

११७

१६६८ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी एपिग्राफिया इंडिका २ – १०४ १४०३
संख्या ७१ बुहलर; लुडर्स सूची ३०४ । एजावती वासी भिक्षु बुद्धरक्षित
का दान ।

११८

१६६८ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्रफिया इंडिका २ – ३८१ १४०३
संख्या २३१ बुहलर, लुडर्स सूची ४१७ । भग्न । एजावती से उपासिकाओं
का दान ।

११९

१४६८ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ – ३८१ १४०३
संख्या २३२ बुहलर, लुडर्स सूची ४१८ । एजावती से···वाहिल का दान ।

१२०

१६६८ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३६५ १४०३
संख्या ३७१ बुहलर, लुडर्स सूची ५५४ । भग्न । एजावती । शेष अस्पष्ट ।

१२१

१६६६ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३६५ १४०२
संख्या ३७३ बुहलर; लुडर्स सूची ५५६ । भग्न । कुघुपदक । शेष अपठित ।

१२२

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २५० संख्या १०० १४०१
कनिंघम; लुडर्स सूची २६१ । कटकनु के अर्हदास का दान ।

१२३

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - १०१ १४०१
संख्या ४१ बुहलर, लुडर्स सूची २६२ । कटकणु के भद्रक का दान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२४

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी, एपिग्राफिया इंडिका २ - १०७ १४०१
संख्या १७ बुह्लर, लुडर्स सूची ३६१। कटकणुवासी भिक्षु आर्य
पहुड का दान।

१२५

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८१ १४०१
संख्या १३३ बुह्लर, लुडर्स सूची ४१६। कटकणु से इंद्रदेव का दान।

१२६

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८१ १४०१
संख्या २३४ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२०। कटकणु से अर्हत का दान।

१२७

१७०० सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिए इंडिका २ - ३८१ १४०१
संख्या २३५ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२१। भग्न। कटकणु से ... का दान।

१२८

१७०१ सांचीस्तूप २ मंजूषा २ के भीतर अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप १४००
पृ० २८८ कनिंघम, लुडर्स सूची ६५६। काकवन के पाभास साहस का दान।

१२९

१७०१ सांचीबौद्धस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ९९ १४००
संख्या २१ बुह्लर, लुडर्स सूची २००। काकणाय से भगवत की
प्रयाणलठि।

१३०

१७०२ सांचीस्तूप १ अभिलेख — प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - १०२ १३९९
संख्या ५२ बुह्लर; लुडर्स सूची २७४। काचुपथ से भिक्षुणी धर्मरक्षिता
का दान।

१३१

१७०२ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ११० १३९९
संख्या ४० बुह्लर, लुडर्स सूची २६०। कापासी ग्राम से अर्हत का दान।
इस अभिलेख की दो प्रतियाँ हैं।

१३२

१७०२ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३९१ १३९९
संख्या ३३२ बुह्लर, लुडर्स सूची ५१५। कापासी ग्राम से भिक्षुनी
विपुला का दान।

१३३

१७०४ सांचीस्तूप १ अभिलेख – प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३९७
संख्या २३६ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२२। भग्न। कुन्दडी ग्राम से सेठ ...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३४

१७०४ सांची बौद्ध स्तूप १ अभिलेख--प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७२ १३६७
संख्या १४० बुह्लर, लुडर्स सूची २०६। कंदडि ग्राम के श्रेष्ठी की भार्या
नागा का दान।

१३५

१७०४ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३६७
संख्या २३७ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२३ कुंदडि ग्रामवासी सेठ भार्या
देवभागा का दान।

१३६

१७०४ सांची बौद्ध स्तूप संख्या १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका १३६७
२ - ३७२; संख्या १४१ बुह्लर; लुडर्स सूची २०७। कंदडि ग्राम के श्रेष्ठी
की भार्या पुष्या का दान।

१३७

१७०४ सांची बौद्ध स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका १३६७
२ - ३७२ संख्या १४२ बुह्लर, लुडर्स सूची २०८। कांदडि ग्राम के
वृद्ध का दान।

१३८

१७०५ सांची बौद्ध स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी: एपिग्राफिया इंडिका १३६६
२ - ९९; संख्या १९ बुह्लर; लुडर्स सूची १९७। कुररगृह के सुभग का दान।

१३९

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७४ १३६६
संख्या १६५ बुह्लर, लुडर्स सूची २३३; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२
संख्या २४० बुह्लर; लुडर्स सूची ४२६। कुरारगृह से नागमित्रा का दान।

१४०

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७४ १३६६
संख्या १६२ बुह्लर, लुडर्स सूची २३० कुरारगृह से ऋषिमित्रा का दान।

१४१

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७४ १३६६
संख्या १६४ बुह्लर, लुडर्स सूची २३२। कुरारगृह से नरा का दान।

१४२

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; भिलसास्तूप पृ० २५४ संख्या १३८ १३६६
कनिंघम, लुडर्स सूची २१७। कुररवासी विमल का दान।

१४३

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७६ १३६६
संख्या १७१ बुह्लर, लुडर्स सूची २८९। कुरर से नंद का दान।

१४४

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३७६ १३६६
संख्या १८१ बुह्लर, लुडर्स सूची २९२। कुररी भिक्षुणी ऋषिदत्ता का दान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110784

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४५

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - १०८ १३६६
९९ बुह्लर, लुडर्स सूची ३६३। कुरघर वासी सेठ सिंह का दान।

१४६

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८३ १३६६
संख्या २४६ बुह्लर; लुडर्स सूची ४३५। भग्न। कुरर से अर्हद् गुप्ता का दान।

१४७

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी, एपिग्राफिया इंडिका २ - १०८ १३६६
संख्या ९८ बुह्लर, लुडर्स सूची ३६२। कुरार से संबलित का दान।

१४८

१७०५ सांचीस्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - १०८ १३६६
संख्या १०४ बुह्लर, लुडर्स सूची ३६८। कुररगृह की भिक्षुणियां प्रियधर्मा और बोधी का दान।

१४९

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३६६
संख्या २३९ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२५। कुररगृह से घोषक का दान।

१५०

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३६६
संख्या २४१ बुह्लर; लुडर्स सूची ४२७। भग्न। कुररगृह से भिक्षुणी शांति श्री का दान।

१५१

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३६६
संख्या २४२ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२८ - ४२९; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ संख्या २४३ बुह्लर, लुडर्स सूची ४२९। कुररसे अर्हद् गुप्ता का दान।

१५२

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८२ १३६६
संख्या २४४ बुह्लर, लुडर्स सूची ४३०। कुरर से भिक्षुणी अच्छावती का दान।

१५३

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३८३ १३६६
संख्या २४५ बुह्लर, लुडर्स सूची ४३१। कुरर की नागदोना का दान।

१५४

१७०५ साची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३९० १३६६
संख्या ३१५ बुह्लर, लुडर्स सूची ४९९। कुररवासी भिक्षुणी मित्रश्री का दान।

१५५

१७०५ सांची स्तूप १ अभिलेख -- प्राकृत, ब्राह्मी; एपिग्राफिया इंडिका २ - ३१४ १३६६
संख्या ३५६ बुह्लर, लुडर्स सूची ५४२। कुररगृह से भिक्षुणी सिंहा और देवदत्ता का दान।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

विगत ५० वर्षों के भीतर हिंदी साहित्य के इतिहास की प्रचुर मसाग्री उपलब्ध हुई है। देश के स्वाधीन और हिंदी के राज्यभाषा हो जाने की घोषणा के बाद हिंदी भाषा और साहित्य का क्रमबद्ध तथा विस्तृत इतिहास प्रस्तुत कर देना एक दो व्यक्तियों के बूते के बाहर की बात थी। यही समझकर इस कार्य को सभा ने अपने हाथों लिया और हिंदी साहित्य के बृहत् इतहास को १७ भागों में प्रस्तुत करने की योजना बनाई। हिंदी के सभी चोटी के विद्वानों और हिंदी प्रदेश की सरकारों ने इस योजना को मान्यता दी, सभा को इन सबका सहयोग प्राप्त हुआ और राष्ट्रपति श्री डा० राजेंद्रप्रसाद जी ने आशीर्वाद देने की कृपा की। कार्य द्रुतगति से अग्रसर हो रहा है। निम्नलिखित भाग प्रकाशित हो चुके हैं—

प्रथम भाग

हिंदी साहित्य की पीठिका

संपादक – श्री डा० राजबली पांडेय

षष्ठ भाग

शृंगारकाल (रीतिबद्ध)

संपादक डा० नगेंद्र

रायल अठपेजी आकार **आफसेट कागज**

मूल्य प्रत्येक भाग २५)

षोडश भाग

हिंदी का लोक साहित्य

संपादक

श्री राहुल सांकृत्यायन तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय

प्रकाशित हो गया।

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

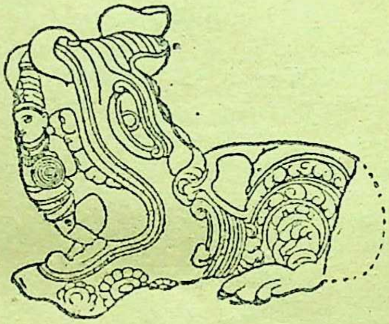

प्रकाशक — डा० राजबली पांडेय, प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक—शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri